श्रीः।

भूमिका



पूज्यपाद श्रीमच्छङ्कराचार्यरचित यह "सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रह" नामक ग्रन्थ आजतक न हिन्दीभाषानुवाद सहित छपा ही था और न इसका इधर प्रचार ही था, जिन लोगोंने भगवान् शंकराचार्यजीके और २ ग्रन्थोंको पढ़कर आनन्द पाया है, उनको निःसन्देह यह ग्रन्थ बड़ा ही आनन्द देगा, क्योंकि-इस ग्रन्थमें वेदान्तशास्त्रकी सब ही बातें सरलताके साथ वर्णन करदी हैं। जो निरन्तर दुःखमय संसारसे मुक्ति पाना चाहते हों जिनको जन्म मरण आदिके चुङ्गलसे रक्षा पानेकी इच्छा हो, उनको एकमात्र वेदान्तशास्त्रकी शरण लेनी चाहिये।

इस विशाल ब्रह्माण्डमें अनेकों जीव व्याकुल हुए, घटीयन्त्रकी समान देव मनुष्यादि योनियोंमें वारम्वार चक्कर लगाते रहते हैं। शरीर धारण करके शारीरिक मानसिक और दैवी दुःखोंसे छुटकारा नहीं मिलता। कीट पतङ्गसे लेकर हिरण्यगर्भ तक सबको ही न्यूनाधिक सुख दुःखने जकड रक्खा है। प्राणी वार वार त्रितापसे झुलस कर उसको दूर करनेके लिये अनेकों उपाय करते हैं। परन्तु मोहान्ध जीव उस दुःखसे छूटने और सुख पानेके वास्तविक उपायको नहीं जान पाते। माला चन्दन स्त्री पुत्र और मिष्टान्न आदि विषयोंके द्वारा ही दुःखको दूर करके सुख पाना चाहते हैं, किन्तु इन विषयोंसे दुःख दूर होना और सुख पाना तो दूर रहा उलटा दुःख ही बढ़ता है, इसलिये विचारशील पुरुष विषयसुख पर लात मारकर अखण्ड सुखको पानेके लिये शास्त्रमें लिखे उपायका ही अवलम्ब लेते हैं, क्योंकि-शास्त्रीय उपाय ही दुःखनिवृत्ति और सुखप्राप्तिका एकमात्र उपाय है। अब देखना चाहिये, कि-शास्त्रने कौनसा साधन बताया है, उसको जान लेने पर ही उसका आश्रय लिया जासकेगा, इसलिये पहले शास्त्रका ही कुछ परिचय देते हैं--

शास्त्र शब्दसे पहले तो वेदको ही लिया जाता है, वेदमूलक होनेसे मनु आदिके ग्रंथ भी शास्त्र कहलाते हैं। इस वेदके दो भाग हैं-एकका नाम मन्त्र और दूसरे का नाम ब्राह्मण है। मन्त्रभागको कर्मकाण्ड और ब्राह्मणभागको ज्ञानकाण्ड

कहते हैं। यद्यपि ब्राह्मणभागमें कर्मकाण्डका विषय भी लिखा है, तथापि ज्ञानका उल्लेख प्रधानरूपसे है, इसलिये उसको ज्ञानकाण्ड कहते हैं। कर्मकाण्डमें पहले अधिकारीके लिये चित्तकी शुद्धिके निमित्त ज्योतिष्टोम याग आदि कर्मोंका उपदेश दियाहै और ज्ञानकाण्डमें-जीव संसारसागरके पार होकर किस प्रकार सुख और शान्ति पासकता है, इसका निरूपण किया है। जो अज्ञात विषयका उपदेश देय और जिससे अलौकिक इष्टप्राप्ति तथा अनिष्टकी निवृत्तिका उपाय जानाजाय उसको ही विद्वान् पुरुष वेद कहते हैं। जैसे कर्मकाण्डमें अलौकिक स्वर्गादिको पानेका उपाय याग यज्ञादि विशेषरूपसे लिखे हैं, ऐसे ही ज्ञानकाण्डमें अपरिच्छिन्न आनन्दात्मक ब्रह्मरूप मुक्तिका अलौकिक विषय लिखा है। जैसे मन्त्रभागको अटल प्रमाण मानाजाता है, ऐसे ही ब्राह्मणभागका प्रामाण्य भी शिरोधार्य किया जाता है। धर्मसूत्रकार भगवान् आपस्तम्ब कहते हैं, कि-" मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् " मन्त्र और ब्राह्मण दोनोंका ही अविशेषरूपसे वेद नाम है।

कोई२महात्मा केवल मन्त्रभागको ही वेद मानते हैं,ब्राह्मणभागको वेद मानना नहीं चाहते, कहते हैं, कि-ब्राह्मणभाग मन्त्रभागका व्याख्यान है, इसलिये वह भाषा-टीका आदिकी समान अन्य पुरुषोंका बनाया हुआ है। ऐसा व्याख्यानग्रन्थ वेद नहीं होसकता, और ब्राह्मणभागमें जनमेजय आदिकी कथायें हैं, ऐसे इधरके समयके मनुष्योंके उसमें नाम आते हैं,इसलिये वह जनमेजय आदिके पीछे ही बना है, तीसरे पहले ऋषि कर्मयोगी थें, वे अग्निहोत्र आदि वैदिक कर्मकाण्डका अनुष्ठान करके मुक्ति पाचुके हैं, इसलिये मन्त्रभाग ही प्रमाणरूप है, ऐसी २ शंकायें उठाकर उन्होंने सरलचित्त पुरुषोंको सन्देहमें डाल दिया है।

विचार करने पर उनकी यह शंका कुछ भी नहीं है। धर्मके विषयमें वेदके तत्त्ववेत्ता ऋषियोंका वाक्य ही प्रमाण मानाजाता है, जब भगवान् आपस्तम्ब स्पष्ट शब्दोंमें मन्त्र और ब्राह्मणको वेद कह रहे हैं तो उनकी बातको अप्रमाण कैसे कहा जा सकता है ? यदि ब्राह्मण भागमें मन्त्रोंकी व्याख्या देखकर ही उसको अन्यका रचा कहते हो तब तो बहुतसे प्राचीन भाष्योंमें भी अपने ही वाक्य उठा कर उनकी व्याख्या की है, इससे उन भाष्योंके बहुतसे भागका रचयिता किसी औरको ही मानना पड़ेगा, इस दशामें वात्स्यानकृत न्यायभाष्य और श्रीशंकराचार्यके ब्रह्मसूत्रोंके भाष्यमेंके व्याख्याभागको भी दूसरेका रचित कहना पड़ेगा,यथा कि-" सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र पदैः सूत्रानुसारिभिः। स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः॥" जिसमें सूत्रके अनुगामी पदोंके द्वारा सूत्रका अर्थ वर्णन

किया जाता है और अपने पदोंकी व्याख्या कीजाती है वह भाष्य कहलाता है, इसलिये केवल, व्याख्या होनेसे व्याख्याभागका कर्त्ता दूसरा नहीं होसकता, इसलिये व्याख्या होनेके कारण ज्ञानकाण्ड अप्रमाण नहीं होसकता। ब्राह्मण-भागमें जनमेजय आदिका उपाख्यान है, यदि उसको पौरुषेय और अप्रमाण कहा जाता है तो मंत्रभागमें भी उर्वशी और पुरूरवस् आदिका उपाख्यान है,अतः उसको भी पौरुषेय और अप्रमाण कहना पड़ेगा, इसलिये इस दशामें मंत्र भाग यदि वेद है तो ब्राह्मण भाग भी अवश्य वेद है, इसलिये वेदका ज्ञानकाण्ड अप्रमाण नहीं है।

ब्राह्मणभागमें तत्त्वज्ञानका उपदेश है,वह अविद्याको दूर करनेके कारण मनुष्यमात्रका हितकारी है। कर्मकाण्डमें उपदेश कियेहुए स्वर्गादिके फलरूप अदृष्टके द्वारा अन्य देह धारण करना पड़ता है,परन्तु ज्ञानके फल मुक्तिमें देहधारणका संभव ही नहीं है। कर्म लोकान्तरमें फलभोग कराता है और ज्ञान इस लोकमेंही समूल अविद्याका नाश करदेता है। जिसमें इस संसाररूप अनर्थपरम्पराकी निवृत्तिका उपाय वर्णन किया है, उसको असफल कौन कह सकता है? इसलिये कर्मकाण्डकी समान ज्ञानकाण्ड भी प्रमाण है, इसलियेही उसका आकर वेदान्त भी प्रमाण है।

वेदान्तका तात्पर्य है—अद्वैत ब्रह्मका प्रतिपादन करना। अद्वैतवाद क्या पदार्थ है? इस जगत्में एक वस्तुकी सत्तासेही सब चल रहा है,सब उसमें ही अध्य-स्त-आरोपित या कल्पित है। जीव उस अद्वितीय सत्स्वरूप ब्रह्मसे भिन्न नहीं है इस तत्त्वका ही नाम अद्वैतवाद है। द्वैतवादी जीव और ब्रह्मका भेद तथा जीवोंका पर-स्पर भेद मानकर सब पदार्थोंकी सत्यताका निरूपण करते हैं। अब विचार करके देखना चाहिये, कि-वेदान्तका तात्पर्य द्वैतमें है या अद्वैतमें? "अज्ञातज्ञापकत्वं शास्त्रत्वम्" जो अज्ञात विषयको बतावे उसको ही शास्त्र कहते हैं। वेदान्तभी अज्ञात जीव और ब्रह्मकी एकताका वर्णन करके शास्त्र नामकी योग्यता पाता है। भेदको सब जानते हैं, प्रत्यक्ष दीखता है, यदि उसको ही वेदान्त भी बताता हो तो वह चर्वितचर्वण करता है. इस दशामें वह प्रामाणिक शास्त्र कहलानेका अधिकारी नहीं होसकता। और एक बात है. वेदान्तमें "नेह नानाऽस्ति किञ्चन" मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति,' इत्यादि श्रुतियोंमें द्वैतवादकी निन्दा देखनेमें आती है। सब वेदान्तको देख डालो, अद्वैतकी निन्दा कहीं नहीं है इसलिये वेदान्तका तात्पर्य अद्वैतमें है- यह बात सहजमें ही समझमें आजाती है। श्रुतियोंमें जहाँ कहीं जीव और ईश्वरके भेदका वर्णन है वह उपाधिके कारणसे है। जैसे एक ही चन्द्रमा

जलके पात्रोंके भेदसे अनेकरूप प्रतीत होता है, वास्तवमें भिन्न नहीं होता है, ऐसे ही जीव अद्वितीय ब्रह्मस्वरूप होकर भी अन्तःकरणरूप उपाधिके भेदसे नानारूप वाला प्रतीत होता है, वास्तवमें एक है।

पृथ्वी पर जितने भी धर्ममत प्रचलित हैं, उनमें अद्वैतवादका सिंहासन सबसे ऊँचा है। सब ही मत अद्वैतवादकी शीतल छायाका आश्रय लिये हुए हैं। ऐसा शान्त, पवित्र तथा उदारभाव और कहीं नहीं है। जब एकमात्र ब्रह्मसत्ताका ज्ञान होजाय, जब ब्रह्मके सिवाय और सब पदार्थ मिथ्या प्रतीत होनेलगें तो कौन किसके साथ राग द्वेष करे? सब ही शान्तभावसे भगवान्की उपासना करेंगे। जहाँ भेदवाद है तहाँ ही परस्पर विरोध और छुटाई, बड़ाई देखनेमें आती है। यदि द्वैतवादियोंका द्वैत ही परमार्थ तत्त्व हो और अन्तमें अपनेसे भिन्न परमेश्वरकी दासता करना ही मोक्ष हो तो बन्धन किसका नाश होगा? जब तक पराधीनता रहेगी, जब तक दासता रहेगी तब तक सुख शान्ति कहाँ? इसलिये ऐसी मुक्ति भी दूसरा बन्धन ही है।

जो लोग द्वैतवादको सत्य मानकर दूसरोंकोभी उसका ही उपदेश देते हैं, उनको हम दोष नहीं देते, क्योंकि—अद्वैत बड़ा गहन है, एकाएकी लोगोंकी बुद्धिमें नहीं आसकता, ऐसे सब प्रथम अधिकारियोंके लिये द्वैतमत ही अच्छा है। जैसे बालक निर्मल आकाशमें मलिनता आदिकी कल्पना करलेता है ऐसे ही भेदवादी लोग उस ही अद्वितीय परब्रह्मसे जीव और प्रपञ्चके सत्यभेदकी कल्पना करलेते हैं। ऐसे लोग यदि द्वैतका पक्ष लेकर कर्मानुष्ठान करेंगे तो किसी समय अद्वैतकी महिमाको समझ सकेंगे। भगवान् व्यासदेव अद्वैतवादी हैं, गौड़पादाचार्यने इसमतकी पुष्टि की है और भगवान् शङ्कराचार्यने उसका प्रचार मात्र किया है। यह अद्वैत ज्ञान ही तत्त्वज्ञान है, यही मुक्तिका एकमात्र उपाय है। भगवान् शङ्कराचार्यने इस तत्त्वज्ञानका उपदेश देकर मुक्तिके मार्गको प्रशस्त करदिया है।

एक समय ऐसा आगया था, कि—भारतमें सनातन-आर्य वर्णाश्रम धर्मके ऊपर घोर कुठाराघात होने लगा था। बौद्ध जैन आदि नास्तिकमण्डलियें सनातन वेदको न मान कर नयेरमतोंका प्रचार करने लगीथीं। प्रायः पृथिवीका चौथाई भाग उन धर्मोंमें जापहुंचा था। यहाँ तक कि—बहुतसे राजे भी उन सम्प्रदायोंके अनुयायी होकर प्रजाओंको बलात्कारसे उन मतोंका अनुयायी बनाने लगे थे। उस समय वर्णाश्रम धर्म उथल पुथल होरहा था, वेदविहित कर्मानुष्ठानका लोप होता चला जा रहा था और लोग सदाचारसे विमुख होते चले जारहे थे। केवल

ब्राह्मण लोग सनातन वर्णाश्रमधर्मकी रक्षाके लिये नगर ग्रामोंको छोड़कर नदियोंकी कछारोंमें, गहनवनोंमें और पहाड़ोंकी गुफाओंमें जाकर समय बिताने लगे थे, उनके प्रबल वेगके सामने कोई भी खड़ा नहीं होता था। उस समय भगवान् स्थिर न रह सके, उनके हृदय पर अधर्मकी बड़ी भारी टक्कर लगने लगी उन्होंने "यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥" इस अपनी प्रतिज्ञाको याद किया। शीघ्र ही दक्षिणके केरल देशमें अपनेको प्रकट किया। अमावस्याकी अँधेरी रातमें मानो उषाका क्षीण प्रकाश दिखाई दिया। बालक शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी समान बढ़नेलगा। उसके मुख कमलमें मानो मूर्त्तिमती शारदा लीला करने लगी। थोड़े ही समयमें बालक वेदविद्याका पारगामी होगया, परन्तु उसको संसारी ऐश्वर्यसुखके ऊपर बड़ा ही वैराग्य होता था। वह प्रतिक्षण संसारकी अनित्यताको देखने लगा। अन्तको संन्यास ग्रहण उसके जीवनका एकमात्र लक्ष्य हुआ, परन्तु उसकी विधवा माता उसके इस संकल्पमें बाधा डालती थी, इसलिये उन्होंने एक उपायसे माताकी आज्ञा लेकर संन्यास धारण कर लिया। यद्यपि " यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत् " इस श्रुतिके प्रमाणसे तीव्र वैराग्यवान् पुरुषको किसी बातकी अपेक्षा न करके तत्काल संन्यास ग्रहण कर लेना चाहिये। यद्यपि इस बातको वह जानते थे, तथापि उन्होंने लोकशिक्षाके लिये माताकी आज्ञाका पालन करके ही संन्यास लिया। जगत्में माता पिताकी समान और कोई गुरु नहीं है, लोगोंको इस बात की शिक्षा देनेके लिये ही उन्होंने ऐसी नीतिका अवलम्बन किया था।

तदनन्तर भगवान् शंकराचार्यने गोविन्दपादसे दीक्षा लेकर गुरुसे पाई हुई विद्याका उत्कर्ष दिखाया। फिर काशीपुरीमें रहकर शिष्योंको विद्याका उपदेश दिया और साथ ही उपनिषद्भाष्य, ब्रह्मसूत्रोंका शारीरकभाष्य एवं गीताभाष्य आदि बहुतसे ग्रंथों को रचकर जगत्में वेदांतका मुख्य तात्पर्य प्रकट किया, कुमारिकासे हिमालय तक वर्णाश्रमधर्मकी दुन्दुभी बजादी। भारतके चारों प्रान्तमें चार किलोंकी समान चार मठ स्थापन करदिये। स्वयं शृंगेरीमठमें रहकर शेष मठोंमें अपने प्रधान शिष्योंको रखदिया, इसप्रकार वेदान्तका प्रचार करके भगवान् शंकराचार्यने बौद्धधर्मकी उमड़ती हुई प्रबल धाराको रोकदिया था। भगवान् शंकराचार्यने जैसे तीक्ष्ण बुद्धि वालोंके लिये शारीरकभाष्य उपनिषद्भाष्य आदिकी रचाना की थी, वैसेही अल्पमतिवालोंके उपकारार्थ सरलरूपसे वेदान्तका अभिप्राय समझानेके लिये वेदान्तके

और भी बहुतसे ग्रन्थ रचे थे । उनही ग्रन्थोंमेंका एकग्रन्थ यह "सर्ववेदान्तसिद्धान्त-सारसंग्रह" है ।

इस ग्रंथमें वेदांतके प्रायः सब ही सिद्धांतोंको संक्षिप्त और सरलताके साथ लिख दिया है । इसकी रचनापरिपाटी और लेखनशैली बडी ही चमत्कारमयी है, श्लोक सहज और काव्यकी समान बड़े ही मधुर हैं । इस सुन्दर ग्रंथका अभ्यास कर लेनेसे प्रायः वेदांतकी सब बातोंका अभ्यास होजायगा, जो लोग शारीरक भाष्य उपनिषद्भाष्य आदि कठिन ग्रंथोंको नहीं समझ सकते उनके लिये यह ग्रंथ बड़ा ही उपयोगी है ।

आशा है वेदांतके प्रेमी इस पुस्तकका संग्रह करके मेरे उत्साहको बढ़ावेंगे और मेरे दृष्टिदोषवश जहाँ कहीं त्रुटि प्रतीत हो उसकी मुझे सूचना देकर अनुगृहीत करेंगे, जिससे अगले संस्करणमें उसको सुधार दिया जायगा। ॐ शम् ।

विनीत निवेदक—

ऋ०कु०रामस्वरूपशर्मा,

मुरादाबाद ।



श्रीहरिः

श्रीमच्छङ्कराचार्य-प्रणीत

सर्ववेदान्त-सिद्धान्त-सार-संग्रह

अन्वय पदार्थ और भावार्थ सहित

मङ्गलाचरणम्

अखण्डानन्दसन्दोहो वन्दनाद्यस्य जायते ।
गोविन्दं तमहं वन्दे चिदानन्दतनुं गुरुम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ--(यस्य) जिस के (वन्दनात्) प्रणाम करने से (अखण्डानन्दसन्दोहः) अखण्ड आनन्दका अनुभव (जायते) होताहै (तम्) उस (चिदानन्दतनुम्) चिदानन्दमूर्त्ति (गोविन्दम्) गोविन्द नामवाले (गुरुम्) गुरुको (अहम्) मैं (वन्दे) प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥

(भावार्थ)-जिनको प्रणाम करने से अखण्ड आनन्दका साक्षात्कार होता है उन चैतन्य और आनन्दकी साक्षात् मूर्त्तिस्वरूप गोविन्द नामवाले गुरु को मैं प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥

अखण्डं सच्चिदानन्दमवाङ्मनसगोचरम् ।
आत्मानमखिलाधारमाश्रयेऽभीष्टसिद्धये ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अखण्डम्) पूर्णरूप (सच्चिदानन्दम्) सत्-चित्-आनन्दस्वरूप (अवाङ्मनसगोचरम्) वाणी और मन से पर (अखिलाधारम्) सबके आधार (आत्मानम्) आत्मा को (अभीष्टसिद्धये) अभिलाषा की सिद्धि के लिये (आश्रये) आश्रय करता हूं ॥ २ ॥

(भावार्थ)-जिसका कभी नाश नहीं होता अर्थात् सदा जो एकरूप रहता है, जो वास्तव में सत्स्वरूप ज्ञानरूप और आनन्दस्वरूप है, जो जड़ चेतनरूप सकल सृष्टि का जीवनाधार है, जिसका वेदादि भी नेति नेति करके वर्णन करते हैं इसकारण

जो वाणी से पर है और जो मनके चिन्तवनका भी विषय नहीं होता है, उस सर्वव्यापी ब्रह्मका मैं आश्रय लेता हूं ॥ २ ॥

यदालम्बो दरं हन्ति सतां प्रत्यूहसम्भवम् ।
तदालम्बे दयालम्बं लम्बोदरपदाम्बुजम् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यदालम्बः) जिनकी शरण लेना (सताम्) सत्पुरुषोंके (प्रत्यूहसम्भवम्) विघ्नोंसे उत्पन्न हुए (दरम्) भयको (हन्ति) नष्ट करता है (तत्) उन (दयालम्बम्) दयाके आधार (लम्बोदरपदाम्बुजम्) गणपतिके चरणकमलोंका (आलम्बे) आश्रय लेता हूं ॥ ३ ॥

(भावार्थ)—जिनकी शरण लेनेसे सत्पुरुषों को किसी भी विघ्नके भयकी बाधा नहीं होती, उन भक्तों पर दया करनेवाले श्रीगणपति के चरणकमलों की मैं शरण लेता हूं ॥ ३ ॥

अर्थतोऽप्यद्वयानन्दमतीतद्वैतलक्षणम् ।
आत्मारामहं वन्दे श्रीगुरुं शिवविग्रहम् ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अर्थतः-अपि) वास्तव में ही (अद्वयानन्दम्) द्वैतहीन आनन्दरूप (अतीतद्वैतलक्षणम्) द्वैतरूपिणी मायासे पर (आत्मारामम्) अपने स्वरूपमें रमण करनेवाले (शिवविग्रहम्) शिवरूप (श्रीगुरुम्) श्रीगुरुको (वन्दे) प्रणाम करता हूं ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-जो, नामसे जैसे अद्वयानन्द हैं तैसे ही अर्थसे भी अद्वितीय आनन्दस्वरूप हैं अर्थात् जो एक ही, सकल विश्वमें आनन्दरूप से भास रहे हैं और जो इस दृश्यमान प्रपञ्चसे अनुमान की जानेवाली अविद्या के पर हैं अथात् इस संसार के दृश्यमान विषयोंमें फँसे हुए अज्ञानीपुरुष जिनको नहीं पासकते उन केवल अपने स्वरूपमें ही रमण करनेवाले श्रीशिवरूप गुरुदेवको मैं प्रणाम करता हूं ॥४॥

वेदान्तशास्त्रसिद्धान्तसारसंग्रह उच्यते ।
प्रेक्षावतां मुमुक्षूणां सुखबोधोपपत्तये ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रेक्षावताम्) विवेकी (मुमुक्षूणाम्) मोक्षाभिलाषियोंके (सुखबोधोपपत्तये) अनायासमें ज्ञानप्राप्तिके लिये (वेदान्तशास्त्रसिद्धान्तसारसंग्रहः) वेदान्त शास्त्रके सिद्धान्तों का सारभूत संग्रह (उच्यते) कहाजाता है ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-जिनको सार असारका ज्ञान होगया है ऐसे मोक्ष चाहनेवाले

विवेकी पुरुषोंको सुखपूर्वक सहज में ही आत्मज्ञान होनेके लिये वेदान्तशास्त्रके सिद्धान्तोंका साररूप संग्रह इस ग्रन्थ में कहाजायगा ॥ ५ ॥

अनुबन्धनिरूपण ।

अस्य शास्त्रानुसारित्वादनुबन्धचतुष्टयम् ।
यदेव मूलं शास्त्रस्य निर्दिष्टं तदिहोच्यते ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (शास्त्रस्य) शास्त्रका (मूलम्) मूल (निर्दिष्टम्) कहाहै (अस्य) इस ग्रन्थके (शास्त्रानुसारित्वात्) शास्त्रानुकूल रचित होने से (तत् एव) वह ही (अनुबन्धचतुष्टयम्) चार प्रकार का अनुबन्ध (इह) यहां (उच्यते) कहाजाता है ॥ ६ ॥

(भावार्थ)-किसी भी शास्त्रकी रचनाका आरम्भ करने से पहिले- इस शास्त्र से किस प्रयोजन की सिद्धि होगी ? यह किसके लिये रचागया है ? इस में किस विषयका वर्णन है ? और इन विषय प्रयोजन तथा शास्त्रका परस्पर क्या सम्बन्ध है ? इन चार बातोंको बताये विना उस शास्त्र के पढ़नेमें प्रवृत्ति नहीं होतीहै, अतः सब शास्त्र ग्रन्थों का आरम्भ करने से पहिले ये चार बातें बतलादेनी चाहियें, इसीकारण कहते हैं कि-यह ग्रन्थ भी वेदान्तशास्त्रके अनुसार ही है, अतः वे इ, चारों अनुबन्ध यहाँ कहे जाते हैं ॥ ६ ॥

अधिकारी च विषयः सम्बन्धश्च प्रयोजनम् ।
शास्त्रारम्भफलं प्राहुरनुबन्धचतुष्टयम् ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अधिकारी) शास्त्रोक्त फल चाहनेवाला पुरुष (च) और (विषयः) जिसका वर्णन होगा वह विषय (च) और (सम्बन्धः) शास्त्र प्रयोजन और विषय का परस्पर सम्बन्ध (प्रयोजनम्) फल [एतत्] इसको (शास्त्रारम्भफलम्) शास्त्रके आरम्भका हेतु (अनुबन्धचतुष्टयम्) चार अनुबन्ध (प्राहुः) कहते हैं ॥ ७ ॥

(भावार्थ)-जिसको शास्त्रमें कहे फलको पाने की इच्छा हो, वह अधिकारी, शास्त्रमें जिसका वर्णन होगा वह विषय, अधिकारी विषय और प्रयोजन का परस्परका सम्बन्ध तथा इस आरम्भ कियेजाते हुए शास्त्रको पढ़ने से क्या फल होगा वह प्रयोजन, ये चार बातें जो कि-शास्त्र के आरम्भकी मूल कारण हैं इनको ही अनुबन्धचतुष्टय कहते हैं ॥ ७ ॥

चतुर्भिः साधनैः सम्यक्सम्पन्नो युक्तिदक्षिणः ।
मेधावी पुरुषो विद्वानधिकार्यत्र सम्मतः ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(चतुर्भिः) चार (साधनैः) साधनोंसे (सम्यक्) भले प्रकार (सम्पन्नः) युक्त (युक्तिदक्षिणः) युक्तियोंमें चतुर (मेधावी) धारणा शक्ति वाला (विद्वान्) पढ़ा हुआ (पुरुषः) पुरुष (अत्र) यहाँ (अधिकारी) अधिकारवाला (सम्मतः) मानागया है ॥ ८ ॥

(भावार्थ)-आगे कहेहुए चार साधन जिसने साधलिये हों, जो श्रेष्ठ युक्तियोंका प्रयोग करनेमें प्रवीण हो, और जो शास्त्रमें लिखी बातको धारण करसकता हो, ऐसा वेदादि शास्त्रोंको पढ़ाहुआ पुरुष इस वेदान्त शास्त्रका योग्य अधिकारी मानागया है।

विषयः शुद्धचैतन्यं जीवब्रह्मैक्यलक्षणम् ।
यत्रैव दृश्यते सर्ववेदान्तानां समन्वयः ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्र) जहां (सर्ववेदान्तानाम्) सकल उपनिषदोंका (समन्वयः) तात्पर्य (दृश्यते) दीखे [तत्] वह (जीवब्रह्मैक्यलक्षणम्) जीव और ब्रह्मका ऐक्यरूप (शुद्धचैतन्यम्-एव) परब्रह्म ही (विषयः) विषय है ॥ ९ ॥

(भावार्थ)-जो सब ही उपनिषदोंका निष्कृष्ट अर्थरूप दीखता है वह जीव और ब्रह्मका एकत्वरूप शुद्धचैतन्य ही इसवेदान्तशास्त्रका विषय है अर्थात् इसग्रन्थमें पर ब्रह्मका वर्णन कियाजायगा ॥ ९ ॥

एतदैक्यप्रमेयस्य प्रमाणस्यापि च श्रुतेः ।
सम्बन्धः कथ्यते सद्भिर्बोध्यबोधकलक्षणः ॥१०॥

अन्वय और पदार्थ-(एतदैक्यप्रमेयस्य) इस जीवब्रह्मकी एकतारूप प्रमेयका (च) और (श्रुतेः) श्रुतिरूप (प्रमाणस्य-अपि) प्रमाणका भी (बोध्यबोधकलक्षणः) बोध्यबोधकरूप (सम्बन्धः) सम्बन्ध (सद्भिः) सत्पुरुषों करके (कथ्यते) कहाजाता है ॥ १० ॥

(भावार्थ)-इस जीव ब्रह्मकी एकतारूप प्रमेयका और श्रुतिरूप प्रमाणका परस्पर जो बोध्यबोधकरूप सम्बन्ध है उसको ही पण्डितोंने वेदान्त में सम्बन्ध माना है।१०।

ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानं सन्तः प्राहुः प्रयोजनम् ।
येन निःशेषसंसारबन्धात्सद्यः प्रमुच्यते ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सन्तः) विवेकी पुरुष (ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानम्) ब्रह्म और जीवात्माकी एकताके अनुभवको (प्रयोजनम्) प्रयोजन (प्राहुः) कहते हैं

(येन) जिसके द्वारा (सद्यः) तत्काल (निःशेषसंसारबन्धात्) सकल संसार बन्धनसे (मुच्यते) छूटजाता है ॥ ११ ॥

(भावार्थ)–जिसके द्वारा जीव शीघ्र ही सब प्रकारके संसारबन्धनोंसे छूटजाता है, उस जीव और ब्रह्मके अभेदज्ञानको ही विवेकी पुरुषोंने वेदान्तशास्त्रके पढ़नेका प्रयोजन माना है ॥ ११ ॥

प्रयोजनं सम्प्रवृत्तेः कारणं फललक्षणम् ।
प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्त्तते ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ–(फललक्षणम्) फलरूप (प्रयोजनम्) प्रयोजन (सम्प्रवृत्तेः) सम्यक् प्रवृत्तिका (कारणम्) हेतु [भवति] होता है (मन्दः अपि) मूढ़बुद्धि भी (प्रयोजनम् अनुद्दिश्य) फलकी ओर विना ध्यान दिये (न) नहीं (प्रवर्त्तते) प्रवृत्त होता है ॥ १२ ॥

(भावार्थ)–जब किसी प्रकारके फलकी प्राप्तिरूप प्रयोजन सिद्ध होता दीखता है तब ही लोगों की किसी काममें प्रवृत्ति होती है, यह बात सर्वत्र ही देखने में आती है, यहाँ तक कि–जिसको बहुत ही थोड़ी बुद्धि होती है वह भी जब तक अपना कुछ प्रयोजन सिद्ध होता नहीं देखलेता है तबतक किसी कामको करनेमें प्रवृत्त नहीं होता है ॥ १२ ॥

साधनचतुष्टय

साधनचतुष्टयसम्पत्तिर्यस्यास्ति धीमतः पुंसः ।
तस्यैवैतत्फलसिद्धिर्नान्यस्य किञ्चिदूनस्य ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ–(यस्य) जिस (धीमतः) बुद्धिमान् (पुंसः) पुरुष के (साधनचतुष्टयसम्पत्तिः) चार साधनों की सम्पदा (अस्ति) है (तस्य-एव) उसको ही (एतत्फलसिद्धिः) इस फलकी सिद्धि [भवति] होती है (किञ्चिदूनस्य) कुछ न्यूनतावाले (अन्यस्य) औरको (न) नहीं होती है ॥ १३ ॥

(भावार्थ)–जो बुद्धिमान् चारों साधनरूपी सम्पदाको पूर्ण रीतिसे प्राप्त करलेता है, उसको ही जीव और ब्रह्मकी एकताका ज्ञानरूप फल प्राप्त होता है और जिसको चारों साधनोंमें से किसीएकमें भी कुछ कमी हो तो उसको जीव ब्रह्मका अभेदज्ञानरूपफल प्राप्त नहीं होता है ॥ १३ ॥

चत्वारि साधनान्यत्र वदन्ति परमर्षयः ।

मुक्तिर्येषान्तु सद्भावे नाभावे सिध्यति ध्रुवम् ॥१४॥

अन्वय और पदार्थ-(परमर्षयः) श्रेष्ठ ऋषि (अत्र) इस विषय में (चत्वारि) चार (साधनानि) उपायोंको (वदन्ति) कहते हैं (येषाम्) जिनके (सद्भावे) सिद्ध होजाने पर (मुक्तिः) मुक्ति (सिद्धयति) सिद्ध होती है (अभावे तु) न होने पर तो (न) नहीं (ध्रुवम्) यह बात अटल है ॥ १४ ॥

(भावार्थ)-महर्षियोंने इस तत्त्वज्ञानरूप फल को पानेके चार साधन कहे हैं, उन चार साधनोंके सिद्ध होजाने पर ही मुक्ति होती है, नहीं तो मुक्ति नहीं होती यह बात अटल है ॥ १४ ॥

आद्यं नित्यानित्यवस्तु-विवेकः साधनं मतम् ।
इहामुत्रफलभोग-विरागस्तु द्वितीयकम् ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(नित्यानित्यवस्तुविवेकः)नित्य अनित्य वस्तुका विवेक (आद्यम्) पहिला (साधनम्) साधन (मतम्) माना है (इह) इसलोकमें (अमुत्र) परलोकमें(फलभोगविरागः, तु) फलके भोगमें वैराग्य तो (द्वितीयम्) दूसरा [साधनं, मतम्] साधन माना है ॥ १५ ॥

(भावार्थ)-नित्य और अनित्य पदार्थमें जो परस्पर भेद है, उसके ज्ञानको शास्त्रमें पहिला साधन माना है और इस जगत्में तथा स्वर्ग आदि लोकोंमें जितनी भी भोगकी वस्तुएं हैं उन सबों के ही ऊपर वैराग्य होना दूसरा साधन माना है १५

शमादिषट्कसम्पत्तिस्तृतीयं साधनं मतम् ।
तुरीयन्तु मुमुक्षुत्वं साधनं शास्त्रसंमतम् ॥ १६ ॥

अन्वय और पदार्थ- (शमादिषट्कसम्पत्तिः) शम आदि छःका सम्पादन (तृतीयम्) तीसरा (साधनम्) साधन (मतम्) माना है (मुमुक्षुत्वम्-तु) मोक्षाभिलाषीपना तो (शास्त्रसम्मतम्)शास्त्रका माना हुआ (तुरीयम्) चौथा (साधनम्) साधन [अस्ति] है ॥ १६ ॥

(भावार्थ)-आगे कहे हुए शम आदि छःका सम्पादन करना तीसरा साधन मानागया है और मोक्ष पानेके लिये अभिलाषा होनेको ही शास्त्र में चौथा साधन बताया है ॥ १६ ॥

नित्यानित्यवस्तु विवेक

ब्रह्मैव नित्यमन्यत्तु ह्यनित्यमिति वेदनम् ।

सोऽयं नित्यानित्यवस्तुविवेक इति कथ्यते ।१७।

अन्वय और पदार्थ-(ब्रह्म एव) परमात्मा ही (नित्यम्) अविनाशी है (अन्यत् तु) और वस्तु तो (हि) निश्चय (अनित्यम्) अनित्य है (इति) ऐसा (वेदनम्) जानना (अयम्) यह (सः) वह (नित्यानित्यवस्तुविवेकः) नित्य अनित्य वस्तुका विवेक है (इति) ऐसा (कथ्यते) कहाजाताहै ॥ १७ ॥

(भावार्थ)-एक परमात्मा ही अविनाशी है. उस परमात्मासे भिन्नऔर जो कुछ भी वस्तु है वह सब नाशवान् है, ऐसा ज्ञान होनेको ही शास्त्र में नित्यानित्य-वस्तुविवेक नामक पहिला साधन कहा है ॥ १७ ॥

मृदादिकारणं नित्यं त्रिषु लोकेषु दर्शनात् ।
घटाद्यनित्यं तत्कार्यं यतस्तन्नाशमीक्षते ॥ १८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(त्रिषु) तीनों (लोकेषु) लोकोंमें (दर्शनात्) देखने से (मृदादि) मट्टी आदि (कारणम्) उपादान कारण (नित्यम्) नित्य है (तत्कार्यम्) उस मट्टी आदिका कार्य (घटादि) घट आदि (अनित्यम्) अनित्य है (यतः) क्योंकि (तन्नाशम्) उसके नाशको (ईक्षते) देखता है ॥ १८ ॥

(भावार्थ)-तीनो लोकों में सर्वत्र ही देखने में आता है, कि-मट्टी आदि जो घड़े आदि बननेके उपदान कारण हैं, वे अपने २ कार्य की अपेक्षा नित्य हैं अर्थात् अधिक समय तक रहने वाले हैं, परन्तु घट आदि कार्य मृत्तिका आदि अपने कारणों की अपेक्षा अनित्य हैं अर्थात् थोड़े समय रहनेवाले हैं, क्योंकि-लोकमें मृत्तिका आदि कारणोंकी वर्तमान दशामें घट आदि कार्य पदार्थों का नाश होता देखने में आता है ॥ १८ ॥

तथैवेतज्जगत्सर्वमनित्यं ब्रह्मकार्यतः ।
तत्कारणं परं ब्रह्म भवेन्नित्यं मृदादिवत् ॥ १९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तथैव) तैसे ही (एतत्)यह (सर्वम्) सब (जगत्) संसार (ब्रह्मकार्यतः) ब्रह्मका कार्य होने से (अनित्यम्) नाशवान् है (तत्कारणम्) उसका कारण (परं ब्रह्म) निरुपाधिक ब्रह्म (मृदादिवत्) मृत्तिका आदिकी समान (नित्यम्) अविनाशी (भवेत्) होगा ॥ १९ ॥

(भावार्थ)-ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ है, इस कारण यह कार्यरूप सब जगत् अनित्य कहिये नाशवान् है और जैसे अपने कार्य घट आदिकी अपेक्षा कारणरूप

मृत्तिका आदि नित्य है तैसे ही इस जगत् रूप कार्यका कारण वह परब्रह्म परमात्मा सत्य है। यहां यह शङ्का होसकती है, कि-वेदान्तमें तो एक ब्रह्म ही नित्य है, फिर यहां शङ्कराचार्यजीने मृत्तिका आदिको नित्य कैसे कहदिया ? इसका उत्तर यह है, कि-यहां नित्य शब्दका अर्थ कार्यकी अपेक्षा अधिक समय तक रहना है; जैसे कि-घटकी अपेक्षा उसकी कारण मट्टी अधिक समय तक रहती है, इस कारण वह आपेक्षिक नित्य है, परन्तु ब्रह्म ऐसा आपेक्षिक नित्य नहीं है, क्योंकि-ब्रह्म उत्पत्तिशून्य और निरवयव पदार्थ है, इसकारण किसी समय भी उसका नाश होनेकी संभावना नहीं है, परन्तु मृत्तिका आदि कारण अपने कार्य घट आदि से अधिक समय पर्यन्त रहें तो भी उनको अविनाशी नहीं कहाजासकता, क्योंकि-वे उत्पन्न होनेवाले सावयव पदार्थ हैं, इसकारण किसी न किसी समय उनका नाश अवश्य ही होगा, परन्तु परब्रह्म उत्पत्तिशून्य और निरवयव होनेके कारण परमार्थतः नित्य है ॥ १९ ॥

सर्गं वक्त्यस्य तस्माद्वा एतस्मादित्यपि श्रुतिः ।
सकाशाद् ब्रह्मणस्तस्मादनित्यत्वे न संशयः ॥२०॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिस (एतस्मात्) इससे (वै) निश्चय (इति) यह (श्रुतिः) श्रुति (अपि) भी (अस्य) इस जगत्की (ब्रह्मणः) ब्रह्मके (सकाशात्) सकाश से (सर्गम्) रचना को (वक्ति) कहती है (तस्मात्) तिससे (अनित्यत्वे) अनित्य होनेमें (संशयः) सन्देह (न) नहीं है ॥ २० ॥

(भावार्थ)-उस ब्रह्मसे ही आकाश आदि उत्पन्न हुआ है इत्यादि वेदकी श्रुति भी स्पष्ट कहती है, कि-यह सब विश्व ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ है, इस कारण जगत्के अनित्य होनेमें कुछ सन्देह नहीं होसकता ॥ २० ॥

सर्वस्यानित्यत्वे सावयवत्वेन सर्वतः सिद्धे ।
वैकुण्ठादिषु नित्यत्वमतिर्भ्रम एव मूढबुद्धीनाम् २१

अन्वय और पदार्थ-(सावयवत्वेन) अवयवोंवाला होनेसे (सर्वस्य) सब वस्तुओंके (अनित्यत्वे) नाशवान्पनेके (सर्वतः) सब प्रकारसे (सिद्धे) सिद्ध होने पर (वैकुण्ठादिषु) वैकुण्ठ आदि लोकोंमें (नित्यत्वमतिः) अविनाशीपने का ज्ञान (मूढबुद्धीनाम्) मूढ़मति पुरुषों का (भ्रमः एव) भ्रम ही है ॥ २१ ॥

(भावार्थ)-अवयववाली हैं, इसकारण जगत् की सब ही वस्तुओंका इस प्रकार

अनित्यपना सिद्ध होजाने पर भी जो वैकुण्ठ आदि लोकों को नित्य मानलेना है सो मूढ़मति पुरुषों का केवल भ्रम ही है ॥ २१ ॥

अनित्यत्वंच नित्यत्वमेवं यच्छ्रुतियुक्तिभिः ।
विवेचनं नित्यानित्यविवेक इति कथ्यते ॥ २२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एवम्) इसप्रकार (अनित्यत्वम्) अनित्यपना (च) और (नित्यत्वम्) नित्यपना [भवति] होता है (श्रुतियुक्तिभिः) श्रुति और उसके अनुकूल युक्तियों द्वारा (इति यत्) इस प्रकार जो (विवेचनम्) विचार है वही (नित्यानित्यविवेकः) नित्य और अनित्यका स्वरूपज्ञान (कथ्यते) कहाजाता है ॥२२ ॥

(भावार्थ)- इसप्रकार नित्यता और अनित्यताके विषयमें वेद और उसके अनुकूल तर्ककी सहायता से जो विचार होता है वह ही नित्यानित्य वस्तुविवेक नामसे कहाजाता है ॥२२ ॥

वैराग्य.

ऐहिकामुष्मिकार्थेषु ह्यनित्यत्वेन निश्चयात् ।
नैस्पृह्यं तुच्छबुद्धिर्यत् तद्वैराग्यमितीर्यते ॥ २३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ऐहिकामुष्मिकार्थेषु) इस लोकके और परलोकके भोग्यपदार्थों में (अनित्यत्वेन) अनित्यभाव से (निश्चयात्) निश्चय होनेके कारण (यत्) जो (नैस्पृह्यम्) निस्पृहपना (तुच्छबुद्धिः) तुच्छपनेका बोध (तत्) सो (वैराग्यम्) वैराग्य है (इति) ऐसा (ईर्यते) कहाजाता है ॥ २३ ॥

(भावार्थ)-इस लोकमें और परलोकमें भोगेजानेवाले सबही पदार्थोंमें अनित्यपनेका निश्चय होजानेके कारण जो उनको भोगनेकी इच्छा न होना है वा उन पदार्थोंको जो तुच्छ समझना है उसका ही नाम वैराग्य है ॥ २३ ॥

नित्यानित्यपदार्थविवेकात्पुरुषस्य जायते सद्यः ।
स्रक्चन्दनवनितादौ सर्वत्रानित्यवस्तुनि विरक्तिः ॥

अन्वय और पदार्थ-(नित्यानित्यपदार्थविवेकात्) नित्य और अनित्य वस्तुका यथार्थरूपसे ज्ञान होजानेके कारण (स्रक्चन्दनवनितादौ) पुष्पमाला, चन्दन और स्त्री आदि (सर्वत्र) सब (अनित्यवस्तुनि) अनित्य पदार्थोंमें (पुरुषस्य) पुरुषको (विरक्तिः)वैराग्य (जायते) उत्पन्न होताहै ॥ २४ ॥

(भावार्थ)-नित्य वस्तु का क्या स्वरूपहै और अनित्य वस्तुका क्या स्वरूप है, इस विषयमें ठीक २ ज्ञानका उदय होजाने के कारण पुरुषको पुष्पमाला, चन्दन और स्त्री आदि सबही अनित्य पदार्थोंमें वैराग्य उत्पन्न होजाताहै ॥ २४ ॥

काकस्य विष्टावदसह्यबुद्धि-
भोग्येषु सा तीव्रविरक्तिरिष्यते ।
विरक्तितीव्रत्वनिदानमाहु-
र्भोग्येषु दोषेक्षणमेव सन्तः ॥ २५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(भोगेषु) भोगोंमें (काकस्य) काककी (विष्टावत्) विष्टाकी समान [या] जो (असह्यबुद्धिः) न सहनेकी मति है (सा) वह (तीव्रविरक्तिः) उत्कट वैराग्य (इष्यते) मानाजाता है (सन्तः) सत्पुरुष (भोगेषु) भोगोंमें (दोषेक्षणम्-एव) दोष देखनेको ही (विरक्तितीव्रत्वनिदानम्) उत्कट वैराग्यका मूलकारण (आहुः) कहतेहैं ॥ २५ ॥

(भावार्थ)-जैसे काककी विष्टा का स्पर्श नहीं सहा जाताहै और उससे घृणा होती है तैसेही जब सकल भोगके पदार्थोंसे घृणा होकर वे असह्य प्रतीत होने लगें तो उसको तीव्र वैराग्य कहतेहैं और उन माला चन्दन स्त्री आदि भोगकी वस्तुओं के दोषों पर दृष्टि रखना ही इस तीव्र वैराग्यके होनेका द्वार है ऐसा विवेकी पुरुष कहते हैं ॥ २५ ॥

प्रदृश्यते वस्तुनि यत्र दोषः
न तत्र पुंसोऽस्ति पुनः प्रवृत्तिः ।
अन्तर्महारोगवतीं विजानन्
को नाम वेश्यामपि रूपिणीं व्रजेत् ॥ २६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्र वस्तुनि) जिस वस्तुमें (दोषः) दोष (प्रदृश्यते) दीखे (ततः) उसमें (पुंसः) पुरुषका (पुनः) फिर (प्रवृत्तिः) अनुराग (न) नहीं (अस्ति) होता है (अन्तर्महारोगवतीम्) इसके देहके भीतर महारोग है ऐसा (विजानन्) जानताहुआ (कःनाम) कौन पुरुष (रूपिणीम्-अपि) रूपवाली भी (वेश्यां, व्रजेत्) वेश्याके साथ समागम करेगा ? ॥

(भावार्थ)-जब कि-यह मालूम होजाय, कि-इस वस्तु में अनेकों दुःख देनेवाला दोष है तो फिर उस वस्तु में किसका अनुराग होगा ? अर्थात् किसी

का भी अनुराग नहीं होगा। जब यह मालूम होजाय कि इस वेश्याके शरीरके भीतर बड़ाभारी रोग है तो फिर वह चाहे जैसी रूपवती हो तो भी क्या कोई उसके साथ समागम करेगा ? कदापि नहीं करेगा ॥ २६ ॥

अत्रापि चान्यत्र च विद्यमान-
पदार्थसंमर्शनमेव कार्यम् ॥
यथाप्रकारार्थगुणाभिमर्शनं ।
सन्दर्शयत्येव तदीयदोषम् ॥२७॥

अन्वय और पदार्थ-(अत्र) यहाँ (अपि च) और (अन्यत्र) परलोक में (च) भी (विद्यमानपदार्थसंमर्शनम्-एव) विद्यमानपदार्थोंके स्वभावका विचार ही (कार्यम्) करना चाहिये (यथाप्रकारार्थगुणाभिमर्शनम्) यथावत् रूपसे पदार्थों के धर्मोंका विचार (तदीयदोषम्) उन पदार्थोंके दोष को (सन्दर्शयति-एव) अवश्य ही दिखा देता है ॥ २७ ॥

(भावार्थ)-इसलोक में और परलोकमें भी जितने भोगके पदार्थ हैं उनका स्वभाव क्या है अर्थात् वे अनित्य हैं या नहीं ? और परिणाममें उनके कारण से दुःख उठाना पड़ता है या नहीं ? यह विचार ही करना चाहिये। इस प्रकार भोग के पदार्थोंके स्वरूपका विचार करना, अन्तमें उन पदार्थोंके दोषको अर्थात् ये सब पदार्थ अनित्य हैं और इनके कारणसे अन्तमें अवश्य ही दुःख उठाना पड़ेगा, इस बातका निश्चय करादेता है ॥ २७ ॥

कुक्षौ स्वमातुर्मलमूत्रमध्ये
स्थितिं तदा विट्कृमिदंशनञ्च ॥
तदीयकौक्षेयकवन्हिदाहं,
विचार्य को वा विरतिं न याति ॥ २८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्वमातुः) अपनी माता की (कुक्षौ) कोखमें (मलमूत्रमध्ये) विष्टा और मूत्रके मध्यमें (स्थितिम्) निवासको (च) और (तदा) उस समय (विट्कृमिदंशनम्) विष्टा के कीड़ोंके काटनेको (तदीयकौक्षेयकवन्हिदाहम्) माताके पेटमें की अग्निके तापसे होनेवाले दाहको (विचार्य) विचारकर (को वा) कौनसा पुरुष (विरतिम्) वैराग्यको (न) नहीं (याति) प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

(भावार्थ)–अपनी माताके पेटमें विष्टा और मूत्रके मध्यमें रहना और उस रहने के समय विष्टामेंसे उत्पन्न हुए कीड़ोंका काटना और माताके पेटमें की अग्निके ताप का दाह होने आदिका विचार करके किस पुरुष को इस संसारके ऊपर वैराग्य नहीं होगा ? ॥ २८ ॥

स्वकीयविण्मूत्र निमज्जनं यत्,
चोत्तानगत्या शयनं तदा यत् ॥
बालग्रहाद्याहतिभाक् च शैशवम्,
विचार्य को वा विरतिं न याति ॥ २९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तदा) उस समय (यत्) जो (स्वकीयविण्मूत्र निमज्जनम्) अपने विष्टा और मूत्रमें निमग्न होता है (यत्) जो (उत्तान-गत्या) ऊपरको पैर होकर (निम्नमुखे) नीचेको मुख होनेकी दशामें (शयनम्) स्थिति होती है (च) और (बालग्रहाद्याहतिभाक्) बालकोंको पीड़ा देनेवाले ग्रहोंके आक्रमणसे युक्त (शैशवम्) बालकपन होता है [एतत्] वह (विचार्य) विचार कर (को वा) कौनसा पुरुष (विरतिम्) वैराग्य को (न) नहीं (याति) प्राप्त होता है ॥ २९ ॥

(भावार्थ)–माताके गर्भमें रहते समय अपने ही विष्टा और मूत्रमें निमग्न होकर पड़ा रहना होता है, उस समय ऊपरको चरण और नीचेको मुख होकर लटके रहना पड़ता है और जन्म होजानेपर बालकोंको पीड़ा देनेवाले अनेकों ग्रहोंके उपद्रवोंसे युक्त बालकपन में न जाने कितना दुःख सहना पड़ता है, यह सब विचार कर ऐसा कौन पुरुष होगा जिसको संसारसे वैराग्य न हो ? ॥ २९ ॥

स्वीयैः परैस्ताडनमज्ञभाव-
मत्यन्तचापल्यमसत्क्रियाञ्च ।
कुमारभावे प्रतिषिद्धवृत्तिं
विचार्य को वा विरतिं न याति ॥ ३० ॥

अन्वय और पदार्थ–(कुमारभावे) कुमारदशामें (स्वीयैः) अपनोंके द्वारा (परैः) दूसरोंके द्वारा (ताड़नम्) पिटनेको (अज्ञभावम्) अनजानपनेको (अत्यन्तचापल्यम्) अत्यन्त चपलपनेको (असत्क्रियाम्) अनुचित कामोंको

(च) और (प्रतिषिद्धवृत्तिम्) निषिद्ध वर्त्तावको (विचार्य) विचार कर (को वा) कौनसा पुरुष (विरतिम्) वैराग्यको (न) नहीं (याति) प्राप्त होताहै ३०

(भावार्थ)-तदनन्तर कुमार अवस्था आने पर घरके और बाहरके चाहे तब पीट देते हैं, विचार बुद्धि होती नहीं इसकारण अनेकों मूर्खताके काम बनजाते हैं, स्वभाव बड़ा चपल होता है, चाहे कोई अनुचित और निषिद्ध काम करने लगता है, इन सब बातोंको विचार कर इस तुच्छ सांसारिक जीवनसे किसको वैराग्य न होगा ? ॥ ३० ॥

मदोद्धतिं मान्यतिरस्कृतिश्च
कामातुरत्वं समयातिलङ्घनम् ।
तां तां युवत्योदितदुष्टचेष्टां
विचार्य को वा विरतिं न याति ॥ ३१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(मदोद्धतिम्) युवा अवस्थाके मदकी उद्धतता (मान्यतिरस्कृतिम्) माननीय पुरुषोंके तिरस्कार करनेको (कामातुरत्वम्) कामसे आतुर होना (समयातिलङ्घनम्) मर्यादाके अतिक्रमण करनेको (च) और (तां-ताम्) तिस२ (युवत्या-उदितदुष्टचेष्टाम्) युवतियोंके साथ प्रकटहुई खोटी चेष्टाको (विचार्य) विचार कर (को वा) कौनसा पुरुष (विरतिम्) वैराग्यको (न) नहीं (याति) प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥

(भावार्थ)-यौवनके मदसे उद्धत होजाना माननीय पुरुषोंका तिरस्कारकरना काम वासनाके वशमें रहना जाति कुल आदिकी मर्यादासे बाहर चलना और युवतियोंके साथ समागमके समय अनेकों प्रकारकी नई २ खोटी चेष्टाएं करना इन घटनाओंका विचार करके किस पुरुषको वैराग्य नहीं होगा ? ॥ ३१ ॥

विरूपतां सर्वजनादवज्ञां,
सर्वत्र दैन्यं निजबुद्धिहैन्यम् ।
वृद्धत्वसम्भावितदुर्दशां तां,
विचार्य को वा विरतिं न याति ॥ ३२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विरूपताम्) बुढ़ापेसे बेढङ्गारूप होनेको (सर्वजनात्) सब लोगोंसे (अवज्ञाम्) तिरस्कारको (सर्वत्र) सब स्थलोंमें (दैन्यम्) दीनता

को (निजबुद्धिहैन्यम्) अपनी बुद्धिकी हीनताको (ताम्) तिस (वृद्धत्वसम्भावितदुर्दशाम्) बुढ़ापेके कारण होनेवाली दुर्दशाको (विचार्य) विचार कर (को वा) कौनसा पुरुष (विरतिम्) वैराग्यको (न) नहीं (याति) प्राप्त होताहै ॥ ३२ ॥

(भावार्थ)–बेढङ्गा आकार होजाना, चाहे तिस पुरुषसे तिरस्कार होना सब ही स्थलोंमें दीनता अपनी बुद्धिकी हीनता अर्थात् होशहवास ठीक न रहना और सबोंके देखनेमें आयीहुई बुढ़ापेके कारण होनेवाली दुर्दशा, इन सब बातोंको विचार कर किसको वैराग्य नहीं होगा ? ॥ ३२ ॥

पित्तज्वरार्शःक्षयगुल्मशूल-
श्लेष्मादिरोगोदिततीव्रदुःखम् ।
दुर्गन्धिमस्वास्थ्यमनूनचिन्तां
विचार्य को वा विरतिं न याति ॥ ३३ ॥

अन्वय और पदार्थ–(पित्तज्वरार्शःक्षयगुल्मशूलश्लेष्मादिरोगोदिततीव्रदुःखम्) पित्तज्वर ववासीर, राजयक्ष्मा, वायगोला, शूल और कफकी वृद्धि आदि रोगोंसे उत्पन्न हुए महान् दुःखको (दुर्गन्धम्) शरीरकी दुर्गन्धको (अस्वास्थ्यम्) स्वास्थ्य विगड़जानेको (अनूनचिन्ताम्) बड़ीभारी चिन्ताको (विचार्य) विचार कर (को वा) कौनसा पुरुष (विरतिम्) वैराग्य को (न) नहीं (याति) प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥

(भावार्थ)–बुढ़ापेमें पित्तज्वर, ववासीर, क्षय, गुल्म, शूल और कफ आदि के रोगोंसे उत्पन्न हुआ बड़ाभारी दुःख शरीरमें मलोंकी दुर्गन्धि, सदा स्वास्थ्यका बिगड़ा रहना और घोर चिन्ता, इन सब बातोंको विचार कर कौन पुरुष वैराग्यको प्राप्त न होगा ? ॥ ३३ ॥

यमावलोकोदितभीतिकम्प,
मर्मव्यथोच्छ्वासगतीश्च वेदनाम् ।
प्राणप्रयाणे परिदृश्यमानां,
विचार्य को वा विरतिं न याति ॥

अन्वय और पदार्थ–(यमावलोकोदितभीतिकम्पमर्मव्यथोच्छ्वासगतीः)

यमराजको देखने पर होनेवाले भयके कारण उत्पन्नहुए भय-कम्प-मर्मस्थानमें पीड़ा और वेगसे श्वास चलनेको (च) और (प्राणप्रयाणे) प्राणछूटनेके समय (परिदृश्यमानाम्) सब ओर दीखती हुई (वेदनाम्) पीड़ाको (विचार्य) विचारकर (को वा) कौनसा पुरुष (विरतिम्) वैराग्यको (न) नहीं (याति) प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

(भावार्थ)-मरण होनेपर यमराज को देखते ही जो भय, कपकपी, मर्मस्थानोंमें पीड़ा और ऊर्ध्वश्वास होताहै उसको तथा प्राण निकलतेमें जो चारों ओर वेदना देखने में आती है उसका विचार करके किस पुरुषको वैराग्य नहीं होगा ?

अङ्गारनद्यां तपने च कुम्भी-
पाकेऽपि वीच्यामसिपत्रकानने ।
दूतैर्यमस्य क्रियमाणबाधां
विचार्य को वा विरतिं न याति ॥ ३५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अङ्गारनद्याम्) अँगारोंकी नदीमें (तपने) तपन नामक नरकमें (कुम्भीपाके) कुम्भीपाक नामक नरकमें (वीच्याम्) वीची नामक नरकमें (अपि च) और (यमस्य) यमके (दूतैः) दूतों करके (क्रियमाणबाधाम्) कीजाती हुई बाधाको (विचार्य) विचारकर (को वा) कौनसा पुरुष (विरतिम्) वैराग्यको (न) नहीं (याति) प्राप्त होताहै ॥ ३५ ॥

(भावार्थ)-अङ्गारोंकी नदी, सूर्यकी तचीहुई रेती, कुम्भीपाक, शरीर के टुकड़े करनेवाली तरङ्ग और तलवारकेसी धारके पत्तोंवाले वृक्षोंके वन ऐसे २ प्रसिद्ध नरकोंमें प्राणान्त होनेके अनन्तर पापियोंको यमके दूत जो क्लेश देते हैं उनका विचार करके किस पुरुष को वैराग्य न होगा ? ॥ ३५ ॥

पुण्यक्षये पुण्यकृतो नभःस्थै-
र्निपात्यमानान् शिथिलीकृताङ्गान् ।
नक्षत्ररूपेण दिवश्च्युतांस्तान्
विचार्य को वा विरतिं न याति ॥ ३६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(पुण्यक्षये) पुण्य क्षीण होने पर (नभःस्थैः) आकाशनिवासियों करके (निपात्यमानान्) गिरायेजाते हुए (शिथिलीकृताङ्गान्)

परवश शरीरवाले (नक्षत्ररूपेण) नक्षत्ररूपसे (दिवः) स्वर्गसे (च्युतान्) गिरेहुए (पुण्यकृतः) पुण्यकर्म करनेवालोंको (विचार्य) विचारकर (को वा) कौनसा पुरुष (विरतिम्) वैराग्यको (न) नहीं (याति) प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥

(भावार्थ)-स्वर्गका भोग करानेवाले पुण्य के फल को भोग चुकने पर, जब आगेको स्वर्गभोग कराने वाला पुण्य नहींरहता है उस समय स्वर्गमेंके अधिकारी देवता पुण्यशून्य हुए प्राणियों को बलात्कारसे नीचे भूतल पर को ढकेले देते हैं, तब जिनके शरीर विवश होकर नीचे गिरते हैं वे प्राणी नक्षत्ररूपसे गिरकर फिर भूलोकमें आजाते हैं, पुण्य करनेवालोंकी भी अन्तमें ऐसी दुर्दशाको देखकर कौनसा पुरुष वैराग्य को प्राप्त नहीं होगा ? ॥ ३६ ॥

वाय्वर्कवन्हीन्द्रमुखान् सुरेन्द्रा-
नीशोग्रभीत्या ग्रथितान्तराङ्गान् ।
विपक्षलोकैः परिदूयमान्
विचार्य को वा विरतिं न याति ॥ २७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ईशोग्रभीत्या) परमेश्वरके बड़ेभारी भयके कारण (ग्रथितान्तराङ्गान्) जिनके शरीर गुंथे हुए हैं (विपक्षलोकैः) शत्रुपक्षके लोकों करके (परिदूयमानान्) चारों ओरसे महादुःख पातेहुए (वाय्वर्कवह्नीन्द्रमुखान्) पवन, सूर्य, अग्नि, और इन्द्र आदि (सुरेन्द्रान्) श्रेष्ठ देवताओंको (विचार्य) विचार कर (को वा) कौनसा पुरुष (विरतिम्) वैराग्यको (न) नहीं (याति) प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥

(भावार्थ)-जिनके चित्तोंमें सदा परमेश्वरका बड़ाभारी भय प्राप्त रहता है जो दैत्य आदि शत्रुओंसे प्रायः तिरस्कार पाया करते हैं ऐसे वायु, सूर्य, अग्नि और इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवताओंकी भी ऐसी दशाको देखकर किसे वैराग्य न होगा ॥

श्रुत्या निरुक्तं सुखतारतम्यं
कीटान्तमारभ्यमहामहेशम् ।
औपाधिकं तत्तु न वास्तवं च
दालोच्य को वा विरतिं न याति ।३८।

अन्वय और पदार्थ-(महामहेशम्, आरभ्य) परमेश्वर से आरम्भ करके

(कीटान्तम्) कीटपर्यन्त (सुखतारतम्यम्) सुखकान्यूनाधिकभाव (श्रुत्या) वेदके द्वारा (निरुक्तम्) निश्चय किया गया है (तत् उ) वह सुख तो (औपाधिकम्) अज्ञानरूप उपाधिके कारणसे है (वास्तवं, तु) वास्तविकतो (न) नहीं है [इति] ऐसा विचार कर (को वा) कौनसा पुरुष (विरितिम्) वैराग्यको (न) नहीं (याति) प्राप्त होता है ? ॥ ३८ ॥

(भावार्थ)-परमेश्वरसे लेकर कीट पयन्त सुखका न्यूनाधिक होना श्रुतिमें कहाहै, वह सुख भी अज्ञानकल्पितशरीर आदि उपाधिका ही धम है वह कोई आत्माका पारमार्थिक धम नहीं है, ऐसा विचार कर कौनसा पुरुष वैराग्यको प्राप्त नहीं होगा ? ॥ ३८ ॥

सालोक्यसामीप्यसरूपतादि-
भेदस्तुसत्कर्मविशेषव सिद्धः ।
न कर्मसिद्धस्य तु नित्यतेति,
विचार्य को वा विरतिं न याति ॥ ३९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सारूप्यसालोक्यसमीपतादिभेदः) इष्टदेवके साथ एक लोकमें निवास, इष्टदेवके समीप निवास और इष्टदेवकेसा स्वरूप पाना इत्यादि भेद (सत्कर्मविशेषसिद्धः) किसी उत्तम कर्मसे उत्पन्न होताहै (कर्मसिद्धस्य) कर्मसे सिद्धका (तु) तो (नित्यता) अविनाशीपना (न) नहीं होता है (विचार्य) विचारकर (को वा) कौनसा पुरुष (विरतिम्) वैराग्यकों (न) नहीं (याति) प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥

(भावार्थ)-सालोक्य कहहिये इष्टदेवके साथ एक लोकमें निवास, सामीप्य कहिये इष्टदेवके समीपमें रहना और सारूप्य कहिये इष्टदेवताके सी मूर्त्ति धारण करना इत्यादि जो कितने ही प्रकारकी गौण मुक्ति है वह किसी न किसी उत्तम कर्मका ही फल है और कर्मका फल कभी नित्य नहीं होसकता, ऐसा विचार कर कौन पुरुष उस नियमित समय की गौण मुक्तिसे विरक्त नहीं होगा ? ॥ ३९ ॥

यत्रास्ति लोके गतितारतम्य
मुच्चावचत्वान्वितमत्र तत्कृतम् ।
यथेह तद्वत्खलु दुःखमस्ती-
त्यालोच्य को वा विरतिं न याति ॥ ४० ॥

अन्वय और पदार्थ-(लोके) संसारमें (यत्र) जिस वस्तुमें (उच्चावचत्वान्वितम्) उत्कर्ष और अपकर्षयुक्त (गतितारतम्यम्) फलका न्यूनाधिकाभाव (अस्ति) है (अत्र) इसमें (तत्) वह वस्तु (कृतम्) कार्य (अस्ति) है (इह) इस लोक में (यथा) जैसे (तद्वत्) तैसे ही [अन्यत्र, अपि] और लोकमें भी (खलु) निश्चय (दुःखम्) दुःखरूप (अस्ति) है (इति) ऐसा (विचार्य) विचारकर (को वा) कौनसा पुरुष (विरतिम्) वैराग्यको (न) नहीं (याति) प्राप्त होता है ॥ ४० ॥

(भावार्थ)-संसारमें जिस वस्तुमें भी उन्नति और अवनतिके साथ फलका न्यूनाधिक भाव है अर्थात् किसीको एक वस्तु अधिक मिलकर उसकी उन्नति होरही हो और दूसरेको वही वस्तु थोड़ी मिलकर उसकी अवनति होरही हो तो ऐसी मिलनेवाली वस्तुको कर्मानुसार मिलनेवाली और परिणाममें दुःखदेनेवाली अनित्य जानो, यह नियम जैसे इस भूतल पर है तैसे ही और लोकोंमें भी है अर्थात् स्वर्गादि लोकोंके पदार्थ भी कर्मानुसार कमती बढ़ती मिलकर उन्नति अवनतिके कारण होतेहुए परिणाम में दुःखदायक ही निकलते हैं, ऐसा विचार कर उन पदार्थोंको भी कौन चाहेगा ? ॥ ४० ॥

को नाम लोके पुरुषो विवेकी
विनश्वरे तुच्छसुखे गृहादौ ।
कुर्याद्रतिं नित्यमवेक्षमाणो
वृथैव मोहान्म्रियमाणजन्तून् ॥ ४१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(लोके) इस लोक में (को नाम) कौनसा (विवेकी) विवेकयुक्त (पुरुषः) मनुष्य (विनश्वरे) अनित्य (तुच्छसुखे) थोड़े से सुख के लिये (गृहादौ) घर आदिमें (वृथा एवं) वृथाही (मोहात्) मोहसे (म्रियमाणान्) मरते हुए (जन्तून्) प्राणियोंको (नित्यम्) सदा (अवेक्षमाणः) देखताहुआ (रतिम्) अनुरागको (कुर्यात्) करेगा ? ॥ ४१ ॥

(भावार्थ)-इस पृथ्वीपर सदा कोई नहीं रहसकता, और थोड़ेसे समय रहने पर भी घर द्वार स्त्री पुत्र आदि का सुख निरन्तर नहीं रहता, तो भी जो प्राणी मोहवश यहाँ फँसजातेहैं वे वृथा ही अपने समय को खोकर कूकर शूकर आदिकी समान मरते चलेजाते हैं, ऐसी दशाको देखकर ऐसा कौन विचारवान् पुरुष होगा जो ऐसेही फँसना चाहेगा ? ॥ ४१ ॥

सुखं किमस्त्यत्र विचार्यमाणे
गृहेऽपि वा योषिति वा पदार्थे ।
मायातमोन्धीकृतचक्षुषो ये
त एव मुह्यन्ति विवेकशून्याः ॥ ४२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विचार्यमाणे) विचार करने पर (अत्र) इस लोक में (गृहे) घरमें (वा) या (योषिति) स्त्रीमें (वा) या (पदार्थे) अन्य वस्तु में (किम्) क्या (सुखम्) सुख (अस्ति) है (ये) जो (मायातमोऽन्धीकृतचक्षुषः) अविद्यारूपअन्धकारमें दृष्टिहीन हैं (ते) वे (विवेकशून्याः) विचारहीन पुरुष (एव) ही (मुह्यन्ति) मोहको प्राप्त होते हैं ॥ ४२ ॥

(भावार्थ)-विचार करके देखने पर इस संसारमें घर द्वार और स्त्री पुत्र आदि पदार्थों से क्या कुछ सुख मिलता है ? अर्थात् विचारदृष्टिमें कुछ भी सुख नहीं मिलता, मायामय अन्धकारमें जिनके नेत्रोंसे कुछ नहीं दीखता है ऐसे विवेकहीन पुरुष ही मोहवश इन विषयों में फँसते हैं ॥ ४२ ॥

अविचारितरमणीयं
सर्वमुदुम्बरफलोपमं भोग्यम् ।
अज्ञानामुपभोग्यं न
तु तज्ज्ञानां भवेद्धितद्भोग्यम् ॥ ४३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अविचारितरमणीयम्) विचार न करने परही रमणीय मालूम होनेवाला (उदुम्बरफलोपमम्) उदुम्बरके फलकी समान (सर्वम्) सब (भोग्यम्) भोगने योग्य पदार्थ (अज्ञानाम्) अज्ञानियोंका (उपभोग्यम्) भोगनेयोग्य (भवेत्) होगा (तज्ज्ञानाम्-तु) उसके स्वरूप को जानने वालोंका तो (तत्) वह (भोग्यम्) उपभोग के योग्य (न हि) नहीं होता है ॥ ४३ ॥

(भावार्थ)-जगत्के सबही भोगपदार्थ, जबतक विचार नहीं कियाजाता तबतक ऊपरसे बड़े ही रमणीय मालूम होते हैं, अन्तमें उदुम्बरके फलकी समान विरस निकलते हैं, इसकारण अज्ञानी पुरुष ही इन सब पदार्थोंको भोगने योग्य मानते हैं, परन्तु जो इनके तत्त्वको जानते हैं वे ज्ञानी इनको तुच्छ समझते हैं ॥ ४३ ॥

गेहेऽपि तोये सुषिरं कुलीरो ।

हातुं ह्यशक्तो म्रियते विमोहात् ॥
यथा तथा गेहसुखानुषक्तो।
विनाशमायाति नरो भ्रमेण ॥ ४४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तोये) जलके(गतेऽपि) चले जानेपर भी(मृपिरन्) गढ़ेको (हातुम्) त्यागनेको (अशक्तः) असमर्थ (कुलीरः) कर्कट (यथा) जैसे (विमोहात्) मोहवश (हि) निश्चय (म्रियते) मरजाता है (तथा) तैसे (गेहसुखानुषक्तः) घरके सुखमें आसक्त हुआ (नरः) मनुष्य(भ्रमेण) भ्रमसे (विनाशम्) मृत्युको (आयाति) प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥

(भावार्थ)-बाहरका जल चलाजाने पर भी कर्कट नामवाला जलका जीव मोहवश अपने रहनेके गढे को नहीं छोड़सकता है, इसकारण जैसे अन्त में प्राण खो बैठता है' तैसे ही घर आदि के सुख में आसक्त चित्तवाला मनुष्य मोहवश अज्ञानदशा में ही मरकर अपने दुर्लभ मनुष्य जन्मको वृथा खोदेता है ॥ ४४

कोशकृमिस्तन्तुभिरात्मदेह ।
मावेष्ट्य चावेष्ट्य च गुप्तिमिच्छन् ॥
स्वयं विनिर्गन्तुमशक्त एव सन् ।
ततस्तदन्ते म्रियते च लग्नः ॥ ४५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(गुप्तिम्) रक्षाको (इच्छन्) चाहताहुआ (कोपकृमिः) बन्देका कीड़ा (आत्मदेहम्) अपने शरीरको (तन्तुभिः) तन्तुओंसे (आवेष्ट्य च, आवेष्ट्य च) वार वार लपेट कर (स्वम्एव) आप ही (विनिर्गन्तुम्) निकलनेको (अशक्तःसन्) असमर्थ होताहुआ (ततः) तदनन्तर (तदन्ते) उसके ही भीतर (लग्नः) लगाहुआ (च) ही (म्रियते) मरजाता है ॥ ४५ ॥

(भावार्थ)-अपने शरीरकी रक्षा करनेका उद्योगकरताहुआ कोशकृमि (बन्देमेंका-कीड़ा) अपने शरीरसे उत्पन्न हुए सूत्रोंसे ही अपने को वार २ लपेट कर वह सूतसे बनायेहुए अपने जालरूप कारागारमें फँस जाता है और अन्तको उसके भीतरसे बाहर निकलनेमें असमर्थ होकर अपने आप ही मौतके मुखमें जापड़ता है ॥

यथा तथा पुत्र-कलत्र-मित्र-
स्नेहानुबन्धैर्ग्रथितो गृहस्थ ।

कदापि वा तान् परिमुच्य गेहात् ।
गन्तुं नशक्तो म्रियते मुधैव ॥ ४६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे कीड़ा (तथा) तैसे ही (गृहस्थः) घरका स्वामी (पुत्रकलत्रमित्रस्नेहानुबन्धैः) पुत्र स्त्री और मित्र आदिके स्नेहरूप बन्धनोंसे (ग्रथितः) गुंथाहुआ (कदापि) कभी (तान्) उनको (परिमुच्य) त्यागकर (गेहात्) घरसे (गन्तुम्) जानेको (न) नहीं (शक्तः) समर्थ होता हुआ (मुधैव) वृथा ही (म्रियते) मरजाता है ॥ ४६ ॥

(भावार्थ)-जैसा कोपका कीड़ा करताहै, तैसे ही गृहस्थ पुरुष भी पुत्र-स्त्री और मित्र आदिके ऊपर स्नेह रूप बन्धनके द्वारा बँधकर किसी समय भी उन स्त्री पुत्र आदि को छोड़ घरसे बाहर जानेमें अर्थात् विरक्त होकर संन्यास धारण करनेमें असमर्थ होकर अन्तमें अपने कर्त्तव्यको साधे बिना वृथा ही मौतके पंजेमें फँसजाताहै ॥ ४६ ॥

कारागृहस्यास्य च को विशेषः,
प्रदृश्यते साधु विचार्यमाणे ।
मुक्तेः प्रतीपत्वमिहापि पुंसः
कान्तासुखाभ्युत्थितमोहपाशैः ॥ ४७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(साधु) अच्छे प्रकार से (विचार्यमाणे) विचार करने पर (अस्य) इस घरका (च) और कारागृहस्य) कारागार का(कः) क्या (विशेषः) भेद (प्रदृश्यते) दीखता है (इह) यहां (अपि) भी (कान्तासुखाभ्युत्थितमोहपाशैः) स्त्रीके समागमसे होनेवाला जो सुख उसमें मोह करनारूप रज्जुसमूहके द्वारा (पुंसः) पुरुषकी (प्रतीपत्वम्) प्रतिकूलता [सर्वदा, एव, भवति] सदा ही होती है ॥ ४७ ॥

(भावार्थ)-भले प्रकार विचार करके देखने पर इस घर और कारागारमें कुछ भी भेद देखनेमें नहीं आता, क्योंकि-इस घरमें भी स्त्रीके समागम से उत्पन्न हुए सुखकी लालसारूप बन्धनकी रस्सियोंसे पुरुष की मुक्तिमें रुकावट होतीहै ॥

गृहस्पृहा पादनिबद्धशृङ्खला
कान्तासुताशा पटुकण्ठपाशः ।

शीर्षे पतद्भूर्यशनिर्हि साक्षात्
प्राणान्तहेतुः प्रबला धनाशा ॥ ४८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(गृहस्पृहा) घरकी इच्छा (पादनिबद्धशृङ्खला) चरणोंमें बँधी हुई सांकल है (कान्तासुताशा) स्त्री और पुत्रकी आशा (पटुकण्ठपाशः) अतिदृढ़ कण्ठकी रस्सीहै (प्रबला) बड़ीभारी (धनाशा) धनकी आशा (शीर्षे) माथे पर (पतद्भूर्यशनिः) गिरनेवाले बहुत वज्रों की समान; (प्राणान्तहेतुः) प्राणनाशका कारण [भवति] होता है ॥ ४८ ॥

(भावार्थ)-घरको भोगने की आशा ही यहाँ चरणों में पहराईजानेवाली बेड़ियोंकी समान है, स्त्री और पुत्रके विषय की आशा ही यहां अत्यन्त दृढ़ कण्ठमें बाँधनेकी फांसी की समान है और धन पैदा करनेकी बड़ी भारी आशा ही यहाँ माथे पर गिरने को उद्यत बहुतसे वज्रोंकी समान प्राणनाश का कारणरूप होरही है, इसलिये इस घर में और कारागारमें कुछभी भेद नहीं है ॥ ४८ ॥

अथ कामदोषनिरूपणम्

आशापाशशतेन पाशितपदो नोत्थातुमेव क्षमः,
कामक्रोधमदादिभिः प्रतिभटैः संरक्ष्यमाणोऽनिशम् ।
संमोहावरणेन गोपनवतः संसारकारागृहात्,
निर्गन्तुंत्रिविधैषणापरवशः कः शक्नुयाद्रागिषु ॥ ४९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(रागिषु) विषयासक्तों में (आशापाशशतेन) आशारूप सैंकड़ों रज्जुओंसे (पाशितपदः) बँधाहै चरण जिसका ऐसा (उत्थातुम्, एव) उठनेको भी (नक्षमः) असमर्थ (कामक्रोधमदादिभिः) काम क्रोध और मद आदि (प्रतिभटैः) योधाओंकरके (अनिशम्) रात दिन (संरक्ष्यमाणः) भले प्रकारसे रक्षा कियाहुआ (त्रिविधैषणापरवशः) तीनप्रकार की कामनाके वशीभूत (कः) कौन पुरुष (संमोहावरणेन) सम्यक्प्रकार मोहरूप आवरण के द्वारा (गोपनवतः) सुरक्षित (संसारकारागृहात्) संसाररूपी कारागारसे (निर्गन्तुम्) निकलने को (शक्नुयात्) समर्थ होसकता है ॥ ४९ ॥

(भावार्थ)-संसारमें विषयासक्त हुए पुरुषों में कौनसा पुरुष इस संसाररूप कारागारमें से बाहर निकलसकता है ? कोई नहीं निकल सकता, क्योंकि-इस संसाररूप कारागारके चारों ओर बड़े भारी मोहरूप दीवारका परकोटा बनाहुआ है, और उस विषयासक्त पुरुषके पैरभी आशारूप सैंकड़ों रस्सियों से बँधेहुए हैं,

इस कारण वह उठकर खड़ा भी नहीं होसकता, तिसपर भी काम, क्रोध मद, लोभ आदि सैनिक पुरुष उसकी रात दिन देखभाल रखते है और पुत्रैषणा कहिये बेटी बेटोंकी चाहना, वित्तैषणा कहिये धनकी चाहना लोकैषणाकहिये प्रतिष्ठाकी की चाहना इन तीन कामनाओं ने उसको सब प्रकारसे अपने वशमें करक्खा है ॥ ४९ ॥

कामान्धकारेण निरुद्धदृष्टि
मुह्यत्यसत्यप्यबलास्वरूपे ।
नह्यन्धदृष्टेरसतः सतो वा
सुखत्वदुःखत्वविचारणास्ति ॥ ५० ॥

अन्वय और पदार्थ--(कामान्धकारेण) कामदेवरूप अन्धकारके द्वारा (निरुद्धदृष्टिः) जिसकी दृष्टि रुकगई है ऐसा पुरुष (असतिअपि) वास्तवमें सत् न होने पर भी (अबलास्वरूपे) स्त्रीरूपविषयमें (मुह्यति) मोहको प्राप्त को प्राप्त होता है (अन्धदृष्टेः) अन्धी दृष्टिवालेको (असतः) अविद्यमान वस्तुके (वा) या (सतः) विद्यमान वस्तुके (सुखत्वदुःखत्वविचारणा) सुखदायकपनेकी वा दुःखदायकपनेकी विवेक बुद्धि (न) नहीं (अस्ति) होती है ॥ ५० ॥

(भावार्थ)-कामरूपअन्धकार जिसकी दृष्टिको रोकलेताहै वही पुरुष असतस्वरूप स्त्रीके विषयमें मूढ़ बनजाताहै, जिसकी देखनेकी शक्ति नहीं रहती है उसमें इस बातका विचार करने की शक्ति ही नहीं होती है कि-सत् और असत् वस्तुमें सुखदायक कौन है और कौन दुःखदायक है ॥ ५० ॥

श्लेष्मोद्गारि मुखं स्रवन्मलवती नासाश्रुमल्लोचनं,
स्वेदस्रग्विमलाभिपूर्णमभितो दुर्गन्धिदुष्टं वपुः ।
अन्यद्वक्तुमशक्यमेव मनसा मन्तुं क्वचिन्नार्हति,
स्त्रीरूपं कथमीदृशं सुमनसां पात्री भवेन्नेत्रयोः ।५१।

अन्वय और पदार्थ-(मुखम्)मुख(मुखश्लेष्मोद्गारि)लार टपकानेवाला है(नासा) नासिका (श्रवन्मलवती) टपकते हुए मलवाली है (लोचनम्) नेत्र (अश्रुमत्) आँसुओंसे युक्त (वपुः) शरीर (स्वेदस्रक्) वहतेहुए पसीनेसे युक्त (मलाभिपूर्णम्) मलसे ठसाठस भराहुआ (अभितः)सब ओर (दुर्गन्धदुष्टम्) दुर्गन्ध दूषित (अन्यत्) अन्य दोष (वक्तुम्) कहने को (अशक्यम्) अशक्य है (क्वचित्)

किसी दोषके विषयमें (मनसा) मन करके (मन्तुम्-एव) विचारनेको भी (न-अर्हति) उचित नहीं है (ईदृशम्) ऐसा (स्त्रीरूपम्) स्त्रीका स्वरूप (कथम्) कैसे (सुमनसाम्) विचारयुक्तमनवालोंके (नेत्रयोः) नेत्रोंका (पात्रीभवेत्) पात्र होसकता है ? ॥ ५१ ॥

(भावार्थ)-जिसका मुख सदा कफ और थूक को उगला करता है, नाकमें मल भरा रहता है, नेत्रोंमें आंसू भरआया करते हैं,शरीरके सब अङ्गोंमें से पसीना टपका करता है, भीतर विष्ठा मूत्र आदि मल भरा रहता है कि-जिसके कारण दुर्गन्धि उठती है, इनके सिवाय और भी जो कुछ दोष हैं, उनका मुखसे कहना भी ठीक नहीं है तथा मनमें विचार करना भी बुरा है, स्त्रीके स्वरूप का वर्णन यही तो है ? भला ऐसा स्त्रियोंका स्वरूप श्रेष्ठविचारवाले पुरुषोंकी दृष्टिमें देखनेयोग्य कैसे प्रतीत होसकता है ? अर्थात् विवेकी पुरुष तो ऐसे स्त्रीरूपको हेयही समझते हैं (यह स्त्रीके रूप की निन्दा केवल कामियोंको कामचेष्टासे बचानेके निमित्त है वैसे स्त्री जातिकी निन्दा नहीं है, मनुष्य कर्त्तव्य को साधनेमें तो स्त्रीपुरुष दोनोंका ही मानवशरीर समान अधिकारी है, दाहिना अङ्ग पुरुष है तो वाम अङ्ग स्त्री है, दोनों मिलकर हरएक ही धर्मकर्मको साधनेके अधिकारी हैं, ऐसे अधिकारको कामचेष्टामें नष्ट करना ही अविवेकीपना है और इससे बचानेके लिये ही स्त्रीके स्वरूपका ऐसा वर्णन शास्त्रों में किया है) ॥ ५१ ॥

दूरादवेक्ष्याग्निशिखां पतङ्गो-
रम्यत्वबुद्ध्या विनिपत्य नश्यति ।
यथा तथा नष्टदृगेव सूक्ष्मं,
कथं निरीक्षेत विमुक्तिमार्गम् ॥ ५२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यथा) जैसे (पतङ्गः) पतङ्गा (दूरात्) दूरसे (अग्निशिखाम्) अग्निकी लोहको (रम्यत्वबुद्ध्या) रमणीय है इस बुद्धि से (अवेक्ष्य) देखकर (विनिपत्य) उसमें पड़कर (नश्यति) नष्ट होजाता (तथा) तैसे ही (नष्टदृक् एव) मूढ़बुद्धि ही (सूक्ष्मम्]सूक्ष्म (विमुक्तिमार्गम्) मुक्तिके उपायको (कथम्) कैसे (निरीक्षेत) देखसकेगा ? ॥ ५२ ॥

(भावार्थ)-जैसे पतङ्गा दूरसे ही अग्निकी लोहको 'यह तो बड़ी ही सुन्दर है' ऐसी बुद्धि से देखकर उसके ऊपर गिरता हुआ अपने प्राणोंको देता है और फिर उस को तिस अग्निकी शिखासे अपनेको छुटानेका मार्ग नहीं सूझता है,

तैसे ही मूढबुद्धि पुरुष अतिकठिनसे जाननेयोग्य मुक्तिके मार्गको कैसे देखसकताहै?॥५२

कामेन कान्तां परिगृह्य तद्वत्
जनोऽप्ययं नश्यति नष्टबुद्धिः ।
मांसास्थिमज्जामलमूत्रपात्रं
स्त्रियं तथा रम्यतयैव पश्यति ॥ ५३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तद्वत्) तैसे ही (अयम्) यह (जनः, अपि) मनुष्य भी (नष्टबुद्धिः) बुद्धिहीन होताहुआ (कामेन) कामके द्वारा (कान्ताम्) स्त्रीको (परिगृह्य) स्वीकार करके (नश्यति) नष्ट होजाता है (तथा) तैसे ही (मांसास्थिमज्जामलमूत्रपात्रम्) मांस, हड्डी, चरबी, विष्ठा और मूत्रकी पात्ररूप (स्त्रियम्) स्त्रीको (रम्यतया-एव) रमणीय है इस भावसे ही (पश्यति) देखता है ॥५३॥

भावार्थ-यह विषयोंमें आसक्त हुआ संसारी पुरुष भी तिसी प्रकार कामके वशमें होकर स्त्रीको, यह कान्ता कहिये रमणीय है, ऐसा मानताहुआ उसमें लवलीन होकर नष्ट होजाता है, इसके सिवाय यह विचारहीन विषयी पुरुष, मांस-हड्डी-चरबी-विष्ठा और मूत्र से भरे पात्रकी समान नारीको रूपका समुद्र मानकर उसमें अपने अमूल्य मनुष्यजीवनको डुबो देता है ॥ ५३ ॥

काम एव यमः साक्षात्कान्ता वैतरणी नदी ।
विवेकिनां मुमुक्षूणां निलयन्तु यमालयः ॥ ५४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विवेकिनाम्) विचारवान् (मुमुक्षूणाम्) मोक्षके अभिलाषियोंको (कामः,एव) कामही (साक्षात्) प्रत्यक्ष (यमः) यम है (कांता) सुन्दरी स्त्री (वैतरणी, नदी) वैतरणी नामवाली नदी है (निलयम्-तु) घर तो (यमालयः) यमराजका घर है ॥ ५४ ॥

भावार्थ-जो विचारवान् पुरुष संसारदुःखसे मुक्ति चाहते हैं उनकी दृष्टिमें कामदेव ही साक्षात् यमराज है, सुन्दरी स्त्री ही वैतरणी नदी है और अपना घरही साक्षात् यमराजका घर प्रतीत होता है ॥ ५४ ॥

यमालये वापि गृहेऽपि नो नृणां,
तापत्रयक्लेशनिवृत्तिरस्ति ।

किञ्चित्समालोक्य तु तद्विरामं
सुखात्मना पश्यति मूढलोकः ॥ ५५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यमालये) यमके घरमें (अपि वा) या (गृहे) निजगृहमें (तापत्रयक्लेशनिवृत्तिः) तीनों तापोंके क्लेशकी निवृत्ति (नो) नहीं (अस्ति) है (तु) किन्तु (मूढलोकः) मन्दबुद्धि पुरुष (किञ्चित्) कुछ एक (तद्विरामम्) उसके विरामको (समालोक्य) देखकर (सुखात्मना) सुखरूपसे (पश्यति) देखता है ॥ ५५ ॥

भावार्थ-जीवनकालमें अपने घरमें और मरकर यमराजके घरमें आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीनप्रकारके तापोंसे छुटकारा नहीं होता, पर अविवेकी पुरुष जरा एक तापकी कमी होते ही यमालयकी समान दुःखदायक अपने घरको सुखदायक मानने लगता है ॥ ५५ ॥

यमस्य कामस्य च तारतम्यं
विचार्यमाणे महदस्ति लोके ।
हितं करोत्यस्य यमोऽप्रियः सन्,
कामस्त्वनर्थं कुरुते प्रियः सन् ॥ ५६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विचार्यमाणे) विचार करने पर (लोके) लोकमें (यमस्य) यमका (च) और (कामस्य) कामका (महत्) बडा (तारतम्यम्) न्यूनाधिकभाव (अस्ति) है (यमः) यम (अस्य) इसका (अप्रियःसन्) अप्रिय होता हुआ (हितम्) हित (करोति) करता है (तु) किन्तु (कामः) काम (प्रियः सन्) प्रिय होताहुआ (अनर्थम्) अनर्थको (कुरुते) करता है ॥५६ ॥

भावार्थ-संसारमें विचारदृष्टिसे देखने पर निश्चय होता है, कि-यम और कामदेव इन दोनोंमें बड़ाभारी अन्तर है, क्योंकि-इस प्राणीको यम प्यारा नहीं लगता है तो भी वह इसका हित करता है और कामदेव प्राणीको बड़ा प्रिय मालूम होता है, परन्तु वह प्रिय होकर भी अनर्थ ही करता है ॥ ५६ ॥

यमोऽसतामेव करोत्यनर्थं
सतान्तु सौख्यं कुरुते हितः सन् ।

कामः सतामेव गतिं निरुन्धन्
करोत्यनर्थं ह्यसतां कथा का ॥ ५७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यमः) यम (असताम्-एव) असज्जनोंका ही (अनर्थम्) अनिष्ट (करोति) करता है (तु) किन्तु (सताम्) सज्जनोंका (हितः सन्) हितकारी होता हुआ (सौख्यम्) सुखको (करोति) करता है (कामः) काम (हि) निश्चय (सताम्-एव) सत्पुरुषोंकी ही (गतिम्) सद्गतिको (निरुन्धन्) रोकता हुआ (अनर्थम्) अनिष्ट (करोति) करता है (असताम्) असज्जनोंका (का कथा) क्या कहना है ? ॥ ५७ ॥

(भावार्थ) यम तो असाधु दुष्टोंका ही अमङ्गल करता है, सत्पुरुषोंको तो अनुकूल होकर सुख देता है, परन्तु काम तो साधु पुरुषोंकी ही सद्गतिको रोककर उनका अशुभ करता है, फिर जो दुराचारी हैं उनके विषयमें तो अधिक कहा ही क्या जाय ? ॥ ५७ ॥

विश्वस्य वृद्धिं स्वयमेव काङ्क्षन्
प्रवर्त्तकं कामिजनं ससर्ज ।
तेनैव लोकः परिमुह्यमानः
प्रवर्धते चन्द्रमसेव चाब्धिः ॥ ५८ ॥

अन्वय और पदार्थ -[विधाता] ब्रह्मा (स्वयमेव) स्वयं ही (विश्वस्य) विश्व की (वृद्धिम्) वृद्धिको (काङ्क्षन्) चाहता हुआ (प्रवर्त्तकम्) प्रवृत्तिके हेतु (कामिजनम्) कामी जीवोंको (ससर्ज) रचता हुआ (तेन-एव) उसके द्वारा ही (परिमुह्यमानः) अत्यन्त मोहको प्राप्त होताहुआ (लोकः) लोक (चन्द्रमसा) चन्द्रमा करके (अब्धिः,यथा) समुद्र जैसे (प्रवर्धते) बढ़ता है ॥ ५८ ॥

(भावार्थ)-विधाताने जब जगत्‌की वृद्धि करना चाही तब स्वयंही प्रवृत्तिके हेतुरूप कामी प्राणियोंको रचदिया, उस कामसे मोहित हुए संसारकी ऐसे वृद्धि होने लगी, जैसे चन्द्रमाके द्वारा समुद्र बढने लगता है ॥ ५८ ॥

कामो नाम महान् जगद्भ्रमयिता स्थित्वान्तरंगे स्वयम्
स्त्रीपुंसावितरेतरांगकगुणैर्हास्यैश्च भावैः स्फुटम् ।
अन्योऽन्यं परिमोह्य नैजतमसा प्रेमानुबन्धेन तौ,

दृढ्वा भ्रामयति प्रपञ्चरचनां संवर्द्धयन् ब्रह्महा ॥ ५९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(कामः, नाम) कामदेव नामक (महान्) बड़ा (जगद्भ्रमयिता) जगत्को भ्रान्तिमें डालनेवाला (अन्तरङ्गे) हृदयमें (परम्) प्रकृष्टभावसे (स्थित्वा) स्थित होकर (इतरेतराङ्गकगुणैः) परस्परके शरीरमें स्थित गुणोंके द्वारा (स्फुटम्) स्फुट (हास्यैः) हास्योंके द्वारा (च) और (भावैः) मानसिक विकाराके द्वारा (तौ) तिन (स्त्रीपुंसौ) स्त्री पुरुषोंको (अन्योन्यम्) परस्पर (परिमोह्य) पूर्णरूपसे मोहित करके (निजतमसा) अपने तमोगुणके द्वारा (प्रेमानुबन्धेन) प्रेमरूप रस्सीसे (बध्वा) बांधकर (प्रपञ्च-रचनाम्) सकल सृष्टिको (संवर्द्धयन्) बढ़ाता हुआ (ब्रह्महा) परब्रह्मका तिरोधान करनेवाला होकर (भ्रामयति) भ्रमण कराता है ॥ ५९ ॥

(भावार्थ)-काम ही बड़ा है, काम ही संसारको भ्रान्तिमें डालरहा है, यह काम हृदयमें स्थित होकर स्त्री और पुरुषोंको परस्पर प्रेमरूप रस्सीसे बाँधदेता है, कामके उत्पन्न कियेहुए मोहसे ही उस प्रेमरूप रस्सीकी उत्पत्ति होती है, इस कामके प्रभावसे ही स्त्री पुरुषोंके अङ्गोंमें सुन्दरता आदि गुण देखनेमें आते हैं, उसके ही प्रभावसे स्त्री पुरुषोंके स्पष्ट हास्य तथा अनेकों प्रकारकी मानसिक चेष्टाएं उत्पन्न होकर उनको मोहजालमें बाँध देती हैं, इसप्रकार कामदेव ही सबों को मोहित करके और मोहकी रचीहुई प्रेममयी रस्सीमें बाँधकर सकल विश्वको बढ़ानेके लिये मोहजालमें डालदेता है, इसप्रकार कामदेव ब्रह्महत्यारा है अर्थात् परब्रह्मके स्वरूपको ढककर सबोंको अज्ञानान्धकारमें धकेल देता है ॥ ५९ ॥

अतोऽन्तरंगास्थितकामवेगात्
भोग्ये प्रवृत्तिः स्वत एव सिद्धा ।
सर्वस्य जन्तोर्ध्रुवमन्यथा चे-
दबोधितार्थेषु कथं प्रवृत्तिः ॥ ६० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अतः) इसकारणसे (सर्वस्य, जन्तोः) सब जीवोंका (अन्तरङ्गस्थितकामवेगात्) हृदयमें स्थित कामदेवके वेगसे (भोग्ये) भोगने योग्य विषयमें (प्रवृत्तिः) प्रवृत्ति (स्वतः, एव) अपने आप ही (सिद्धा) सिद्ध है (चेत्) जो (अन्यथा) ऐसा न हो तो (अबोधितार्थेषु) जिनका स्वरूप ज्ञात नहीं है ऐसे पदार्थोंमें (ध्रुवम्) अवश्यही (प्रवृत्तिः) प्रवृत्ति (कथम्) कैसे [भवति] होती है।

भावार्थ-इसकारण सबही जीवोंकी अपने हृदयमें स्थित कामदेवके वेग

वश. भोगके पदार्थोंमें स्वयं ही प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, यदि ऐसा न हो तो न जानी हुई वस्तुको भोगनेके लिये लोगोंकी ऐसी प्रवृत्ति कैसे होसकती है ? ॥ ६० ॥

तेनैव सर्वजन्तूनां कामना बलवत्तरा ।
जीर्यत्यपि च देहेऽस्मिन् कामना नैव जीर्यति ॥ ६१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तेन एव) उस कामके द्वारा ही (सर्वजन्तूनाम्) सकल प्राणियोंकी (कामना) भोगकी अभिलाषा (बलवत्तरा) अत्यन्त प्रबल [भवति] होती है (च) और (अस्मिन्) इस (देहे) शरीरके (जीर्यति) जीर्ण होनेपर (अपि) भी (कामना) भोगाभिलाषा (न) नहीं (जीर्यति) जीर्ण होती है ॥ ६१ ॥

भावार्थ-उस कामके प्रभावसे ही सब प्राणियोंकी विषयोंको भोगनेकी इच्छा अत्यन्त ही प्रबल हुआ करती है, यहाँ तक कि-यह शरीर भले ही जीर्ण होजाय परन्तु भोगकी अभिलाषा कभी जीर्ण नहीं होती है ॥ ६१ ॥

अवेक्ष्य विषये दोषं बुद्धियुक्तो विचक्षणः ।
कामपाशेन यो मुक्तः स मुक्तेः पथगोचरः ॥ ६२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (बुद्धियुक्तः) बुद्धिमान् (विचक्षणः) विचारवान् पुरुष (विषये) भोगके पदार्थोंमें (दोषम्) दोषको (अवेक्ष्य) देख कर (कामपाशेन) कामकी फाँससे (मुक्तः) छूटगया (सः) वह (मुक्तेः) मुक्तिके (पथगोचरः) मार्गपर आरूढ [जातः] होगया ॥ ६२ ॥

भावार्थ-जो बुद्धिमान् और विचारशील पुरुष इसप्रकार भोगके पदार्थोंमें दोष देखकर कामकी फाँसीसे छूटगया है, वही पुरुष मुक्तिके मार्गमेंको बढरहा है ६२

काम-विजयोपायः

कामस्य विजयोपायं सूक्ष्मं वक्ष्याम्यहं सताम् ।
संकल्पस्य परित्याग उपायः सुलभो मतः ॥ ६३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (सताम्) सत्पुरुषोंके (सूक्ष्मम्) सूक्ष्म (कामस्य) कामके (विजयोपायम्) विजय करनेके उपायको (वक्ष्यामि) कहूँगा (सङ्कल्पस्य) सङ्कल्पका (परित्यागः) त्यागना (सुलभः) सहज (उपायः) उपाय (मतः) मानागया है ॥ ६३ ॥

भावार्थ-कामको जीतनेका सूक्ष्म उपाय क्या है, सो मैं सज्जनों के लिये

कहता हूँ। सङ्कल्पको त्यागदेना ही कामको जीतनेका सहज उपाय मानागया है॥६३

श्रुते दृष्टेऽपि वा भोग्ये यस्मिन् कस्मिंश्च वस्तुनि।
समीचीनत्वधीत्यागात्कामो नोदेति कर्हिचित्॥ ६४॥

अन्वय और पदार्थ-(श्रुते) सुनेहुए (अपि वा) या (दृष्टे) देखेहुए (यस्मिन्, कस्मिन् च) जिस किसी (भोग्ये) भोगके (वस्तुनि) पदार्थमें (समीचीनत्व-धीत्यागात्) यह सुन्दर है ऐसी बुद्धिको त्यागदेनेसे (कर्हिचित्) किसी समय भी (कामः) काम (न) नहीं (उदेति) उदित होता है॥ ६४॥

(भावार्थ) जो कोई भी भोगके पदार्थ सुनेहुए वा देखेहुए हों, उनमें यह समीचीन अर्थात् हमें सुख देंगे ऐसे बुद्धिको त्यागदेनेसे किसी समय भी काम उदित नहीं होसकता॥ ६४॥

कामस्य बीजं संकल्पः संकल्पादेव जायते।
बीजे नष्टेऽङ्कुर इव तस्मिन् नष्टे विनश्यति॥ ६५॥

अन्वय और पदार्थ-(संकल्पः) अभिलाषा (कामस्य) कामका (बीजम्) बीज है (संकल्पात्-एव) संकल्पसे ही [कामः] काम (जायते) होता है (बीजे) बीजके (नष्टे) नष्ट होनेपर (अंकुर इव) अंकुर की समान (तस्मिन्, नष्टे) तिसके नष्ट होने पर (विनश्यति) विनष्ट होजाता है॥ ६५॥

(भावार्थ)-अभिलाषा कामका बीजस्वरूप है, इस लिये अभिलाषासे ही काम उत्पन्न होता है, जैसे बीजके नष्ट होने पर अंकुर उगता ही नहीं; तैसे ही अभिलाषाके नष्ट होजाने पर काम स्वयं नष्ट होजाता है॥ ६५॥

न कोऽपि सम्यक्त्वधिया विनैव
भोग्यं नरः कामयितुं समर्थः।
यतस्ततः कामजयेच्छुरेतां
सम्यक्त्वबुद्धिं विषये निहन्यात्॥ ६६॥

अन्वय और पदार्थ-(कः, अपि) कोई भी (नरः) मनुष्य (सम्यक्त्वधिया) विना) यह सम्यक् है ऐसी बुद्धिको छोडकर (भोग्यम्) भोग पदार्थको (काम-यितुम्) कामना करनेको (समर्थः) समर्थ (न-एव) नहीं है (यतः) क्योंकि ऐसा है (ततः) तिसकारणसे (कामजयेच्छुः) कामको जीतनेका इच्छावाला

(विषये) भोग्यपदार्थमें (एताम्) इस (सम्यक्त्वबुद्धिम्) चारुताकी बुद्धिको (विहन्यात्) नष्ट करदेय ॥ ६६ ॥

(भावार्थ)–क्योंकि कोई भी मनुष्य इन भोग्य पदार्थोंको रमणीय और सुखदायक समझे विना किसी पदार्थको भोगनेकी इच्छा कदापि नहीं करसकता इसकारण जो पुरुष कामको जीतना चाहता हो उसको भोग्य विषयोंको भले समझनेकी बुद्धिका जड़मूलसे नाश करदेना चाहिये ॥ ६६ ॥

भोग्यं नरः कामजयेच्छुरेतां
सुखत्वबुद्धिं विषये निहन्यात् ।
यावत्सुखत्वभ्रमधीः पदार्थे
तावन्न जेतुं प्रभवेद्धि कामम् ॥ ६७ ॥

अन्वय और पदार्थ–(कामजयेच्छुः) कामको जीतनेकी इच्छावाला (नरः) मनुष्य (विषये) भोगनेके पदार्थोंमें (एताम्) इस (सुखत्वबुद्धिम्) सुखदायक है ऐसी बुद्धिको (निहन्यात्) नष्ट करदेय (हि) क्योंकि (यावत्) जबतक (पदार्थे) पदार्थमें (सुखत्वभ्रमधीः) यह सुखदायक है ऐसा भ्रान्तिज्ञान होता है (तावत्) तबतक (कामम्) कामको (जेतुम्) जीतनेको (न)नहीं(प्रभवेत्) समर्थ होसकता है ॥ ६७ ॥

(भावार्थ)–कामको जीतनेके लिये जिसकी इच्छा हो उसको चाहिये, कि–भोगके पदार्थोंको 'यह सुखदायक है' ऐसा समझना छोडदेय, क्योंकि–जबतक भोग्य पदार्थोंमें 'यह सुखदायक है' ऐसी वासना बनी रहेगी तबतक कोई पुरुष भी कामको नहीं जीतसकता ॥ ६७ ॥

संकल्पानुदये हेतुर्यथाभूतार्थदर्शनम् ।
अनर्थचिन्तनं चाभ्यां नावकाशोऽस्य विद्यते ॥ ६८ ॥

अन्वय और पदार्थ–(यथाभूतार्थदर्शनम्) जिस वस्तुका जो स्वरूप हो उसको वैसाही देखना (च) और (अनर्थचिन्तनम्) उनके द्वारा होनेवाले अनर्थका चिन्तवन (सङ्कल्पानुदये) सङ्कल्पका उदय न होनेमें (हेतुः) हेतु है (आभ्याम्) इन दोनोंसे (अस्य) इस कामका (अवकाशः) अवसर (न)नहीं(विद्यते)है

(भावार्थ)–वस्तुका वास्तवमें जो स्वभाव है उसको वैसाही देखना और उस वस्तुसे जो२ अनर्थ होना संभव हो उनको विचारना, ये दो प्रकार का ज्ञान हो

तो संकल्पका जन्म ही नहीं होसकता । इस दो प्रकारके ज्ञानके हृदयमें जागते रहने पर कामको उदय होनेका अवसर ही नहीं मिलता ॥ ६८ ॥

रत्ने यदि शिलाबुद्धिर्जायते वा भयन्ततः ।
समीचीनत्वधीर्नैति नोपादेयत्वधीरपि ॥ ६९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(रत्ने) रत्नमें (यदि) जो (शिलाबुद्धिः) यह पत्थर है ऐसी बुद्धि (वा) या (ततः) तिससे (भयम्) भय (जायते) होजाय [तदा] तब (समीचीनत्वधीः) यह चारु है ऐसी बुद्धि (अपि) और (उपादेयत्वधीः) इसको ग्रहण करना चाहिये ऐसी बुद्धि (न) नहीं (एति) उदित होती है॥६९॥

(भावार्थ)-यदि रत्नको देखकर उसको पत्थर समझनेका ज्ञान होजाय अथवा उसको अनर्थकारी मानकर उससे भयभीत होनेकी बुद्धि उत्पन्न होजाय तो कभी भी उस रत्नको सुन्दर सुखदायक समझनेकी वा ग्रहण करने योग्य है ऐसी बुद्धि नहीं होसकती ॥ ६९ ॥

यथार्थदर्शनं वस्तुन्यनर्थस्यापि चिन्तनम् ।
संकल्पस्यापि कामस्य तद्वधोपाय इष्यते ॥ ७० ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) तिस कारणसे (वस्तुनि) भोग्य वस्तुमें (यथार्थदर्शनम्) उसके वास्तविक स्वरूपका देखना (अपि) और (अनर्थस्य) अनर्थका (चिन्तनम्) चिन्तवन (सङ्कल्पस्य) सङ्कल्पका (अपि) और (कामस्य) कामका (वधोपायः) नाश करनेका उपाय (इष्यते) मानाजाता है॥

(भावार्थ) इसकारण भोगके पदार्थोंमें यथार्थदृष्टि अर्थात् भोग्यवस्तुका जो वास्तविक स्वभाव हो उस पर ध्यान रखना और जिस भोगके पदार्थसे परिणाम में जो अनर्थ होना संभव हो उसका विचार करते रहना इन दो बातोंसे ही सङ्कल्प और कामका विध्वंस होसकता है ॥ ७० ॥

धनदोषनिरूपणम्

धनं भयनिबन्धनं सततदुःखसंवर्द्धनम्,
प्रचण्डतरकर्दनं स्फुटितबन्धुसंवर्द्धनम् ।
विशिष्टगुणबाधनं कृपणधीसमाराधनं,
न मुक्तिगतिसाधनं भवति नापि हृच्छोधनम् ॥

अन्वय और पदार्थ-(भयनिवन्धनम्) भयका कारण (सततदुःखसंवर्द्धनम्) सदा दुःखको बढ़ानेवाला (प्रचण्डतरकर्दनम्) बड़ी भारी विडम्बना देनेवाला (स्फटितबन्धुसम्बर्द्धनम्) भाइयोंके परस्पर भेदभावको बढ़ानेवाला (विशिष्टगुणबाधनम्) श्रेष्ठ गुणोंमें बाधा डालनेवाला (कृपणधीसमाराधनम्) केवल कृपणकी बुद्धिकी ही सेवा करनेवाला (धनम्) धन (मुक्तिगतिसाधनम्) मुक्ति पानेका साधन (न) नहीं (भवति) होता है (अपि) और (हृच्छोधनम्) हृदयको शुद्ध करनेवाला (न) नहीं [भवति] होता है ॥ ७१ ॥

(भावार्थ)-जिस धनके कारण सदा भयभीत रहना पड़ता है, जिसके कारण निरन्तर दुःखोंकी वृद्धि होती रहती है, अनेकों प्रकारकी विडम्बनायें सहनी पड़ती हैं, जो भाई भाइयों में परस्पर भेदभावको बढ़ाया करता है, जो सकल श्रेष्ठ गुणोंको लुप्त करदेता है और जो केवल कृपण पुरुषों के चित्तको ही बड़ा प्यारा लगता है ऐसे धनसे मुक्ति कदापि नहीं मिलसकती और न हृदयकी शुद्धि ही होसकती है अर्थात् धन मुक्तिमार्गका बाधक और हृदयको मलिन करदेनेवाला है ॥ ७१ ॥

राज्ञो भयं चौरभयं प्रमादाद्
भयं तथा ज्ञातिभयञ्च वस्तुतः।
धनं भयग्रस्तमनर्थमूलं,
यतः सतां तन्न सुखाय कल्प्यते ॥ ७२ ॥

(राज्ञः) राजासे (भयम्) भय (चौरभयम्) चोरोंका भय (प्रमादात्) असावधानीसे (भयम्) भय (तथा) तैसे ही (ज्ञातिभयम्) जातिसे भय (वस्तुतः, च) वास्तवमें तो (यतः) क्योंकि (धनम्) धन (भयग्रस्तम्) भयों के ग्रसाहुआ (अनर्थमूलम्) अनर्थोंकी जड़ है (तत्) तिसकारण (सताम्) सत्पुरुषोंके (सुखाय) सुखके लिये (न) नहीं (कल्पते) सम्पन्न होता है ।७२।

(भावार्थ)-धनी को राजासे भय होता है, चोरोंसे भय होता है, असावधानीसे भय होता है और जातिवालोंसे भी भय होता है, वास्तवमें देखाजाय तो धन नाना प्रकारके भयोंसे जकड़ा हुआ और अनेकों प्रकारके अनर्थोंकी मूल है, इसकारण विवेकी पुरुषों की दृष्टिमें यह धन कभी भी सुखदायक सिद्ध नहीं होसकता ॥

अर्जने रक्षणे दाने व्यये वापि च वस्तुतः।
दुःखमेव सदा नृणां न धनं सुखसाधनम् ॥ ७३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अर्जने) इकट्ठा करनेमें (रक्षणे) रक्षा करनेमें (दाने) देनेमें (वा) या (व्यये अपि) व्यय करनेमें भी (वस्तुतः च) वास्तव में तो (सदा) सर्वदा ही (धनम्) धन (नृणाम्) मनुष्योंको (दुःखम्-एव) दुःखरूप ही होता है (सुखसाधनम्) सुखका साधन (न) नहीं [भवति] होताहै।

(भावार्थ)-धनके पैदा करनेमें, फिर रक्षा करनेमें, तदनन्तर दान करनेमें और व्यय करनेमें दुःख होता है, वास्तव में देखाजाय तो धनसे मनुष्यों को सदा ही दुःख होता है, धन कभी भी सुखका साधन नहीं होता ॥ ७३ ॥

सतामपि पदार्थस्य लाभाल्लोभः प्रवर्त्तते ।
विवेको लुप्यते लोभात्तस्मिन् लुप्ते विनश्यति ।७४।

अन्वय और पदार्थ-(सताम्, अपि) सत्पुरुषोंको भी (पदार्थस्य) पदार्थके (लाभात्) लाभसे (लोभः) लोभ (प्रवर्त्तते) प्रवृत्त होताहै (लोभात्) लोभसे (विवेकः) सत् असत्के विचारकी बुद्धि (लुप्यते) लुप्त होजाती है (तस्मिन्) तिसके (लुप्ते) नष्ट होनेपर (विनश्यति) स्वयं नष्ट होजाता है ॥ ७४ ॥

(भावार्थ)-धन मिलनेपर धीरे २ साधु पुरुषोंके चित्तमें भी लोभका उदय होने लगता है, लोभके होते ही उनको जो भले बुरेका विचार करनेकी बुद्धिरूप विवेक होता है वह नष्ट होजाता है और जिसके विवेक का नाश हुआ वह मनुष्य स्वयं नाशको प्राप्त होजाता है ॥ ७४ ॥

दहत्यलाभे निःस्वत्वं लाभे लोभो दहत्यमुम् ।
तस्मात्सन्तापकं वित्तं कस्य सौख्यं प्रयच्छति ७५

अन्वय और पदार्थ-(अलाभे) धन न मिलने पर (निःस्वत्वम्) निधनपना (दहति) जलाता है (लाभे) मिलनेपर (अमुम्) इसको (लोभः) लोभ (दहति) जलाता है (तस्मात्) तिसकारण (सन्तापकम्) सन्तापकारी (वित्तम्) धन (कस्य) किसको (सौख्यम्) सुख (प्रयच्छति) देता है ॥ ७५ ॥

(भावार्थ)-यदि धन न मिले तव तो दरिद्र पुरुषको निर्धनपना जलाता है और जब धन मिलजाता है तो लोभ उत्पन्न होकर हृदयको सन्ताप देता है, इसप्रकार सब दशामें हृदयको दुःख देनेवाला धन इस जगत्में भला किसको सुख देता है ? अर्थात् किसीको भी सुख नहीं देता ॥ ७५ ॥

भोगेन मत्तता जन्तोर्दानेन पुनरुद्भवः ।

वृथैवोभयथा वित्तं नास्त्येव गतिरन्यथा ॥ ७६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(भोगेन) भोगसे (जन्तोः) प्राणीको (मत्तता) उन्मत्तपना (दानेन) दानके द्वारा (पुनरुद्भवः) पुनर्जन्म (उभयथा अपि) दोनों प्रकारसे ही (वित्तम्) धन (वृथा-एव) निरर्थक ही है (अन्यथा) और प्रकार की (गतिः, एव) गति ही (न) नहीं (अस्ति) है ॥ ७६ ॥

(भावार्थ)-धन भोगने में न रहे तो मनुष्य उन्मत्त (पागल) होजाता है और यदि धनका दान करदिया जाय तो उस पुण्यका फलरूप सुख भोगनेके लिये फिर जन्म धारण करना पड़ता है, दोनों प्रकारसे ही धन वृथा है तथा इन दो प्रकार को छोड़कर धनकी और कोई गति नहीं है ॥ ७६ ॥

धनेन मदवृद्धिः स्यान्मदेन स्मृतिनाशनम् ।
स्मृतिनाशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ७७

अन्वय और पदार्थ-(धनेन) धनसे (मदवृद्धिः) अभिमानकी वृद्धि (स्यात्) होगी (मदेन) मदसे (स्मृतिनाशनम्) स्मृतिका लोप [भवति] होता है (स्मृति नाशात्) स्मरणशक्ति के नाश से (बुद्धिनाशः) बुद्धिका नाश [भवति] होता है (बुद्धिनाशात्) बुद्धिके नाशसे (प्रणश्यति) नाशको प्राप्त होजाता है ॥७७॥

(भावार्थ)-धन होने पर मनुष्योंको अभिमान बढ़जाता है, अभिमान की अधिकता हुई कि-भला बुरा विचारनेकी स्मरणशक्ति का नाश करदेती है, स्मरण शक्ति नष्ट होते ही बुद्धिका नाश होजाता है और बुद्धिका नाश होनेपर मनुष्य स्वयं ही नष्ट होजाता है ॥ ७७ ॥

सुखयति धनमेवेत्यन्तराशापिशाच्या,
दृढतरमुपगूढो मूढलोको जडात्मा ।
निवसति तदुपान्ते सन्ततं प्रेक्षमाणो,
व्रजति तदपि पश्चात्प्राणमेतस्य हृत्वा ॥

अन्वय और पदार्थ-(धनम्) धन (सुखयति एव) अवश्य ही सुख देता है (इति) ऐसी (अन्तरापिशाच्या) मनके भीतरकी आशारूप पिशाची करके (दृढतरम्) अत्यन्त दृढ़ताके साथ (उपगूढः) आलिङ्गन कियाहुआ (जडात्मा) जड़ताको प्राप्तहुआ (मूढलोकः) मूढ़ पुरुष (तदुपान्ते) धनकी ओरको (सन्ततम्)

निरन्तर (प्रेक्षमाणः) देखता हुआ (निवसति) निवास करता है (पश्चात्) कुछकालके अनन्तर (तत्-अपि) वह धन ही (एतस्य) इसके (प्राणम्) प्राण (हृत्वा) हरकर (व्रजति) चलाजाता है ॥ ७८ ॥

(भावार्थ)-धन हमे अवश्य ही सुख देगा, ऐसी जो हृदयमें आशा होती है, वह पिशाचीके स्वरूपसे मूर्ख पुरुषको जकड़कर लिपटी रहती है, उसके वशमें पड़ने से मनुष्य जड़सा होजाताहै और निरन्तर धनकी ओर को देखता हुआ धनके पास ही बैठा रहताहै, परन्तु अन्तमें वह धन ही प्राणनाशका कारण होकर आप भी चलाजाता है

सम्पन्नोऽन्धवदेव किञ्चिदपरं नो वीक्षते चक्षुषा,
सद्भिर्वर्जितमार्ग एव चरति प्रोत्साहितो बालिशैः ।
तस्मिन्नेव मुहुः स्खलन् प्रतिपदं गत्वान्धकूपे पत-
त्यस्यान्धत्वनिवर्त्तकौषधमिदं दारिद्र्यमेवाञ्जनम् ॥

अन्वय और पदार्थ (सम्पन्नः) सम्पत्तिमान् (अन्धवत् एव) अन्धेकी ही समान (अपरम्) और (किञ्चित्) कुछ (चक्षुषा) चक्षुसे (नो) नहीं (वीक्षते) देखताहै (सद्भिः) सत्पुरुषों करके (वर्जितमार्गे) त्यागेहुए मार्गमें (एव) ही (बालिशैः) मूर्खों करके (प्रोत्साहितः) उकसाया हुआ (चरतिः) विचरताहै (तस्मिन्-एव) उस मार्गमें ही (प्रतिपदम्) हरएक पग पर (मुहुः) वारंवार (स्खलन्) ठोकरें खाता हुआ (गत्वा) जाकर (अन्धकूपे) अन्धकूपसमान विपत्तिमें (पतति) पड़ता है (तस्य) उसके (अन्धत्वनिवर्त्तकम्) अन्धेपनको दूर करने वाला (इदम्) यह (दारिद्र्यम्) निर्धनपन (अञ्जनम्) अञ्जन नामक (औषधम्-एव) औषध ही [भवति] होता है ॥ ७६ ॥

(भावार्थ)—धनी मनुष्य अन्धेकी समान ही धन के सिवाय और किसी पदार्थकी ओर को नेत्र होते हुए भी नहीं देख सकता, वह मूर्खोंके बहकाये में आकर बड़े ही उत्साहके साथ ऐसे खोटे आचरण करने लगता है, कि-सब ही सज्जन पुरुष जिनकी निन्दा करते हैं, उस मार्गमें पग पग पर वारंवार ठोकरें खाता२ अन्तमें अन्धेरे कूपकी समान महाविपत्तिमें पड़जाता है, ऐसे पुरुषो को] धनमदान्धतारूप रोगको दूर करनेकी एक मात्र औषध दरिद्रतारूप अञ्जन ही है ॥ ७६ ॥

लोभः क्रोधश्च दम्भश्च मदो मत्सर एव च ।
वर्द्धते वित्तसम्प्राप्त्या कथं तच्चित्तशोधनम् ।८०।

अन्वय और पदार्थ -(वित्तसम्प्राप्त्या) अधिक धन प्राप्त होनेसे (लोभः) लोभ (क्रोधः) क्रोध (च) और (दम्भः च) दम्भ भी (मदः) मद (च) और (मत्सरः, एव) मत्सर भी (वर्द्धते) बढ़ताहै (तत्) वह (चित्तशोधनम्) चित्तकी शुद्धिका कारण (कथम्) कैसे [भवेत्] हो ? ॥ ८० ॥

(भावार्थ)-जिस धनके अधिक होजाने पर लोभ, क्रोध, पाखण्ड, घमण्ड और डाह बढ़जाता है, उस धनसे अन्तःकरणकी शुद्धि कैसे होसकतीहै ? अर्थात् कदापि नहीं होसकती ॥ ८० ॥

अलाभाद्द्विगुणं दुःखं वित्तस्य व्ययसम्भवे ।
ततोऽपि द्विगुणं दुःखं दुर्व्यये विदुषामपि ॥ ८१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वित्तस्य) धनका (व्ययसम्भवे) व्ययकी सम्भावना होनेपर (अलाभात्) न मिलनेसे (द्विगुणम्) दूना (दुःखम्) दुःख [भवति] होता है (दुर्व्यये) अनुचित रीतिसे व्यय होजाने पर (विदुषाम्-अपि) विद्वानों को भी (ततः, अपि) तिससे भी (द्विगुणम्) दूना (दुःखम्) दुख [भवति] होताहै

(भावार्थ)- धनके व्ययकी सम्भावना होने पर, धन न मिलनेके दुःख से भी दूना दुःख होता है और यदि अनुचित रीतिसे धनका व्यय होजायतो उससे भी दूना दुःख होता है ॥ ८१ ॥

नित्याहितेन वित्तेन भयचिन्तानपायिना।
चित्तस्वास्थ्यं कुतो जन्तोर्गृहस्थेनाहिना यथा ८२

अन्वय और पदार्थ-(भयचिन्तानपायिना) भय और चिन्तासे युक्त (नित्याहितेन) सदा अहितकारी (वित्तेन) धनसे (जन्तोः) प्राणीको (गृहस्थेन) घरमें स्थित (अहिना यथा) सर्प करके जैसे (चित्तस्वास्थ्यम्) चित्तकी स्वस्थता (कुतः) कहां ? ॥ ८२ ॥

(भावार्थ) जिसके घरमें सर्प रहता हो उस गृहस्थ का चित्त जैसे स्वस्थ नहीं रहता है किन्तु व्याकुल और चिन्ताग्रस्त रहताहै तैसे ही, जिसके साथ सदा भय और चिन्ताका सम्बन्ध रहताहै ऐसे अनिष्टकारी धनसे जीवका चित्त स्वस्थ कैसे रह-सकताहै ? कभी नहीं रहसकता ॥ ८२ ॥

कान्तारे विजने पुरे जनपदे सतो निरीतो च वा,
चौरैर्वापि तथेतरैर्नरवरैर्युक्तो वियुक्तोऽपि वा ।

निःस्वः स्वस्थतया सुखेन वसति ह्याद्रीयमाणो जनैः
क्लिश्यत्येव धनी सदाकुलमतिर्भीतश्च पुत्रादपि ८३

अन्वय और पदार्थ-((विजने) निर्जन (कान्तारे) वनमें (पुरे) नगरमें (जनपदे) देशमें (सेतौ) सेतुपर (वा) या (निरीतौ च) निरुपद्रव स्थान में भी (चौरैः) चोरों करके (तथा) तैसे ही (इतरैः) नीच पुरुषों करके (नरवरैः) (श्रेष्ठ पुरुषों करके (युक्तः) मिलाहुआ (अपि वा) या (वियुक्तः) रहित हुआ (निःस्वः) निर्धन पुरुष (स्वस्थतया) स्वस्थतापूर्वक (सुखेन) सुखसे (वसति) रहता है (जनैः) पुरुषों करके (आद्रीयमाणः) आदर कियाजाता हुआ (धनी) धनवान् (सदा) सब समय (आकुलमतिः) व्याकुलचित्त (पुत्रात्, अपि) पुत्र से भी (भीतः) भययुक्त हुआ (क्लिश्नाति,एव) अवश्य ही क्लेश पाता है ८३ ॥

(भावार्थ)-निर्जन वनमें, वा मनुष्योंसे भरे नगरमें; ग्राम आदि किसी देशमें वा किसी नदी के पुल पर अथवा दुर्भिक्ष आदि सब प्रकारके भयसे रहित स्थानमें निर्धन पुरुष चाहे तहाँ रहे, उसको चोरों का वा अन्य दुष्ट पुरुषों का अथवा राजा आदि श्रेष्ठपुरुषोंका भय नहीं होता. चाहे साथ रहे, चाहे इन सबोंसे अलग रहे, वह सर्वत्र ही किसीप्रकार का क्लेश न पाकर सुखके साथ अपने समयको विताता है, परन्तु धनवान् पुरुषको चोरोंसे दुष्टोंसे तथा राजा आदिसे सदा भय रहता है और उसका चित्त घबड़ाता ही रहता है यहाँ तक कि-धनी पुरुष पुत्रसे भी भयभीत रहकर सदा क्लेशसे ही अपने जीवन को विताता है॥ ८३ ॥

तस्मादनर्थस्य निदानमर्थः,
पुमर्थसिद्धिर्न भवत्यनेन-
ततो वनान्ते निवसन्ति सन्तः,
संन्यस्य सर्वं प्रतिकूलमर्थम् ॥ ८४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिस कारण (अर्थः) धन (अनर्थस्य) अनर्थका (निदानम्) मूलकारण [अस्ति] है (अनेन) इससे (पुमर्थसिद्धिः) पुरुषार्थ की सिद्धि (न) नहीं (भवति) होती है (तस्मात्) तिस कारण से (सन्तः) विचारवान् पुरुष (प्रतिकूलम्) विरोधी (सर्वम्) सब (अर्थम्) धनको (संन्यस्य) त्यागकर (वनान्ते) वनके भीतर (निवसन्ति) निवास करते हैं ॥ ८४॥

(भावार्थ)-इसकारण धन सकल अनर्थोंका मूल कारण है, इस धनसे

मोक्षरूप पुरुषार्थकी सिद्धि नहीं होसकती, इसकारण ही मोक्ष चाहनेवाले विचार वान् पुरुष धन, मोक्षमार्गमें बाधा डालनेवाला है, ऐसा समझ सबप्रकारके धनको त्यागकर निर्जन वनमें जाकर निवास करते हैं ॥ ८४ ॥

विरक्ति-फलोपसंहारः

श्रद्धाभक्तिमतीं सतीं गुणवतीं पुत्रान् श्रुतान् संमता
नक्षय्यं वसु धान्यभोगविभवैः श्रीसुन्दरं मन्दिरम् ।
सर्वं नश्वरमित्यवेत्य कवयः श्रुत्युक्तिभिर्युक्तिभिः,
संन्यस्यन्त्यपरे तु तत्सुखमिति भ्राम्यन्ति दुःखार्णवे॥

अन्वय और पदार्थ-(श्रद्धाभक्तिमतीम्) श्रद्धा और भक्तिसे युक्त (गुणवतीम्) गुणभरी (सतीम्) पतिव्रता स्त्रीको (श्रुतान्) पढ़े हुए (सम्मतान्) अनुकूल (पुत्रान्) पुत्रोंको (अक्षय्यम्) अटूट (धनम्)धनको(धान्यभोगविभवैः) पुण्यसे प्राप्त हुए भोगविलासोंके द्वारा (श्रीसुन्दरम्) परमशोभासे सुन्दर (मन्दिरम्) मन्दिरको (सर्वम्) सबको (नश्वरम्) नाशवान् है (इति) ऐसा (श्रत्युक्तिभिः) वेदवचनोंके द्वारा (युक्तिभिः) युक्तियोंके द्वारा (अवेत्य) जान कर (कवयः) विचारवान् (संन्यस्यन्ति) सबमें आसक्तिको त्यागकर उदासीन होजाते हैं (तु) किन्तु (अपरे) विचारशून्य पुरुष (तत्) तिसको (सुखम्) सुख रूप है [इति, अवेत्य] ऐसा जानकर (दुःखार्णवे) दुःखसागरमें (भ्राम्यन्ति) भ्रमते रहते हैं ॥ ८५ ॥

(भावार्थ)-श्रद्धा और भक्ति करनेवाली गुणवती पतिव्रता स्त्री, अनुगामी और विद्यावान् पुत्र, बहुतसा धन और पुण्यके बलसे प्राप्त हुए नानाप्रकारके भोग विलासोंकी सामग्रीसे, भराहुआ परमसुन्दर घर ये सब ही पदार्थ नाशवान् हैं अर्थात् एक दिन हमसे अवश्य ही छूटेंगे इस बात को वेदके प्रमाणोंसे और युक्तियों से निश्चय करके तत्त्वदर्शी पण्डित सब विषयोंमें आसक्तिको त्यागकर उदासीन भावसे रहते हैं, यही वास्तविक संन्यास है, परन्तु जो अज्ञानी पुरुष मोहवश अन्धे होरहे हैं वे तो इन सब नाशवान् और अन्तमें बिछुड़ कर महादुःख देनेवाले पदार्थों को ही सुखका साधन मानकर निरन्तर दुःखसागरमें गोते खातेहुए लुढ़कते रहतेहैं अर्थात् वारम्वार जन्म मरणके चक्करमें पड़कर नानाप्रकारके घोर दुःखोंको भोगते हैं॥

सुखमिति मलराशौ ये रमन्त्यत्र गेहे,

क्रुमय इव कलत्रक्षेत्रपुत्रानुषक्त्या ।
सुरपद इव तेषां नैव मोक्षप्रसङ्ग-
स्त्वापतु निरयगर्भावासदुःखप्रवाहः ॥८६॥

अन्वय और पदार्थ-(मलराशौ) मलके समूहरूप (गेहे) घरमें (सुरपदे इव) स्वर्गलोककेसा (सखम्) सुख है (इति) ऐसा [मत्वा] मानकर(ये) जो (अत्र) इस घर में (कलत्रक्षेत्रपत्रानुपक्तया) स्त्री स्थान और पुत्र आदिमें आसक्त होकर(कृमयः इव) कीड़ोंकी समान (रमन्ते) रमण करते हैं (तेषाम्) उनको (मोक्षप्रसङ्गः) मोक्ष प्राप्त होनेका अवसर (न-एव) कदापि नहीं होता(अपितु) किन्तु (निरयगर्भावासदुःखप्रवाहः) नरक और गर्भमें वसनेके कारण वारम्वार दुःख प्राप्त होनेका अवसर [भवति] होता है ॥ ८६ ॥

(भावार्थ)-इस मलके ढेररूप घरको ही स्वर्गकी समान विचार कर जो स्त्री पुत्र घर द्वार आदिमें आसक्त होतेहुए यहाँ कीड़ोंकी समान विषयोंमें रमते रहते हैं, उनको मोक्ष प्राप्त होनेकी कुछ भी संभावना नहीं है, किन्तु वार वार नरक और गर्भमें निवासके कारण उनके दुःखका प्रवाह रुकता ही नहीं ॥ ८६ ॥

येषामाशा निराशा स्याद्दारापत्यधनादिषु ।
तेषां सिद्ध्यति नान्येषां मोक्षाशाभिमुखी गतिः ८६

अन्वय और पदार्थ-(येषाम्) जिनकी (दारापत्यधनादिषु) स्त्री, सन्तान और धन आदिमें (निराशा) निराशा (आशा) आशारूप (स्यात्) हो (तेषाम्) उनकी (मोक्षाभिमुखी) मोक्षकी ओरको बढ़नेवाली (गतिः) गति (सिद्ध्यति) सिद्ध होती है (अन्येषाम्) औरोंकी (न) नहीं ॥ ८७ ॥

(भावार्थ)-स्त्री, पुत्र और धन आदि भोगके विषयोंमें उदासीन रहनेको ही जो आसक्ति समझते हैं अर्थात् विषयोंमें आसक्त होना अनर्थकी मूल है, ऐसा समझकर जो उदासीन भावसे गृहस्थमें रहते हैं, वेही मोक्षमार्ग की ओरको बढ़सकते हैं और जो सदा विषयोंमे ही आसक्त रहते हैं उनको मोक्षका मार्ग सूझता ही नहीं ८७

सत्कर्मक्षयपाप्मनां श्रुतिमतां सिद्धात्मनां धीमताम्
नित्यानित्यपदार्थशोधनमिदं युक्त्या मुहुः कुर्वताम् ।
तस्मादुत्थमहाविरक्त्यसिमतां मोक्षैककाङ्क्षावतां,
धन्यानां सुलभं प्रियादिविषयेष्वाशालताच्छेदनम् ॥

अन्वय और पदार्थ-(सत्कर्मक्षयपापमनाम्) सत्कर्म करनेसे जिनके पापोंका क्षय होगया है (श्रुतिमताम्) वेद पढ़ेहुए (सिद्धात्मनाम्) जिनका मन योग साधनाके द्वारा वशमें होगया है (मुहुः) वारंवार (युक्त्या) युक्ति के द्वारा (इदम्) इस (नित्यानित्यपदार्थशोधनम्)नित्य और अनित्य पदार्थोंके विचारको (कुर्वताम्) करतेहुए (तस्मात्) तिस विचारके कारण (उत्थमहाविरक्त्यसिमताम्) उठी हुई तीव्र वैराग्यरूप खड्गको धारण करनेवाले (मोक्षैककाङ्क्षावताम्) एकमात्र मोक्ष की ही चाहनावाले (धन्यानाम्) भाग्यवान् पुरुषोंको (स्त्रियादिविषयेषु) स्त्री आदि भोगके पदार्थोंमें (आशालताच्छेदनम्) आसक्तिरूप बेलको काटडालना (सुलभम्) सहज [भवति] होता है॥ ८८ ॥

(भावार्थ)-सत्कर्मोंके करनेसे जिनके पूर्वजन्मोंके और वर्त्तमान जन्मके पापोंका क्षय होगया है जिन्होंने वेदाध्ययन किया है, जिन्होंने प्राणायाम आदि योगक्रियासे मनको वशमें करलिया है, जो सदा ही नित्य और अनित्य पदार्थोंका विचार करते रहते हैं, नित्यानित्यवस्तुविवेक के कारणसे जिनकी तीव्रवैराग्यरूपा तलवार सदा उठी रहती है और जो एकमात्र मुक्ति की ही अभिलाषा रखते हैं, उन भाग्यशाली पुरुषोंके लिये ही स्त्री पुत्र आदि विषयों की आशारूप लता को काटडालना सहज होता है ॥ ८८ ॥

संसारमृत्योर्बलिनः प्रवेष्टुं
द्वाराणि च त्रीणि महान्ति लोके ।
कान्ता च जिह्वा कनकञ्च तानि,
रुणद्धि यस्तस्य भयं न मृत्योः ॥ ८९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(बलिनः) बलवान् (संसारमृत्योः) संसाररूपी मृत्यु के (प्रवेष्टुम्) प्रवेश करनेको (लोके) लोकमें (कान्ता) कामिनी (च) और (जिह्वा) जीभ (च) और (कनकम्) सुवर्ण (च) भी (त्रीणि) तीन(महान्ति) बड़े (द्वाराणि) द्वार [सन्ति] हैं (तानि) तिनको (यः) जो पुरुष (रुणद्धि) रोकता है (तस्य) उसको (मृत्योः) मृत्युसे (भयम्) भय (न) नहीं [भवति] होता है ॥ ८९ ॥

(भावार्थ)-इस लोकमें संसाररूप बली मृत्यु जो मनुष्य के शरीरमें घुसता है, सो उसके घुसनेके लिये स्त्रीसमागम, जीभका स्वाद और धनका लोभ ये बड़े २ तीन द्वार हैं, जो पुरुष इन तीन द्वारोंको रोके रहता है अर्थात् जो कामचेष्टाको

छोड़कर केवल वंशचलानेवाले पुत्रकी इच्छासे अपनी स्त्रीके साथ शास्त्रमें लिखे नियमानुसार समागम करताहै, और जो जीभके स्वादमें न फँसकर केवल उदरपूर्त्तिके लिये शुद्ध सात्त्विक भोजन करता है तथा निर्वाहमात्र के लिये धनका संग्रह करता हुआ अधिक धन संग्रह करनेकी तृष्णामें नहीं पड़ता है उस विचारवान् पुरुषको मृत्युका भय नहीं रहता है ॥ ८९ ॥

मुक्तिश्रीनगरस्य दुर्जयतरं द्वारं यदस्त्यादिमं,
तस्य द्वे अररे धनञ्च युवती ताभ्यां पिनद्धं दृढम्।
कामाख्यार्गलदारुणा बलवता द्वारं तदेतत्त्रयं,
धीरो यस्तु भिनत्ति सोऽर्हति सुखं भोक्तुं विमुक्तिश्रियम्

अन्वय और पदार्थ- (मुक्तिश्रीनगरस्य) मुक्तिरूपिणी लक्ष्मीके नगरका (यत्) जो (दुर्जयतरम्) अतिकठिनसे जीतने योग्य (आदिमम्) पहिला (द्वारम्) द्वार (अस्ति) है (तस्य) उसके (धनम्) धन (च) और (युवती) स्त्री (च) भी (द्वे) दो (अररे) किवाड़ [स्तः] हैं (ताभ्याम्) उनसे (बलवता) बलवान् (कामाख्यार्गलदारुणा) काम नामवाले काठके अर्गले से (द्वारम्) द्वार (दृढम्) दृढ़रूप से (पिनद्धम्) बन्द होरहा है (तु) किन्तु (यः) जो (धीरः) धैर्यवान् (तदेतत्) उन इन (त्रयम्) तीन को (भिनत्ति) तोड़डालता है (सः) वह (सुखम्) सुखपूर्वक (विमुक्तिश्रियम्) मोक्षनाम वाली लक्ष्मी को (भोक्तुम) भोगने को (अर्हति) समर्थ होता है ॥ ९० ॥

(भावार्थ)-मुक्तिरूपा लक्ष्मी के निवास करने की नगरी के भीतर प्रवेश करने का जो पहिला ही द्वार है, उसमें घुसना बड़ा ही कठिन है, क्योंकि-धन और नवयौवना स्त्री ये दो भोग्य पदार्थ उसके किवाड़ हैं, इन दोनो किवाड़ों से और कामरूप काठकी अर्गला (डँडेले) से वह द्वार बड़ी दृढ़ता के साथ बन्द होरहा है, जो इन तीनों को छिन्नभिन्न करसकता है अर्थात् इनमें की आसक्ति को त्याग सकता है वह विवेकी पुरुष ही उस नगरी के भीतर प्रवेश करके मोक्षरूपा लक्ष्मी को भोगसकता है ॥ ९० ॥

आरूढस्य विवेकाश्वं तीव्रवैराग्यखड्गिनः।
तितिक्षावर्मयुक्तस्य प्रतियोगी न दृश्यते ॥ ९१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विवेकाश्वम्-आरूढस्य) विवेकरूपी घोड़े पर चढ़े हुए

(तीव्रवैराग्यखड्गिनः) तीव्र वैराग्यरूपी खड्गको धारण करनेवाले (तितिक्षावर्मयुक्तस्य) सहनशीलतारूप कवचको पहरनेवालेका (प्रतियोगी) प्रतिद्वन्द्वी (नः) नहीं (दृश्यते) दीखता है ॥ ६१ ॥

(भावार्थ)-जो पुरुष विवेकरूपी घोड़ेके ऊपर चढ़ा हुआ है, तीव्र-वैराग्य-रूप तलवार को धारण कररहा है और तितिक्षा कहिये सहनशीलतारूपी कवचको पहरे हुए है, उस पुरुषके सामने आकर प्रतिकूलता करने वाला संसारमें कोई दीखता ही नहीं ॥ ६१ ॥

विवेकजां तीव्रविरक्तिमेव,
मुक्तेर्निदानं प्रवदन्ति सन्तः ।
तस्माद्विवेकी विरतिं मुमुक्षुः,
सम्पादयेत्तां प्रथमं प्रयत्नात् ॥ ६२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सन्तः) विवेकी पुरुष (विवेकजाम्) नित्यानित्य वस्तुके विवेकसे उत्पन्न हुए (तीव्रविरक्तिम्-एव) तीव्र वैराग्यको ही (मुक्तेः) मुक्तिका (निदानम्) आदिकारण (प्रवदन्ति) कहते हैं (तस्मात्) तिसकारण (विवेकी) विचारवान् (मुमुक्षुः) मोक्ष चाहनेवाला पुरुष (ताम्) उस (विरक्तिम्) वैराग्यको (प्रथमम्) पहिले (प्रयत्नात्) प्रयत्नसे (सम्पादयेत्) सम्पादन करै ॥

(भावार्थ)-विचारशील पुरुष कहते हैं, कि-नित्य अनित्य पदार्थोंका विवेक होजानेपर जो तीव्र वैराग्य उत्पन्न होजाता है वह मुक्तिमार्गमें पहुंचनेका आदिकारण है, इसकारण विचारशील मुमुक्षु पुरुष सबसे पहिले उद्योग करके उस तीव्र वैराग्य की ही साधना करे ॥ ६२ ॥

पुमानजातनिर्वेदो देहबन्धं जिहासितुम् ।
न हि शक्नोति निर्वेदो बन्धभेदो महानसौ ॥६३॥

अन्वय और पदार्थ-(अजातनिर्वेदः) जिसको वैराग्य उत्पन्न नहीं हुआ है वह (पुमान्) पुरुष (देहबन्धम्) देहरूप बन्धनको (जिहासितुम्) त्यागनेकी इच्छा करने को (न) नहीं (शक्नोति) समर्थ होता है (हि) क्योंकि (असौ) यह (निर्वेदः) वैराग्य (महान्) बड़ा (बन्धभेदः) बन्धनको तोड़नेवाला [अस्ति] है ॥

(भावार्थ)-जिस पुरुषको विषयोंसे वैराग्य नहीं होता वह पुरुष देहरूपी बन्धनको तोड़नेकी इच्छा भी नहीं करसकता, क्योंकि-यह एकमात्र वैराग्य ही शरीर

बन्धन को तोड़नेका बड़ाभारी उपाय है ॥ ६३ ॥

वैराग्यरहिता एव यमालय इवालये ।
क्लिश्नन्ति त्रिविधैस्तापैर्मोहिता अपि पण्डिताः ॥

अन्वय और पदार्थ-(वैराग्यरहिताः) वैराग्यसे शून्य (पण्डिताः, अपि) पण्डित भी (मोहिताः) मोहमें पड़े हुए (यमालये इव) यमराजके घरकी समान (आलये) अपने घरमें (त्रिविधैः) तीन प्रकारके (तापैः) तापोंसे (क्लिश्नन्ति, एव) क्लेश ही पाते हैं ॥ ६४ ॥

(भावार्थ)-जिनको वैराग्य नहीं होता है वे चाहे शास्त्र पढ़े हुए पण्डित ही हों तो भी मोहवश इस यमपुरीकी समान घरमें सदा तीन प्रकारके तापोंसे क्लेश ही पाया करते हैं ॥ ६४ ॥

॥ शमादिसाधननिरूपणम् ॥

शमो दमस्तितिक्षोपरतिः श्रद्धा ततः परम् ।
सामाधानमिति प्रोक्तं षडेवैते शमादयः ॥ ६५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(शमः) शम (दमः) दम (तितिक्षा) सहिष्णुता (उपरतिः) उपराम (श्रद्धा) विश्वास (ततःपरम्) तिसके अनन्तर (समाधानम्) समाधि (इति) यह (प्रोक्तम्) कहा है (एते) यह (शमादयः) शम आदि उपाय (षट् एव) छः हीं [सन्ति] हैं ॥ ६५ ॥

(भावार्थ)-शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा और समाधान कहा है, ये शम आदि उपाय छः ही हैं, न्यूनाधिक नहीं होसकते ॥ ६५ ॥

॥ शमः ॥

एकवृत्त्यैव मनसः स्वलक्ष्ये नियतस्थितिः ।
शम इत्युच्यते सद्भिः शमलक्षणवेदिभिः ॥ ६६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(मनसः) मनकी (स्वलक्ष्ये) अपने लक्ष्यमें (एकवृत्त्या) एक वृत्ति के द्वारा (नियतस्थितिः)अटलभावसे स्थिति(शमलक्षणवेदिभिः) शमके लक्षणोंको जाननेवाले (सद्भिः) विद्वानों करके (शमः इति) शम इस नामसे (उच्यते) कहीजातीहै ॥ ६६ ॥

(भावार्थ)-ध्यानके विषय ध्येय पदार्थमें एकाकार वृत्तिके द्वारा अन्तःकरण की अविचल स्थितिका नाम शम है. ऐसा शम का लक्षण जाननेवाले विद्वानों का कहना है ॥ ६६ ॥

उत्तमो मध्यमश्चैव जघन्यश्चेति च त्रिधा ।
निरूपितो विपश्चिद्भिस्तल्लक्षणवेदिभिः ॥ ९७ ॥

अन्वय और पदार्थ -(तल्लक्षणवेदिभिः) उसके लक्षण को जाननेवाले (विपश्चिद्भिः) विद्वानों करके (उत्तमः) उत्तम (मध्यमः) मध्यम (च) और (जघन्यः) अधम (च एव) भी (इति) इस प्रकार (त्रिधा) तीन प्रकार का (निरूपितः) निरूपण किया गया है ॥ ९७ ॥

(भावार्थ)-शमको विशेषरूप से जानने वाले विद्वानोंने उस शमको उत्तम, मध्यम और अधम, ऐसे तीन प्रकारका बताया है ॥ ९७ ॥

स्वविकारं परित्यज्य वस्तुमात्रतया स्थितिः ।
मनसः सोत्तमा शान्तिर्ब्रह्मनिर्वाणलक्षणा ॥ ९८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(स्वविकारम्) अपने विकार को (परित्यज्य) त्याग कर (वस्तुमात्रतया) केवल वस्तुस्वरूप से (मनसः) मनकी [या] जो (स्थितिः) स्थिति है (सा) वह (ब्रह्मनिर्वाणलक्षणा) परब्रह्ममयस्वरूप (उत्तमा) उत्तम (शान्तिः) शान्ति [उच्यते] कहीजाती है ॥ ९८ ॥

(भावार्थ)-अपने विकारको एकसाथ त्याग कर केवल परमार्थ वस्तु-रूपसे जो अन्तःकरणकी स्थिति है वह ही ब्रह्मनिर्वाण-रूप उत्तम शान्ति है ॥ ९८ ॥

प्रत्यक्प्रत्ययसन्तानप्रवाहकरणं धियः ।
यदेषा मध्यमा शान्तिः शुद्धसत्त्वैकलक्षणा ॥९९॥

अन्वय और पदार्थ-(धियः) बुद्धिकी (यत्) जो (प्रत्यक्प्रत्ययसन्तान-प्रवाहकरणम्) बाहरी वस्तुओंको छोड़ केवल उस भीतरी वस्तुका ही अवलम्बन लेकर धाराप्रवाहरूपसे एकाकार परिणामरूप प्रत्ययसमूहकी सृष्टि [अस्ति] है (एषा) यह (शुद्धसत्त्वैकलक्षणा) शुद्ध सत्त्वरूप (मध्यमा) मध्यम (शान्तिः) शम [उच्यते] कहाता है ॥ ९९ ॥

(भावार्थ)-बाहरी वस्तुओंके सम्बन्धको एकसाथ त्यागकर मनके भीतरकी वस्तुमें जो एक प्रकार की धाराप्रवाहरूपसे प्रतीति होती है, उस विशुद्ध सत्त्वको ही मध्यम शम कहते हैं ॥ ९९ ॥

विषयव्यापृतिं त्यक्त्वा श्रवणैकमनःस्थितिः ।

मनसश्चेतरा शान्तिः मिश्रसत्त्वैकलक्षणा ॥१००॥

अन्वय और पदार्थ-(च) और (विषयव्यापृतिम्) विषयोंमें व्यापारको (त्यक्त्वा) त्यागकर (श्रवणैकमनःस्थितिः) एक श्रवणमें ही मनकी स्थिरता होना (मनसः) मनका (इतरा) अन्य (मिश्रसत्त्वैकलक्षणा) मिश्रसत्त्व ही है स्वरूप जिसका ऐसा (शान्तिः) शम [उच्यते] कहाता है ॥ १०० ॥

(भावार्थ)-बाहरी विषयोंमें व्यापारको त्यागकर वेदान्तके वाक्योंके द्वारा केवल आत्मस्वरूपके श्रवणमात्रमें जो चित्तका स्थिर होजाना है, यही चित्तका अथम शम है और इसको ही मिश्रसत्त्व कहते हैं ॥ १०० ॥

प्राच्योदीच्याङ्गसद्भावे शमः सिद्ध्यति नान्यथा ।

तीव्रा विरक्तिः प्राच्याङ्गमुदीच्याङ्गं दमादयः १०१

अन्वय और पदार्थ-(प्राच्योदीच्याङ्गसद्भावे) पूर्ववर्त्ती और परवर्त्ती अङ्ग के विद्यमान होने पर ही (शमः) शम (सिद्ध्यति) सिद्ध होता है (अन्यथा) और प्रकारसे (न) नही (तीव्रा) तीव्र (विरक्तिः) वैराग्य (प्राच्याङ्गम्) पूर्ववर्त्ती अङ्ग है (दमादयः) दम आदि (उदीच्याङ्गम्) उत्तरवर्त्ती अङ्ग है ॥ १०१ ॥

(भावार्थ)-प्राच्य कहिये पूर्वमें होनेवाले और उदीच्य कहिये उससे पीछे होनेवाले अङ्गोंका सद्भाव होने पर ही यह शम सिद्ध होसकता है, तीव्रवैराग्य होना पूर्वका अङ्ग है और दम आदि उत्तर अङ्ग कहलाते हैं ॥ १०१ ॥

कामः क्रोधश्च लोभश्च मदो मोहश्च मत्सरः ।

न जिताः षडिमे यस्य तस्य शान्तिर्न सिद्ध्यति १०२

अन्वय और पदार्थ-(कामः) काम (क्रोधः) क्रोध (च) और (लोभः) लोभ (च) भी (मदः) मद (मोहः) मोह (च) और (मत्सरः) मत्सरता (इमे) ये (षट्) छः (यस्य) जिसके (जिताः) वशीभूत (न) नहीं हैं (तस्य) उसका (शान्तिः) शम (न) नहीं (सिद्ध्यति) सिद्ध होता है ॥ १०२ ॥

(भावार्थ)-काम, क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान और मत्सरता कहिये दूसरेके सुखों को न सहना इन छः शत्रुओंको जो अपने वशमें नहीं करसकता, उसको शम कहिये शान्ति सिद्ध नहीं होती ॥ १०२ ॥

शब्दादिविषयेभ्यो यो विषवन्न निवर्त्तते ।

तीव्रमोक्षेच्छया भिक्षुस्तस्य शान्तिर्न विद्यते १०३

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (भिक्षुः) संन्यासी (तीव्रमोक्षेच्छया) मुक्तिकी उत्कट इच्छासे (विषवत्) विष की समान (शब्दादिविषयेभ्यः) शब्द आदि विषयों से (न) नहीं (निवर्त्तते) निवृत्त होता है (तस्य) उसको (शान्तिः) शम (न) नहीं (विद्यते) है ॥ १०३ ॥

(भावार्थ)-मुक्तिके लिये उत्कट अभिलाषा करताहुआ जो संन्यासी विषकी समान विनाश करनेवाले शब्द स्पर्श आदि विषयों से दूर नहीं होजाता है उस को शान्ति नहीं होसकती ॥ १०३ ॥

येन नाराधितो देवो यस्य नो गुर्वनुग्रहः ।
न वश्यं हृदयं यस्य तस्य शान्तिर्न सिद्ध्यति १०४

अन्वय और पदार्थ-(येन) जिसके द्वारा (देवः) देव (न) नहीं (आराधितः) आराधना कियागया (यस्य) जिसके ऊपर (गुर्वनुग्रहः) गुरुकी कृपा (न) नहीं है (यस्य) जिसका (हृदयम्) मन (वश्यम्) वशीभूत (न) नहीं है (तस्य) उसको (शान्तिः) शम (न) नहीं (सिद्ध्यति) सिद्ध होता है ।१०४।

(भावार्थ -जिसने किसी देवता की आराधना नहीं की, जिसके ऊपर गुरु की कृपा नहीं हुई और जिसका मन वशमें नहीं हुआ उस पुरुषको शान्ति की सिद्धि कभी होती ही नहीं ॥ १०४ ॥

॥ मनःप्रसादसाधनम् ॥

मनःप्रसादसिद्ध्यर्थं साधनं श्रूयतां बुधैः ।
मनःप्रसादो यत्सत्त्वे यदभावे न सिद्ध्यति १०५

अन्वय और पदार्थ-(यत्सत्त्वे) जिसके विद्यमान होनेपर (मनःप्रसादः) चित्त की प्रसन्नता [भवति] होती है (यदभावे) जिसके न होने पर (न) नहीं (सिद्ध्यति) सिद्ध होती है (मनःप्रसादसिद्ध्यर्थम्) मनकी प्रसन्नता की सिद्धि के लिये (साधनम्) साधन (बुधैः) पण्डितों करके (श्रूयताम्) सुनाजाय १०५

(भावार्थ)-जिसके होने पर चित्त की प्रसन्नता होती है और जिसके न होने पर चित्तकी प्रसन्नता नहीं होती, चित्तकी प्रसन्नता का वह साधन क्या है, उस को बुद्धिमान् सुनें ॥ १०५ ॥

ब्रह्मचर्यमहिंसा च दया भूतेष्ववक्रता ।
विषयेष्वतिवैतृष्ण्यं शौचं दम्भविवर्जनम् ।१०६।

अन्वय और पदार्थ-(ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य (अहिंसा) प्राणियोंकी हिंसाका त्याग (भूतेषु) प्राणियों के ऊपर (दया) कृपा (अवक्रता) सरलता (विषयेषु) विषयों में (अतिवैतृष्ण्यम्) तृष्णाका अत्यन्त अभाव (शौचम्) बाहरी और भीतरी शुद्धता (दम्भविवर्जनम्) पाखण्डीपनेका त्याग ॥ १०६ ॥

(भावार्थ)—स्त्रीसमागमसे वचना, किसी प्राणीकी हिंसा न करना, सकल जीवों पर दया करना, किसी से कुटिलता न करके सरलताका व्यवहार रखना भोगके सकल पदार्थोंमें अत्यन्त वैराग्य, शरीरकी और अन्तःकरणकी शुद्धि तथा पाखण्डीपनेका त्याग ॥ १०६ ॥

सत्यं निर्ममता स्थैर्यमभिमानविवर्जनम् ।
ईश्वरध्यानपरता ब्रह्मविद्भिः सह स्थितिः ॥ १०७॥

अन्वय और पदार्थ-(सत्यम्) मिथ्या व्यवहार न करना (निर्ममता) किसी पदार्थ में ममत्व न रखना (स्थैर्यम्) स्थिरता (अभिमानविवर्जनम्) अभिमान का त्याग (ईश्वरध्यानपरता) ईश्वर के ध्यानमें निमग्न रहना (ब्रह्मविद्भिः सह) ब्रह्मज्ञानियों के साथ (स्थितिः) स्थित होना ॥ १०७ ॥

(भावार्थ)-मिथ्या व्यवहार का त्याग रखना, स्थिरता, अभिमान का त्याग, ईश्वर के चिन्तवन का अभ्यास, ब्रह्मज्ञानियों के साथ निवास ॥ १०७ ॥

ज्ञानशास्त्रैकपरता समता सुखदुःखयोः ।
मानानासक्तिरेकान्तशीलता च मुमुक्षुता ॥१०८॥

अन्वय और पदार्थ-[ज्ञानशास्त्रैकपरता] अध्यात्मशास्त्रके विचारमें निमग्न रहना, (सुखदुःखयोः) सुख और दुःखमें (समता) अटलभाव (मानानासक्तिः) सन्मान का लोभी न होना (एकान्तशीलता) निर्जनवाससे प्रेम (च) और (मुमुक्षुता) मोक्षप्राप्तिकी इच्छा ॥ १०८ ॥

[भावार्थ)-अध्यात्मशास्त्र का अनुशीलन, सुख वा दुःखमें विचलित न होना, सम्मानमें आसक्ति न करना, एकान्तवास में प्रीति और मोक्षको पानेकी इच्छा १०८

यस्यैतद्विद्यते सर्वं तस्य चित्तं प्रसीदति ।
नत्वेतद्धर्मशून्यस्य प्रकारान्तरकोटिभिः ॥ १०९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यस्य) जिसके (एतत्) यह (सर्वम्) सब (विद्यते) है (तस्य) उसका (चित्तम्) अन्तःकरण (प्रसीदति) प्रसन्न होता है (तु) किन्तु (एतद्धर्मशून्यस्य) इन धर्मोंसे शून्यका (प्रकारान्तरकोटिभिः) अन्य करोड़ों उपायोंसे भी (न) नहीं ॥ १०९ ॥

(भावार्थ)-ये ऊपर कहे ब्रह्मचर्य अहिंसा आदि धर्म जिसमें होते हैं, उसका ही अन्तःकरण प्रसन्न होता है, परन्तु जिसमें ये धर्म नहीं होते हैं वह अन्य करोड़ों उपाय करे तो भी उसका अन्तःकरण प्रसन्न नहीं होता है ॥ १०९ ॥

॥ ब्रह्मचर्यम् ॥

स्मरणं दर्शनं स्त्रीणां गुणकर्मानुकीर्त्तनम् ।
समीचीनत्वधीस्तासु प्रीतिसम्भाषणं मिथः ११०
सहवासश्च संसर्गो ह्यष्टधा मैथुनं विदुः ।
एतद्विलक्षणं ब्रह्मचर्यं चित्तप्रसादकम् ॥ १११ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्त्रीणाम्) स्त्रियोंका (स्मरणम्) चिंतवन (दर्शनम्) देखना (गुणकर्मानुकीर्त्तनम्) उनके गुण और कर्मोंकी प्रशंसा करना (तासु) उनमें (समीचीनत्वधीः) ये श्रेष्ठ हैं ऐसा समझना (प्रीतिः) उनके साथ प्रेम (मिथः) परस्पर (सम्भाषणम्) बातचीत करना (सहवासः) एकसाथ रहना (च) और (संसर्गः) समागम [एवम्] इस रीतिसे (अष्टधा हि) आठ प्रकारके ही (मैथुनम्) मैथुनको (विदुः) जानते हैं (एतद्विलक्षणम्) इसका उलटा व्यवहार करनारूप (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य (चित्तप्रसादनम्) चित्तकी प्रसन्नता कारण [अस्ति] है ॥ ११० ॥ १११ ॥

(भावार्थ)-स्त्रियों का स्मरण करना, उनको देखना, उनके गुण और कार्यों की सराहना करना, उनको सुन्दर समझना, उनके साथ प्रेम करना, उनके साथ अनुरागके साथ बातें करना, साथ बैठना और समागम, इस आठों प्रकारके व्यवहारको पण्डितजन मैथुन जानते हैं, इन सब बातोंका त्यागदेना ही ब्रह्मचर्य है और इस ब्रह्मचर्यसे ही चित्तमें प्रसन्नता आती है ॥ ११० ॥ १११ ॥

अहिंसा

अहिंसावाङ्मनःकायैः प्राणिमात्राप्रपीडनम् ।
स्वात्मवत् सर्वभूतेषु कायेन मनसा गिरा ॥११२॥

अन्वय और पदार्थ-(वाङ्मनःकायैः) वाणी, मन और शरीर के

द्वारा (प्राणीमात्राप्रपीडनम्) प्राणीमात्रको पीड़ा न देना (कायेन) शरीरसे (मनसा) मनसे (गिरा) वाणी से (सर्वभूतेषु) सकल प्राणियों में (स्वात्मवत्) अपने आत्माकी समान [व्यवहरणम्] व्यवहार करना (अहिंसा) अहिंसा (कथ्यते) कहीजाती है ॥ ११२ ॥

(भावार्थ)-शरीर, मन और वाणी के द्वारा किसी भी प्राणीको क्लेश न देना और शरीर, मन, वाणी, से सब प्राणियों के साथ अपने आत्माकी समान व्यवहार करना ही 'अहिंसा' कहलाती है ॥ ११२ ॥

॥ दयाऽवक्रते ॥

अनुकम्पा दया सैव प्रोक्ता वेदान्तवादिभिः ।
करणत्रितयेष्वेकरूपताऽवक्रता मता ॥ ११३ ॥

अन्वय और पदार्थ-[लोके] लोकमें [या] जो अनुकम्पा(दया) (प्रसिद्धा) प्रसिद्ध है (वेदान्तवादिभिः) वेदान्त के व्याख्याताओं ने (सा-एव) वह ही (दया) दया (प्रोक्ता) कही है (करणत्रितयेषु) तीन करणो में (एकरूपता) एकभावकी वृत्ति (अवक्रता) अवक्रता (मता) मानी है ॥ ११३ ॥

(भावार्थ)-लोकमें जो अनुकम्पा नाम से प्रसिद्ध है,वेदान्तशास्त्रको ही दया नामसे कहा है। कर्मेन्द्रियें, ज्ञानेन्द्रियें और अन्तःकरणके द्वारा एक ही प्रकार का व्यवहार अर्थात् मनमें और प्रकारका, चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियों में और प्रकार का तथा वाणी आदि कर्मेन्द्रियोंमें और प्रकार व्यवहार जैसा कि-खलऔर कुटिल स्वभाव वालों को अभ्यास होता है उसको एकसाथ त्याग देना अर्थात् जैसा भाव भीतर हो वाहर भी तैसा ही व्यवहार करना 'अवक्रता' कहलाती है ॥

॥ वैतृष्ण्यम् ॥

ब्रह्मादिस्थावरान्तेषु वैराग्यं विषयेष्वनु ।
यथैव काकविष्टायां वैराग्यं तद्धि निर्मलम् ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथैव) जिसप्रकार (काकविष्टायाम्) काकविष्टा के ऊपर [तथा] तैसे ही (ब्रह्मादिस्थावरान्तेषु) ब्रह्मासे लेकर स्थावर पर्यन्त (विषयेषु-अनु) विषयों में (वैराग्यम्) उदासीनता है (तत्) वही (निर्मलम्) निर्मल (वैराग्य) वैराग्य (हि) प्रसिद्ध है ॥ ११४ ॥

(भावार्थ)-काककी विष्टामें जैसी घृणा होती है, तैसी ही घृणा ब्रह्मासे लेकर

स्थावर पर्यन्त के सकल भोगपदार्थोंमें होय तो उस निर्मल वैराग्यको ही वैतृष्ण्य कहते हैं ॥ ११४ ॥

॥ शौचम् ॥

वाह्यमाभ्यन्तरञ्चेति द्विविधं शौचमुच्यते ।
मृज्जलाभ्यां कृतं शौचं वाह्यं शारीरिकं स्मृतम् ११५

अन्वय और पदार्थ-(वाह्यम्) वाहर का (च) और (आभ्यन्तरम्) भीतरका [इति] इसप्रकार (शौचम्) शौच (द्विविधम्) दो प्रकारका (उच्यते) कहाताहै (मृज्जलाभ्याम्) मृत्तिका और जलसे (कृतम्) कियाहुआ (शौचम्) शौच (शारीरिकम्) शरीर सम्बन्धी (वाह्यम्) वाहरी (स्मृतम्) कहा है ॥११५॥

(भावार्थ)-शौच दो प्रकार का होता है-एक वाहर का और दूसरा भीतर का । मट्टी और जल के द्वारा जो शौच होता है उसको ही स्मृतियों में शरीरका वाहरी शौच कहा है ॥ ११५ ॥

अज्ञानदूरीकरणं मानसं शौचमान्तरम् ।
अन्तःशौचे स्थिते सम्यग्वाह्यमावश्यकं नृणाम् ॥

अन्वय और पदार्थ-(मानसम्) मनका (शौचम्) शौच (आन्तरम्) भीतरका शौच [अस्ति] है (तत् एव) वह ही (अज्ञानदूरीकरणम्) अज्ञान को दूर करने वाला [भवति] होताहै (अन्तःशौचे) मनके शौचके (सम्यक्) भले प्रकार (स्थिते) सिद्ध होने पर (नृणाम्) मनुष्योंको (वाह्यम्) वाहरी शौच (न) नहीं (आवश्यकम्) आवश्यकहै ॥ ११६ ॥

(भावार्थ)-मनकी शुद्धता ही भीतरी शौच है और वह अज्ञानको दूर करनेके सिवाय और कुछ नहीं है । अन्तःशौच अर्थात् मनकी शुद्धि भले प्रकार सिद्ध होजाने पर मनुष्यों को फिर वाहरी शौच की आवश्यकता नहीं रहतीहै ॥ ११६ ॥

॥ दम्भः ॥

ध्यानपूजादिकं लोके द्रष्टर्य्येव करोति यः ।
पारमार्थिकधीहीनः स दम्भाचार उच्यते ।
पुंसस्तथाऽनाचरणमदम्भित्वं विदुर्बुधाः ॥ ११७॥

अन्वय और पदार्थ-(द्रष्टरि) देखनेवालेके [स्थिते] विद्यमान होने पर (एव) ही (लोके) संसारमें (यः) जो पुरुष (ध्यानपूजादिकम्) ध्यान पूजा

आदिको (करोति) करता है (पारमार्थिकधीहीनः) परमार्थके विषयकी श्रद्धासे हीन (सः) वह पुरुष (दम्भाचारः) पाखण्डका काम करने वाला (उच्यते) कहाजाता है (पुंसः) पुरुषके (तथा) तिसप्रकार (अनाचरणम्) न करनेको (बुधाः) पण्डित (अदम्भित्वम्) अदम्भीपना (विदुः) जानते हैं ॥ ११७ ॥

(भावार्थ)-देखनेवालोंके विद्यमान होनेपर केवल दिखानेकी इच्छा से ही इस संसारमे जो पुरुष ध्यान पूजन आदि करता है उस परमार्थकी श्रद्धासे हीन पुरुष को ही दम्भाचार (पाखण्डी) कहते हैं। ऐसे दम्भाचारके त्यागनेको पण्डितजन अदम्भित्व कहते हैं ॥ ११७ ॥

॥ सत्यम् ॥

यत्स्वेन दृष्टं सम्यक् च श्रुतं तस्यैव भाषणम् ।
सत्यमित्युच्यते ब्रह्म सत्यमित्यभिभाषणम् ॥ ११८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्वेन) अपने आप (यत्) जो (दृष्टम्) देखा हो (च) और (सम्यक्) यथार्थ (श्रुतम्) सुना हो (तस्य एव) उसका ही (भाषणम्) कहना (सत्यम्, इति) सत्य इस नाम से (उच्यते) कहाजाता है (ब्रह्म) ब्रह्म (सत्यम्) सत्य है (इति) ऐसा (अभिभाषणम्) हरसमय मुखसे कहना (सत्यम्) सत्य (इति) इस नामसे (उच्यते) कहाजाता है ॥ ११८ ॥

(भावार्थ)—जो अपने आप देखा हो या जो किसी विश्वासपात्र पुरुषसे ठीक २ सुना हो उसको ही कहनेका नाम सत्य है और 'ब्रह्म ही सत्य है' ऐसा सर्वदा कहना भी 'सत्य' कहाता है ॥ ११८ ॥

॥ निर्ममता ॥

देहादिषु स्वकीयत्वदृढबुद्धिविसर्जनम् ।
निर्ममत्वं स्मृतं येन कैवल्यं लभते बुधः ॥ ११९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(देहादिषु) देह आदि पदार्थों में (स्वकीयत्वदृढबुद्धि विसर्जनम्) यह मेरे हैं ऐसी जमी हुई बुद्धिको त्यागदेना (निर्ममत्वम्) निर्ममता (स्मृतम्) कही है (येन) जिससे (बुधः) विवेकी पुरुष (कैवल्यम्) मोक्ष को (लभते) पाता है ॥ ११६ ॥

(भावार्थ)-देह आदि पदार्थों में 'यह मेरे हैं' ऐसी बुद्धिको न होने देना ही शास्त्रोंमें निर्ममता का स्वरूप कहाहै, इस निर्ममता के द्वारा विवेकी पुरुष निर्वाणपद को पासकता है ॥ ११६ ॥

॥ स्थैर्यम् ॥

गुरुवेदान्तवचनैर्निश्चितार्थे दृढस्थितिः।
तदेकवृत्त्या तत्स्थैर्यं नैश्चल्यं न तु वर्ष्मणः १२०

अन्वय और पदार्थ–(गुरुवेदान्तवचनैः) गुरुके और वेदान्तके वचनों के द्वारा (निश्चितार्थे) निश्चय किये हुए पदार्थमें (तदेकवृत्त्या) उसमेंही चित्तको एकाग्र रूपसे लगा कर (या) जो (दृढस्थितिः) अटल स्थिति है (तत्) वह (स्थैर्यम्) स्थिरता है (वर्ष्मणः) शरीरकी (नैश्चल्यम्, तु) निश्चलता तो (न) नहीं ॥१२०॥

(भावार्थ)–गुरुके उपदेश और वेदान्तके वाक्योंसे जो वस्तुका निर्णय हो उस वस्तुमें ही चित्तको एकाग्रताके साथ सदा लगाये रहना अर्थात् निरन्तर उसका अटूट ध्यान करना ही स्थिरता है, केवल शरीरको निश्चल करलेने का नाम स्थिरता नहीं है ॥ १२० ॥

॥ अभिमानविसर्जनम् ॥

विद्यैश्वर्यतपोरूपकुलवर्णाश्रमादिभिः।
सञ्जाताहंकृतेस्त्यागस्त्वभिमानविसर्जनम् १२१

अन्वय और पदार्थ–(विद्यैश्वर्यतपोरूपकुलवर्णाश्रमादिभिः) विद्या, ऐश्वर्य, तपस्या, शरीरकी सुन्दरता वंश और आश्रम आदिके द्वारा (सञ्जाताहंकृतेः) उत्पन्न हुए अहङ्कारका (त्यागः) त्याग (अभिमानविसर्जनम्) अभिमानका त्याग [कथ्यते] कहाता है ॥ १२१ ॥

(भावार्थ)–विद्या, ऐश्वर्य, सुन्दरता, तपस्या, वर्ण और आश्रम आदिके द्वारा जो अहङ्कार उत्पन्न होजाता है उसको एकसाथ त्यागदेनेका ही नाम 'अभिमानविसर्जन' है। तात्पर्य यह है, कि--जो पुरुष विद्या, ऐश्वर्य, सुन्दरता आदिको-उन्नतिका साधन मानकर पारलौकिक उन्नतिकी ओरको चलते हैं उनका विद्यावान्, धनी और श्रेष्ठ कुलमें जन्म होना सफल होता है और जो विद्या, धन, जाति आदिके अभिमान में भरकर अपने कर्तव्यको भूल बैठते हैं उनकी बराबर अधोगति होती चलीजाती है और उनकी विद्या तप सत्कुल में जन्म होना आदि निरर्थक हो जाता है ॥ १२१ ॥

॥ ईश्वरध्यानम् ॥

त्रिभिश्च करणैः सम्यग्घित्वा वैषयिकीं क्रियाम्।
स्वात्मैकचिन्तनं यत्तदीश्वरध्यानमीरितम्॥ १२२॥

अन्वय और पदार्थ–(त्रिभिः) तीन (करणैः) इन्द्रियोंके द्वारा (वैषयिकीयम्) विषयोंमेंकी (क्रियाम्) क्रियाको (सम्यक्) भले प्रकार (हित्वा) त्यागकर (यत्) जो (स्वात्मैकचिन्तनम्) अपने आत्मा मात्र का चिंतवन है (तत्) वह (ईश्वर-ध्यानम्) ईश्वका ध्यान (ईरितम्) कहा है ॥ १२२॥

(भावार्थ)–ज्ञानेन्द्रियें, कर्मेंद्रियें और अन्तःकरणरूप तीन इन्द्रियों के द्वारा जितने भी प्रकारका विषयों का व्यापार होता है, उस सबको ही त्यागकर अपने आत्मा का अनन्यभाव से चिन्तवन करनेका नाम ईश्वरध्यान कहलाता है १२२

॥ ब्रह्मवित्सहवासः ॥

छायेव सर्वदा वासो ब्रह्मविद्भिः सह स्थितिः १२३

अन्वय और पदार्थ–(छाया इव) छाया की समान (सर्वदा) सब समय (ब्रह्मविद्भिः सह) ब्रह्मज्ञानियों के साथ (स्थितिः) स्थित होना (वासः) ब्रह्म-वित्सहवास] [कथ्यते] कहाजाता है ॥ १२३ ॥

(भावार्थ) ब्रह्मज्ञानी पुरुषोंके साथ सदा छाया की समान रहना 'ब्रह्मवि-त्सहवास' कहलाता है ॥ १२३ ॥

॥ ज्ञाननिष्ठा)

यद्यदुक्तं ज्ञानशास्त्रे श्रवणादिक्रमेषु यः ।
निरतः कर्मधीहीनो ज्ञाननिष्ठः स उच्यते ॥ १२४ ॥

अन्वय और पदार्थ–(ज्ञानशास्त्रे) ज्ञानशास्त्रमें (यत् यत्) जो जो (उक्तम्) कहा है (श्रवणादिक्रमेषु) तिस २ श्रवण मनन आदि क्रममें (कर्मधीहीनः) कर्मबुद्धि से हीन हुआ (यः) जो पुरुष (निरतः) तत्पर [भवति] होताहै (हि) निश्चय (सः एव) वह ही (ज्ञाननिष्ठः) ज्ञाननिष्ठ (उच्यते) कहाता हैं॥ १२४॥

(भावार्थ) श्रवण, मनन, निदिध्यासन के विषयमें वेदान्तशास्त्र में जो कुछ कहा है, उसके अनुसार इस श्रवण मनन आदिमें जो पुरुष कर्मबुद्धि को त्यागकर लगजाता है, उसको ही ज्ञाननिष्ठ कहते हैं॥ १२४॥

॥ समत्वम् ॥

धनकान्ताज्वरादीनां प्राप्तिकाले सुखादिभिः ।
विकारहीनतैव स्यात्सुखदुःखसमानता ॥ १२५ ॥

अन्वय और पदार्थ–(धनकान्ताज्वरादीनाम्) धन, स्त्री और ज्वर आदि

रोगोंके (प्राप्तिकाले) प्राप्त होनेके समय (सुखादिभिः) सुख आदिके द्वारा (विकारहीनता) निर्विकार होना (एव) ही (सुखदुःखसमानता) सुखदुःखसमत्व (स्यात्) होगा १२५

(भावार्थ)-धन स्त्री और ज्वर आदि रोगोंके प्राप्त होने के समय अन्तःकरण में किसीप्रकार का हर्ष-शोकरूप विकार न होनेदेना ' सुखदुःखसमत्व ' कहलाताहै

॥ मानानासक्ति ॥

श्रेष्ठं पूज्यं विदित्वा मां मानयन्तु जना भुवि ।
इत्यासक्त्या विहीनत्वं मानानासक्तिरुच्यते १२६

अन्वय और पदार्थ-(माम्) मुझको (श्रेष्ठम्) श्रेष्ठ (पूज्यम्) पूजनीय (विदित्वा) जानकर (भुवि) भूतल पर (जनाः) मनुष्य (मानयन्तु) मानें (इति) इसप्रकार (आसक्त्या) आसक्तिसे (विहीनत्वम्) रहित होना (मानानासक्तिः) मानमें आसक्ति न होना (उच्यते) कहाता है ॥ १२६ ॥

(भावार्थ)—मुझे भूमण्डल भरमें श्रेष्ठ और पूजनीय मानकर लोग मेरा सन्मान करें, इसप्रकारकी आसक्ति (चाहना) का त्याग देना ही 'मानानासक्ति' कहाता है ॥ १२६ ॥

॥ एकान्तशीलता ॥

सच्चिन्तनस्य सम्बाधो विघ्नोऽयं निर्जने ततः ।
स्थेयमित्येक एवास्ति चेत्सैवैकान्तशीलता ॥ १२७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अयम्) यह (संबाधः) मनुष्योंसे भरा स्थान(सच्चिन्तनस्य) ब्रह्मविचारका (विघ्नः) विघ्न है (ततः) तिसकारणसे (निर्जने) जन शून्य स्थानमें (स्थेयम्) स्थित होना चाहिये (इति) इसप्रकार (चेत्) यदि(एक एव) अकेला ही (अस्ति) होय (सा-एव) वह ही (एकान्तशीलता) एकान्तशीलता [उच्यते] कहीजाती है ॥ १२७ ॥

(भावार्थ)-मनुष्योंसे भराहुआ स्थान ब्रह्मका चिन्तवन करनेके लिये विघ्न कारी है, इसलिये निर्जन स्थान में रहना चाहिये, ऐसा सङ्कल्प करके यदि कोई अकेला ही रहै तो ऐसे निवासको ही एकान्तशीलता कहते हैं ॥ १२७ ॥

॥ मुमुक्षुता ॥

संसारबन्धनिर्मुक्तिः कदा झटिति मे भवेत् ।
इति या सुदृढा बुद्धिरीरिता सा मुमुक्षुता ॥ १२८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(कदा) किस समय (झटिति) शीघ्र ही (मे) मेरा (संसारबन्धनिर्मुक्तिः) संसारबन्धनसे छूटना (भवेत्) होगा (इति) इस प्रकारकी (या) जो (सुदृढ़ा) अत्यन्त दृढ़ (बुद्धिः) बुद्धि है (सा) वह (मुमुक्षुता) मुमुक्षुपना (ईरिता) कहा है ॥ १२८ ॥

(भावार्थ)-शीघ्र ही किस समय इस संसारबन्धनसे मेरी मुक्ति होगी ? ऐसी जो दृढ़ भावना है, उसको ही शास्त्रमें मुमुक्षुता कहा है ॥ १२८ ॥

॥ दमः ॥

ब्रह्मचर्यादिभिर्धर्मैर्बुद्धेर्दोषनिवृत्तये।
दण्डनं दम इत्याहुर्मनसः शान्तिसाधनम् ॥१२९॥

अन्वय और पदार्थ-(बुद्धेः) बुद्धिके (दोषनिवृत्तये) दोषोंको दूर करनेके लिये (ब्रह्मचर्यादिभिः) ब्रह्मचर्य आदि (धर्मैः) धर्मोंके द्वारा (मनसः) मनके (शान्तिसाधनम्) शान्तिका उपायरूप (दण्डनम्) दण्डदेनेको (दमः) दम (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं ॥ १२९ ॥

(भावार्थ)-काम क्रोध आदि बुद्धिके दोषोंका नाश करनेके लिये ब्रह्मचर्य आदि धर्मोंके द्वारा मनको शान्ति प्राप्त होनेके उपायरूप दण्डनको अर्थात् मनको रोककर वशमें करनेको पण्डितोंने 'दम, नामसे कहा है ॥ १२९ ॥

तत्तद्वृत्तिनिरोधेन बाह्येन्द्रियविनिग्रहः।
योगिनो दम इत्याहुर्मनसः शान्तिसाधनम् १३०

अन्वय और पदार्थ-(तत्तद्वृत्तिनिरोधेन) तिस २ वृत्तिके निरोधके द्वारा (बाह्येंद्रियविनिग्रहः) बाहरी इंद्रियों को विशेषरूपसे वशमें करना [तम्-एव] उसको ही (योगिनः) योगी (मनसः) मनकी (शान्तिसाधनम्) शांतिका साधन (दमः) दम (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं ॥ १३० ॥

(भावार्थ)-बाहरी इन्द्रियों की जो विषयोंकी ओरको वृत्ति होती है, उन वृत्तियोंको रोककर उन इंद्रियों का जो भले प्रकार निग्रह अर्थात् बाहरी इंद्रियोंके विषयोंकी ओरको जाने पर उनको रोकना ही 'दम' कहलाता है और इसको ही योगीजन चित्तको शांति प्राप्त होनेका उपायरूप मानते हैं ॥ १३० ॥

इन्द्रियेष्विंद्रियार्थेषु प्रवृत्तेषु यदृच्छया।
अनुधावति तान्येव मनो वायुमिवानिलः ॥१३१॥

अन्वय और पदार्थ-(इन्द्रियार्थेषु) इंद्रियोंके भोग्य विषयोंमें (इन्द्रियेषु) इन्द्रियोंके (प्रवृत्तेषु) प्रवृत्त होने पर (यदृच्छया) यथेच्छरूपसे (अनलः) अग्नि (वायुम्, इव) वायुके पीछे जैसे (मनः) मन (तानि-अनु एव) उन इंद्रियोंके पीछे २ ही (धावति) दौड़ता है ॥ १३१ ॥

(भावार्थ)-जब इन्द्रियें अपने भोग्य शब्द स्पर्श आदि विषयों में प्रवृत्त हो जाती हैं उस समय, जैसे अग्नि वायुके पीछे २ जाता है तैसे ही अन्तःकरण भी अपने स्वभावके वशमें हुआ, उन इन्द्रियोंके ही पीछे २ जाया करता है ॥ १३१ ॥

इन्द्रियेषु निरुद्धेषु त्यक्त्वा वेगं मनः स्वयम् ।
सत्यभावमुपादत्ते प्रसादस्तेन जायते ॥
प्रसन्ने सति चित्तेऽस्य मुक्तिः सिद्ध्यति नान्यथा १३२

अन्वय और पदार्थ-(इन्द्रियेषु) इन्द्रियोंके (निरुद्धेषु) रुकने पर (मनः) अन्तःकरण (स्वयम्) अपने आप (वेगम्) वेगको (त्यक्त्वा) छोड़कर (सत्यभावम्) सत्यस्वरूप ब्रह्मभावको (उपादत्ते) ग्रहण करता है (तेन) उसके द्वारा (प्रसादः) चित्तकी प्रसन्नता (जायते) होती है (चित्ते) मनके (प्रसन्ने सति) प्रसन्न होने पर (अस्य) इसकी (मुक्तिः) मुक्ति (सिद्ध्यति) सिद्ध होती है (अन्यथा) और प्रकार (न) नहीं ॥ १३२ ॥

(भावार्थ)-इन्द्रियोंके रुकजाने पर अंतःकरण बाहरके विषयोंमें जानेके वेग को अपने आप ही छोडदेता है और सत्यस्वरूप आत्माके विचारमें मग्न रहता है, ऐसा होने पर ही चित्तमें सच्ची प्रसन्नता आती है, इसप्रकार यदि चित्त प्रसन्न होजाय तो ही मुक्ति होती है, नहीं तो नहीं होती ॥ १३२ ॥

मनःप्रसादस्य निदानमेव
निरोधनं यत्सकलेन्द्रियाणाम् ।
बाह्येन्द्रिये साधु निरुध्यमाने
बाह्यार्थभोगो मनसो निवर्त्तते ॥ १३३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (सकलेन्द्रियाणाम्) सब इंद्रियोंका (निरोधनम्) रोकना है [तत्) वह (एव) ही (मनःप्रसादस्य) मनके प्रसन्न होनेका (निदानम्) मूल कारण है (बाह्येन्द्रिये) बाहरी इन्द्रियोंके (साधु) भलेप्रकार

(निरुध्यमाने) रुकने पर (मनसः) मनका (बाह्यार्थभोगः) बाहरी पदार्थका भोग (निवर्त्तते) निवृत्त होजाता है ॥ १३३ ॥

(भावार्थ)–सकल इन्द्रियोंको जो विषयोंमें जानेसे रोकना है वहीअंतःकरणकी प्रसन्नता का कारण है, बाहरी इंद्रियोंको भले प्रकार रोकसकने पर अंतःकरणका बाहरी पदार्थोंकी ओरको जाना वा विषयभोग अपने आप निवृत्त होजाता है १३३

तेन स्वदौष्ट्यं परिमुच्य चित्तम्,
शनैः शनैः शान्तिमुपाददाति ।
चित्तस्य बाह्यार्थविमोक्षमेव,
मोक्षं विदुर्मोक्षणलक्षणज्ञाः ॥ १३४ ॥

अन्वय और पदार्थ–(तेन) तिस इन्द्रियनिरोधके द्वारा (चित्तम्) अंतःकरण (स्वदौष्ट्यम्) अपने दुष्ट स्वभाव को (परिमुच्य) त्यागकर (शनैः शनैः) धीरे धीरे (शान्तिम्) शान्ति को (उपाददाति) प्राप्त करता है (मोक्षणलक्षणज्ञाः) मोक्ष के लक्षणको जानने वाले (चित्तस्य) अन्तःकरण के (बाह्यार्थ विमोक्षम्) बाहरी पदार्थों से छुटने को (एव) ही (मोक्षम्) मोक्ष (विदुः) जानते हैं॥१३४॥

(भावार्थ)–उस इन्द्रियनिरोध के होने पर अन्तःकरण अपने दुष्ट स्वभाव को त्यागकर क्रम से धीरे धीरे शान्ति को प्राप्त होजाता है, जो महात्मा मोक्ष के लक्षण को जानते हैं उन्होंने अनुभव करके जानलिया है, कि-चित्तका बाहरी पदार्थों से निवृत्त होजाना मोक्ष का द्वार है ॥ १३४ ॥

दमं विना साधु मनःप्रसाद–
हेतुं न विद्मः सुकरं मुमुक्षोः ।
दमेन चित्तं निजदोषजातं
विसृज्य शान्तिं समुपैति शीघ्रम् ॥ १३५ ॥

अन्वय और पदार्थ–(दमं विना) इन्द्रियनिरोधके विना (मुमुक्षोः) मोक्ष चाहनेवालेको (सुकरम्) अनायास में होसकनेवाले (मनःप्रसादहेतुम्) चित्त की प्रसन्नता के कारण को (साधु) भले प्रकार (न) नहीं (विद्मः) जानते हैं (दमेन) दमसे (चित्तम्) चित्त (निजदोषजातम्) अपने सकलदोषों को (विसृज्य) त्यागकर (शीघ्रम्) शीघ्र (शान्तिम्) शान्ति को (समुपैति) प्राप्तहोता है १३५

(भावार्थ)—इन्द्रियनिरोधरूप दम के सिवाय मोक्षाभिलाषी पुरुष के मन की प्रसन्नता का कोई और सहज कारण भले प्रकार बनसके, यह बात हमारी समझ में तो आती नहीं, चित्त दमके द्वारा ही सकल दोषों को त्यागकर शीघ्र ही शान्ति को प्राप्त होता है ॥ १३५ ॥

प्राणायामाद्भवति मनसो निश्चलत्वं प्रसादो,
यस्याप्यस्य प्रतिनियतदिग्देशकालाद्यवेक्ष्य ।
सम्यग्दृष्ट्या क्वचिदपि तया नोऽदमो हन्यते तत्,
कुर्याद्धीमान् दममनलसश्चित्तशान्त्यै प्रयत्नात् १३६

अन्वय और पदार्थ-(प्रतिनियतदिग्देशकालादि) शास्त्र में कहे हुए नियत दिशा, देश, काल आदि को (अवेक्ष्य) देखकर (प्राणायामात्) प्राणायाम से (यस्य) जिसके (मनसः) मन की (निश्चलत्वम्) निश्चलता [भवति] होती है (अस्य) इसकी (क्वचित्-अपि) कहीं भी (तया) तिस (सम्यग्दृष्ट्या) यह परमसुन्दर है, ऐसी बुद्धि करके (प्रसादः) चित्तकी प्रसन्नता (न) नहीं [भवेत्] होगी (तत्) तिस कारण से (अदमः) जिसने दमका साधन नहीं किया है ऐसा पुरुष (हन्यते) माराजाता है [अतः] इस कारण (धीमान्) बुद्धिमान् पुरुष (अनलसः) आलस्यरहित होकर (प्रयत्नात्) उद्योग से (चित्तशान्त्यै) चित्त की शान्ति के लिये (दमम्) दमको (कुर्यात्) करै १३६

(भावार्थ)-शास्त्र की आज्ञा के अनुसार, नियत दिशा, नियत देश और नियत काल आदि को देखकर प्राणायाम करने पर जिस पुरुष का चित्त समय पाकर निश्चल होजाता है, यदि प्रारब्ध कर्मका उदय होने पर किसी भोग्य पदार्थ में 'यह तो बड़ा सुन्दर है' ऐसी बुद्धिका उदय होजाय तो दम सिद्ध न होने के कारण उसके चित्त में प्रसन्नता उत्पन्न नहीं होती है। इस कारण यह बात निश्चित है, कि—जिसको इन्द्रियनिरोधरूप दम की सिद्धि नहीं हुई है उसको प्राणायाम आदि हठयोग की सिद्धि होने पर भी वह समाधि से डिगजाता है और उसका नाश तक होजाता है, इसलिये केवल बाहरी हठयोग का भरोसा न रखकर बुद्धिमान् पुरुष प्रयत्न करके आलस्य को छोड़कर मनकी शान्ति के लिये दम का अभ्यास करते हैं ॥ १३६ ॥

सर्वेन्द्रियाणां गतिनिग्रहेण,
भोग्येषु दोषाद्यवमर्शनेन ।

ईशप्रसादाच्च गुरोः प्रसादा-
च्छान्तिं समायात्यचिरेण चित्तम् ॥१३७॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वेन्द्रियाणाम्) सब इन्द्रियों की (गतिनिग्रहेण) गति को रोकने से (भोग्येषु) भोग के पदार्थों में (दोषाद्यवमर्शनेन) दोष आदि के विचार के द्वारा (ईशप्रसादात्) परमेश्वर के अनुग्रह से (गुरोः) गुरु की (प्रसादात्) कृपा से (अचिरेण) शीघ्र ही (चित्तम्) अन्तःकरण (शान्तिम्) शान्ति को (समायाति) प्राप्त होता है ॥ १३७ ॥

(भावार्थ)-सब इन्द्रियों को अपनी इच्छानुसार विषयों में जाने से रोकलेने पर, भोगने के सब ही पदार्थों में दोषदृष्टि रखकर, परमेश्वरकी कृपा और श्रीगुरु के अनुग्रह से थोड़े ही समय में चित्त शांति को प्राप्त होता है १३७ ॥

॥ तितिक्षा ॥

आध्यात्मिकादि यद् दुःखं प्राप्तं प्रारब्धवेगतः॥
अचिन्तया तत्सहनं तितिक्षेति प्रचक्षते ॥१३८॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रारब्धवेगतः) प्रारब्धकर्मके वेगसे (यत्) जो (आध्यात्मिकादि) आध्यात्मिक आद (दुःखम्) दुःख (प्राप्तम्) प्राप्त होय (अचिन्तया) उसकी कुछ चिन्ता न करके (तत्सहनम्) उसको सहलेना (तितिक्षा) तितिक्षा है (इति) ऐसा (प्रचक्षते) कहते हैं॥ १३८ ॥

(भावार्थ)-प्रारब्ध कर्म के वेगवश आध्यात्मिक आधिदैविक और आधि-भौतिक जो कोई भी दुःख आपड़े उसको किसी प्रकार की चिन्ता न करके सहलेना ही 'तितिक्षा' है, ऐसा विचारशील कहते हैं ॥ १६८ ॥

रक्षा तितिक्षासदृशी मुमुक्षो-
र्न विद्यतेऽसौ पविना न भिद्यते ।
यामेव धीराः कवचीयविघ्नान्
सर्वांस्तृणीकृत्य जयन्ति मायाम् ॥१३९॥

अन्वय और पदार्थ-(मुमुक्षोः) मोक्ष चाहने वाले पुरुष की (तितिक्षासदृशी) तितिक्षा की समान (रक्षा) रक्षा (न) नहीं (विद्यते) है (असौ) यह रक्षा (पविना) वज्रसे (न) नहीं (भिद्यते) टूटती है (याम्) जिसको (एत्य) प्राप्त होकर

(धीराः) धीर पुरुष (सर्वान्) सब (कवचीयविघ्नान्) देह आदिकी रक्षाके विषय में होसकने वाले विघ्नों को (तृणीकृत्य) तृणकी समान मानकर (मायाम्) संसार की माया को (जयन्ति) जीतते हैं ॥ १३९ ॥

(भावार्थ)—मोक्ष चाहने वाले मनुष्य की रक्षा करने वाला तितिक्षा की समान और कोई नहीं है, इस तितिक्षा के द्वारा धैर्यवान् पुरुष, देह की रक्षा करते समय होने वाले सकल विघ्नों की उपेक्षा करके मायाको जीतने में समर्थ होते हैं।

क्षमावतामेव हि योगसिद्धिः
स्वाराज्यलक्ष्मीसुखभोगसिद्धिः ।
क्षमाविहीना निपतन्ति विघ्नै-
र्वातैर्हताः पर्णचया इव द्रुमात् ॥ १४० ॥

अन्वय और पदार्थ—(हि) निश्चय (क्षमावताम्-एव) क्षमावानोंको ही (योगसिद्धिः) समाधिकी सिद्धि [च] और (स्वाराज्यलक्ष्मीसुखभोगसिद्धिः) स्वर्गलोककी लक्ष्मीके द्वारा जो कुछ सुखभोग होसकता है उसकी सिद्धि [भवति] होती है (क्षमाविहीनाः) क्षमाहीन पुरुष (वातैः) पवनों करके (हताः) तोडेहुए (पर्णचयाः) पत्तोंके समूह (द्रुमात्-इव) वृक्षपरसे जैसे (विघ्नैः) विघ्नोंके द्वारा (निपतन्ति) गिरजाते हैं ॥ १४० ॥

(भावार्थ)—जिनके स्वभावमें क्षमा होती है उनको ही योगसिद्धि प्राप्त होती है और वे ही स्वर्गसाम्राज्यकी लक्ष्मीको पाजानेके कारण सब प्रकारके सुखोंको भोग सकते हैं और जिनके स्वभावमें क्षमा नहीं होती वे, जैसे वायुके हिलोड़े हुए पत्ते वृक्षपरसे गिरजाते हैं,तैसे ही विघ्नोंकी चोट खाकर योगमार्गसे भ्रष्ट होजाते हैं॥

तितिक्षया तपो दानं यज्ञस्तीर्थं व्रतं श्रुतम् ।
भूतिः स्वर्गोऽपवर्गश्च प्राप्यते तत्तदर्थिभिः १४१

अन्वय और पदार्थ—(तत्तदर्थिभिः) तिन २ पदार्थों के चाहनेवालों करके (तितिक्षया) क्षमाके द्वारा (तपः) तपस्या (दानम्) दान (यज्ञः) यज्ञ (तीर्थम्) तीर्थ (व्रतम्) व्रत (श्रुतम्) विद्या (भूतिः) ऐश्वर्य (स्वर्गः) स्वर्ग (च) और (अपवर्गः) मोक्ष (प्राप्यते) प्राप्त कियाजाता है ॥ १४१ ॥

(भावार्थ)—अनेकों फलोंको चाहनेवाले साधक पुरुष क्षमाके ही द्वारा तपस्या, दान, यज्ञ, तीर्थ, व्रत, विद्या, ऐश्वर्य और मोक्ष तक को पासकते हैं ॥ १४१ ॥

ब्रह्मचर्यमहिंसा च साधूनामपि चार्हणम् ।
पराक्षेपादिसहनं तितिक्षोरेव सिद्ध्यति ॥ १४२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य (च) और (अहिंसा) हिंसाका त्याग (अपि) और (साधूनाम्) साधुओंका (अर्हणम्) पूजन (च) और (पराक्षेपादिसहनम्) दूसरों के किये आक्षेप आदिको सहना (तितिक्षोः, एव) क्षमावान् को ही (सिद्ध्यति) सिद्ध होता है ॥ १४२ ॥

(भावार्थ)-ब्रह्मचय, अहिंसा, साधुओंकी सेवा, और दूसरोंके कियेहुए तिरस्कार आदिको सहना, यह सब क्षमावान् पुरुषसे ही बनसकता है ॥ १४२ ॥

साधनेष्वपि सर्वेषु तितिक्षोत्तमसाधनम् ।
यत्र विघ्नाः पलायन्ते दैविका अपि भौतिकाः १४३

अन्वय और पदार्थ-(सर्वेषु,-अपि) सब ही (साधनेषु) साधनोंमें (तितिक्षा) सहनशीलता (उत्तमसाधनम्) श्रेष्ठ साधन है (यत्र) जिस तितिक्षाके सिद्ध होजानेपर (दैविकाः) देवताओंसे प्राप्त हुए (अपि) और (भौतिकाः) पञ्चभूतों से उत्पन्न हुए (अपि) भी (विघ्नाः) विघ्न (पलायन्ते) भागते हैं ॥ १४३ ॥

(भावार्थ)-जितने प्रकारके मोक्षके साधन हैं, उन सबोंमे सहनशीलता सब से उत्तम साधनहै, इस सहनशीलताके विषयकी सिद्धि प्राप्त होजाने पर दैविक और भौतिक सब प्रकारके विघ्न साधकको छोड़कर भागजाते हैं ॥ १४३ ॥

तितिक्षोरेव विघ्नेभ्यस्त्वनिवर्तितचेतसः ।
सिद्ध्यन्ति सिद्धयः सर्वा अणिमाद्या समृद्धयः १४४

अन्वय और पदार्थ-(विघ्नेभ्यः) विघ्नोंके कारणसे (अनिवर्त्तितचेतसः) जिसका चित्त नहीं लौटा है ऐसे (तितिक्षोः, एव) तितिक्षु पुरुषको ही (सर्वाः) सब (अणिमाद्याः) अणिमा आदि (समृद्धयः) समृद्धिरूप (सिद्धयः) सिद्धियें (सिद्ध्यन्ति) सिद्ध होती हैं ॥ १४४ ॥

(भावार्थ)-अनेकों विघ्नोंके उठने पर भी जिसका चित्त मोक्षमार्गसे नहीं हटता है ऐसी तितिक्षावाले पुरुषको ही अणिमा आदि ऐश्वर्यके नामसे प्रसिद्ध सिद्धियें प्राप्त होती हैं ॥ १४४ ॥

तस्मान्मुमुक्षोरधिका तितिक्षा
सम्पादनीयेप्सितकार्यसिद्ध्यै ।

तीव्रा मुमुक्षा च महत्युपेक्षा
चोभे तितिक्षासहकारिकारणम् ॥ १४५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिस कारण से (ईप्सितकार्यसिद्धये) इच्छित कार्यकी सिद्धि के लिये (मुमुक्षोः) मोक्षकी अभिलाषावाले पुरुषको(अधिका) अधिक (तितिक्षा) सहनशीलता (सम्पादनीया) सम्पादन करनी चाहिये (तीव्रा) उत्कट (मुमुक्षा) मोक्षकी इच्छा (च) और (महती) बड़ी (उपेक्षा) वैराग्य (उभे) दोनों (तितिक्षासहकारिकारणम्) तितिक्षा के सहकारी कारण हैं १४५

(भावार्थ) –इसकारण इच्छित कार्य की सिद्धि के लिये मुमुक्षु पुरुषको ऐसा करना चाहिये, कि-जिसमें सहनशीलता अधिक होजाय। मोक्षकी तीव्र इच्छा और उत्कट वैराग्य ये दोनों तितिक्षा के साथ कारणरूपसे रहते हैं॥ १४५ ॥

तत्तत्कालसमागतामयततेः शान्त्यै प्रवृत्तो यदि,
स्यात्तत्परिहारकौषधरतस्तच्चिन्तने तत्परः ।
तद्भिक्षुः श्रवणादिधर्मरहितो भूत्वा मृतश्चेत्ततः,
किं सिद्धं फलमाप्नुयादुभयथा भ्रष्टो भवेत्स्वार्थतः॥

अन्वय और पदार्थ-(भिक्षुः) संन्यासी (यदि) जो(तत्तत्कालसमागतामयततेः) तिस २ समय पर प्राप्त हुए रोगसमूहकी (शान्त्यै) शान्तिके लिये (प्रवृत्तः) प्रवृत्त (स्यात्) होय (तत्परिहारकौषधरतः) तिस २ रोगको दूर करनेवाली औषधमें तत्पर होकर (तच्चिन्तने) उसकी ही चिंतामें (तत्परः) मग्न (श्रवणादिधर्मरहितः) श्रवण मनन आदि धर्मोंसे रहित (भूत्वा) होकर (चेत्) यदि (मृतः) मरगया (ततः तो [सः] वह (किम्) क्या (सिद्धम्) प्रसिद्ध (फलम्) फलको (आप्नुयात्) पावेगा (उभयथा) दोनों प्रकार (स्वार्थतः) अपने प्रयोजनसे (भ्रष्टः) भ्रष्ट (भवेत्) होगा ॥ १४६ ॥

(भावार्थ)–संन्यासी यदि नियमित अवसरों पर प्राप्त हुए रोगों को न सह कर, ये रोग किस प्रकार शान्त हों, इस विचार में पड़जाय और उन रोगोंको दूर करनेवाली औषधियों को इकट्ठी करने में प्रवृत्त होकर उन औषधोंकी चिन्तामें ही मग्न रहे और प्रारब्धवश उसका वह रोग दूर न हो,किन्तु वह संन्यासी अपनेअवश्यकर्त्तव्य श्रवण मनन आदि धर्मोको भी त्यागकर यदि मरणको प्राप्त होजाय तो वह उन औषध आदिका जो प्रसिद्ध फल आरोग्य है उसको क्या पावेगा ? कदापि नहीं

पासकता अर्थात् उसका रोग भी नहीं जाता और कर्त्तव्य भी नष्ट होजाता है, इसप्रकार सहनशीलता (तितिक्षा) के अभावसे वह दोनों ही प्रकार से भ्रष्ट होजाता है॥१४६॥

योगमभ्यस्यतो भिक्षोर्योगाच्चलितमानसः ।
प्राप्य पुण्यकृतान् लोकानित्यादि प्राह केशवः ॥

अन्वय और पदार्थ–(योगम्) योगको (अभ्यस्यतः) अभ्यास करने वाले (भिक्षोः) संन्यासीको (केशवः) भगवान् कृष्ण (योगाच्चलितामानसः) जिसका चित्त योगसे चलायमान हुआ है ऐसा मनुष्य (पुण्यकृतान्) पुण्यसे अर्जन कियेहुए (लोकान्) लोकों को (प्राप्य) प्राप्त होकर (इत्यादि) इत्यादि (प्राह) कहते हुए ॥ १४७ ॥

(भावार्थ)–योगसाधना करते २ संन्यासी के प्रारब्धवश उद्योगमें शिथिलता होजाने पर उसकी कैसी गति होती है, अर्जुनके इस प्रश्न के उत्तरमें भगवान् कृष्ण ने गीतामें, जिसका चित्त योगसे चलायमान होजाता है, वह पुण्यसे उपार्जन कियेहुए लोकोंको प्राप्त होकर इत्यादि वाक्य से उत्तर दिया है ॥ १४७ ॥

न तु कृत्वैव संन्यासं तूष्णीमेव मृतस्य च ।
पुण्यलोकगतिं ब्रूते भगवान्न्यासमात्रतः ॥१४८॥

अन्वय और पदार्थ–(संन्यासम्) संन्यासको (कृत्वा-एव) करके ही (तूष्णीम्-एव) किसीप्रकार के योगानुष्ठान के विना ही (मृतस्य) मरणको प्राप्त हुएका (न्यासमात्रतः) संन्यासमात्र से (पुण्यलोकगतिम्) पुण्यलोकमें गमन को (भगवान्) कृष्ण (न) नहीं (ब्रूते) कहते हैं ॥ १४८ ॥

भावार्थ–केवल संन्यास आश्रमको स्वीकार करके, किसी प्रकारकी योगसाधनाके विना यदि कोई संन्यासी शरीरको त्यागदेय, तो केवल संन्यास आश्रम को धारण करलेनेमात्रसे उसको पुण्यलोकों की प्राप्ति होजायगी, ऐसा उपदेश श्रीकृष्ण भगवान्ने गीता में नहीं दिया है ॥ १४८ ॥

न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ।
इत्यनुष्ठेयसंत्यागात्सिद्ध्यभावमुवाच ह ॥ १४९ ॥

अन्वय और पदार्थ–(संन्यासात्-एव) संन्यासमात्र से (सिद्धिम्) सिद्धि को (न) नहीं (समधिगच्छति) प्राप्त होता है (इति) इसकारण (अनुष्ठेय-संत्यागात्) कर्त्तव्यकर्मको त्यागनेसे (सिद्ध्यभावम्) सिद्धिके अभावको (उवाच ह) कहगए हैं ॥ १४९ ॥

(भावार्थ)—' केवल संन्यास धारण करनेसे ही सिद्धि को प्राप्त नहीं होता ' ऐसे उपदेशसे भगवानने, केवल कर्त्तव्य कर्म को त्याग देनेपर सिद्धि प्राप्त नहीं होती, यह बात स्पष्ट कहदी है ॥ १४९ ॥

तस्मात्तितिक्षया सोढ्वा तत्तद्दुःखमुपागतम् ।
कुर्याच्छक्त्यनुरूपेण श्रवणादि शनैः शनैः॥१५०॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिस कारणसे (उपागतम्) प्राप्त हुए (तत्तत्) तिस २ (दुःखम्) दुःखको (तितिक्षया) तितिक्षा के द्वारा (सोढ्वा) सहकर (शक्त्यनुरूपेण) अपनी शक्तिके अनुसार (शनैः शनैः) धीरे धीरे (श्रवणादि) श्रवण मनन आदिको (कुर्यात्) करे ॥ १५० ॥

(भावार्थ)-इसकारण प्रारब्धवश प्राप्त हुए आध्यात्मिक, आधिदैविक वा आधिभौतिक दुःखको, तितिक्षा के द्वारा सहकर साधक अपनी शक्तिके अनुसार श्रवण मनन आदि करे ॥ १५० ॥

प्रयोजनं तितिक्षायाः साधितायाः प्रयत्नतः ।
प्राप्तदुःखासहिष्णुत्वे न किञ्चिदपि दृश्यते ॥१५१॥

अन्वय और पदार्थ-(प्राप्तदुःखासहिष्णुत्वे) प्राप्तहुए दुःखको यदि न सहाजाय तो (प्रयत्नतः) प्रयत्नसे (साधितायाः) साधनकी हुई (तितिक्षायाः) तितिक्षा का (किञ्चित्, अपि) कुछ भी (प्रयोजनम्) फल (न) नहीं (दृश्यते) दीखता है ॥ १५१ ॥

(भावार्थ)-पूर्वजन्मके कर्मवश प्राप्त हुए दुःखको यदि न सहाजासके, तो जानलो, कि—यत्नके साथ साधन की हुई तितिक्षा का कुछ भी फल देखनेमें नहीं आया ॥ १५१ ॥

॥ संन्यास ॥

साधनत्वेन दृष्टानां सर्वेषामपि कर्मणाम् ।
विधिना यः परित्यागः स संन्यासः सतां मतिः ॥

अन्वय और पदार्थ-(साधनत्वेन) साधन रूपसे (दृष्टानाम्) देखेहुए (सर्वेषाम्-अपि) सब ही (कर्मणाम्) कर्मोंका (विधिना) शास्त्रमें कहीहुई विधिसे (यः) जो (परित्यागः) त्यागना है (सः) वह (संन्यासः) संन्यास है [इति] ऐसा (सताम्) सत्पुरुषोंका (मतिः) ज्ञान है ॥ १५२ ॥

(भावार्थ)—शास्त्रमें जिन कर्मोंको स्वर्ग आदिके साधनरूपसे वर्णन किया है, उन सब नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्मोंका शास्त्रमें लिखी रीतिसे जो त्यागना है, उसको ही साधु पुरुषोने संन्यास माना है ॥ १५२ ॥

उपरमयति कर्माणीत्युपरतिशब्देन कथ्यते न्यासः
न्यासेन हि सर्वेषां श्रुत्या प्राप्तो विकर्मणां त्यागः ॥

अन्वय और पदार्थ–(कर्माणि) कर्मोंको (उपरमयति) त्याग कराता है (इति) इस कारण (उपरतिशब्देन) उपरति शब्द करके (न्यासः) संन्यास (कथ्यते) कहाजाता है (सर्वेषाम्) सब कर्मोंके (न्यासेन) त्यागसे (विकर्मणाम्) विरुद्ध कर्मोंका (त्यागः) त्याग (श्रुत्या) श्रुतिसे (प्राप्तः) पायागया है॥

(भावार्थ)-सब कर्मों की उपरति (त्याग) करादेताहै, इसकारण उपरति शब्दसे संन्यास समझाजाता है,सब कर्मोंका ही त्याग करना पड़ता है इस कारण इस संन्यास आश्रममें विरुद्ध कर्मोंका भी त्याग श्रुति के द्वारा प्राप्त होता है॥ १५३ ॥

कर्मणा साध्यमानस्याऽनित्यत्वं श्रूयते यतः ।
कर्मणाऽनेन किं नित्यफलेप्सोः परमार्थिनः १५४

अन्वय और पदार्थ–(यतः) क्योंकि (कर्मणा) कर्मके द्वारा (साध्यमानस्य) साधन कियेजाते हुएका (अनित्यत्वम्) विनाश (श्रूयते) सुनाजाता है [तस्मात्] तिससे (परमार्थिनः) ब्रह्मनिष्ठ (नित्यफलेप्सोः) नित्यफल को चाहनेवालेके (अनेन) इस (कर्मणा) कर्म करके (किम्) क्या फल होसकता है ?॥

(भावार्थ)—क्योंकि-कर्मके द्वारा साधन कियेजाने वाले फलका अनित्य होना वेद में कहा है इसकारण इस कर्म के द्वारा मोक्ष चाहनेवाले संन्यासी का क्या प्रयोजन सिद्ध होसकता है ? अर्थात् कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होसकता ॥ १५४ ॥

उत्पाद्यमाप्यं संस्कार्यं विकार्यं परिगण्यते ।
चतुर्विधं कर्मसाध्यं फलं नान्यदितः परम् ॥१५५॥

अन्वय और पदार्थ–(कर्मसाध्यम्) क्रिया से सिद्ध होनेवाला (फलम्) फल (उत्पाद्यम्) उत्पाद्य (आप्यम्) आप्य (संस्कार्यम्) संस्कार्य (विकार्यम्) विकार्य (चतुर्विधम्) चार प्रकारका (परिगण्यते) गिनाजाता है (इतः) इससे (परम्) भिन्न (अन्यत्) और (न) नहीं [विद्यते] है ॥ १५५ ॥

(भावार्थ)-क्रिया के द्वारा जो कुछ फल होता है उसको कर्म भी कहते

हैं, वह चार प्रकारका गिनाजाता है, एक उत्पाद्य, दूसरा आप्य, तीसरा संस्कार्य और चौथा विकार्य, इनके सिवाय और किसी प्रकारका कर्म नहीं होता है। उपादान कारणमें कुछ विकार न आकर क्रिया के द्वारा उस उपादान कारणमें से एक नई वस्तु उत्पन्न होजाय तो उसको उत्पाद्य फल कहते हैं, जैसे, कि-कोई वस्त्र बनाता है, यहाँ वस्त्ररूप फल क्रिया से उत्पन्न होता है, इस वस्त्रका उपादान कारण जो सूत उसका विनाश वा उसमें किसी प्रकारका विकार देखनेमें नहीं आता, इस कारण 'कृ' धातुका अर्थ जो क्रिया उसका वस्त्र उत्पाद्य फल है। क्रियाका दूसरा फल वा कर्म आप्य है — क्रिया के द्वारा कुछ विशेष बात न दीखकर भी जो क्रिया का कर्म कहलावे उसको आप्य कर्म कहते हैं, जैसे-देवदत्त घड़ेको जानता है, यहाँ ज्ञानक्रिया के द्वारा घटमें किसीप्रकारका विकार वा अवस्थापरिवर्त्तन देखनेमें नहीं आता, परन्तु घटको हम ज्ञानरूप क्रिया का कर्मरूप मानकर व्यवहार करते हैं, इसलिये घट ज्ञानक्रिया का आप्य कर्म वा फल है। तीसरा संस्कार्य कर्म है, क्रिया के द्वारा जिस कर्म में किसी प्रकारका संस्कार वा अदृष्ट (धर्मविशेष) उत्पन्न हो उसको संस्कार्य कहते हैं, जैसे-धान्योंको छिडकता है, यहाँ जल छिडकना रूप प्रोक्षण क्रिया से धान्यमें किसी प्रकारकी विशेषता नहीं दीखती, तोभी जब यज्ञके प्रकरणमें धान्य पर जल छिड़कने की विधि लिखी है और उस धान्यका पुरोडाश (पीठी) बनाना कहाहै तो अवश्य ही मानना पड़ेगा, कि-धान्यपर जल छिडकने से कोई अदृष्टफल उत्पन्न होता है, जिसमें ऐसा अदृष्ट उत्पन्न होता है, उस ही धान्यका पुरोडाश बनाकर यज्ञ किया जायतो वह यज्ञ सिद्ध होता है, इसप्रकार जल छिडकने से धान्यमें जो अदृष्ट उत्पन्न होता है वही संस्कार है, यह संस्कार धान्यमें प्रोक्षणसे होता है, इसकारण धान्य को प्रोक्षणक्रियाका संस्कार्य कर्म कहना होगा। चौथा कर्म है विकार्य-जो क्रिया एक द्रव्यको नष्ट करके उसके स्थान में दूसरा द्रव्य उत्पन्न करदेय उस क्रियाके कर्मको विकार्य कर्म कहते हैं। जैसे-दूधको दही करता है वा काठको भस्म करता है, यहां दूधको नष्ट करके दधि बनायाजाताहै और काठ को नष्ट करके भस्म उत्पन्न कीजाती है, इसकारण 'कृ' धातुका अर्थ जो क्रिया, उसका दही वा भस्म रूप जो कर्म वा फल है, उसको ही विकार्य कर्म कहते हैं॥ १५५ ॥

नैतदन्यतमं ब्रह्म कदा भवितुमर्हति ।
स्वतःसिद्धं सर्वदाप्तं शुद्धं निर्मलमक्रियम् १५७

अन्वय और पदार्थ—(ब्रह्म) ब्रह्म [यतः] क्योंकि—(स्वतःसिद्धम्) स्वयं सिद्ध (सर्वदाप्तम्) सर्वदा प्राप्त (शुद्धम्) विशुद्ध स्वभाव (निर्मलम्) मल रहित [च] और (अक्रियम्) सब प्रकारकी क्रिया से रहित [अस्ति] है [अतः] इस कारण [तत्] वह (एतदन्यतमम्) इनमें से एक (कदा) कभी (भवितुम्) होनेको (न) नहीं (अर्हति) योग्य है ॥ १५६ ॥

(भावार्थ)—क्योंकि परब्रह्म स्वयंसिद्ध, सब समय प्राप्त होनेवाला, परमशुद्ध मलहीन और निष्क्रिय है, इसकारण वह इन चार प्रकारके कर्मोंमें से कोई एक कब होसकता है ? कदापि नहीं होसकता ॥ १५३ ॥

न चास्य कश्चिज्जनितेत्यागमेन निषिध्यते ।

कारणं ब्रह्म तत्तस्माद्ब्रह्म नोत्पाद्यमिष्यते ॥१५७॥

अन्वय और पदार्थ—(अस्य) इस ब्रह्मका (कश्चित्) कोई (जनिता) उत्पन्न करनेवाला (न) नहीं (अस्ति) है (इति) ऐसे अर्थवाले (आगमेन) वेद वाक्य के द्वारा (ब्रह्मणः) ब्रह्मका (कारणम्) कारण (निषिध्यते) निषेध कियाजाता है (तस्मात्) तिस कारणसे (तत्) वह (ब्रह्म) ब्रह्म (उत्पाद्यम्) उत्पाद्य कर्म (न) नहीं (इष्यते) स्वीकार कियाजाता है ॥ १५७ ॥

(भावार्थ)—इसका कोई उत्पन्न करनेवाला नहीं है, इस श्रुतिके प्रमाणसे ब्रह्मके कारण का निषेध होता है, इसकारण वह ब्रह्म किसी क्रिया का उत्पाद्य कर्म नहीं मानागया है ॥ १५७ ॥

आप्त्राप्ययोस्तु भेदश्चेदाप्त्रा ह्याप्यमवाप्यते ।

आप्तस्वरूपमेवैतद् ब्रह्म नाप्यं कदाचन १५८

अन्वय और पदार्थ—(तु) परन्तु (आप्त्राप्ययोः) आप्ता और आप्य इन दोनो में (चेत्) यदि (भेदः) भेद [स्यात्] हो [तदा] तो (आप्त्रा) आप्ताके द्वारा (आप्यम्) आप्यरूप कर्म (अवाप्यते) प्राप्त हो (एतत्) यह (ब्रह्म) पर आत्मा (आप्तस्वरूपमेव) सदा सब पदार्थोंको प्राप्त ही है (आप्यम्) आप्यरूप कर्म (कदाचन) कभी (न) नहीं है ॥ १५८ ॥

(भावार्थ)—परन्तु प्राप्तिका कर्त्ता और प्राप्तिका कर्म इन दोनो वस्तुओं में भेद होना, यदि स्वयं सिद्ध है तो जो प्राप्तिका कर्त्ता है, वह पहिले अप्राप्त कर्म को, प्राप्तिका कर्म नहीं करसकता । ब्रह्म सर्वदा सब वस्तुओंको प्राप्त करनेवाला है, यदि ऐसा ही है तो यह ब्रह्म प्राप्ति क्रियाका कर्म कभी नहीं होसकता ॥ १५८ ॥

मलिनस्यैव संस्कारो दर्पणादेरिहेष्यते ।
व्योमवन्नित्यशुद्धस्य ब्रह्मणो नैव संस्क्रिया ॥१५९॥

अन्वय और पदार्थ-(इह) इस संसारमें (दर्पणादेः) दर्पण आदि (मलिनस्य एव) मलिनका ही (संस्कारः) संस्कार (इष्यते) इच्छा क्रियाजाता है (व्योमवत्) आकाश की समान (नित्यशुद्धस्य) सदा शुद्ध (ब्रह्मणः) ब्रह्मका (संस्कारः) संस्कार (नैव) नहीं है ॥ १५९ ॥

(भावार्थ)-इस संसारमें लोग उसका ही संस्कार (निर्मल करना) चाहा करते हैं, जो दर्पण आदि की समान मलिन हो और जो आकाशकी समान नित्य शुद्धस्वभाव है, उस ब्रह्मका संस्कार होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ॥ १५९ ॥

केन दुष्टेन युज्येत वस्तु निर्मलमक्रियम् ।
यद्योगादागतं दोषं संस्कारो विनिवर्त्तयेत् ॥१६०॥

अन्वय और पदार्थ—(निर्मलम्) मलरहित (अक्रियम्) क्रियारहित (वस्तु) ब्रह्म (केन) किस (दुष्टेन) दूषित वस्तुके साथ (युज्येत) युक्त होसकेगा ? (यद्योगात्) जिसका साथ होनेसे (आगतम्) आयेहुए (दोषम्) दोष को (संस्कारः) संस्कार (विनिवर्त्तयेत्) हटावे ॥ १६० ॥

(भावार्थ)-ब्रह्म स्वयं निर्दोष और निष्क्रिय है, वह किस दूषित वस्तुके साथ मिलसकता है ? कि-जिसके साथ संयोग होनेसे उत्पन्न हुए दोष को संस्कार दूर करेगा अर्थात् किसी दूषित वस्तु से संयोग होनेपर, स्वभाव से ही निर्दोष और अक्रिय ब्रह्म दोषयुक्त होसकता है और वह दोष संस्कार से दूर होसकता है ऐसी कल्पना भी नहीं होसकती ॥ १६० ॥

निर्गुणस्य गुणाधानमपि नैवोपपद्यते ।
केवलो निर्गुणश्चेति नैर्गुण्यं श्रूयते यतः ॥१६१॥

अन्वय और पदार्थ-(यतः) क्योंकि (केवलः) अद्वितीय (च) और (निर्गुणः) निर्गुण (इति) इसप्रकार (नैर्गुण्यम्) निर्गुणता (श्रूयते) सुनीजाती है [अतः] इसकारण (निर्गुणस्य) निर्गुणका (गुणाधानम्-अपि) किसी प्रकार के नए गुणका आरोपभी (नैव) नहीं (उपपद्यते) बनसकता है ॥

(भावार्थ)-क्योंकि-"वह आत्मा अद्वितीय और निर्गुण है" इसप्रकार श्रुति में आत्माका निर्गुणपना वर्णन किया है, इस कारण उस निर्गुण आत्मामें किसी

प्रकार के गुणका आधान रूप संस्कार का होना बनता ही नहीं ॥ १६१ ॥

सावयवस्य क्षीरादेर्वस्तुनः परिणामिनः ।
येन केन विकारित्वं स्यान्नो निष्कर्मवस्तुनः १६२

अन्वय और पदार्थ-(सावयवस्य) अवयवोंवाले (परिणामिनः) परिणाम को प्राप्त होनेवाले (क्षीरादेः) दूध आदि (वस्तुनः) वस्तुका (येन केन) जिस किसीसे (विकारित्वम्) विकारीपना (स्यात्) हो (निष्कर्मवस्तुनः) क्रियाहीन वस्तु का (नो) नहीं [भवति] होता है ॥ १६२ ॥

(भावार्थ)-अवयवोंवाले, इसकारण ही परिणामको प्राप्त होनेका जिनका स्वभाव है ऐसे दूध आदि पदार्थोंको ही किसी दूसरे पदार्थके साथसे विकार वा अन्य अवस्था की प्राप्ति होती है आत्मा तो निष्क्रिय होनेसे निरवयव पदार्थ है, इसकारण उसमें विकार नहीं होसकता ॥ १६२ ॥

निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ।
इत्येव वस्तुनस्तत्त्वं श्रुतियुक्तिव्यवस्थितम् १६३

अन्वय और पदार्थ-(निष्कलम्) निरवयव (निष्क्रियम्)क्रियाहीन (शान्तम्) सब प्रकार के उपद्रवसे रहित (निरवद्यम्) निर्दोष (निरञ्जनम्) निर्लेप (इत्येव) इसप्रकार ही (वस्तुनः) वस्तुका (तत्त्वम्) स्वरूप (श्रुतियुक्तिव्यवस्थितम्) श्रुति और युक्तियों से निर्णीत हुआ है ॥ १६३ ॥

(भावार्थ)-निरवयव, क्रियाहीन, सकल उपद्रवों से शून्य, निर्दोष और निर्लिप्त, इन विशेषणोंके द्वारा आत्मस्वरूप का निर्णय श्रुतियोंसे और युक्तियों निर्णीत हुआ है ॥ १६३ ॥

तस्मान्न कर्मसाध्यत्वं ब्रह्मणोऽस्ति कुतश्चन ।
कर्मसाध्यं त्वनित्यं हि ब्रह्म नित्यं सनातनम् १६४

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (ब्रह्मणः) ब्रह्म का (कर्मसाध्यत्वम्) कर्मसाध्यपन (कुतश्चन) किसी कारण से भी (न) नहीं (अस्ति) है (तु) किंतु (कर्मसाध्यम्) कर्मके द्वारा साध्य पदार्थ (अनित्यम्) अनित्य होता है (ब्रह्म हि) ब्रह्म ही (सनातनम्) सब कालमें विद्यमान (नित्यम्) अविनाशी [अस्ति] है ॥ १६४ ॥

(भावार्थ)-इस कारण ब्रह्म किसी प्रकार भी कर्मसाध्य नहीं है अर्थात्

किसी के द्वारा ब्रह्म उत्पन्न नहीं होता है, जो कर्मसे उत्पन्न होता है वह विनाशी होताहै, ब्रह्म सनातन है, इसकारणही नित्य है ॥ १६४ ॥

देहादिः क्षीयते लोको यथैव कर्मणा चितः ।
तथैवामुष्मिको लोकः सञ्चितः पुण्यकर्मणा १६५

अन्वय और पदार्थ-(कर्मणा) कर्मके द्वारा (चितः) इकट्ठा कियाहुआ (देहादिः) देह आदि (लोकः) भोग्य पदार्थ (यथैव) जैसे (क्षीयते) क्षीण होता है (तथैव) तैसे ही (पुण्यकर्मणा) पुण्य कर्म के द्वारा (सञ्चितः) सञ्चय किया हुआ (लोकः) भोग्य पदार्थ [क्षीयते] क्षीण होता है ॥ १६५ ॥

(भावार्थ)-जैसे इस लोकमें कर्मके द्वारा सञ्चय किये हुए देह गेह आदि को हम नष्ट होतेहुए देखते हैं,तैसे ही पुण्यकर्म के द्वारा सञ्चय किया हुआ स्वर्ग आदि पारलौकिक भोगका साधन भी नष्ट होजाता है ॥ १६५ ॥

कृतकत्वमनित्यत्वे हेतुर्जागर्ति सर्वदा ।
तस्मादनित्ये स्वर्गादौ पण्डितः को नु मुह्यति ॥

अन्वय और पदार्थ-(अनित्यत्वे) विनाशत्वरूप साध्य को सिद्ध करने में (कृतकत्वम्) क्रियासाध्यत्वरूप (हेतुः) साधकहेतु (सर्वदा) सब समय (जागर्ति) जागता रहता है (तस्मात्) तिस कारण (अनित्ये) नाशवान् (स्वर्गादौ) स्वर्ग आदि वस्तु में (कः) कौन (पण्डितः) विद्वान् (मुह्यति) मोह को प्राप्त होता है ॥ १६६ ॥

(भावार्थ)—जिसकी उत्पत्ति है वह अनित्यता के विषयमें हेतुरूपसे सदा जागता रहताहै अर्थात् जो कुछ उत्पत्तिमान् है उसमें ही मानो अनित्यताका हेतु विद्यमान है, इसकारण कौनसा विचारशील पुरुष, स्वर्ग आदि भोग्य वस्तु के विषयमें मोहको प्राप्त होगा ? अर्थात् कोई भी पण्डित पुरुष इन सब नाशवान् वस्तुओंको स्थायी मानकर भ्रममें नहीं पडसकता ॥ १६८ ॥

जगद्धेतोस्तु नित्यत्वं सर्वेषामपि सम्मतम् ।
जगद्धेतुत्वमस्यैव वावदीति श्रुतिर्मुहुः ॥ १६७॥

अन्वय और पदार्थ-(जगद्धेतोः) जगत्के मूल कारणका (नित्यत्वम् तु) अविनाशीपना तो (सर्वेषाम्-अपि) सबोंको ही (संमतम्) अभिमतहै (श्रुतिः) वेद (मुहुः) वारंवार (अस्य-एव) इस ब्रह्म के ही (जगद्धेतुत्वम्) जगत्के कारणत्वको (वावदीति) कहता है ॥ १६७॥

(भावार्थ)-जो जगत् का कारण है, वह अविनाशी है, इस बातको सब ही दार्शनिकोंने माना है, श्रुति वारंवार इस ब्रह्मको ही जगत्का कारणरूप स्पष्ट कहती है, इसकारण ब्रह्म अविनाशी है ॥ १६७ ॥

ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यमिति च श्रुतिः ।
अस्यैव नित्यतां ब्रूते जगद्धेतोस्ततः स्फुटम् ॥ १६८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इदम्) यह (सर्वम्) सब (ऐतदात्म्यम्) ब्रह्मके आत्मस्वरूप से आश्रय कियेहुए है (तत्) वह (सत्यम्) सत्य है (इति च) इस प्रकार भी (श्रुतिः) श्रुति (जगद्धेतोः) जगत् के हेतुभूत (अस्य-एव) इसकी ही (नित्यताम्) अविनाशीपनेको (ब्रूते) कहती है (ततः) तिससे (स्फुटम्) स्पष्ट प्रतीत होता है ॥ १६८ ॥

(भावार्थ)-"यह सब विश्व ब्रह्मरूप आत्मा में प्रतिष्ठित है" और "वह ब्रह्म ही सत्य है" इस प्रकार बहुतसी श्रुतियें जगत्के हेतुभूत इस ब्रह्म की नित्यता का वर्णन करती हैं, इसकारण ब्रह्मका नित्य होना स्पष्ट ही समझमें आता है १६८

न कर्मणा न प्रजया धनेनेति स्वयं श्रुतिः ।
कर्मणो मोक्षहेतुत्वं साक्षादेव निषेधति ॥ १६९ ॥

अन्वय और पदार्थ [अमृतत्वम्] मोक्ष (कर्मणा) कर्म करके (न) नहीं होता (प्रजया) सन्तान के द्वारा (न) नहीं होता (धनेन) धनके द्वारा [न] नहीं होता (इति) इसप्रकार (श्रुतिः) वेदवाक्य (स्वयम्) अपने आप (कर्मणः) कर्मके (मोक्षहेतुत्वम्) मोक्षके कारणपनको (साक्षात्-एव) प्रत्यक्षरूप से ही (निषेधति) निषेधकरता है ॥ १६९ ॥

(भावार्थ)-कर्म के द्वारा मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती, सन्तानके द्वारा मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती और धनके द्वारा भी मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती इस प्रकार वेद की श्रुति स्वयं प्रत्यक्षरूपसे कर्मके मोक्षका हेतु होनेका निषेध करती है ॥ १६९ ॥

प्रत्यग्ब्रह्मविचारपूर्वमुभयोरेकत्वबोधं विना,
कैवल्यं पुरुषस्य सिद्ध्यति परब्रह्मात्मतालक्षणम् ।
न स्नानैरपि कीर्त्तनैरपि जपैर्नो कृच्छ्रचान्द्रायणै-
र्नो वाप्यध्वरयज्ञदाननिगमैर्नो मन्त्रतन्त्रैरपि १७०

अन्वय और पदार्थ—(पुरुषस्य) पुरुषका (परब्रह्मात्मतालक्षणम्) परब्रह्मकी आत्मस्वरूप से प्राप्तिरूप (कैवल्यम्) मोक्ष (प्रत्यग्ब्रह्मविचारपूर्वम्) वेदान्त शास्त्र के द्वारा सर्वान्तर्यामीके स्वरूपका विचारपूर्वक (उभयोः) जीव और ब्रह्म दोनों के (एकत्वबोधम्-विना) अभेदज्ञान के विना (स्नानैः अपि) स्नानोंसे भी (न) नहीं (कीर्त्तनैः,अपि) कीर्त्तनों केद्वारा भी (जपैः) जपोंसे (कृच्छ्चान्द्रायणैः) कृच्छ्र चान्द्रायणोंके द्वारा (नो) नहीं (वा) या (अध्वरयज्ञदाननिगमैः अपि) याग, यज्ञ, दान और अध्यापन के द्वारा भी (नो) नहीं (मन्त्रतन्त्रैः अपि) मंत्रतन्त्रों से भी (नो) नहीं (सिद्ध्यति) सिद्ध होता है ॥ १७० ॥

(भावार्थ)-परब्रह्मको आत्मस्वरूपसे प्राप्त करलेना ही जीवका मोक्ष है, यह मोक्ष ब्रह्मके स्वरूपका विचार करनेसे उत्पन्न होनेवाले जीव और ब्रह्मके अभेदज्ञान के विना और किसी भी उपायसे नहीं होता अर्थात् अनेकों तीर्थोंमें स्नान करनेसे, बहुतसा कीर्त्तन करनेसे, बहुतसा जप करनेसे, कष्टसाध्य चान्द्रायण आदि व्रत करनेसे, नाना प्रकारके याग, यज्ञ, दान वा बहुतसे छात्रोंको पढ़ानेसे अथवा तन्त्र मन्त्रोंके द्वारा अर्थात् किसी भी कर्मके द्वारा सिद्ध नहीं होसकता ॥ १७० ॥

ज्ञानादेव तु कैवल्यमिति श्रुत्या निगद्यते ।
ज्ञानस्य मुक्तिहेतुत्वमन्यव्यावृत्तिपूर्वकम् ॥१७१॥

अन्वय और पदार्थ—(ज्ञानात्) ज्ञानसे (एव) ही (कैवल्यम्) मोक्ष [भवति] होता है (इति) ऐसा (श्रुत्या) श्रुति करके (अन्यव्यावृत्तिपूर्वकम्) दूसरे कारणके निषेधपूर्वक (ज्ञानस्य-तु) ज्ञानका ही (मुक्तिहेतुत्वम्) मोक्षकारणत्व (निगद्यते) कहाजाता है ॥ १७१ ॥

(भावार्थ)—केवल ज्ञानसे ही मोक्ष होता है, और किसी कारणसे मोक्ष नहीं होता—"तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" इस श्रुतिके द्वारा केवल ज्ञानको ही मोक्षकी कारणता कहीगई है ॥ १७१ ॥

विवेकिनो विरक्तस्य ब्रह्मनित्यत्ववेदिनः ।
तद्भावेच्छोरनित्यार्थे तत्सामग्र्ये कुतो रतिः॥१७२॥

अन्वय और पदार्थ—(विवेकिनः) नित्य अनित्य वस्तुका विवेकवाले (ब्रह्मनित्यत्ववेदिनः) ब्रह्मकी नित्यताको जाननेवाले (विरक्तस्य) वैराग्यवान् (तद्भावेच्छोः) ब्रह्मभावको चाहनेवालेकी (अनित्यार्थे) अनित्य पदार्थमें (तत्सामग्र्ये) उसके समूहमें (रतिः) आसक्ति (कुतः) कहाँ ? ॥ १७२ ॥

(भावार्थ)-ब्रह्मही नित्य है और सब पदार्थ अनित्य हैं, इसप्रकार नित्य अनित्य वस्तुके स्वभावको जिसने समझ लिया है और जिसको संसारके विषयों को भोगनेसे वैराग्य होगया है तथा जिसको ब्रह्मभावको पानेकी इच्छा होरही है, ऐसे पुरुषका किसी एक अनित्य पदार्थ में वा सकल प्रकारके भोग्य पदार्थों में अनुराग कैसे होसकता है ? कभी नहीं होसकता ॥ १७२ ॥

तस्मादनित्यस्वर्गादौ साधनत्वेन चोदितम् ।
नित्यं नैमित्तिकं चापि सर्वं कर्म ससाधनम् ॥
मुमुक्षुणा परित्याज्यं ब्रह्मभावमभीप्सुना ॥१७३॥

अन्वय और पदार्थ-(ब्रह्मभावमभीप्सुना) ब्रह्मभावको चाहनेवाले (मुमुक्षुणा) मुमुक्षु करके (ससाधनम्) साधन सहित (स्वर्गादौ) स्वर्ग आदि (अनित्ये) अनित्य पदार्थमें (साधनत्वेन) साधनरूपसे (चोदितम्) विधान कियाहुआ (अपि च) और (नित्यम्) नित्य (नैमित्तिकम्) नैमित्तिक (सर्वम्) सब (कर्म) कर्म (परित्याज्यम्) त्यागनेयोग्य है ॥ १७३ ॥

(भावार्थ)-जो ब्रह्मभाव चाहते हों ऐसे मुमुक्षु पुरुषोंको, स्वर्ग आदि अनित्य फलके साधनरूपसे जो नित्य नैमित्तिक कर्म शास्त्रमें कहेहैं वे सब त्यागदेने चाहियें॥

मुमुक्षोरपि कर्मास्तु श्रवणं चापि साधनम् ।
हस्तवद्द्वयमेतस्य स्वकार्यं साधयिष्यति ।१७४।

अन्वय और पदार्थ-(श्रवणम्) वेदान्तवाक्योंका श्रवण (च) और (कर्म) नित्य नैमित्तिक कर्म (अपि) भी (मुमुक्षोः,तु) मुमुक्षुको तो (साधनम्) साधन (अस्तु) हो (द्वयम्) दोनों (हस्तवत्) हाथोंकी समान (स्वकार्यम्) अपने कार्यको (साधयिष्यति) साधन करेंगे ॥ १७४ ॥

(भावार्थ)—वेदान्तवाक्योंका श्रवण और नित्य नैमित्तिक कर्म, यह दोनो मुमुक्षुको मोक्ष की प्राप्तिके साधन हों, क्योंकि मुमुक्षु के ये दोनो काम, दो हाथों की समान अपने कामको सिद्ध करदेंगे ॥ १७४ ॥

यथा विजृम्भते दीपः ऋजूकरणकर्मणा ।
तथा विजृम्भते बोधः पुंसो विहितकर्मणा ॥१७५॥

अन्वय और पदार्थ—(ऋजूकरणकर्मणा) बत्तीको सूधा करदेनारूप कर्म से (यथा) जैसे (दीपः) दीपक (विजृम्भते) वृद्धिको प्राप्त होता है (तथा)

तैसे ही (विहितकर्मणा) विहित कर्मके द्वारा (पुंसः) पुरुषका (बोधः) तत्त्व-ज्ञान (विजृम्भते) वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ १७५ ॥

(भावार्थ)—बत्तीको सूधी करदेने पर जैसे दीपक की शिखा (लौ) बढ़जाती है, तैसे ही शास्त्रमें बताये हुए कर्मका अनुष्ठान करने पर मुक्ति चाहने वाले साधक का तत्त्वज्ञान क्रम २ से बढ़ने लगता है ॥ १७५ ॥

अतः सापेक्षिकं ज्ञानमथवापि समुच्चयम् ।
मोक्षस्य साधनमिति वदन्ति ब्रह्मवादिनः ॥१७६॥

अन्वय और पदार्थ-(अतः) इसकारण (ज्ञानम्) तत्त्वज्ञान (सापेक्षिकम्) नित्य नैमित्तिक कर्मकी अपेक्षा वाला है (अथवा) या (ब्रह्मवादिनः) ब्रह्मका वर्णन करनेवाले (समुचयम्) ज्ञान और कर्मके समुच्चयको (अपि) भी (मोक्षस्य) मोक्षका (साधनम्) साधन (वदन्ति) कहते हैं ॥ १७६ ॥

(भावार्थ)-इसकारण नित्य नैमित्तिक कर्मसे पुष्टि पाया हुआ ज्ञान अथवा नित्य नैमित्तिक कर्म और ज्ञान दोनों मिलकर मोक्षकी प्राप्तिके साधन होते हैं, ऐसा कोई २ वेदान्तशास्त्र के विद्वान् कहते हैं ॥ १७६ ॥

मुमुक्षोर्युज्यते त्यागः कथं विहितकर्मणः ।
इति शङ्का न कर्त्तव्या मूढवत्पण्डितोत्तमैः ॥
कर्मणः फलमन्यत्तु श्रवणस्य फलं पृथक् ॥१७७॥

अन्वय औरपदार्थ-(विहितकर्मणः) शास्त्रमें कहेहुए कर्मका (त्यागः) त्याग (मुमुक्षोः) मुमुक्षुको (कथम्) कैसे (युज्यते) युक्त होसकता है (इति) यह (शङ्का) शङ्का (मूढवत्) मूर्ख पुरुषकी समान (पण्डितोत्तमैः) श्रेष्ठ पण्डितों का (न) नहीं (कर्त्तव्या) करनी चाहिये (कर्मणः) कर्मका (फलम्) फल (अन्यत्) और है (तु) तथा (श्रवणस्य) श्रवणका (फलम्) फल (पृथक्) अलग है ॥ १७७ ॥ १७८ ॥

(भावार्थ)-मुमुक्षु पुरुष सन्ध्यावन्दन और अग्निहोत्र आदि शास्त्रविहित कर्मोंको त्याग देय, यह बात युक्तियुक्त कैसे होसकती है ?, मूर्ख पुरुषोंकी समान ऐसी शङ्का क्या श्रेष्ठ पण्डितोंको होनी चाहिये, कदापि नहीं होनी चाहिये, क्योंकि-अग्निहोत्र आदि विहित कर्मके फलसे मुमुक्षु पुरुषके लिये विहित श्रवण आदि का फल सर्वथा भिन्न है ॥ १७७ ॥ १७८ ॥

वैलक्षण्यञ्च सामग्र्योश्चोभयत्राधिकारिणोः ।
कामी कर्मण्यधिकृतो निष्कामी श्रवणे मतः १७९॥

अन्वय और पदार्थ-(उभयत्र) दोनों मार्गमें (अधिकारिणोः) दोनों प्रकार के अधिकारियोंके (सामग्र्योः) दोनों प्रकारके साधनोंकी (वैलक्षण्यम्) विभिन्नता [अस्ति] है (कामी) कामनावाला (कर्मणि,कर्ममें(अधिकृतः) अधिकारवाला है (च) और (निष्कामी) कामनाहीन (श्रवणे) श्रवणमें (मतः मानागया है॥१७९॥

(भावार्थ)-कर्म और ज्ञान इन दोनो मार्गोंमें दो प्रकारके अधिकारी होते हैं और उनकी साधनसामग्री भी भिन्न २ प्रकारकी ही होती है, उनमें जिसके हृदय में विषयभोगकी इच्छा होती है वह कर्ममें अधिकारी होता है और जिसको विषय भोगकी अभिलाषा नहीं होती है उसको विद्वानोंने वेदान्तवाक्योंके श्रवणका अधिकारी माना है ॥ १७९ ॥

अर्थी समर्थ इत्यादि लक्षणं कर्मिणो मतम् ।
परीक्ष्य लोकानित्यादि लक्षणं मोक्षकांक्षिणः १८०

अन्वय और पदार्थ-(अर्थी) धनवान् (समर्थः) सामर्थ्यवान् (इत्यादि) ये सब विशेषण (कर्मिणः) कर्मानुष्ठान करनेवालेका (लक्षणम्) लक्षण (मतम्) माना है (कर्मचितान्) कर्मके द्वारा सञ्चय करेहुए (लोकान्) लोकोंको (परीक्ष्य) परीक्षा करके (इत्यादि) ये सब (मोक्षकांक्षिणः) मोक्ष चाहनेवालेका (लक्षणम्) लक्षण [कथितम्] कहा है ॥ १८० ॥

(भावार्थ ,-धनवान् शक्तिमान् इत्यादि विशेषण कर्मानुष्ठान करनेवालोंका लक्षण मानागया है और कर्मसे पायेहुए लोक (फल) कभी नित्य नहीं होसकते इत्यादि परीक्षा करके विचारवान् पुरुष संसारके विषयभोगसे विरक्त होजाय, इत्यादि जो श्रुतिमें कहा है वह मुमुक्षुका लक्षण मानागया है ॥ १८० ॥

मोक्षाधिकारी संन्यासी गृहस्थः किल कर्मणि ।
कर्मणः साधनं भार्या स्रुक्स्रुवादि परिग्रहः १८१

अन्वय और पदार्थ-(संन्यासी) संन्यास आश्रमको धारण करने वाला (मोक्षाधिकारी) मोक्षका अधिकारी [भवति] होता है (गृहस्थः) गृहस्थ आश्रमको धारण करनेवाला (किल) निश्चय (कर्मणि) कर्ममें [अधिकारी, भवति)

अधिकारी होता है (भार्या) स्त्री (स्रक्स्रुवादिपरिग्रहः) स्रक् और स्रवे आदि का स्वीकार (कर्मणः) कर्मका (साधनम्) साधन है ॥ १८१ ॥

(भावार्थ)-संन्यासी मोक्ष का अधिकारी और गृहस्थ कर्मानुष्ठान का अधिकारी है, स्त्री, स्रक् स्रुवा आदि यज्ञके पात्रों का संग्रह कर्म का साधन है ॥ १८१ ॥

नैवास्य साधनापेक्षा शुश्रूषोस्तु गुरुं विना।
उपर्युपर्यहङ्कारो वर्धते कर्मणा भृशम् ॥ १८२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अस्य) इस (शुश्रूषोः) वेदान्त वाक्यों के श्रवणाभिलाषी को (तु) तो (गुरुम्-विना) गुरु के सिवाय (साधनापेक्षा) अन्य साधन की अपेक्षा (नैव) नहीं है (कर्मणा) कर्मके द्वारा (अहङ्कारः) अभिमान (उपरि उपरि) आगे २ का (भृशम्) अधिक (वर्धते) बढ़ता है ॥ १८२ ॥

(भावार्थ)-जिसको वेदान्तवाक्योंके सुनने की अभिलाषा है ऐसे संन्यासी के गुरु की शरण लेने के सिवाय और किसी साधन की आवश्यकता नहीं है, कर्मानुष्ठान के द्वारा तो आगे २ को अधिक होताहुआ अभिमान ही बढ़ा करता है ॥

अहङ्कारस्य विच्छित्तिः श्रवणेन प्रतिक्षणम्।
प्रवर्त्तकं कर्मशास्त्रं ज्ञानशास्त्रं निवर्त्तकम् ॥ १८३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(श्रवणेन) वेदान्तशास्त्रके श्रवण से (प्रतिक्षणम्) हरएक क्षण में (अहङ्कारस्य) अहङ्कार का (विच्छित्तिः) नाश [भवति] होता है (कर्मशास्त्रम्) कर्मकाण्ड (प्रवर्त्तकम्) मनुष्यों के चित्त में प्रवृत्ति को उत्पन्न करने वाला [च] और (ज्ञानशास्त्रम्) वेदान्तशास्त्र रूप ज्ञानकाण्ड (निवर्त्तकम्) निवृत्ति को उत्पन्न करने वाला [अस्ति] है ॥ १८३ ॥

(भावार्थ)-वेदान्तवाक्यों के सुनने से क्षण २ में अहङ्कार घटता चलजाता है, कर्मकाण्ड प्रवृत्ति का कारण है तथा ज्ञानशास्त्र निवृत्ति का हेतु है ॥ १८३ ॥

इत्यादिवैपरीत्यं तत्साधने चाधिकारिणोः।
द्वयोः परस्परापेक्षा विद्यते न कदाचन ॥ १८४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इत्यादि) ऐसा ऐसा (अधिकारिणोः) अधिकारियोंका (तत्साधने) उनके फलके साधनमें (वैपरीत्यम्) विपरीतभाव [विद्यते] है [अतः] इसकारण (द्वयोः) दोनों प्रकारके साधनोंमें (कदाचन) कभी भी (परस्परापेक्षा) परस्परकी अपेक्षा (न) नहीं (विद्यते) है ॥ १८४ ॥

(भावार्थ)-ज्ञान और कर्म दोनोंके अधिकारियोंके अपने २ इच्छित फलोंके साधनोंमें इसप्रकार भांति २ का भेद देखनेमें आता है, इसकारण मोक्षके साधन और कर्मके साधनमें परस्परकी अपेक्षा है ही नहीं ॥ १८४ ॥

सामग्र्योश्चोभयोस्तद्वदुभयत्राधिकारिणोः ।
ऊर्ध्वं नयति विज्ञानमधः प्रापयति क्रिया ॥ १८५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(उभयत्र) दोनों मार्गोंमें (अधिकारिणोः) अधिकारियोंका (च) और (सामग्र्योः) सामग्रियोंका (उभयोः) दोनोंमें (तद्वत्) तैसे ही (विज्ञानम्) विज्ञान (ऊर्ध्वम्) ऊपरको (नयति)लेजाता है (क्रिया) सकामकर्मानुष्ठान (अधः) नीचे (प्रापयति) पहुंचाता है ॥ १८५ ॥

(भावार्थ)-जैसे साधनोंका परस्पर भेद पीछे दिखाचुके हैं तैसे ही ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग के अधिकारियोंमें तथा दोनोंकी सामग्रियोंमें भी परस्पर भेद है तत्त्वज्ञान पुरुष का आत्मिक उन्नति करता है और सकाम कर्मानुष्ठान पुरुषकी अधोगति करता है ॥ १८५ ॥

कथमन्योऽन्यतोऽपेक्षा कथं वापि समुच्चयः ।
यथाग्नेस्तृणकूटस्य तेजसस्तिमिरस्य च ॥ १८६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (अग्नेः) अग्निका (तृणकूटस्य) तृणसमूहका (च) और (तेजसः) तेजका (तिमिरस्य) अन्धकारका [अपेक्षा वा, समुच्चयः, न, सम्भवति] परस्पर अपेक्षा, वा मिलकर काम करना नहीं होसकता [तद्वत्] तैसे ही (अन्योऽन्यतः) तत्त्वज्ञानके साधनादिमें और कर्मसाधन आदिमें परस्पर (अपेक्षा) (कथम्) कैसे [संभवेत्] हो (अपि वा) या (समुच्चयः) मिलकर काम करना (कथम्) कैसे [सम्भवेत्] हो ? ॥ १८६ ॥

(भावार्थ)-जैसे अग्नि और तृणसमूह तथा तेज और अन्धकार की परस्पर सापेक्षता वा परस्पर मिलकर काम करना नहीं बनसकता तैसे ही ज्ञानमार्ग और कर्ममार्गके साधनों में परस्पर एकको दूसरे को अपेक्षा नहीं है और न दोनों एकत्र इकट्ठे होकर कार्य ही करसकते हैं ॥ १८६ ॥

सहयोगो न घटते तथैव ज्ञानकर्मणोः ।
किमुपकुर्याज्ज्ञानस्य कर्म स्वप्रतियोगिनः ॥ १८७ ॥

यस्य सन्निधिमात्रेण स्वयं न स्फूर्तिमृच्छति १८८

अन्वय और पदार्थ-(तथा-एव) तैसे ही (ज्ञानकर्मणोः) ज्ञान और कर्म का (सहयोगः) एक पुरुष के द्वारा एकसमय में अनुष्ठान (न) नहीं (घटते) बनसकता है (कर्म) कर्म (स्वप्रतियोगिनः) अपने प्रतिकूल (ज्ञानस्य) ज्ञानका (किमु) क्या (उपकुर्यात्) उपकार करेगा (यस्य) जिसकी (सन्निधिमात्रेण) समीपतामात्रसे (स्वयम्) आप (स्फूर्तिम्) विकाश को (न) नहीं (ऋच्छति) प्राप्त होता है ॥ १८७ ॥ १८८ ॥

(भावार्थ)-जैसे ज्ञान और कर्मके साधन आदिका सहयोग नहीं होसकता तैसे ही ज्ञान और कर्मका भी सहयोग नहीं होसकता। कर्म अपने प्रतिकूल ज्ञानकी क्या सहायता करेगा ? अर्थात् कुछभी सहायता नहीं करसकता, जिस ज्ञानकी समीपतामात्र होने से कर्म स्वयं प्रकट नहीं होसकता फिर कर्म ज्ञान की क्या सहायता करेगा ? ॥ १८७ ॥ १८८ ॥

कोटीन्धनाद्रिज्वलितोपि वह्नि-
रर्कस्य नार्हत्युपकर्तुमीषत् ।
यथा तथा कर्मसहस्रकोटि-
र्ज्ञानस्य किन्तु स्वयमेव लीयते ॥ १८९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (कोटीन्धनाद्रिज्वलितः, अपि) ईंधनके करोड़ों ढेरोंसे प्रज्वलित किया हुआ भी (वह्निः) अग्नि (अर्कस्य) सूर्यका (ईषत्) जरासा भी (उपकर्तुम्) उपकार करनेको (न) नहीं (अर्हति) समर्थ होता है (तथा) तैसे (कर्मसहस्रकोटिः) सहस्रों करोड़ कर्म (ज्ञानस्य) ज्ञानका [ईषत्, उपकर्तुम्, न, अर्हति] जरासा भी, उपकार करनेको, नहीं समर्थ होता है (किन्तु) परन्तु (स्वयम्-एव) अपने आपही (लीयते) विलीन होजाता है॥

(भावार्थ)-जैसे पर्वतके समान करोड़ों काठके ढेरोंको जलाकर दीप्त किया हुआ भी अग्नि सूर्यके प्रकाशमें जराभी उपकार नहीं करसकता तैसे ही सहस्रों करोड़ कर्म, ज्ञानका कुछ उपकार नहीं करसकते, किन्तु ज्ञानका उदय होनेपर आप ही विलीन होजाते हैं १८९ ॥

एककर्त्राश्रयौ हस्तौ कर्मण्यधिकृतावुभौ।
सहयोगस्तयोर्युक्तो न तथा ज्ञानकर्मणोः ॥ १९० ॥

अन्वय और पदार्थ—(उभौ) दोनों (हस्तौ) हाथ (एककर्त्राश्रयौ) एक कर्त्ताका आश्रय करतेहुए (कर्मणि) कर्म में [अधिकृतौ) नियुक्त [भवतः] होते हैं (तयोः) उनका (सहयोगः) एकसाथ होकर कार्यकरना (युक्तः) उचित है (तथा) तैसे (ज्ञानकर्मणोः) ज्ञान और कर्मका (न) नहीं ॥ १९० ॥

(भावार्थ)—दोनों हाथ एक ही कर्त्ताका आश्रय किये रहते हैं इसकारण वे मिलकर एक ही कार्यके करनेमें नियुक्त होसकते हैं, परन्तु ज्ञान और कर्म इस प्रकार इकट्ठे होकर कार्य नहीं करसकते ॥ १९० ॥

कर्त्ता कर्त्तुमकर्त्तुं वाऽप्यन्यथा कर्म शक्यते ।
न तथा वस्तुनो ज्ञानं कर्तृतन्त्रं कदाचन ॥ १९१ ॥

अन्वय और पदार्थ—(कर्त्ता) कार्यको करनेवाले के द्वारा (कर्म) कर्म (कर्त्तुम्) करनेको (अकर्त्तुम्) न करनेको (वा) या (अन्यथा) उलटा (कर्त्तुम्) करनेको (अपि) भी (शक्यते) शक्य होता है (तथा) तैसे (वस्तुनः) वस्तु का (ज्ञानम्) ज्ञान (कर्तृतन्त्रम्) कर्त्ताके अधीन (कदाचन) कभी (न) नहीं [भवति] होता है ॥ १९१ ॥

(भावार्थ)—कर्त्ता चाहे तो कर्म करे, न चाहे तो न करे, अथवा चाहे कुछ का कुछ करडाले, क्योंकि—कर्म कर्त्ताके अधीन होता है, ऐसे वस्तुका ज्ञान कभी भी कर्त्ताकी इच्छाके अनुसार नहीं होसकता ॥ १९१ ॥

यथा वस्तु तथा ज्ञानं प्रमाणेन विजायते ।
नापेक्षते च यत्किञ्चित्कर्म वा युक्तिकौशलम् १९२

अन्वय और पदार्थ—(प्रमाणेन) प्रमाण के द्वारा (यथा) जैसी (वस्तु) वस्तु हो (तथा) तैसा (ज्ञानम्) ज्ञान (विजायते) होता है [तत् वस्तुतत्त्वज्ञानम्) वह वस्तुतत्त्व का ज्ञान (यत् किञ्चित् कर्म) जिस किसी भी कर्मको (वा) या (युक्तिकौशलम्, च) युक्तिके चातुर्यको भी (न) नहीं (अपेक्षते) अपेक्षा करता है ॥ १९२ ॥

(भावार्थ) प्रमाण के द्वारा वस्तु जैसी सिद्ध होती है उसका ज्ञान भी तैसा ही होता है, वह वस्तुतत्त्वका ज्ञान किसी प्रकारके कर्म वा युक्ति चातुरी की अपेक्षा नहीं करता है ॥ १९२ ॥

ज्ञानस्य वस्तुतन्त्रत्वे संशयाद्युदयः कथम् ।

अतो न वास्तवं ज्ञानमिति नो शंक्यतां बुधैः १९३

अन्वय और पदार्थ-(ज्ञानस्य) ज्ञानके (वस्तुतन्त्रत्वे) वस्तुके अधीन होने पर (संशयाद्युदयः) संशय आदिकी उत्पत्ति (कथम्) कैसे होसकती है ? (अतः) इसकारण (ज्ञानम्) ज्ञान (वास्तवम्) वस्तुके स्वरूपके अनुसार (न) नहीं [भवति] होता है (बुधैः) विद्वान् (इति) ऐसी (नो) नहीं (शंक्यताम्) शङ्का करें ॥ १९३ ॥

(भावार्थ)-ज्ञान यदि वस्तुके अधीन है अर्थात् वस्तुका जो यथार्थस्वरूप है वह ही ज्ञानका विषय होगा इसके विपरीत नहीं होसकता, इस सिद्धान्तको यदि मानलियाजाय तो संशय और भ्रांति की उत्पत्ति कैसे होसकती है ? इसकारण कहना पड़ेगा, कि-ज्ञान वस्तुपरतंत्र नहीं है अर्थात्-ज्ञानका विषय जैसा हो वैसा ही ज्ञान भी होगा यह बात कभी सिद्ध नहीं होसकती यह शङ्का पण्डितों को नहीं करनी चाहिये ॥ १९३ ॥

प्रमाणासौष्ठवकृतं संशयादि न वास्तवम् ।
श्रुतिप्रमाणसुष्ठुत्वे ज्ञानं भवति वास्तवम् ॥१९४॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रमाणासौष्ठवकृतम्) प्रमाण की असुष्ठता का किया हुआ (संशयादि) संशय आदि (वास्तवम्) वास्तविक (न) नहीं [भवति] होता है (वास्तवम्) वास्तव (ज्ञानम्) ज्ञान (श्रुतिप्रमाणसुष्ठत्वे) श्रुतिके प्रमाणसे श्रेष्ठ सिद्ध होनेपर (भवति) होता है ॥ १९४ ॥

(भावार्थ)-प्रमाणके ठीक २ न होनेसे जो संशय विपरीतज्ञान आदि दोष उत्पन्न होजाते हैं वे सब वास्तव (वस्तुपरतन्त्र) नहीं होसकते, किन्तु श्रुतिके प्रमाणकी श्रेष्ठता के आधारपर जो ज्ञान उत्पन्न होता है वही वास्तव ज्ञान कहिये परमार्थ ज्ञान है ॥ १९४ ॥

वस्तु तावत्परं ब्रह्म नित्यं सत्यं ध्रुवं विभु ।
श्रुतिप्रमाणे तज्ज्ञानं स्यादेव निरपेक्षकम् ॥१९५॥

अन्वय और पदार्थ-(परं, वस्तु) परम पदार्थ (तावत्) तो (ब्रह्म) ब्रह्म है [तत्] वह (नित्यम्) नित्य (सत्यम्) सत्य (ध्रुवम्) न बदलनेवाला (विभु) सर्वव्यापक [अस्ति] है (श्रुतिप्रमाणे) वेदरूप प्रमाणके [सति] उपस्थित होनेपर (तज्ज्ञानम्) वह ब्रह्मज्ञान (निरपेक्षकम्) किसीकी अपेक्षा न रखनेवाला (स्यात्-एव) होगा ही ॥ १९५ ॥

(भावार्थ)-परम पदार्थही तो ब्रह्म है, वही नित्य, सत्य, ध्रुव और सर्वव्यापी है। वेदका प्रमाण उपस्थित होते ही वह परमवस्तु-ज्ञान किसी अन्य वस्तु वा अन्य प्रमाणका अपेक्षा नहीं रखता है अर्थात् स्वाधीनभाव से प्रकाशता है १९५

रूपज्ञानं यथा सम्यग्दृष्टौ सत्यां भवेत् तथा।

श्रुतिप्रमाणे सत्येव ज्ञानं भवति वास्तवम् ॥ १९६॥

अन्वय और पदार्थ–(सम्यक् दृष्टौ) निर्दोष दृष्टि के (सत्याम्) होने पर (यथा) जैसे (रूपज्ञानम्) रूपका ज्ञान [वास्तवम्] यथार्थ (भवेत्) होता है (तथा) तैसे ही (श्रुतिप्रमाणे, सति, एव) वेदरूप प्रमाण के होने पर ही (वास्तवम्) यथार्थ (ज्ञानम्) ज्ञान (भवति) होता है ॥ १९६ ॥

(भावार्थ)-यदि दृष्टिमें कोई दोष न हो तो जैसे रूप का वास्तविक-यथार्थ ज्ञान होता है तैसे ही वेदरूप स्वतःसिद्ध निर्दोष प्रमाण के होनेपर जो ज्ञान होता है वह भी यथार्थ ज्ञान ही होता है ॥ १९६ ॥

न कर्म यत्किञ्चिदपेक्षते हि,
रूपोपलब्धौ पुरुषस्य चक्षुः।
ज्ञानं तथैव श्रवणादिजन्यं
वस्तुप्रकाशे निरपेक्षमेव ॥ १९७ ॥

अन्वय और पदार्थ–(हि) क्योंकि (पुरुषस्य) पुरुषका (चक्षुः) नेत्र (रूपोपलब्धौ) रूपको प्रत्यक्ष करनेमें (यत् किञ्चित्) जिस किसी (कर्म) कर्मको (न) नहीं (अपेक्षते) अपेक्षा करता है (तथा–एव) तैसे ही (श्रवणादिजन्यम्) श्रवण आदिसे उत्पन्न होनेवाला (ज्ञानम्) ज्ञान (वस्तुप्रकाशे) अपने विषय को प्रकाशित करनेमें (निरपेक्षम्–एव) किसीकी भी अपेक्षा नहीं करता है १९७

(भावार्थ)-पुरुषका नेत्र रूपका प्रत्यक्ष करनेके विषयमें जैसे अपने व्यापार के सिवाय और किसी प्रकारके कर्मकी अपेक्षा नहीं करता है, तैसे हीं वेदान्तवाक्यों के श्रवण मनन आदिसे उत्पन्न हुआ ज्ञान भी परमात्मरूप वस्तुको प्रकाशित करने के लिये और किसी प्रकारके कर्मकी अपेक्षा नहीं करता है ॥ १९७ ॥

कर्तृतन्त्रं भवेत्कर्म कर्मतंत्रं शुभाशुभम्।

प्रमाणतंत्रं विज्ञानं मायातंत्रमिदं जगत् ॥१९८॥

अन्वय और पदार्थ–(कर्म) कर्म(कर्तृतन्त्रम्) कर्ताके अधीनहै (शुभाशुभम्)

शुभ और अशुभ परिणाम (कर्मतंत्रम्) कर्मके अधीन है (विज्ञानम्) तत्त्वज्ञान (प्रमाणतंत्रम्) प्रमाणके अधीन है (इदम्) यह (जगत्) संसार (मायातंत्रम्) मायाके अधीन है ॥ १६८ ॥

(भावार्थ)—कर्म (क्रिया) कर्त्ताके अधीन है, शुभ अशुभ फल कर्मके अधीन है, आत्मतत्त्वका ज्ञान प्रमाणके अधीन है और यह संसार एक माया के अधीन है ॥ १६८ ॥

विद्याञ्चाविद्याञ्चेति सहोक्तिरियमुपक्रम्यतां सद्भिः ।
सत्कर्मोपासनयोर्नत्वात्मज्ञानकर्मणोः क्वापि ॥१६९॥

अन्वय और पदार्थ-(विद्याम्) विद्याको (च) और (अविद्याम्) अविद्याको (च) भी (इति) इसप्रकार (इयम्) यह (सहोक्तिः) एकसाथ कथन (सद्भिः) सत्पुरुषों करके (सत्कर्मोपासनयोः) सत्कर्म और उपासनाका [सहोक्तिः] समुच्चय (उपक्रम्यताम्) जानाजाय (आत्मज्ञानकर्मणोः) परमात्मतत्त्वज्ञान और अग्निहोत्र आदि कर्मका [सहोक्तिः] समुच्चय (तु) तो (क्वापि) कहीं भी (न) नहीं [अस्ति] है ॥ १६९ ॥

(भावार्थ)-'विद्याञ्चाविद्याञ्च' इत्यादि वेदकी श्रुतिमें जो ज्ञान और कर्मको समुच्चयरूपसे एकसाथमें कहा है, विद्वानोंको उसका तात्पर्य यह समझना चाहिये कि —वह उपासनारूप ज्ञानके साथ ही विहित कर्मका समुच्चय कहा है । आत्मतत्त्वज्ञान और विहित कर्मका परस्पर समुच्चय तो श्रुतिमें कहीं भी नहीं कहा है ॥

नित्यानित्यपदार्थबोधरहितो यश्चोभयत्र स्रगा-
द्यर्थानामनुभूतिलग्नहृदयोऽनिर्विण्णबुद्धिर्जनः ।
तस्यैवास्य जडस्य कर्म विहितं श्रुत्या विरज्याभितो
मोक्षेच्छोर्न विधीयते तु परमानन्दार्थिनो धीमतः ॥

अन्वय और पदार्थ-(नित्यानित्यपदार्थबोधरहितः) जिसको नित्य अनित्य वस्तुके भेदका ज्ञान नहीं है (च) और (यः) जो (उभयत्र) दोनो लोकोंमें (स्रगाद्यर्थानाम्) पुष्पमाला आदि भोग्यपदार्थोंके (अनुभूतिलग्नहृदयः) अनुभवमें लगा है हृदय जिसका ऐसा [च] और (अनिर्विण्णबुद्धिः) जिसकी बुद्धिमें वैराग्यका उदय नहीं हुआ है ऐसा (जनः) मनुष्य [अस्ति] है (तस्य) तिस (अस्य) इस (जडस्य–एव) मूढ़के निमित्त ही (कर्म) कर्म (श्रुत्या)

श्रुतिने (विहितम्) विधान किया है (अभितः) सब ओरसे (विरज्य) विरक्त होकर (परमानन्दार्थिनः) परम आनन्दको चाहनेवाले (धीमतः) बुद्धिमान् (मोक्षेच्छोः) मोक्ष चाहनेवालेके लिये (तु) तो (न) नहीं (विधीयते) विधान कियाजाता है ॥ २०० ॥

(भावार्थ)—नित्य और अनित्य वस्तुके स्वरूपका ज्ञान जिसको नहीं है, इसलोक और परलोकके माला चन्दन आदि विषयोंको भोगनेके लिये जिसका अन्तःकरण सदा ललचाता रहता है और जिसके हृदयमें वैराग्यका उदय नहीं हुआ है ऐसे मूढमति मनुष्यके लिये ही श्रुतिने कर्म करनेकी आज्ञा दी, है, परन्तु जिसको इसलोक और परलोकके विषयोंसे वराग्य होगया है उस परमानन्दको चाहने वाले विवेकी मुमुक्षु पुरुषके लिये वेदमे कहीं भी कर्म करनेका आज्ञा नहीं है ॥२००॥

मोक्षेच्छया यदहरेव विरज्यतेऽसौ
न्यासस्तदेव विहितो विदुषो मुमुक्षोः ।
श्रुत्या तयैव परया च ततः सुधीभिः
प्रामाणिकोऽयमिति चेतसि निश्चितव्यम् ॥

अन्वय और पदार्थ-(असौ) यह (यदहः-एव) जिसदिन ही (मोक्षेच्छया) मोक्ष पानेकी इच्छासे (विरज्यते) विरक्त होय (तदा-एव) उस समयही (विदुषः) विद्वान् (ममुक्षोः) मुमुक्षुको (न्यासः) संन्यास (तयाएव) तिस ही (परया) परमप्रमाण भूत (श्रुत्या) श्रुतिने (विहितः) विधान किया है (ततः-च) तिसकारणसे ही (अयम्)यह आश्रम (प्रामाणिकः) प्रमाणसिद्ध है (इति) ऐसा (सुधीभिः) बुद्धिमानो करके (चेतसि) चित्तमें (निश्चितव्यम्) निश्चय करना चाहिये ।२०१।

(भावार्थ)-मोक्षको चाहनेवाले गृहस्थ को जिस दिन संसारके विषयों से वैराग्य होय "परमप्रमाणरूप श्रुति उस दिन ही उस विद्वान् मुमुक्षु पुरुषके लिये संन्यास धारण करनेकी आज्ञा देती है, इस कारण विवेकी पुरुषोंको अपने मनमें यह निश्चय रखना चाहिये, कि-यह संन्यासआश्रम प्रामाणिक है ॥ २०१ ॥

स्वापरोक्षस्य वेदादेः साधनत्वं निषेधति ।
नाहं वेदैर्न तपसेत्यादिना भगवानपि ॥ २०२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (न-वेदैः) न वेदोंके द्वारा (न,तपसा) न तपके द्वारा (इत्यादिना) ऐसे २ वाक्यों के द्वारा (भगवान्-अपि) भगवान्

भी (स्वापरोक्षस्य) आत्माके प्रत्यक्ष अनुभवके प्रति (वेदादेः) वेद आदिके (साधनत्वम्) हेतुत्व को (निषेधति) निषेध करते हैं ॥ २०२ ॥

(भावार्थ)-मैं वेदोंके पारायणमात्रसे भी प्रत्यक्ष नहीं होता और तपस्या-मात्र करनेसे भी किसीको प्रत्यक्ष नही होता, ऐसे २ वाक्योंके द्वारा भगवान्‌ने भी आत्माके प्रत्यक्ष अनुभवका साधन वेदादि नहीं हैं, यह बात कही है ॥ २०२ ॥

प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च द्वे एते श्रुतिगोचरे ।
प्रवृत्त्या बध्यते जन्तुर्निवृत्त्या च विमुच्यते ॥२०३॥

अन्वय और पदार्थ—(प्रवृत्तिः) प्रवृत्ति (च) और (निवृत्तिः) निवृत्ति (च) भी (एते) ये (द्वे) दो (श्रुतिगोचरे) वेदमें देखेजाते हैं (जन्तुः) प्राणी (प्रवृत्त्या) प्रवृत्तिसे (बध्यते) बंधता है (च) और (निवृत्त्या) निवृत्तिसे (विमुच्यते) छूटजाता है ॥ २०३ ॥

(भावार्थ)-प्रवृत्ति और निवृत्ति ये दो मार्ग ही वेदमें वर्णन कियेहुए देखनेमें आते हैं, उनमेंसे प्रवृत्तिमार्गमें को चलनेवाला प्राणी जगत्‌जालमें बँधजाता है और जो प्राणी निवृत्तिमार्गमेंको जाता है वह संसारबंधन से छूटजाता है ॥२०३॥

यन्न स्वबन्धोऽभिमतो मूढस्यापि क्वचित्ततः ।
निवृत्तिः कर्मसंन्यासः कर्त्तव्यो मोक्षकांक्षिभिः २०४

अन्वय और पदार्थ-(यत्) क्योंकि (मूढस्य—अपि) मूर्ख पुरुषको भी (क्वचित्) कहीं (स्वबन्धः) अपना बन्धन (न) नहीं (अभिमतः) अभीष्ट है (ततः) तिससे (मोक्षकांक्षिभिः) मोक्ष चाहनेवालोंको (निवृत्तिः) निवृत्ति-रूप (कर्मसंन्यासः) कर्मोंके फलका त्याग (कर्त्तव्यः) करना चाहिये ॥२०४॥

(भावार्थ)-क्योंकि-कहीं कोई मूढ़ पुरुष भी अपना बन्धनमें पडना नहीं चाहता, इसलिये मोक्षकी चाहनावाले विवेकी पुरुषोंको निवृत्तिमार्गका अवलंबन अर्थात् फल पानेकी इच्छाको त्यागकर विहितकर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये २०४

न ज्ञानकर्मणोर्यस्मात्सहयोगस्तु युज्यते ।
तस्मात्त्याज्यं प्रयत्नेन कर्म ज्ञानेच्छुना ध्रुवम् ॥२०५॥

अन्वय और पदार्थ-(यस्मात्) क्योंकि (ज्ञानकर्मणोः) ज्ञान और कर्म का (सहयोगः) समुच्चय (तु) तो (न) नहीं (युज्यते) सिद्ध होता है (तस्मात्)

तिससे (ज्ञानेच्छुना) ज्ञानके चाहनेवालेको (ध्रुवम्) निश्चय (प्रयत्नेन) प्रयत्न करके (कर्म) कर्म (त्याज्यम्) त्यागदेना चाहिये ॥ २०५ ॥

(भावार्थ)—क्योंकि जीव ब्रह्मकी एकताका ज्ञानरूप तत्वज्ञान और कर्मका परस्पर सहयोग नहीं होसकता, इसकारण मुक्ति पानेके लिये ज्ञानकी चाहनावाला पुरुष, निश्चय ही प्रयत्न करके सकाम कर्मको त्यागदेय ॥ २०५ ॥

इष्टसाधनताबुद्ध्या गृहीतस्यापि वस्तुनः ।
विज्ञायाफलतां पश्चात्कः पुनस्तत्प्रतीक्षते ॥२०६॥

अन्वय और पदार्थ-(इष्टसाधनताबुद्ध्या) यह वस्तु मेरे इच्छित सुखकी साधन है ऐसी बुद्धिसे (गृहीतस्य अपि) ग्रहण कियेहुए भी (वस्तुनः) पदार्थ की (पश्चात्) पीछे (निष्फलताम्) निष्फलताको (विज्ञाय) जानकर (तत्) उस पदार्थ को(पुनः) फिर (कः) कौन (प्रतीक्षते) प्रतीक्षा करता है ॥२०६॥

(भावार्थ)-पहिले जिस वस्तुको अपने सुखकी साधन मानकर ग्रहण भी करलिया है, पीछे विचार करने पर यदि वह वस्तु निष्फल प्रतीत होनेलगे तो फिर उस वस्तुकी ओरको कौन ध्यान देगा ? कोई नहीं देगा ॥ २०८ ॥

उपरतिशब्दार्थो ह्युपरमणं पूर्वदृष्टप्रवृत्तिभ्यः ।
सोऽयं मुख्यो गौणश्चेति च वृत्त्या द्विरूपतां धत्ते२०७

अन्वय और पदार्थ—(पूर्वदृष्टप्रवृत्तिभ्यः) पहिले सुखकी हेतु मानीहुई वस्तुओंसे होनेवाली प्रवृत्तियोंसे (उपरमणम्) निवृत्त होना (उपरतिशब्दार्थः) उपरति शब्दका अर्थ है (सः,अयम्) वह यह उपरति शब्दका अर्थ (वृत्त्या) व्यवहारसे (मुख्यः) प्रधान (च) और (गौणः) गौण (इति) इसप्रकार (द्विरूपताम्) दो रूपपनेको (धत्ते) धारण करता है ॥ २०७ ॥

(भावार्थ)—पहिले जो वस्तुएं सुखकी हेतु जानने में आई हैं, उन वस्तुओं से जो प्रवृत्ति होती हैं, उन सब प्रवृत्तियों से निवृत्ति को प्राप्त होजाना ही उपरति शब्दका अर्थ है, वह व्यवहारवश मुख्य और गौण भेद से दो प्रकारका है॥२०७॥

वृत्तेर्दृश्यपरित्यागो मुख्यार्थ इति कथ्यते ।
गौणार्थः कर्मसंन्यासः श्रुतेरङ्गतया मतः । २०८ ।

अन्वय और पदार्थ—(वृत्तेः) अन्तःकरणकी वृत्ति का (दृश्यपरित्यागः) बाहरी विषयोंको त्यागदेना (मुख्यार्थः) संन्यासशब्दका मुख्य अर्थ है (इति)

ऐसा (कथ्यते) कहाजाता है (कर्मसंन्यासः) विहित कर्मका त्याग (अङ्गतया) संन्यासके अङ्गरूपसे (गौणार्थः) संन्यासका गौण अर्थ (श्रुतेः) वेदका (मतः) अभिमत है ॥ २०८ ॥

(भावार्थ)-दीखनेवाले बाहरके विषयोंके साथ अन्तःकरणकी वृत्तिका सब प्रकारसे संबन्ध छूटजाना ही संन्यास शब्दका मुख्य अर्थ वा मुख्य संन्यास है और शास्त्रमें बतायेहुए कर्मका त्याग, संन्यास का अङ्ग होनेके कारण संन्यास शब्दका गौण अर्थ वा गौण संन्यास है, ऐसा वेदका सिद्धांत है ॥ २०८ ॥

पुंसः साधनसिद्ध्यर्थमङ्गस्याश्रयणं ध्रुवम् ।
कर्त्तव्यमङ्गहीनं चेत्प्रधानं नैव सिद्ध्यति ॥ २०९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(साधनसिद्ध्यर्थम्) साधनके द्वारा सिद्धि पानेके लिये (पुंसः) पुरुषका (अङ्गस्य) अङ्गका (आश्रयणम्) आश्रय करना (ध्रुवम्) अवश्य (कर्त्तव्यम्) कर्त्तव्य है [तत्] वह (चेत्) यदि (अङ्गहीनम्) अङ्गहीन [भवेत्] हो [तर्हि] तो (प्रधानम्) प्रधानकार्य (न-एव) कदापि नहीं (सिद्ध्यति) सिद्ध होता है ॥ २०९ ॥

(भावार्थ)-यदि साधनके द्वारा सिद्धि प्राप्त करनी हो तो पुरुषको उसके अङ्गका सहारा अवश्य ही लेना होगा, क्योंकि-यदि कर्त्तव्यका साधन अङ्गहीन होगा तो प्रधान कार्य कभी भी सिद्ध नहीं होसकता ॥ २०९ ॥

संन्यसेत्सुविरक्तः सन्निहामुत्रार्थतः सुखात् ।
अविरक्तस्य संन्यासो निष्फलोऽयाज्ययागवत् २१०

अन्वय और पदार्थ—(इह) इस लोकमें (अमुत्र) परलोकमें (अर्थतः) भोग्य पदार्थोंसे (सुखात्) जो सुख होता है उससे (सुविरक्तः सन्) पूर्णरूपसे विरक्त होताहुआ (संन्यसेत्) संन्यास धारण करे (अविरक्तस्य) वैराग्यहीनका (संन्यासः) संन्यास (अयाज्ययागवत्) यज्ञके अनधिकारी के यज्ञ की समान (निष्फलः) निरर्थक [भवति] होता है ॥ २१० ॥

(भावार्थ)—इस लोकमें और परलोकमें जितने प्रकारके भोगके पदार्थ हैं उनसे जो सुख प्रतीत होता है उस सुख से पूर्णरूप से विरक्त होकर संन्यास आश्रमको धारण करे, जिसको वैराग्य नहीं हुआहै उसका संन्यासको धारण करना ऐसे निष्फल है जैसे यज्ञके अनधिकारीका यज्ञ निष्फल होता है ॥२१०॥

संन्यस्य तु यतिः कुर्यान्न पूर्वविषयस्मृतिम्।
तां तां तत्स्मरणे तस्य जुगुप्सा जायते यतः २११

अन्वय और पदार्थ—(संन्यस्य) संन्यास धारण करके (यतिः)संन्यासी (ताम्, ताम्) तिस तिस (पूर्वविषयस्मृतिम्) पहिले आश्रममें भोगे हुए विषयों के स्मरणको (तु) तो (न) नहीं (कुर्यात्) करै (यतः) क्योंकि-(तत्स्मरणे) उन भोगेहुए विषयोंका स्मरण करने पर (तस्य) उस संन्यासी को (जुगुप्सा) अपनी वर्त्तमान अवस्था पर घृणा (जायते) होती है॥ २११ ॥

(भावार्थ) संन्यास आश्रमको ग्रहण करलेने पर संन्यासी फिर कभी भी पहिले आश्रममें भोगेहुए विषयोंका स्मरण न करै, क्योंकि— उन विषयोंका स्मरण करने पर उस संन्यासी को अपनी वर्त्तमान अवस्था पर घृणा होने लगती है २११

श्रद्धा।

गुरुवेदान्तवाक्येषु बुद्धिर्या निश्चयात्मिका।
सत्यमित्येव सा श्रद्धा निदानं मुक्तिसिद्धये॥२१२॥

अन्वय और पदार्थ-(गुरुवेदांतवाक्येषु) गुरु और वेदांतके वचनोंमें (सत्यम् एव, इति) यह सत्य ही है ऐसा (या) जो (निश्चयात्मिका) निश्चयरूप (बुद्धिः) ज्ञान है (सा) वह (श्रद्धा) श्रद्धा (मुक्तिसिद्धये) मुक्तिकी सिद्धिके लिये (निदानम्) मूलकारण है ॥ २१२ ॥

(भावार्थ)-गुरुके वचन और वेदान्तके वाक्य अटल सत्य हैं ऐसा जो निश्चितरूपसे ज्ञान हो वह ही श्रद्धा है, ऐसी श्रद्धा ही मोक्षसिद्धिका मूलकारण है॥

श्रद्धावतामेव सतां पुमर्थः
समीरितः सिद्ध्यति नेतरेषाम्।
उक्तं सुसूक्ष्मं परमार्थतत्त्वम्
श्रद्धत्स्व सौम्येति च वक्ति वेदः ॥२१३॥

अन्वय और पदार्थ-(श्रद्धावताम्) श्रद्धावाले (सताम्-एव) साधुपुरुषों का ही (समीरितः) शास्त्रमें कहाहुआ (पुमर्थः) पुरुषार्थ (सिद्ध्यति) सिद्ध होता है (इतरेषाम्) औरोंका (न) नहीं [सिद्ध्यति] सिद्ध होताहै (सुसूक्ष्मम्) अति दुर्ज्ञेय (परमार्थतत्त्वम्) यथार्थवस्तुस्वरूप (उक्तम्) कहा (सौम्य)

हेप्रियदर्शन (श्रद्धत्स्व) श्रद्धावान् हो (इति) ऐसा (वेदःच) वेद भी (वक्ति) कहता है
(भावार्थ)-श्रद्धावान् साधुस्वभावके पुरुषोंको ही शास्त्रमें कहाहुआ मोक्षरूप पुरुषार्थ सिद्ध होता है, जिनको श्रद्धा नहीं होती उनको शास्त्रमें कहाहुआ पुरुषार्थ सिद्ध नहीं होता यह ही बड़ा गूढ़ तत्त्व मानागया है 'हे सौम्य तू श्रद्धावान् हो' श्रुतिमें ऐसा उपदेश दिया है ॥ २१३ ॥

श्रद्धाविहीनस्य तु न प्रवृत्तिः
प्रवृत्तिशून्यस्य न साध्यसिद्धिः ।
अश्रद्धयैवाभिहताश्च सर्वे
मज्जन्ति संसारमहासमुद्रे ॥ २१४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(श्रद्धाविहीनस्य) श्रद्धासे रहित की (प्रवृत्तिः) प्रवृत्ति (तु) तो (न) नहीं [भवति] होती है (प्रवृत्तिशून्यस्य) प्रवृत्तिहीनकी (साध्यसिद्धिः) कार्यसिद्धि (न) नहीं [भवति] होती है (च) और (अश्रद्धया-एव) श्रद्धा न होनेके कारणसे ही (उपहताः) नष्टप्रायहुए (सर्वे) सब (संसारमहासमुद्रे) संसाररूपी महासागरमें (मज्जन्ति) डूबते हैं ॥ २१४ ॥
(भावार्थ)-जिसको श्रद्धा नहीं होती उस पुरुषकी मोक्षसाधनके श्रवण आदि कार्यमें प्रवृत्ति नहीं होती और प्रवृत्ति न होनेसे कार्यसिद्धि भी नहीं होती, इस प्रकार अश्रद्धाके द्वारा नष्टप्राय होकर सब ही पुरुष संसाररूप दुःखमय महासमुद्र में डूब रहे हैं ॥ २१४ ॥

देवे च वेदे च गुरौ च मन्त्रे
तीर्थे महात्मन्यपि भेषजे च ।
श्रद्धा भवत्यस्य यथा यथान्तः
तथा तथा सिद्धिरुदेति पुंसाम् ॥ २१५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(देवे) देवतामें (च) और (वेदे) वेदमें (च) और (गुरौ) गुरुमें (च) और (मन्त्रे) मंत्रमें (तीर्थे) तीर्थमें (महात्मनि) महात्मामें (अपि च) और (भेषजे) औषधमें (यथा यथा) जैसे जैसे (अस्य) इस पुरुषके (अन्तः) अन्तःकरणमें (श्रद्धा) श्रद्धा (भवति) होती है (तथा तथा) तैसे तैसे (पुंसाम्) पुरुषोंकी (सिद्धिः) सिद्धि (उदेति) उत्पन्न होती है ॥ २१५ ॥

(भावार्थ)-इष्टदेवता, वेद, गुरु, मंत्र, तीर्थ, महापुरुष और औषध, इन सबके ऊपर लोगोंका जैसा जैसा विश्वास होगा तैसी २ ही इष्टसिद्धि होगी ॥ २१५ ॥

अस्तीत्येवोपलब्धव्यं वस्तु सद्भावनिश्चयात् ।
सद्भावनिश्चयस्तस्य श्रद्धया शास्त्रसिद्धया ॥२१६॥

अन्वय और पदार्थ-(सद्भावनिश्चयात्) सत् पदार्थका जो प्रकृतिसिद्ध धर्म है उसका निश्चय होनेसे (वस्तु) ब्रह्मरूप परमार्थ वस्तु (अस्ति-इत्येव) सर्वदा ही विद्यमान है इसप्रकार (उपलब्धव्यम्) समझना चाहिये (तस्य) उस साधकका (सद्भावनिश्चयः) सत्पदार्थके स्वरूपका निर्णय (शास्त्रसिद्धया) शास्त्रसे सिद्ध (श्रद्धया) श्रद्धाके द्वारा [भवति] होता है ॥ २१६ ॥

(भावार्थ)-सत् पदार्थका जो स्वरूप है, उसका निर्णय करके यही समझै कि-जो परमार्थ सत् वस्तु है वह सब समय वर्त्तमान रहती है ॥ २१६ ॥

तस्माच्छ्रद्धा सुसम्पाद्या गुरुवेदान्तवाक्ययोः ।
मुमुक्षोः श्रद्धधानस्य फलं सिद्ध्यति नान्यथा ॥२१७॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (गुरुवेदान्तवाक्ययोः) गुरु और वेदान्तके वाक्योंमें (श्रद्धा) श्रद्धा (सुसम्पाद्या) भलेप्रकार सम्पादन करनी चाहिये (श्रद्धधानस्य) श्रद्धा करनेवाले (मुमुक्षोः) मुमुक्षुको (फलम्) फल (सिद्ध्यति) सिद्ध होता है (अन्यथा) और प्रकारसे (न) नहीं ॥ २१७ ॥

(भावार्थ)-इसलिये जिसके गुरुसे और वेदान्तके वाक्योंमें अचल श्रद्धा हो वही उपाय करना चाहिये मुमुक्षु पुरुष यदि श्रद्धावान् हो तब ही उसको मोक्षकी प्राप्ति होती है, श्रद्धाहीनको मोक्षकी प्राप्ति कभी नहीं होसकती ॥ २१७ ॥

यथार्थवादिता पुंसां श्रद्धाजननकारणम् ।
वेदस्येश्वरवाक्यत्वात् यथार्थत्वे न संशयः ॥ २१८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(पुंसाम्) पुरुषोंका (यथार्थवादिता) सत्यभाषीपना (श्रद्धाजननकारणम्) श्रद्धाके उत्पन्न होनेका कारण है (ईश्वरवाक्यत्वात्) ईश्वरका वाक्य होनेके कारण (वेदस्य) वेदके (यथार्थत्वे) सत्य होनेमें(संशयः) संदेह (न) नहीं है ॥ २१८ ॥

(भावार्थ)-पुरुषोंका सत्यभाषीपना ही उनमें श्रद्धा (विश्वास) उत्पन्न होनेका कारण होता है, क्योंकि-वेद सत्यस्वरूप ईश्वरका वाक्य है, इस कारण

वेदके यथार्थ होनेमें संदेह नहीं होसकता ॥ २१८ ॥

मुक्तस्येश्वररूपत्वाद् गुरोर्वागपि तादृशी ।
तस्मात्तद्वाक्ययोः श्रद्धा सतां सिद्ध्यति धीमताम् २१९

अन्वय और पदार्थ-(मुक्तस्य) मुक्तपुरुषके (ईश्वररूपत्वात्) ईश्वररूप होनेसे (गुरोः) गुरुका (वाक् अपि) वाक्य भी (तादृशी) ईश्वरके वाक्यकी समान यथार्थ [अस्ति] है (तस्मात्) तिससे (धीमताम्) बुद्धिमान् (सताम्) सत्पुरुषोंकी (तद्वाक्ययोः) ईश्वरका वाक्य वेद और गुरुके वाक्यके ऊपर (श्रद्धा) श्रद्धा (सिद्ध्यति) सिद्ध होती है ॥ २१९ ॥

(भावार्थ)-क्योंकि-मुक्त पुरुष ईश्वरभावको प्राप्त होजाते हैं, इसकारण जीवन्मुक्त गुरुका वाक्य भी वेदवाक्यकी समान यथार्थ ही होता है, इसकारण ही गुरु और वेदान्तके वाक्योंमें बुद्धिमान् साधु पुरुषोंकी एकसमान ही श्रद्धा होती है ॥ २१९॥

॥ चित्तसमाधानम् ॥

श्रुत्युक्तार्थावगाहाय विदुषा ज्ञेयवस्तुनि ।
चित्तस्य सम्यगाधानं समाधानमितीर्यते ॥२२०॥

अन्वय और पदार्थ- (श्रुत्युक्तार्थावगाहाय) श्रुतिमें कहेहुए अर्थको भले प्रकार समझनेके लिये (ज्ञेयवस्तुनि) परब्रह्मरूप जाननेयोग्य वस्तुके विषयमें (चित्तस्य) चित्तका (सम्यक्) भलेप्रकार (आधानम्) एकाग्र करना(समाधानम्) समाधान है (इति) ऐसा (विदुषा) विद्वान् करके (ईर्यते) कहाजाता है॥२२०॥

(भावार्थ)-वेद में जो कुछ कहा है उसको भले प्रकार समझने के लिये उस परब्रह्मरूप जानने योग्य वस्तु में जो चित्तकी एकाग्रता होना है उसका ही नाम समाधान है, ऐसा विद्वानोंका कथन है ॥ २२० ॥

चित्तस्य साध्यैकपरत्वमेव
पुमर्थसिद्धेर्नियमेन कारणम् ।
नैवान्यथा सिद्ध्यति साध्यमीषत्
मनःप्रसादे विफलः प्रयत्नः ॥ २२१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(पुमर्थसिद्धेः) पुरुषार्थ सिद्धि के लिये (चित्तस्य) अन्तःकरणका (साध्यैकपरत्वम्-एव) साध्य वस्तु में एक साथ तत्परता ही (निय-

मेन) नियत रूप से (कारणम्) कारण है (अन्यथा) और प्रकार से (साध्यम्) इच्छितकार्य (न-एव) कदापि नहीं (सिद्धयति) सिद्ध होता है (ईषत्) कुछ ही (मनःप्रसादे) मनकी निर्मलता होनेमें (प्रयत्नः) उद्योग (विफलः) निष्फल है ॥ २२१ ॥

(भावार्थ)—अन्तःकरण यदि परब्रह्मरूप ज्ञेय वस्तुमें एकांतभावसे एकाग्र होजाय तो यह एकाग्रता ही मोक्षरूप पुरुषार्थसिद्धि का कारण होजाती है, इसके सिवाय और किसी प्रकार भी मोक्षसिद्धि नहीं होसकती। चित्तकी निर्मलता यदि थोड़ी हुई हो अर्थात् पूर्णरूपसे एकाग्रता होकर यदि चित्तमें पूरी २ निर्मलता न आई हो तो मोक्ष पानेके लिये उद्योग करना निरर्थक है ॥ २२१ ॥

चित्तञ्च दृष्टिं करणं तथान्यत्
एकत्र बध्नाति हि लक्ष्यभेत्ता ।
किञ्चित्प्रमादे सति लक्ष्यभेत्तु-
र्बाणप्रयोगो विफलो यथा तथा ॥ २२२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(लक्ष्यभेत्ता) बाणसे निशानेको भेदनेवाला (चित्तम्) चित्तको (दृष्टिम्) दृष्टिको (तथा) तैसेही (अन्यत्) और (करणम्) साधनको (च) भी (एकत्र) एकविषयमें (हि) निश्चितरूपसे (बध्नाति) बाँधता है (लक्ष्यभेत्तुः) निशानेको भेदनेवालेका (किञ्चित्) जरासा (प्रमादे सति) प्रमाद होनेपर (यथा) जैसे (बाणप्रयोगः) बाणको छोडना (विफलः) निष्फल [भवति] होता है (तथा) तैसेही [अत्र, बोध्यम्] इस विषयमें समझना चाहिये ॥ २२२ ॥

(भावार्थ)—जो पुरुष लक्ष्य (निशाने) को भेदना चाहे, उसका चित्त, दृष्टि और हाथ आदि साधन लक्ष्यकी ओर लगेहुए होने चाहियें, उस लक्ष्यको भेदनेवालेसे इस विषयमें यदि जरासी भी असावधानी होजाय तो जैसे उसका बाण छोडना वृथाही जाता है तैसे ही इस ब्रह्मके विषै चित्तको एकाग्र करने में यदि जराभी असावधानी होजाय तो उसका प्रयत्न वृथा ही जाताहै ॥ २२२ ॥

सिद्धेश्चित्तसमाधानमसाधारणकारणम् ।
यतस्ततो मुमुक्षूणां भवितव्यं सदामुना ॥ २२३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यतः) क्योंकि (चित्तसमाधानम्) चित्तकी एका-

ग्रता (सिद्धेः)ःसिद्धिका (असाधारणकारणम्) मुख्य कारण है (ततः) तिसकारण से (मुमुक्षूणाम्) मुमुक्षुओंके (अमुना) इस चित्तसमाधान करके (सदा) सर्वदा (भवितव्यम्) होना चाहिये ॥ २२३ ॥

(भावार्थ)—चित्तकी एकाग्रता ही मोक्षरूप सिद्धिकी प्राप्तिका मुख्य कारण मानीगई है, इसलिये मुमुक्षु पुरुषों को वही उपाय करना चाहिये, कि–जिससे चित्तमें एकाग्रता आवे ॥ २२३ ॥

अत्यन्ततीव्रवैराग्यं फललिप्सा महत्तरा ।
तदेतदुभयं विद्यात्समाधानस्य कारणम् ॥ २२४॥

अन्वय और पदार्थ—(अत्यंततीव्रवैराग्यम्) अतिउत्कट वैराग्य (महत्तरा) बडीभारी (फललिप्सा) मोक्षरूप फलको पानेकी इच्छा (एतत्) इन (तत्) प्रसिद्ध(उभयम्) दोनों को (समाधानस्य) चित्त की एकाग्रता का (कारणम्) कारण (विद्यात्) जानै ॥ २२४ ॥

(भावार्थ)–इसलोकके और परलोक के भोग्य पदार्थों के ऊपर अत्यन्त तीव्र वैराग्य और मोक्षको पानेकी प्रबल इच्छा, इन दो प्रसिद्ध वस्तुओं को चित्तकी एकाग्रताका साधन जानै ॥ २२४ ॥

बहिरङ्गं श्रुतिःप्राह ब्रह्मचर्यादि मुक्तये ।
शमादिषट्कमेवैतदन्तरङ्गं विदुर्बुधाः ॥ २२५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(श्रुतिः) वेद (ब्रह्मचर्यादि) ब्रह्मचर्य आदिको (मुक्तये)मुक्तिके लिये (बहिरङ्गम्) बहिरङ्ग साधन (प्राह) कहती है (एतत्) इस (शमादिषट्कम्–एव) शम आदि छः को ही (बुधाः)विद्वान्(अन्तरङ्गम्) अन्तरङ्ग साधन (विदुः) जानते हैं ॥ २२५ ॥

(भावार्थ)–वेदने ब्रह्मचर्य आदिको मोक्षका बहिरङ्गसाधन कहा है, परन्तु इन शम आदि छः को पण्डित मोक्षका अंतरङ्ग साधन कहते हैं ॥ २२५ ॥

अन्तरङ्गं हि बलवद्बहिरङ्गाद्यतस्ततः ।
शमादिषट्कं जिज्ञासोरवश्यं भाव्यमान्तरम् २२६

अन्वय और पदार्थ–(यतः) क्योंकि (हि) निश्चय (बहिरङ्गात्) बहिरङ्गसे (अंतरङ्गम्) अंतरङ्ग (बलवत्) बलवान् [भवति] होता है (ततः) तिससे (जिज्ञासोः) मुमुक्षुको (शमादिषट्कम्) शम आदि छः (अवश्यम्) अवश्य (आंतरम्) अंतरङ्ग (भाव्यम्) होने चाहिये ॥२२६ ॥

(भावार्थ)-क्योंकि बहिरङ्गकी अपेक्षा अन्तरङ्ग निश्चय अधिक बलवान् होता है, इसकारण मोक्ष चाहनेवाले पुरुषको शम आदि छः को अन्तरङ्ग साधन बना-लेना चाहिये ॥ २२६ ॥

अन्तरङ्गविहीनस्य कृतश्रवणकोटयः ।
न फलन्ति यथा योद्धुरधीरस्यास्त्रसम्पदः ॥२२७॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (अधीरस्य) धैर्यहीन (योद्धुः) योधा की (अस्त्रसम्पदः) अस्त्ररूप सम्पत्तियें (न) नहीं (फलन्ति) सफल होती हैं [तथा] तैसे ही (अन्तरङ्गविहीनस्य) शम आदि अन्तरङ्ग साधनोंसे रहित पुरुष का (कृतश्रवणकोटयः) करोड़ों वार वेदका श्रवण करना है ॥ २२७ ॥

(भावार्थ)-जिसके चित्तमें धैर्य नहीं है ऐसे योधाके पास वहुतसे अस्त्र शस्त्र होने पर भी जैसे उनसे कोई फल सिद्ध नहीं होता तैसे ही जिस मुमुक्षुको शम दम आदि अन्तरङ्ग साधनोंकी सिद्धि नहीं हुई है, वह करोड़ों वार वेदान्तको श्रवण करै तो भी उसको कुछ भी प्राप्त नहीं होता ॥ २२७ ॥

॥ मुमुक्षुत्वम् ॥

ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानात् यद् विद्वान् मोक्तुमिच्छति ।
संसारपाशबन्धं तन्मुमुक्षुत्वं निगद्यते ॥ २२८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विद्वान्) पण्डित पुरुष (ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानात्) ब्रह्म और जीव एक ही हैं ऐसे ज्ञानकी सहायतासे (संसारपाशबन्धम्) संसार रूपी फांसीके बन्धनको (मोक्तुम्) छेदन करनेको अर्थात् उससे मुक्तिपानेको (यत्) जो (इच्छति) चाहता है (तत्) वह (मुमुक्षुत्वम्) मुमुक्षु पदका अर्थ (निगद्यते) कहाजाता है ॥ २२८ ॥

(भावार्थ)-'जीव और ब्रह्ममें कुछ भेद नहीं है, दोनों एक ही हैं' ऐसे ज्ञानके द्वारा पण्डित पुरुष, संसारपाशबन्धनसे मुक्ति पानेकी जो इच्छा करता है उसको ही मुमुक्षुत्व कहते हैं ॥ २२८ ॥

साधनानां तु सर्वेषां मुमुक्षा मूलकारणम् ।
अनिच्छोरप्रवृत्तस्य क्व श्रुतिः क्व नु तत्फलम् ॥२२९॥

अन्वय और पदार्थ-(तु) किन्तु (सर्वेषाम्) सब (साधनानाम्) साधनोंमें (मुमुक्षा) मोक्षकी इच्छा (मूलकारणम्) प्रधान कारण [अस्ति]

है [यतः] क्योंकि (अनिच्छोः) इच्छाहीन (अप्रवृत्तस्य) प्रवृत्तिरहितको (श्रुतिः) वेद (क्व) कहां (तत्फलम्) उसका फल (क्व नु) कहां ॥ २२३ ॥

(भावार्थ)-सब प्रकारके साधनोंमें मोक्षको पानेकी इच्छा ही प्रधान साधन हैं, क्योंकि-जिसको मोक्षपानेकी इच्छा नहीं है, उसकी मोक्षके साधनमें प्रवृत्ति ही नहीं होगी, ऐसे पुरुषको वेद ही क्या करेगा ? और वेदका बताया हुआ फल भी उसको कहाँसे मिलेगा ? ॥ २२६ ॥

तीव्रममध्यमन्दातिमन्दभेदाच्चतुर्विधा ।

मुमुक्षा तत्प्रकारोऽपि कीर्त्यते श्रूयतां बुधैः ॥२३०॥

अन्वय और पदार्थ-(तीव्रमध्यममन्दातिमन्दभेदात्) तीव्रमध्यम, मन्द और अतिमन्द भेदसे (मुमुक्षा) मोक्षकी इच्छा (चतुर्विधा चार प्रकारकी है (तत्प्रकारः अपि) वह चार भेद भी (कीर्त्यते) कहाजाता है (बुधैः) पण्डितों करके (श्रूयताम्) सुनाजाय ॥ २३० ॥

(भावार्थ)-मुमुक्षा कहिये मोक्षकी इच्छा चार प्रकारकी है तीव्र, मध्यम, मन्द और अतिमन्द, इन चार भेदोंका भी वर्णन करते हैं, पण्डितजन सुनें २३०

तापैस्त्रिभिर्नित्यमनेकरूपैः

सन्तप्यमानः क्षुभितान्तरात्मा ।

परिग्रहं सर्वमनर्थबुद्ध्या

जहाति सा तीव्रतरा मुमुक्षा ॥ २३१ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अनेकरूपैः) बहुत प्रकारके (त्रिभिः) तीन (तापैः) तापों करके (नित्यम्) प्रतिदिन (संतप्यमानः) संतापको प्राप्त हुआ (क्षुभितान्तरात्मा) अत्यन्त व्याकुलचित्त पुरुष (अनर्थबुद्ध्या) बुरा करनेवाला है ऐसी बुद्धिसे (सर्वम्) सब (परिग्रहम्) संसर्गको [यया] जिस इच्छा के द्वारा (जहाति) त्यागता है (सा) वह (मुमुक्षा) मोक्षकी इच्छा (तीव्रतरा) अत्यन्त तीव्र है ॥ २३१ ॥

(भावार्थ)—मूलमें आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक भेदसे तीन प्रकारके होने पर भी जो अनेकों प्रकारसे सन्तप्त करते हैं ऐसे दुःखोंके द्वारा सदा पीड़ित और व्याकुलचित्त होकर साधक सब प्रकारका आसक्तिको 'यह अनर्थकारी है, ऐसा मानकर जिस इच्छासे उस सब परिग्रहको छोड़ देता है वह इच्छा

हीं अत्यन्त तीव्र मुमुक्षा है ॥ २३१ ॥

तापत्रयं तीव्रमवेक्ष्य वस्तु
दृष्ट्वा कलत्रं तनयान् विहातुम् ।
मध्ये द्वयोर्लोडनमात्मनो यत्
सैषा मता माध्यमिकी मुमुक्षा ॥ २३१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तीव्रम्) भयानक (तापत्रयम्) तीनों तापोंको (अवेक्ष्य) देखकर (वस्तु) परमवस्तुको (दृष्ट्वा) देखकर (कलत्रम्) स्त्रीको (तनयान्) पुत्रोंको (विहातुम्) त्यागनेके लिये (द्वयोः) दोनोंके (मध्ये) मध्यमें (आत्मनः) अपना (यत्) जो (लोडनम्) संशय है (एषा) यह (सा) वह (माध्यमिकी) मध्यम श्रेणी की (मुमुक्षा) मोक्षकी इच्छा (मता) मानीगई है ॥ २३२ ॥

भावार्थ-तीन प्रकारके भयावने तापों का अनुभव करके और कौन वस्तु परमार्थ सत् है इस बातको जानकर यदि कोई, मुक्तिकी इच्छा होने पर भी स्त्री और पुत्रोंको त्यागने के लिये उत्कण्ठित होकर, ' संन्यास और संसार इन दोनों मेंसे किसका अवलम्बन करूँ ' ऐसे सन्देह के झूले पर चढ़कर झोटे खानेलगे अर्थात् एक बातका पक्का निश्चय न करसके तो उसकी जो मुमुक्षा है वह मध्यम मुमुक्षा कहलाती है ॥ २३२ ॥

मोक्षस्य कालोऽस्ति किमद्य मे त्वरा
भुक्त्वैव भोगान् कृतसर्वकार्यः ।
मुक्त्यै यतिष्येऽहमथेति बुद्धि-
रेषैव मन्दा कथिता मुमुक्षा ॥ २३३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(मोक्षस्य) मोक्षके [साधनाय] साधन करनेके लिये (कालः) समय (अस्ति) है (मे) मुझे (त्वरा) शीघ्रता (किम्) क्या है (भोगान्) भोगोंको (भुक्त्वा-एव) भोगकर ही (कृतसर्वकार्यः) सब काम पूरे करके (अथ) अनन्तर (अहम्) मैं (मुक्त्यै) मुक्तिके लिये (यतिष्ये) यत्न करूँगा (एषा) यह (बुद्धिः, एव) बुद्धि ही (मन्दा) मन्द (मुमुक्षा) मोक्षकी इच्छा (कथिता) कही है ॥ २३३ ॥

(भावार्थ)-मोक्ष की साधना करने के लिये अभी बहुत समय पड़ा है, अभी मुझे मोक्ष पानेके लिये शीघ्रता करनेकी क्या आवश्यकता है ? पहिले मुझे जो कुछ कामकरने हैं उनको करलूं और इच्छानुसार जहांतक होसके भोगों का भोगलूं, फिर मैं मुक्ति पाने के लिये उद्योग करलूंगा, ऐसी बुद्धि को ही मन्द मुमुक्षा कहते हैं ॥ २३३ ॥

मार्गे प्रयातुर्मणिलाभवन्मे
लभ्येत मोक्षो यदि नाम धन्यः ।
इत्याशया मूढधियां मतिर्या
सैषातिमन्दाऽभिमता मुमुक्षा ॥ २३४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रयातुः) जानेवाले को (मार्गे) मार्ग में (मणिलाभवत्) मणि मिलजाने की समान (मे) मुझ को (मोक्षः) मोक्ष (यदि) जो (लभ्येत) मिलजाय (धन्यः,नाम) मैं धन्य होजाऊं (इति आशया) ऐसी आशा करके (मूढधियाम्) मूढ़मतियों की (या) जो (मतिः) बुद्धि [भवति] होती है (सा) वह (एषा) यह (अतिमन्दा) अतिमन्द नामवाली (मुमुक्षा) मोक्ष की इच्छा (अभिमता) मानीगई है ॥ २३४ ॥

(भावार्थ)-जैसे कोई पुरुष मार्ग में चला जारहा है, उस समय अचानक उस मार्ग में एक मणि पड़ी हुई है यह देखकर वह उसको उठालेय, तैसे ही मैं भी इस संसार आश्रम के कर्म को कर रहा हूं, भाग्यवश यदि मुझे मोक्ष की प्राप्ति होजाय तो मैं उस मणि को पाने वाले बटोही की समान धन्य होजाऊंगा, ऐसी आशा के साथ मूढ़मतियों की जो बुद्धि होती है, उसको ही अतिमन्द मुमुक्षा कहते हैं ॥

जन्मानेकसहस्रेषु तपसाराधितेश्वरः ।
तेन निःशेषनिर्धूतहृदयस्थितकल्मषः ॥ २३५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(जन्मानेकसहस्रेषु) अनेकों सहस्र जन्मों में (तपसा) तप के द्वारा (आराधितेश्वरः) जिसने ईश्वर की आराधना की है ऐसा पुरुष (तेन) उस ईश्वर की आराधना के द्वारा (निःशेषनिर्धूतहृदयस्थितकल्मषः) पूर्णरूप से दूर करदिया है हृदय में का पाप जिसने ऐसा [भवति] होजाता है ॥

(भावार्थ)-अनेकों सहस्रों जन्मों में तपस्या करके जो पुरुष परमेश्वर की

आराधना करता चलाआरहा है और उस ईश्वर की आराधना के प्रभाव से जिसके हृदय में का सब प्रकार का पाप पूर्णरूप से नष्ट होगया है ॥ २३५ ॥

शास्त्रविद् गुणदोषज्ञो भोग्यमात्रे विनिःस्पृहः ।
नित्यानित्यपदार्थज्ञो मुक्तिकामो दृढव्रतः ॥२३६॥

अन्वय और पदार्थ—(शास्त्रवित्)शास्त्रका जाननेवाला (गुणदोषज्ञः) गुण और दोषका विवेकी (भोग्यमात्रे) सबप्रकारके भोगके पदार्थोंमें (विनिःस्पृहः) जिसकी अभिलाषा दूर होगई है (नित्यानित्यपदार्थज्ञः) नित्य और अनित्य पदार्थों के स्वरूपको जाननेवाला (मुक्तिकामः) मुक्तिका अभिलाषी (दृढव्रतः) कार्य करनेके दृढ निश्चय वाला ॥ २३६ ॥

(भावार्थ)—जिसको शास्त्रका ज्ञान है, गुण और दोष किसको कहते हैं इस बातको जो समझाहुआ है, सबही प्रकारके भोगके पदार्थोंमेंसे जिसकी इच्छा हट-गई है, नित्य वस्तु कौन है और अनित्य वस्तु कौन है इस बातको जो भलेप्रकार समझगया है, जिसको मुक्तिकी इच्छा है और जो पक्के निश्चयके साथ कर्त्तव्य कर्म को करता है ॥ २३६ ॥

निष्टप्तमाग्निना पात्रमुद्धृत्य त्वरया यथा ।
जहाति गेहं तद्वच्च तीव्रमोक्षेच्छया द्विजः॥२३७॥

अन्वय और पदार्थ—(अग्निना) अग्निसे (निष्टप्तम्) अत्यन्त तपेहुए (पात्रम्) पात्रको (उद्धृत्य) हाथसे उठाकर (यथा) जैसे (त्वरया) शीघ्र-तासे (जहाति) छोड़देता है (तद्वत्) तैसेही (द्विजः) जो ब्राह्मण (तीव्रमोक्षे-च्छया) अतिप्रबल मोक्षकी इच्छा से (गेहम्) अपने घरको (जहाति) छोड़ देता है ॥ २३७ ॥

(भावार्थ)—अग्निसे अत्यन्त तपेहुए पात्रको हाथसे उठाकर पुरुष जैसे तत्कालही उसको छोड़देता है, तैसे ही जो द्विज मोक्षकी तीव्र इच्छासे एकायकी अपने घरको छोड़देता है ॥ २३७ ॥

स एव सद्यस्तरति संसृतिं गुर्वनुग्रहात् ।
यस्तु तीव्रमुमुक्षुः स्यात्स जीवन्नेव मुच्यते ॥२३८॥

अन्वय और पदार्थ—(सः, एव) वह ही (गुर्वनुग्रहात्) गुरुकी कृपासे (सद्यः) अतिशीघ्र (संसृतिम्) संसारको (तरति) तरजाता है (तु) परन्तु

(यः) जो पुरुष (तीव्रमुमुक्षुः) अतिप्रबल मोक्षकी इच्छावाला (स्यात्) हो (सः) वह (जीवन्-एव) जीता हुआ ही (मुच्यते) मुक्त होजाता है ॥ २३८॥

(भावार्थ)-जिसका ऊपरके श्लोकोंमें वर्णन किया है वह पुरुषही गुरुकी कृपासे बड़ी ही शीघ्र संसारके बन्धनसे छूटजाता है, जिसको मोक्षके लिये बड़ी ही तीव्र इच्छा उत्पन्न होजाती है वह जीवित दशामें ही मुक्ति पाजाता है अर्थात् जीवन्मुक्त होजाता है॥ २३८ ॥

जन्मान्तरे मध्यमस्तु तदन्यस्तु युगान्तरे ।
चतुर्थः कल्पकोट्यां वा नैव बन्धाद्विमुच्यते २३९

अन्वय और पदार्थ-(तु) किन्तु (मध्यमः) मध्यम श्रेणी की मुमुक्षावाला (जन्मान्तरे) दूसरे जन्ममें [मुच्यते] छूटता है (तु) और (तदन्यः) मंद मुमुक्षावाला पुरुष (युगांतरे) अन्य युगमें [मुच्यते] छूटता है (चतुर्थः) अति-मंद मुमुक्षावाला चौथी श्रेणीका पुरुष (कल्पकोट्याम्) करोड़ों कल्प बीतजाने पर (बंधात्) बंधनसे (विमुच्यते, वा) कदाचित् छूटजाता है [वा] या (नैव) नहीं छूटता है ॥ २३९॥

(भावार्थ)-जिसको मोक्ष की इच्छा मध्यम श्रेणी की होती है वह पुरुष दूसरे जन्म में मोक्ष पाता है, जिसकी मुमुक्षा मन्द होती है वह पुरुष दूसरे युग में मोक्ष पासकता है, परन्तु जिसकी मुमुक्षा अत्यंत मंद होती वह पुरुष करोड़ों कल्प बीतजाने पर भी संसारबन्धन से मुक्ति पावेगा या नहीं इसमें संदेह ही है॥ २३९॥

नृजन्म जन्तोरतिदुर्लभं विदु-
स्ततोऽपि पुंस्त्वं च ततो विवेकः ।
लब्ध्वा तदेतत् त्रितयं महात्मा
यतेत मुक्त्यै सहसा विरक्तः ॥ २४० ॥

अन्वय और पदार्थ-(जन्तोः) प्राणीके (नृजन्म) मनुष्यजन्म को (अति-दुर्लभम्) अत्यंत दुर्लभ (विदुः) जानते हैं (पुंस्त्वम्) पुरुष होना (ततः,अपि) तिससे भी [दुर्लभम्,विदुः] दुर्लभ मानते हैं (च) और (विवेकः) विवेक (ततः) तिससे [अपि] भी [दुर्लभः] दुर्लभ है (तत्) तिस (एतत्) इस (त्रितयम्) तीनों को (लब्ध्वा) पाकर (महात्मा) महात्मा पुरुष (सहसा) शीघ्र ही (विरक्तः) विरक्त होता हुआ (मुक्त्यै) मुक्ति के लिये (यतेत) यत्न करै।

(भावार्थ)-इस संसार में प्राणीको पहिले तो मनुष्यका जन्म ही प्राप्त होना कठिन है और मनुष्य होने पर भी पुरुष होना और भी दुर्लभ है, पुरुष भी होजाय तो भले बुरे का विचार करने का बुद्धि प्राप्त होना अति दुर्लभ है ऐसा विज्ञ पुरुषों का विचार है, इसलिये जिसको भाग्यवश ये अतिदुर्लभ तीन बातें प्राप्त होजायँ उस महात्मा पुरुषको चाहिये, कि-यथाशक्ति शीघ्र ही संसार से विरक्त होकर मुक्ति पाने के लिये उद्योग करै॥ २४०॥

पुत्रमित्रकलत्रादिसुखं जन्मनि जन्मनि ।
मर्त्यत्वं पुरुषत्वञ्च विवेकश्च न लभ्यते ॥ २४१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(जन्मनि, जन्मनि) जन्म जन्म में (पुत्रमित्रकलत्रादिसुखम्) पुत्र मित्र स्त्री आदि के साथ होने वाला सुख (लभ्यते) मिलजाता है (मर्त्यत्वम्) मनुष्य का जन्म (पुरुषत्वम्) पुरुषपना (च) और (विवेकः) सदसद्विवेक (च) भी (न) नहीं [लभ्यते] मिलता है ॥ २४१

(भावार्थ)-हरएक जन्म में पुत्र, मित्र, स्त्री आदि के साथ रहने से होनेवाला सुख मिलजाता है, मनुष्य का जन्म, पुरुष होना और सत् असत् का विवेक ये तीनों बातें चाहे तिस जन्म में नहीं मिलसकतीं ॥ २४१ ॥

लब्ध्वा सुदुर्लभतरं नरजन्म जन्तु-
स्तत्रापि पौरुषमतः सदसद्विवेकम् ।
संप्राप्य चैहिकसुखाभिरतो यदि स्यात्
धिक् तस्य जन्म कुमतेः पुरुषाधमस्य २४२

अन्वय और पदार्थ—(जंतुः) प्राणी (सुदुर्लभतरम्) अत्यंत दुर्लभ (नरजन्म) मनुष्यजन्मको (लब्ध्वा) पाकर (तत्रापि) उसमें भी (पौरुषम्) पुरुषपने को (अतः) इसके अनंतर (सदसद्विवेकम्) सत् असत्के विवेकको (च) भी (संप्राप्य) पाकर (यदि) जो (ऐहिकसुखाभिरतः) इस लोकके सुखमें आसक्त (स्यात्) होजाय [तदा] तो (तस्य) उस (कुमतेः) खोटी बुद्धिवाले (पुरुषाधमस्य) नीच पुरुषके (जन्म) जन्म को (धिक्) धिक्कार है॥२४२॥

(भावार्थ)—इसलिये परमदुर्लभ मनुष्यजन्म को पाकर और उस जन्ममें पुरुषपने को तथा नित्य अनित्य पदार्थोंके विवेकको पाकर भी जीव, यदि संसारके विषयभोगमें ही फँसा हुआ पडारहे तो उस नष्टबुद्धि नीच पुरुषके जन्मलेने को ही धिक्कार है॥ २४२॥

खादते मोदते नित्यं शुनकः शूकरः खरः ।
तेषामेषां विशेषः को वृत्तिर्येषां तु तैः समा २४३

अन्वय और पदार्थ-(शुनकः) कुत्ता (शूकरः) सुअर (खरः) गधा (नित्यम्) प्रतिदिन (खादते) खाता है (मोदते) आनंदका अनुभव करता है (येषाम्) जिन मनुष्यों का (वृत्तिः) व्यवहार (तैः समा) उन कुत्ते आदि कोंके समान [भवति] होता है (तेषाम्) तिनका (एषाम्) इनका (कः)क्या (विशेषः) भेद [अस्ति] है ॥ २४३ ॥

(भावार्थ)—कूकर, शूकर, और गधे आदिभी प्रतिदिन खाते पीते हैं और आनंद उडाते हैं, जिन मनुष्यों का व्यवहार अर्थात् खाना पीना और आनंद उडाना आदि इन कूकर शूकर आदिकी समान ही होताहै. फिर उन कूकर शूकर आदि और इन मनुष्योंमें भेद ही क्या रहा ? तात्पर्य यह है कि-जो जीव केवल खाने पीने और मौज उडानेमें ही अपने समय को बितादेते हैं उनका जन्म कूकर शूकर आदिकी समान यों ही जाता है ॥ २४३ ॥

यावन्नाश्रयते रोगो यावन्नाश्रयते जरा ।
यावन्न धीर्विपर्येति यावन्मृत्युं न पश्यति २४४
तावदेव नरः स्वस्थः सारग्रहणतत्परः ।
विवेकी प्रयतेताशु भवबन्धविमुक्तये ॥ २४५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यावत्) जबतक (रोगः) रोग [शरीरम्] शरीर को (न) नहीं (आश्रयते) आश्रय करता है (यावत्) जबतक (जरा) वृद्धावस्था (न) नहीं (आश्रयते) घेरती है (यावत्) जबतक (धीः) बुद्धि (न) नहीं (विपर्येति) विपरीत होती है (यावत्) जब तक (मृत्युम्) मृत्युको (न) नहीं (पश्यति) देखता है (तावत्-एव) तबतक ही (सारग्रहणतत्परः) सार को ग्रहण करनेमें तत्पर हुआ (स्वस्थः) नीरोग (विवेकी) विचारवान् (नरः) मनुष्य (भवबंधविमुक्तये) संसार बंधन से छूटनेके लिये (आशु) शीघ्र (प्रयतेत) उद्योग करलेय ॥ २४४ ॥ २४५ ॥

(भावार्थ)-जब तक रोग आकर शरीर को न घेरलेय, जब तक बुढ़ापा आकर शरीर के ऊपर अधिकार न जमालेय, जबतक बुद्धि सावधान बनी रहै

और जबतक मृत्यु आकर सामने न खड़ी होजाय, उससे पहिले ही सारग्राही स्वस्थपुरुष विवेकसम्पन्न होकर संसारबंधनसे मुक्तिपाने के लिये शीघ्रही यत्न करलेय

देवर्षिपितृमर्त्यर्णबन्धमुक्तास्तु कोटिशः ।
भवबन्धविमुक्तस्तु यः कश्चिद् ब्रह्मवित्तमः ।२४६।

अन्वय और पदार्थ-(देवर्षिपितृमर्त्यर्णबंधमुक्ताः, तु) देवऋण, पितृऋण और ऋषिऋण के बंधन से मुक्ततो (कोटिशः) करोड़ों पुरुष [भवन्ति] होते हैं (तु) किंतु (यःकश्चित्) कोई एकाध (ब्रह्मवित्तमः) ब्रह्मज्ञानियों में उत्तम पुरुष [एव] ही (भवबंधविमुक्तः) संसारबंधन से मुक्त [भवति] होता है ॥

(भावार्थ)-मनु आदि धर्मशास्त्रोंमें लिखा है,कि-पुरुष देवऋण ऋषिऋण और पितृऋण इन तीन ऋणोंसे बंधाहुआ उत्पन्न होता है। तदनंतर यज्ञ होम पूजाआदि करके देवऋण से वेद का पठन पाठन आदि करके ऋषिऋण से और संतान उत्पन्न करके पितृऋण से छूटता है, ऐसे यज्ञ होमादि, वेदाध्ययन और संतान उत्पन्न करके देवता, ऋषि और पितरों के ऋणबंधन से छूटनेवाले तो संसार में करोड़ों मनुष्य हुआ करते हैं,परंतु परब्रह्मके साक्षात्कार के द्वारा संसारबंधन से एकसाथ छूट जाने वाला महात्मा,तो कदाचित् कोई एकाधही देखने में आताहै२४६

अन्तर्बन्धेन बद्धस्य किं बहिर्बन्धमोचनैः ।
तदन्तर्बन्धमुक्त्यर्थं क्रियतां कृतिभिः कृतिः २४७

अन्वय और पदार्थ—(अन्तर्बन्धेन) भीतरी बन्धन के द्वारा (बद्धस्य) बँधेहुएका (बाहर्बन्धमोचनैः) बाहरके बन्धनोंको खोल देनेसे (किम्) क्या लाभ है ? (तत्) तिसकारणसे (कृतिभिः) विद्वानों करके (अंतर्बन्धमुक्त्यर्थम्) भीतरी बन्धन से छूटनेके लिये (कृतिः) प्रयत्न (क्रियताम्) कियाजाय २४७

(भावार्थ)-जो भीतरी बंधनसे सदा बँधाहुआ है उस को, ऊपर कहे बाहरीबंधनोंसे छूटजाने में भी क्या लाभ है ? इसलिये समर्थ बुद्धिमानोंको चाहिये, कि-वे भीतरी बंधनसे छूटनेके लिये प्रयत्न करें ॥ २४७ ॥

कृतिपर्यवसानैव मता तीव्रमुमुक्षुता ।
अन्या तु रञ्जनामात्रा यत्र नो दृश्यते कृतिः।२४८।

अन्वय और पदार्थ-(तीव्रमुमुक्षुता) मोक्ष पानेके लिये तीव्रइच्छा (कृतिपर्यवसाना) मोक्ष पानेके लिये प्रयत्न ही है परिणाम जिसका ऐसी (मता)मानी-

गई है (यत्र) जिसमें (कृतिः) प्रयत्न (न) नहीं (दृश्यते) दीखता है [सा] वह (अन्य) तीव्रसे अन्य है (तु) किंतु (रञ्जनामात्रा) सामान्य अनुराग-मात्र है ॥ २४८ ॥

(भावार्थ)–जो मोक्षकी इच्छाके काममें पर्यवसित होय अर्थात् केवल मोक्ष पानेकी इच्छासे कियाहुआ प्रयत्न तीव्र मुमुक्षा कहलाता है और जिस मोक्ष की इच्छा में कार्य अर्थात् मोक्ष पाने के लिये प्रयत्न देखने में न आवे, इच्छा तो हो परन्तु उसको पाने के लिये प्रयत्न कुछ भी देखने में न आवे वह मोक्ष की इच्छा तीव्र मुमुक्षा नहीं है, किन्तु वह मोक्ष के लिये साधारण अनुराग मात्र है ॥२४८॥

गेहादि सर्वमपहाय लघुत्वबुद्ध्या
सौख्येच्छया स्वपतिनानलमाविविक्षोः ।
कान्ताजनस्य नियता सुदृढा त्वरा या
सैषा फलान्तगमने करणं मुमुक्षोः २४९

अन्वय और पदार्थ–(लघुत्वबुद्ध्या) ये अत्यन्त तुच्छ हैं ऐसी बुद्धि से (गेहादि) घर आदि (सर्वम्) सबको (अपहाय) त्याग कर (स्वपतिना) अपने पति के साथ (सौख्येच्छया) परलोक में सुख भोगने की इच्छा से (अनलम्-आविविक्षोः) अग्नि में प्रवेश करने की इच्छा वाली (कांताजनस्य)पति से प्रेम करने वाली स्त्रियों की (या) जो (नियता) नियत (सुदृढा ; अत्यंत दृढ (त्वरा) शीघ्रता है (सा) वह (मुमुक्षोः) मोक्ष चाहने वाले की (एषा) यह त्वरा (फलान्तगमने) मोक्षरूप अंतिम फलको पानेमें (करणम्) हेतु [भवति] होती है

(भावर्थ)–ये कुछभी नहीं है अत्यंत तुच्छ है ऐसा विचार कर घर आदि सब प्रकारके भोग पदार्थों को त्यागकर जिसप्रकार पतिव्रता स्त्री परलोक में पति के साथ समागम का सुख भोगने की इच्छा से अग्नि में प्रवेश करने को जैसी अति दृढ़ और अपरिहार्य शीघ्रता करती है, मोक्ष पाने के लिये मुमुक्षु पुरुष को भी तैसी ही दृढ़ और नियत त्वरा होय तो वह मोक्ष पाने की कारण होती है ॥ २४९ ॥

नित्यानित्यविवेकश्च देहक्षणिकतामतिः ।
मृत्योर्भीतिश्च तापश्च मुमुक्षावृद्धिकारणम्॥२५०॥

अन्वय और पदार्थ–(नित्यानित्यविवेकः) नित्य और अनित्य वस्तु का ज्ञान (च) और (देहक्षणिकतामतिः) यह शरीर क्षणभंगुर है ऐसी बुद्धि (च)

और (मृत्योः) मृत्यु से (भीतिः) भय (च) और (तापः) त्रिविध ताप (मुमुक्षावृद्धिकारणम्) मोक्ष की अभिलाषा बढ़ने का कारण [भवति] होता है ॥

(भावार्थ)-एक ब्रह्म ही नित्य है, शेष संसार के सब ही पदार्थ अनित्य हैं इसप्रकार का ज्ञान होना, यह शरीर एकदिन क्षणभर में नष्ट होजायगा ऐसा निश्चय, मरण से भय और आध्यात्मिक, आधिदैविक, तथा आधिभौतिक ये तीन प्रकार के ताप संसार में बड़ा ही व्याकुल करते हैं, ये बातें मोक्ष के विषय में अभिलाषा को बढ़ाती हैं ॥ २५० ॥

शिरो विवेकस्त्वत्यन्तं वैराग्यं वपुरुच्यते ।
शमादयः षडङ्गानि मोक्षेच्छा प्राण उच्यते २५१

अन्वय और पदार्थ-(विवेकः) नित्य अनित्य वस्तु के स्वरूप का निर्णय (शिरः) मस्तकरूप (अत्यन्तम्) अधिकबढ़ाहुआ (वैराग्यम्-तु) वैराग्य तो (वपुः) शरीर (उच्यते) कहाजाता है (शमादयः) शम आदि (षट्)छः (अङ्गानि) अङ्ग [उच्यंते] कहेजाते हैं (मोक्षेच्छा) मोक्ष की इच्छा (प्राणः) प्राण (उच्यते) कहाजाता है ॥ २५१ ॥

(भावार्थ)-नित्य अनित्य वस्तु का विवेक ही मस्तकरूप से कहागया है, तीव्र वैराग्य ही शरीर कहागया है, शम दम आदि छः साधन हाथ पैर आदि अङ्ग कहेगए हैं और मोक्षपाने के लिये इच्छाहोना ही उस शरीर में प्राण हैं ॥ २५१ ॥

ईदृशाङ्गसमायुक्तो जिज्ञासुर्युक्तिकोविदः ।
शूरो मृत्युं निहन्त्येव सम्यग्ज्ञानासिना ध्रुवम् ॥

अन्वय और पदार्थ-(ईदृशाङ्गसमायुक्तः) ऐसे अङ्गोंसे युक्त (जिज्ञासुः) तत्त्वज्ञान का अभिलाषी युक्तिकोविदः) तर्कके स्वरूप को जानने वाला (शूरः) निर्भय पुरुष (सम्यक्) यथार्थ (ज्ञानासिना) ज्ञानरूप तलवार के द्वारा (मृत्युम्) मृत्युको (ध्रुवम्-एव) अवश्य ही (निहन्ति) नष्ट करता है ॥ २५२ ॥

(भावार्थ)-जिसको इस प्रकार अङ्ग सिद्ध होगए हैं जो तत्त्वज्ञानका अभिलाषी है, कौन सी युक्ति ठीक है और कौन सी युक्ति ठीक नहीं है, इस बात को जो भले प्रकार जानगया है वह निर्भयशूर पुरुष ही तत्त्वज्ञानरूप तलवार को हाथ में लेकर निःसंदेह अज्ञानरूप मृत्यु का नाश करसकता है ॥ २५२ ॥

उक्तसाधनसम्पन्नो जिज्ञासुर्यतिरात्मनः ।
जिज्ञासार्थं गुरुं गच्छेत्समित्पाणिर्नयोज्ज्वलः २५३

अन्वय और पदार्थ-(उक्तसाधनसम्पन्नः) पीछे कहेहुए साधनों की सिद्धि को प्राप्त (आत्मनः) आत्मा का (जिज्ञासुः) तत्त्वज्ञान चाहने वाला (यतिः) साधक पुरुष (समित्पाणिः) हाथ में समिधा लिये (नयोज्वलः) विनय से प्रकाशित होताहुआ (जिज्ञासार्थं) आत्मा के स्वरूपको जानने के लिये (गुरुम्, गच्छेत्) गुरु के समीप जाय ॥ २५३ ॥

(भावार्थ)-पहिले जो शम दम आदि साधन कह आये हैं उनको सिद्ध करने के अनंतर आत्मा का तत्त्व कैसा है इस बातको जानने के लिये जिसको उत्कण्ठा होरही है ऐसा साधक पुरुष गुरुको भेट करने के लिये और कुछ न होतो थोड़ी सी समिधायें ही हाथ में लेकर विनय के साथ शरीर को प्रकाशित करके ब्रह्म का तत्त्व जानने के लिये गुरु की शरणमें जाय ॥ २५२ ॥

श्रोत्रियो ब्रह्मनिष्ठो यः प्रशान्तः समदर्शनः ।
निर्ममो निरहङ्कारः निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ॥२५४॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्षः करुणामृतसागरः ।
एवंलक्षणसम्पन्नः स गुरुर्ब्रह्मवित्तमः ॥
उपासाद्यः प्रयत्नेन जिज्ञासोः साध्यसिद्धये २५५

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (श्रोत्रियः) गुरुके यहां रहकर वेद पढ़ा हुआ (ब्रह्मनिष्ठः) ब्रह्मके ध्यानमें तत्पर (प्रशान्तः) परमशान्तस्वभाव (समदर्शनः) सब प्राणियोंमें एकसमान दृष्टि रखनेवाला (निर्ममः) ममतारहित (निरहङ्कारः) अहङ्कारशून्य (निर्द्वन्द्वः) शीत उष्ण सुख दुःख आदि द्वन्द्वोंको सहनेवाला (निष्परिग्रहः) आसक्तिशून्य (अनपेक्षः) किसी विषयकी अपेक्षा न करनेवाला (शुचिः) भीतरी और बाहरी शौचसम्पन्न (दक्षः) चतुर (करुणामृतसागरः) दयारूपी अमृतका समुद्र (एवंलक्षणसम्पन्नः) ऐसे लक्षणोंसे युक्त (ब्रह्मवित्तमः) ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ [भवेत्] हो (सः) वह (गुरुः) गुरु (जिज्ञासोः) जिज्ञासुको (साध्यसिद्धये) कार्यसिद्धिके लिये (प्रयत्नेन) प्रयत्न करके (उपासाद्यः) शरणलेने योग्य है ॥ २५५ ॥

(भावार्थ)-जिसने गुरुके यहां रहकर अङ्गोंसहित वेद शास्त्रको पढ़ा हो, सर्वदा ब्रह्मके ध्यानमें तत्पर रहनेवाला, परमशान्तचित्त, सकल प्राणियोंमें समदृष्टि रखनेवाला, ममताहीन, निरभिमान, सुख दुःख आदि द्वंद्वोंका सहिष्णु, संसारमें आसक्तिरहित, किसीकी भी अपेक्षा न रखनेवाला, भीतर और बाहरकी शुद्धि रखनेवाला, उपदेश देनेमें चतुर परमदयालु और ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हो वह गुरु होनेके योग्य होता है, तत्त्वज्ञान चाहनेवाला पुरुष अपना इष्टसिद्धिके लिये ऐसे लक्षणोंवाले गुरुको यत्नके साथ प्राप्त करके उनकी शरण लेय ॥ २५४ ॥ २५५ ॥

जन्मानेकशतैः सदादरयुजा भक्त्या समाराधितो
भक्तैर्वैदिकलक्षणेन विधिना सन्तुष्ट ईशः स्वयम् ।
साक्षाच्छ्रीगुरुरूपमेत्य कृपया दृग्गोचरः सन् प्रभु-
स्तत्वं साधु विबोध्य तारयति तान् संसारदुःखार्णवात्॥

अन्वय और पदार्थ-(जन्मानेकशतैः) कितने ही सौ जन्मों करके (भक्तैः) भक्तोंके द्वारा (सदा) सर्वदा (आदरयुजा) आदरसहित (भक्त्या) भक्ति करके (वैदिकलक्षणेन) वेदविहित (विधिना) विधि के द्वारा (समाराधितः) आराधना किया हुआ (प्रभुः) समर्थ (ईशः) परमेश्वर (संतुष्टः) प्रसन्न होकर (साक्षात्) प्रत्यक्षरूप से (गुरुरूपम्) गुरुरूप को (एत्य) प्राप्त होकर (दृग्गोचरः) नेत्रों के सामने आता हुआ (कृपया) दया करके (तत्त्वम्) परमात्मा के स्वरूप को (विबोध्य) समझा कर (तान्) उन भक्तों को (संसारदुःखार्णवात्) संसाररूपी दुःखमय सागर से (तारयति) पार कर देता है २५६

(भावार्थ)-भक्तजन अनेकों सैंकड़ो जन्मों में आदर के साथ भक्ति और शास्त्र में लिखे कर्मानुष्ठान के द्वारा भगवान् की आराधना करते हैं, भगवान् भक्तों की उस आराधना से प्रसन्न होकर साक्षात् गुरुमूर्ति को धारण करते हैं और भक्तों के सामने आकर दर्शन देते हैं । वह गुरुरूपधारी परमेश्वर ही कृपा करके तत्त्व वस्तुका उपदेश भलेप्रकार देते हैं तथा भक्तोंका दुःखमय संसार सागर से उद्धार करदेते है ॥ २५६ ॥

अविद्याहृदयग्रन्थिबन्धमोक्षो भवेद्यतः ।
तमेव गुरुरित्याहुर्गुरुशब्दार्थवेदिनः ॥ २५७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(गुरुशब्दार्थवेदिनः) गुरु शब्दके अर्थको जाननेवाले (अविद्याहृदयग्रन्थिबन्धमोक्षः) अज्ञानरूप जो हृदयकी गाँठ उसके द्वारा होनेवाले संसारबंधनसे मुक्ति (यतः) जिससे (भवेत्) हो (तम्-एव) उसको ही (गुरुः इति) गुरु इस नामसे (आहुः) कहते हैं ॥ २५७ ॥

(भावार्थ)-' गुरु ' इस शब्दके अर्थको जो जानते हैं, वह कहते हैं, कि-जिसकी सहायतासे, हृदयकी अविद्यारूपी गाँठ के बनाये हुए इस संसारके बंधन से मुक्ति मिलसके वह ही गुरु है ॥ २५७ ॥

शिव एव गुरुः साक्षाद् गुरुरेव शिवः स्वयम् ।
उभयोरन्तरं किञ्चिन् न द्रष्टव्यं मुमुक्षुभिः ॥२५८॥

अन्वय और पदार्थ-(साक्षात्) स्वयम् (शिवः-एव) शिव ही (गुरुः) गुरु हैं (गुरुः-एव) गुरु ही (स्वयम्) साक्षात् (शिवः) शिव हैं (मुमुक्षुभिः) मुमुक्षुओं को (उभयोः) दोनोंमें (किञ्चित्) कुछ (अन्तरम्) भेद (न) नहीं (द्रष्टव्यम्) देखना चाहिये ॥ २५८ ॥

(भावार्थ)-साक्षात् शिव ही गुरु हैं और गुरु ही स्वयं शिव हैं, मोक्ष चाहनेवाले साधकोंको इन दोनों में जरा भी भेददृष्टि नहीं रखनी चाहिये ॥ २५८ ॥

वंधमुक्तं ब्रह्मनिष्ठं कृतकृत्यं भजेद् गुरुम् ।
यस्य प्रसादात्संसारसागरो गोष्पदायते ॥ २५९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(बंधमुक्तम्) संसारबंधन से छूटेहुए (ब्रह्मनिष्ठम्) ब्रह्मविचारमें लगेहुए (कृतकृत्यम्) कृतार्थ हुए (गुरुम्) गुरुको (भजेत्) सेवे (यस्य) जिसके (प्रसादात्) अनुग्रहसे (संसारसागरः) संसारसमुद्र (गोष्पदायते) गौ के चरणके चिह्नकी समान होजाता है ॥ २५९ ॥

(भावार्थ)-जिसकी कृपासे यह संसाररूप समुद्र गौ के चरण के चिह्नकी समान होजाता है उस संसारबन्धनसे मुक्त, ब्रह्मनिष्ठ, तत्त्वज्ञान से कृतार्थ हुए गुरु की सेवा करै ॥ २५९ ॥

शुश्रूषया सदा भक्त्या प्रणामैर्विनयोक्तिभिः ।
प्रसन्नं गुरुमासाद्य प्रष्टव्यं ज्ञेयमात्मनः ॥२६०॥

अन्वय और पदार्थ-(शुश्रूषया) सेवाके द्वारा (सदा) सर्वदा (भक्त्या) भक्तिके द्वारा (प्रणामैः) प्रणामोंके द्वारा (विनयोक्तिभिः) विनयके वचनोंके

द्वारा (प्रसन्नम्) प्रसन्न हुए (गुरुम्) गुरुको (आसाद्य) प्राप्त होकर (आत्मनः) अपनी (ज्ञेयम्) जाननेयोग्य बात (प्रष्टव्यम्) बूझनी चाहिये ।२६०।

(भावार्थ)-सेवा, सर्वदा भक्ति, प्रणाम और विनययुक्त वचनोंके द्वारा प्रसन्न हुए गुरुके पास जाकर अपने जाननेयोग्यविषयमें प्रश्न करै ॥ २६० ॥

भगवन् करुणासिंधो भवसिंधोर्भवांस्तरिः ।
यामाश्रित्याश्रमेणैव परं पारं गता बुधाः ॥ २६१॥

अन्वय और पदार्थ-(करुणासिंधो) कृपाके समुद्र (भगवन्) हे भगवन् (भवान्) आप (भवसिंधोः) संसारसागरके (तरिः) नौका हो (याम्) जिस नौकाका (आश्रित्य) आश्रय लेकर (अश्रमेण- एव) विना परिश्रमके ही (बुधाः) पण्डित (परं पारम्) परले पार (गताः) चलेगए॥ २६१ ॥

(भावार्थ)-हे करुणासागर ! हे भगवन् ! इस संसाररूप समुद्रमें आप ही मेरे लिये नौकारूप अवलम्ब हैं, आपका सहारा लेकर बहुतसे विवेकी पुरुष अनायासमें ही संसारसागरके परले पार होगए ॥ २६१ ॥

जन्मान्तरकृतानन्त-पुण्यकर्म-फलोदयः ।
अद्य सन्निहितो यस्मात्त्वत्कृपापात्रमस्म्यहम् २६२

अन्वय और पदार्थ-(अद्य) आज (जन्मान्तरकृतानन्तपुण्यकर्मफलोदयः) मैंने पहिले जन्मोंमें जो अनन्त पुण्यकर्म किये थे उनके ही फलोंका उदय (सन्निहितः) उपस्थित हुआ है (यस्मात्) क्योंकि (अहम्) मैं (त्वत्कृपापात्रम्) आपके अनुग्रहका पात्र (अस्मि) हुआ हूं ॥ २६२ ॥

(भावार्थ)-अनेकों जन्मोंमें जो मैंने पुण्यकर्म किये थे आज उन सब पुण्य कर्मोंके फलोंका उदय हुआ है, जो मैं आपके अनुग्रहका पात्र होसका हूं ॥२६२॥

संप्रीतिमक्ष्णोर्वदनप्रसाद-
मानन्दमन्तःकरणस्य सद्यः ।
विलोकनं ब्रह्मविदस्तनोति,
छिनत्ति मोहं सुगतिं व्यनक्ति ॥ २६३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी पुरुषका (विलोकनम्) देखना (अक्ष्णोः) नेत्रोंकी (संप्रीतिम्) भलेप्रकार प्रीतिको (वदनप्रसादम्) मुखके

प्रसन्नभावको (सद्यः) तत्काल ही (अन्तःकरणस्य) हृदयके (आनंदम्) आनंदको (तनोति) बढ़ाता है (मोहम्) मोहको (छिनत्ति) काटता है (सुगतिम्) सद्गतिको (व्यनक्ति) प्रकट करता है ॥ २६३ ॥

(भावार्थ)-हे भगवन् ! आपकी समान ब्रह्मज्ञानी पुरुषका दर्शन दोनो नेत्रों को तृप्ति, मुखमण्डल पर प्रसन्नता और शीघ्र ही हृदयमें आनंदकी वृद्धि करता है, मोहका छिन्न भिन्न करदेता है और आगे को शुभ होनेवाला है इस बातको सूचित करता है ॥ २६३ ॥

हुताशनानां शशिनामिनाना-
मप्यर्बुदं वापि न यन्निहन्तुम् ।
शक्नोति तद् ध्वांन्तमनंतमांतरं
हन्त्यात्मवेत्ता सकृदीक्षणेन ॥ २६४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(हुताशनानाम्) अग्नियोंकी (शशिनाम्) चंद्रमाओंकी (अपि वा) या (इनानाम्) सूर्योंकी (अर्बुदम् ,अपि) सौकरोड संख्या भी (यत्) जिसको (निहंतुम्) नष्ट करनेको (न) नहीं (शक्नोति) समर्थ होती है (तत्) उस (आन्तरम्) भीतर के (अनन्तम्) ओरछोर रहित (ध्वांतम्)अन्धकार को (आत्मवेत्ता) ब्रह्मज्ञानी सकृत् एक बार (ईक्षणेन) देखने से (हंति) नष्ट करदेता है ॥ २६४ ॥

(भावार्थ)—सौ करोड अग्नि, चंद्रमा, और सूर्य मिलकर भी जिसको दूर नहीं करसकते, उस हृदय में के अनन्त मोहरूप अंधकारको ब्रह्मज्ञानी एकवार दर्शन देकर ही नष्ट करदेता है ॥ २६४ ॥

दुष्पारे भवसागरे जनिमृतिव्याध्यादिदुःखोत्कटे
घोरे पुत्रकलत्रमित्रबहुलग्राहाकरे भीकरे ।
कर्मोत्तुङ्गतरङ्गभङ्गनिकरैराकृष्यमाणो मुहुः-
र्यातायातगतिभ्रमेण शरणं किञ्चिन्न पश्याम्यहम् ॥

अन्वय और पदार्थ--(दुष्पारे) जिसका पार बडी कठिनाई से मिलता है ऐसे (जनिमृतिव्याध्यादिदुःखोत्कटे) जन्म मरण और व्याधि आदि दुःखोंके द्वारा अति उत्कट (पुत्रकलत्रमित्रबहुलग्राहाकरे) पुत्र स्त्री और मित्र आदि

अनेकों ग्राहोंकी खान (भीकरे) भयदाय (घोरे) घोर (भवसागरे) संसार सागरमें (कर्मोत्तुङ्गतरङ्गभङ्गनिकरैः) कर्मरूपी ऊँची तरङ्गों के अनेकों उछालोंसे (मुहुः) वारंवार (आकृष्यमाणः) खेंचाजाता हुआ (यातायातगतिभ्रमेण) इसलोक और परलोक के मार्गमें जाने आने के समय होनेवाली भ्रान्तिसे [युक्तः] युक्तः (अहम्) मैं (किञ्चित्) कुछ (शरणम्) अवलम्बन (न) नहीं (पश्यामि) देखता हूं ॥ २६५ ॥

(भावार्थ)—यह संसार समुद्र की समान है, जन्म मरण और व्याधि आदि से होनेवाला दुःख ही इसमें गहरा जल भर रहा है, पुत्र स्त्री मित्र आदि अनेकों निगलजानेवाले ग्राह आदि हिंसक जंतु इसमें विचर रहे हैं, अनादिकाल से सञ्चय किये हुए शुभ और अशुभ कर्मरूप ऊंची २ उठनेवालीं तरङ्गों वाला यह समुद्र मुझे इधर उधर को लुढ़काता रहताहै, इसलोक और परलोक के मार्ग में सदा आवाजाईके कारण मेरी मति भ्रांत होरही है, ऐसे महाभयानक संसारमें मुझे कोई अवलंवन नहीं दीखता ॥ २६५ ॥

केन वा पुण्यशेषेण तव पादांबुजद्वयम् ।
दृष्टवानस्मि मामार्त्तं मृत्योस्त्राहि दयादृशा २६६

अन्वय और पदार्थ-(केन, वा) न जानेकिस (पुण्यशेषेण) वचे हुए पुण्यके प्रभावसे (तव) तुम्हारे (पादांबुजद्वयम्) दोनों चरणकमलोंको (दृष्टवान् अस्मि) देखसका हूं (आर्त्तम्) पीडित (माम्) मुझको (दयादृशा) कृपादृष्टि करके (मृत्योः) मृत्युसे (त्राहि) रक्षा करिये ॥ २६६ ॥

(भावार्थ)—हे गुरो ! न जाने किस वचेहुए पुण्यके प्रभावसे मुझे आपके चरणकमलोंका दर्शन मिलगया है, हे देव ! मैं बड़ा ही पीड़ित होरहा हूं, दयाभरी दृष्टिसे मेरी ओरको निहारकर आप मेरी जन्ममरणके चक्करसे रक्षा करिये ॥

वदन्तमेवं तं शिष्यं दृष्ट्वैव दयया गुरुः ।
दद्यादभयमेतस्मै मा भैष्टेति मुहुर्मुहुः ॥ २६७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(गुरुः) गुरु (एवम्) इसप्रकार (वदंतम्) कहते हुए (शिष्यम्) शिष्यको (दयया) दयापूर्वक (दृष्ट्वा-एव) देखकर ही (एतस्मै) इसके लिये (माभैष्ट) भय न कर (इति) इसप्रकार (मुहुः मुहुः) वार वार (अभयम्) अभय (दद्यात्) देय ॥ २६७ ॥

(भावार्थ)-जब शिष्य ऐसा कहै तो गुरु उसकी ओरको दयाभरी दृष्टिसे देखै और हे बेटा ! भय न कर ऐसा कहकर उसको बार २ अभय देय ॥२६७॥

विद्वन् मृत्युभयं जहीहि भवतो नास्त्येव मृत्युः क्वचित्,

नित्यस्यद्वयवर्जितस्य परमानन्दात्मनो ब्रह्मणः ।

भ्रान्त्या किञ्चिदवेक्ष्य भीतमनसा मिथ्या त्वया कथ्यते,

मां त्राहीति हि सुप्तवत्प्रलपनं शून्यात्मकं ते मृषा २६८

अन्वय और पदार्थ-(विद्वन्) हे पण्डित ! (मृत्युभयम्) मरणके भयका (जहीहि) त्याग (भवतः) तेरा (क्वचित्--एव) कहीं भी (मृत्युः) मरण (न) नहीं (अस्ति) है (भ्रांत्या) भ्रमसे (किञ्चित्) कुछ (मिथ्या) मिथ्या पदार्थ को (अवेक्ष्य) देखकर (भीतमनसा) मनमें डरेहुए (त्वया) तुझ करके (नित्यस्य) नित्य (द्वयवर्जितस्य) अद्वितीय (परमानंदात्मनः) परम आनंदस्वरूप (ब्रह्मणः) ब्रह्मका [मृत्युः] मरण (कथ्यते) कहाजाता है (माम्) मुझको (त्राहि) रक्षा करो (इति) ऐसा (सुप्तवत्) सोयेहुए के सा (ते) तेरा (प्रलपनम्) प्रलाप करना (शून्यात्मकम्) अर्थहीन (हि) निःसंदेह (मृषा) मिथ्या [अस्ति] है ॥ २६८ ॥

(भावार्थ)-उस समय गुरु कहै, कि -हे विद्वन् ! तू इस मरणके मिथ्या भयको त्याग दे, तेरा मरण तो कभी हो ही नहीं सकता, क्योंकि-तू अविनाशी है,तेरे विना तो इस संसारमें कोई वस्तु है ही नहीं, परमानंद ही तेरा स्वभाव है अर्थात् तू वही परब्रह्म है, तू भ्रमवश किसी कल्पित वस्तुको देखकर ऐसा भयभीत होरहा है और इसकारणसे ही कहता है, कि-मेरी रक्षा, करो सोकर स्वप्न देखतेहुए पुरुष के प्रलापकी समान तेरा यह कथन अर्थहीन और मिथ्या है ॥ २६८ ॥

निद्रागाढतमोवृतः किल जनः स्वप्ने भुजङ्गादिना

ग्रस्तं स्वं समवेक्ष्य यत्प्रलपति त्रासाद्धतोस्मीत्यलम्,

आप्तेन प्रतिबोधिताः करतलेनाताड्य पृष्टः स्वयं

किञ्चिन्नेति वदत्यमुष्य वचनं स्यात्तत्किमर्थं वद ॥

अन्वय और पदार्थ-((किल) प्रसिद्ध है (निद्रागाढतमोवृतः) निद्रारूप गाढ़ अंधकार से ढका हुआ (जनः) पुरुष (स्वप्ने) स्वप्न में (स्वम्) अपनेको

(भुजङ्गादिना) सर्प आदि से (ग्रस्तम्) ग्रसा हुआ (समवेक्ष्य) देख कर (त्रासात्) भयसे (हतः-अस्मि) मारा गया (इति) ऐसे (अलम्) ऊँचे स्वरसे (यत्) जो (प्रलपति) प्रलाप करता है (आप्तेन) विश्वस्त पुरुषके द्वारा (करतलेन-आताड्य) पाणितल से कुछएक ताडना करके (प्रतिबोधितः) जगायाहुआ [ततः] तदनंतर (पृष्टः) बूझा हुआ (स्वयम्) अपने आप (किंचित्) कुछ (न) नहीं है (इति) ऐसा (वदति) कहता है (अमुष्य) इसका (तत्) वह (वाक्यम्) वचन (किमर्थम्) किसअर्थको [वदति] कहता है (वद) बता ॥२६९॥

(भावार्थ)-निद्रारूप घोर अन्धकार में पड़ाहुआ पुरुष, सुपना देखते समय, किसी सर्प आदिके द्वारा अपने को डसा हुआ देखता है और भयभीत होकर 'हायरे मैं मारागया' ऐसा कहकर ऊँचे स्वरसे डकरा उठता है। यह दशा देख कर कोई जागता हुआ उसका हितकारी पुरुष उसको हाथ से हिलोड कर जगा-देताहै और उससे बूझता है, कि-तू मारागया मारागया, ऐसा क्यों चिल्लारहा था?' तो वह जागा हुआ पुरुष अपने आप ही कहने लगता है, कि-अब तो मुझे भय का कारण कुछ भी नहीं दीखता, बता इस दशा में उस सोते में बर्रानेवाले पुरुष की बात में क्या सारहै? कुछ भी सार नहीं है ॥ २६९ ॥

रज्जोस्तु तत्त्वमनवेक्ष्य गृहीतसर्प-
भावः पुमानयमहिर्वसतीति मोहात् ।
आक्रोशति प्रतिबिभेति च कम्पते च
मिथ्यैव नात्र भुजगोऽस्ति विचार्यमाणे २७०

अन्वय और पदार्थ—((अयम्) यह (पुमान्) पुरुष (तु) तो (रज्जोः) रस्सीके (तत्त्वम्) यथार्थ स्वरूपको (अनवेक्ष्य) न देखकर [अत्र] यहां (अहिः) सर्प (वसति) बैठा है (इति) ऐसा (मोहात्) मोहसे (गृहीतसर्प-भावः) यहां सर्प है ऐसा मानकर (आक्रोशति) चिल्ला उठता है (प्रतिबिभेति) बहुत डरता है (च) और (कम्पते च) काँपने भी लगता है (अत्र)यहां (भुज-गः) सर्प (न) नहीं है (इति) ऐसा (विचार्यमाणे) विचार करनेपर (मिथ्या एव) मिथ्या ही है ॥ २७० ॥

(भावार्थ)-रस्सीके स्वरूपको न समझसकनेके कारणसे मनुष्य अनेकों समय उस रस्सीको ही सर्प मानकर और उसके कारणसे मोहित होकर चिल्ला उठता

है, वड़ा भयभीत होजाता है और काँपने लगता है, परन्तु जब विचारके द्वारा इस बातका निश्चय कर पाता है, कि-यह सर्प नहीं है, रस्सी है, तव उसकी वह सर्पदृष्टि और उसके कारणसे होनेवाला मलाप आदि मिथ्या मालूम होनेलगता है२७०

तद्वत् त्वयाप्यात्मन उक्तमेत-
ज्जन्माप्ययव्याधिजरादियुक्तम् ।
मृषैव सर्वं भ्रमकल्पितं ते
सम्यग्विचार्यात्मनि मुञ्च भीतिम् ॥२७१॥

अन्वय और पदार्थ-(तद्वत्) तैसे ही (त्वया अपि) तू ने भा (आत्मनः) आत्माका (जन्माप्ययव्याधिजरादियुक्तम्) जन्म-मरण-रोग--बुढ़ापे आदिसे युक्त [सुखदुःखादिकम्] सुख दुःख आदि (उक्तम्) कहा है (एतत्) यह (सर्वम्) सब (ते) तेरा (भ्रमकल्पितम्) भ्रमसे कल्पना किया हुआ (मृषा-एव) मिथ्या ही है (सम्यक्) भलेप्रकार (विचार्य) विचार करके (आत्मनि) आत्माके विषयमें (भीतिम्) मरण आदिके भयको (मुञ्च) त्याग ॥ २७१ ॥

(भावार्थ)-तैसे ही जन्म, मरण, रोग और बुढ़ापे आदिके कारणसे आत्मा को दुःख सुख आदिके प्राप्त होनेमें तूने जो कुछ कहा है सो सब ही मिथ्या है, यह सबतूने अपने अज्ञानसे कल्पना कर लिया है, इसप्रकार भलेप्रकारसे वस्तुतत्वका विचार करके तू आत्माके विषयमें मरण आदिके भयको त्याग दे ॥ २७१ ॥

भवाननात्मनो धर्मानात्मन्यारोप्य शोचति ।
तदज्ञानकृतं सर्वं भयं त्यक्त्वा सुखी भव ।२७२।

अन्वय और पदार्थ-((अनात्मनः) जो आत्मा नहीं है तिसके (धर्मान्) धर्मोंको (आत्मनि) अपने आत्मामें (आरोप्य) आरोपण करके (भवान्) तू (शोचति) शोक करता है (तत्) तिसकारणसे (अज्ञानकृतम्) अज्ञानके रचे हुए (सर्वम्) सब (भयम्) भयको (त्यक्त्वा) त्यागकर (सुखी) सुखपानेवाला (भव) हो ॥ २७२ ॥

(भावार्थ)—जो पदार्थ आत्मा नहीं हैं उन अनात्म पदार्थोंके धर्मोंको अपने आत्मामें आरोपण करके तू शोक करता है, इसकारण कहना यह है, कि-अज्ञान के कियेहुए सब प्रकारके भयको त्यागकर तू स्वस्थ होताहुआ सुखप्राप्त कर २७२

॥ शिष्य उवाच ॥

श्रीमद्भिरुक्तं सकलं मृषेति
दृष्टान्त एव ह्युपपद्यते तत् ।
दार्ष्टान्तिके नैव भवादिदुःखं
प्रत्यक्षतः सर्वजनप्रसिद्धम् ॥ २७३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(शिष्यः) छात्र (उवाच) बोला (सकलम्) सब (मृषा) मिथ्या है (इति) ऐसा (श्रीमद्भिः) आपने (यत्) जो (उक्तम्) कहा (हि) निश्चय (तत्) वह (दृष्टान्ते-एव) रस्सी और सर्पके दृष्टान्तमें ही (युज्येत) युक्तियुक्त होता है (दार्ष्टान्तिके) आत्माके जन्म नाश आदि मिथ्यात्व के विषयमें (न-एव) किसी प्रकार भी युक्तियुक्त नहीं है [यतः] क्योंकि (भवादिदुःखम्) जन्म मरण आदिसे होनेवाला दुःख (प्रत्यक्षतः) प्रत्यक्षप्रमाणके द्वारा (सर्वजनप्रसिद्धम्) सब लोगोंमें प्रसिद्ध है ॥ २७३ ॥

(भावार्थ)—शिष्य बोला, कि-आपने जो सब पदार्थोंको मिथ्या कहा सो रस्सी सर्पके दृष्टान्तस्थलमें अर्थात् जहां रस्सीमें सर्पका भ्रम होताहै तहां ही सिद्ध है परन्तु दार्ष्टान्तिकमें अर्थात् आत्मा के जन्म, मरण, रोग, बुढापा आदि के मिथ्यात्व में नहीं बनता क्योंकि-आत्माका-मरण-रोग-बुढापा आदि सब लोगों को प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है ॥ २७३ ॥

प्रत्यक्षेणानुभूतोऽर्थः कथं मिथ्यात्वमर्हति ।
चक्षुषो विषयं कुंभं कथं मिथ्या करोम्यहम् ॥२७४॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रत्यक्षेण) प्रत्यक्ष प्रमाणसे (अनुभूतः) अनुभव कियाहुआ (अर्थः) पदार्थ (कथम्) कैसे (मिथ्यात्वम्) मिथ्यारूपताको (अर्हति) प्राप्त होसकता है ? (चक्षुषः) चक्षुके (विषयम्) गोचर हुए (कुंभम्) कलश को (अहम्) मैं (कथम्) कैसे (मिथ्या) मिथ्या (करोमि) करूँ ॥२७४॥

(भावार्थ)-जो पदार्थ प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध हो वह मिथ्या कैसे होसकता है?; जब मैं कलशको नेत्रसे देखरहा हूं तो उसको मिथ्या कैसे कहसकता हूं?

विद्यमानस्य मिथ्यात्वं कथं नु घटते प्रभो ।
प्रत्यक्षं खलु सर्वेषां प्रमाणं प्रस्फुटार्थकम् ॥२७५॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रभो) हे स्वामिन् ! (विद्यमानस्य) जो विद्यमान है उसका (मिथ्यात्वम्) मिथ्यापना (कथं नु) कैसे (घटते) सङ्गत होसकता है ? (प्रस्फुटार्थकम्) जिसका विषय स्पष्ट दीख रहा है वह (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष की कारणरूप चक्षु आदि इन्द्रियें (खलु) निश्चय (सर्वेषाम्) सबको (प्रमाणम्) प्रमाण हैं ॥ २७५ ॥

(भावार्थ)-हे गुरो ! जो वस्तु विद्यमान है वह मिथ्या कैसे होसकती है ? प्रत्यक्ष प्रमाण तो सबके लिये स्पष्टरूपसे वस्तुओंका प्रकाश करनेवाला है ॥२७५॥

मर्त्यस्य मम जन्मादिदुःखभाजोल्पजीविनः ।

ब्रह्मत्वमपि नित्यत्वं परमानंदता कथम् ॥ २७६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(मर्त्यस्य) मरणका स्वभाववाले (जन्मादिदुःखभाजः) जन्म मरण आदिका क्लेश भोगनेवाले (अल्पजीविनः) थोडेसे समयको है जीवन जिसका ऐसे (मम) मेरा) (ब्रह्मत्वम्) ईश्वररूपत्व (नित्यत्वम्) नित्यपना (अपि) और (परमानंदता) परमसुखरूपपना (कथम्) कैसे होसकता है ? ॥

(भावार्थ)-मैं किसी समय अवश्य ही मरूँगा, जन्म आदिके क्लेशोंको भोगता हूं, और मेरा जीवन भी बहुत थोड़े समयके लिये है, फिर मैं ब्रह्मरूप नित्य और परमआनंदरूप कैसे होसकता हूं ? ॥ २७६ ॥

क आत्मा कस्त्वनात्मा च किमु लक्षणमेतयोः ।

आत्मन्यनात्मधर्माणामारोपः क्रियते कथम् २७७

अन्वय और पदार्थ-(कः) कौन (आत्मा) आत्मपदार्थ है (तु) और (कः) कौन (अनात्मा) आत्मभिन्न पदार्थ है (च) और (एतयोः) इन दोनोंका (लक्षणम्) लक्षण (किमु) क्या है ? (आत्मनि) आत्मामें (अनात्मधर्माणाम्) अनात्मपदार्थोंके धर्मोंका (आरोपः) आरोपण (कथम्) कैसे (क्रियते) कियाजाता है ॥ २७७ ॥

(भावार्थ)—आत्मा और अनात्मा किसको कहते हैं, आत्मा और अनात्मा का लक्षण क्या है, मनुष्य किस कारण से देह इंद्रियादि के स्थूलता बधिरता आदि धर्मों को आत्मामें मानलेते हैं ? ॥ २७७ ॥

किमज्ञानं तदुत्पन्नभयत्यागोपि वा कथम् ।

किमु ज्ञानं तदुत्पन्नसुखप्राप्तिश्च वा कथम् २७८

अन्वय और पदार्थ—(अज्ञानम्) अज्ञान (किम्) क्या है (अपि वा) और (तदुत्पन्नभयत्यागः) उससे उत्पन्न हुए भय का त्याग (कथम्) कैसे होता है (ज्ञानम्) ज्ञान (किमु) क्या है (वा) और (तदुत्पन्नसुखप्राप्तिः) उससे उत्पन्न हुए सुख की प्राप्ति (च) भी (कथम्) कैसे [भवति] होती है ॥ २७८ ॥

(भावार्थ)—अज्ञान किसको कहते हैं ? अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला भय कैसे दूर होता है ? ज्ञानका स्वरूप क्या है और ज्ञानसे प्राप्त होनेवाला सुख कैसे प्राप्त होता है ? ॥ २७८ ॥

सर्वमेतद्यथापूर्वं करामलकवत् स्फुटम् ।
प्रतिपादय मे स्वामिन् श्रीगुरो करुणानिधे२७९

अन्वय और पदार्थ-(स्वामिन्) हे प्रभो (करुणानिधे) हे दयाके सागर (श्रीगुरो) हे श्रीगुरुजी महाराज (एतत्) यह (सर्वम्) सब (मे) मेरे अर्थ (करामलकवत्) हाथमें धरे हुए आमले के फलकी समान (स्फुटम्) स्पष्टरूपसे (यथापूर्वम्) यथाक्रमसे (प्रतिपादय) वर्णन करिये ॥ २७९ ॥

(भावार्थ)—हे प्रभो ! हे करुणासिंधो ! हे श्रीगुरु महाराज ! इस सब विषयको जिससे मैं हाथमें धरेहुए आमले के फल की समान अनायास में ही स्पष्टरूप से समझसकूं, तैसे ही क्रमसे मुझे उपदेश दीजिये ॥ २७९ ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

धन्यः कृतार्थस्त्वमहो विवेकः
शिवप्रसादस्तव विद्यते महान् ।
विसृज्य तु प्राकृतलोकमार्ग-
ब्रह्मावगंतुं यतसे यतस्त्वम् ॥ २८० ॥

अन्वय और पदार्थ-(श्रीगुरुः) गुरुमहाराज (उवाच) बोले (त्वम्) तू (धन्यः) धन्यवादके योग्य (कृतार्थः) कृतकृत्य है (अहो) आनन्दकी बात है (विवेकः) ज्ञान [जातः] हुआ (तव) तेरे [उपरि] ऊपर (महान्) बड़ा (शिवप्रसादः) शिवका अनुग्रह [अस्ति] है (यतः) क्योंकि (त्वम्) तू (प्राकृतलोकमार्गम्) साधारण लोगोंके मार्गको (तु) तो (विसृज्य) त्यागकर (ब्रह्म) परमात्माको (अवगंतुम्) जाननेको (यतसे) चेष्टा करता है ॥२८०॥

(भावार्थ)-गुरुने कहा, कि-तू धन्य और कृतार्थ है, बडे ही आनंदकी बात है, कि—तुझे ज्ञानकी प्राप्ति हुई है, वास्तवमें तेरे ऊपर शिवजी प्रसन्न होगए हैं क्योंकि तू साधारण पुरुषोंके समान विषयभोगको त्यागकर ब्रह्मज्ञानको प्राप्त करने के लिये उद्योग करनेलगा है ॥ २८० ॥

शिवप्रसादेन विना न सिद्धिः
शिवप्रसादेन विना न बुद्धिः।
शिवप्रसादेन विना न युक्तिः
शिवप्रसादेन विना न मुक्तिः ॥ २८१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(शिवप्रसादेन, विना) शिवजीकी कृपाके विना(सिद्धिः) सफलता (न) नहीं होती (शिवप्रसादेन, विना) शिवजीके अनुग्रहके विना (बुद्धिः) ज्ञान (न) नहीं होता (शिवप्रसादेन, विना) शिवजीकी कृपाके विना (युक्तिः) योग (न) नहीं होता (शिवप्रसादेन, विना) शिवजीकी कृपाके विना (मुक्तिः) मुक्ति (न) नहीं होती ॥ २८१ ॥

(भावार्थ)-शिवजीके अनुग्रहके विना सिद्धि नहीं होती शिवजीकी कृपाके विना ज्ञान प्राप्त नही होता, शिवजीकी दयाके विना योगसाधन नहीं होसकता, शिवजीकी कृपाके विना मुक्ति नहीं मिलसकती ॥ २८१ ॥

यस्य प्रसादेन विमुक्तसङ्गाः,
शुकादयः संसृतिबन्धमुक्ताः ।
तस्य प्रसादो बहुजन्मलभ्यो
भक्त्यैकगम्यो भवमुक्तिहेतुः ॥ २८२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यस्य) जिसके (प्रसादेन) अनुग्रह से (शुकादयः) शुक आदि (विमुक्तसङ्गाः) संसारकी आसक्तिसे मुक्त होते हुए (संसृतिबंध-मुक्ताः) संसारबंधनसे मुक्त [जाताः] होगए (तसय) उसका (प्रसादः) अनु-ग्रह (बहुजन्मलभ्यः) अनेकों जन्मोंमें प्राप्त होने योग्य (भक्त्यैकगम्यः) एक-मात्र भक्ति के द्वारा प्राप्त होनेयोग्य (भवमुक्तिहेतुः) संसारसे मुक्त होनेका कारण [अस्ति] है ॥ २८२ ॥

(भावार्थ)—जिन शिवजी के अनुग्रह से शुकदेव आदि मुनि संसारके सङ्ग

को छोड़ कर संसारबंधन से मुक्त होगये; उन शिवजी का अनुग्रह, अनेक जन्मों तक साधना करने से प्राप्त होता है और वह एकमात्र भक्ति से ही मिलसकता है तथा उसके प्राप्त होजानेपर अवश्य ही संसारबंधन से मुक्ति होजाती है ॥२८२॥

विवेको जन्तूनां प्रभवति जनिष्वेव बहुषु
प्रसादादीशाद् बहुसुकृतपाकोदयवशात् ।
यतस्तस्मादेव त्वमपि परमार्थावगमने
कृतारम्भः पुंसामिदमिह विवेकस्य तु फलम् २८३

अन्वय और पदार्थ-(यतः) क्योंकि (बहुषु) अनेकों (जनिषु) जन्मोंमें (एव) हीं (बहुसुकृतपाकोदयवशात्) अनेकों पुण्यों के फलोंका उदय होने के कारण (ईशात्) ईश सम्बंधी (प्रसादात्) अनुग्रह से (एव) ही (जंतूनाम्) प्राणियों का (विवेकः) वैराग्य (प्रभवति) उत्पन्न होता है (तस्मात्-एव) तिससे ही (त्वम्-अपि) तू भी (परमार्थावगमने) यथार्थ वस्तु को जाननेमें (कृतारंभः) उद्योगी [भव] हो (इह) इस संसार में (इदम्-तु) यह तो (पुंसाम्) पुरुषों के (विवेकस्य) विचार का (फलम्) फल [अस्ति] है ॥ २८३ ॥

(भावार्थ)-क्योंकि जन्म जन्मांतरों के पुण्यफलों का उदय होनेपर सदा शिवके अनुग्रह से अनेकों जन्मों के अनंत प्राणियों को ज्ञान प्राप्त होता है, इसलिये तू भी परमार्थतत्त्वको जानने के लिये उद्योग कर, ऐसा होना मनुष्य के विवेक का ही फल होता है ॥ १८३ ॥

मर्त्यत्वसिद्धेरपि पुंस्त्वसिद्धे-
र्विप्रत्वसिद्धेश्च विवेकसिद्धेः ।
वदन्ति मुख्यं फलमेव मोक्षं
व्यर्थं समस्तं यदि चेन्न मोक्षः ॥ २८४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(मर्त्यत्वसिद्धेः) मनुष्यत्वप्राप्ति का (अपि) और (पुंस्त्वसिद्धेः) पुरुषत्वप्राप्ति का (विप्रत्वसिद्धेः) ब्राह्मणत्वप्राप्ति का (च) और विवेकसिद्धेः) वैराग्यप्राप्ति का (मुख्यम्) प्रधान (फलम्) फल (मोक्षम्, एव) मोक्ष को ही (वदंति) कहते हैं (यदि) जो मोक्षः) मोक्ष (न, चेत्) न हो [तदा] तो (समस्तम्) सब (व्यर्थम्) व्यर्थ है ॥ २८४ ॥

(भावार्थ)-पण्डित कहते हैं, कि-मनुष्य शरीरका मिलना, तिस में भी पुरुष होना, पुरुष होनेपर भी ब्राह्मण होना और ब्राह्मण होकर भी विषयोंकी अनित्यता का विवेक होना इस सबका मुख्य फल एक मुक्ति ही है यदि मुक्तिका साधन नहीं किया तो यह सब वृथा है ॥ २८४ ॥

प्रश्नः समीचीनतरस्तवायं
यदात्मतत्त्वावगमे प्रवृत्तिः ।
ततस्तवैतत्सकलं समूलं
निवेदयिष्यामि मुदा शृणुष्व ॥ २८५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तव) तेरा (अयम्) यह (प्रश्नः) प्रश्न (समीचीनतरः) बहुतश्रेष्ठ है (यत्) जो (आत्मतत्त्वावगमे) आत्मतत्त्वको जाननेमें (प्रवृत्तिः) रुचि [सञ्जाता] हुई है (ततः) तिसकारणसे (तव) तेरे अर्थ (एतत्) यह (सकलम्) सब (समूलम्) मूलसहित (निवेदयिष्यामि) कहूंगा (मुदा) प्रसन्नताके साथ (शृणुष्व) सुन ॥ २८५ ॥

(भावार्थ)—हे शिष्य ! तूने बडा ही अच्छा प्रश्न किया है, जो तेरी इच्छा आत्मतत्वको जाननेकी हुई है इसकारण इस सब विषयको मैं तुझसे जडमूलसे कहता हूं तू प्रसन्नचित्त होकर सुन ॥ २८५ ॥

मर्त्यत्वं त्वयि कल्पितं भ्रमवशात्तेनैव जन्मादय-
स्तत्संभावितमेव दुःखमपि ते नो वस्तुतस्तन्मृषा ।
निद्रामोहवशादुपागतसुखं दुःखञ्च किन्तु त्वया
सत्यत्वेन विलोकितं क्वचिदपि ब्रूहि प्रबोधागमे ॥

अन्वय और पदार्थ—(भ्रमवशात्) भ्रमके कारणसे (मर्त्यत्वम्) मनुष्यपना (त्वयि) तेरेविषैं (कल्पितम्) कल्पना किया हुआ है (तेन-एव) तिस कारणसे ही (जन्मादयः) जन्म मरण आदि (तत्संभावितम् एव) तिस भ्रमसे ही उत्पन्न हुए हैं (दुःखम्-अपि) दुःख भी (ते) तुझै (नो) नहीं है (वस्तुतः) वास्तवमें (तत्) वह (मृषा) मिथ्या है (नु) हे शिष्य ! (निद्रामोहवशात) निद्रारूप अज्ञान के कारण से (उपागतसुखम्) प्राप्त हुआ सुख (च) और (दुःखम्) दुःख (त्वया) तूने (प्रबोधागमे) जागने पर

(क्वचित्-अपि) कहीं भी (सत्यत्वेन) यथार्थ रूप से (किम्) क्या (विलोकितम्) देखा है (ब्रूहि) बता ॥ २८६ ॥

(भावार्थ)--तू अज्ञान के वश में होकर भ्रमसे अपने आतमा में मनुष्यपना मान बैठा है, उस अज्ञान के कारण से ही जन्म नाश आदि होते हैं,वास्तवमें जन्म मरणआदि के कारणसे होनेवाला दुःख भी मिथ्या है, तुझ में वह कभी होही नहीं सकता, निद्रारूप अज्ञान के वश में होकर लोग स्वप्नके दुःख वा सुख को प्राप्त होते हैं,भला बता तो सही वह स्वप्नमेंका दुःख सुख जागनेपर भी कभी सचाहुआ है॥

नाशेषलोकैरनुभूयमानः
प्रत्यक्षतोऽयं सकलप्रपञ्चः ।
कथं मृषा स्यादिति शङ्कनीयं
विचारशून्येन विमुह्यता त्वया ॥ २८७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अशेपलोकैः) सब लोकों करके (प्रत्यक्षतः) प्रत्यक्षरूपसे (अनुभूयमानः) अनुभव कियाजाता हुआ (अयम्) यह सकल-प्रपञ्चः) सब जगत् (कथम्) कैसे (मृषा) मिथ्या (स्यात्) होगा (इति) ऐसे (विचारशून्येन) विचारहीन (विमुह्यता) मोहको प्राप्त होते हुए (त्वया) तुझ करके (न) नहीं (शङ्कनीयम्) शङ्का करनी चाहिये ॥ २८७ ॥

(भावार्थ)-सब ही मनुष्य जब घट पट आदि समस्त जगत्को प्रत्यक्षरूप से अनुभव करते हैं तो वह मिथ्या कैसे होगा ? विवेकशून्य और मोहके वशमें होकर ऐसी शङ्का करना तुझे उचित नहीं है ॥ २८७ ॥

दिवान्धदृष्टेस्तु दिवांधकारं
प्रत्यक्षसिद्धोऽपि स किं यथार्थः ।
तद्वद् भ्रमेणावगतः पदार्थो
भ्रांतस्य सत्यः सुमतेर्मृषैव ॥ २८८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(दिवांधदृष्टेः, तु) दिनमें अंधी है दृष्टि जिसकी ऐसे पुरुषको तो (दिवा) दिनमें (अंधकारः) अंधेरा (प्रत्यक्षसिद्धः-अपि) प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध होने पर भी (सः) वह (किम्) क्या (यथार्थः) वास्तविक है, (तद्वत्) तैसे ही (भ्रमेण) भ्रमसे (अवगतः) जानाहुआ (पदार्थः) पदार्थ

(भ्रान्तस्य) भ्रममें पड़े हुएको (सत्यः) सत्य है (सुमतेः) बुद्धिमान्को (मृषा-एव) मिथ्या ही है ॥ २८८ ॥

(भावार्थ)—प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध होने पर भी पदार्थ भ्रान्तिरहित ही हो ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि—जो पुरुष दिनमें अंधदृष्टि है अर्थात् अतितेजस्वी पदार्थ पर दृष्टि डालनेसे जिसकी देखनेकी शक्ति नष्ट होगई है वह दिनमें अंधेरा देखेगा, उसके लिये दिनमें अंधकार प्रत्यक्षसिद्ध है, तो इससे क्या उस अंधकारको सत्य मानलिया जायगा ? ऐसे ही जिस पदार्थका अनुभव भ्रमसे होता है, भ्रांतके लिये वह सत्य प्रतीत होता है, परंतु बुद्धिमान् उसको मिथ्या ही जानेगा ॥२८८॥

घटोऽयमित्यत्र घटाभिमानः
प्रत्यक्षतः कश्चिदुदेति दृष्टेः ।
विचार्यमाणे स तु नास्ति तत्र
मृदस्ति तद्भावविलक्षणा सा ॥ २८९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अत्र) यहां (अयम्) यह (घटः) घड़ा [अस्ति] है (इति) ऐसे (प्रत्यक्षतः) प्रत्यक्ष (दृष्टेः) दृष्टि से (कश्चित्) कोई एक (घटाभिमानः) घटबुद्धि (उदेति) उत्पन्न होती है (तु) किंतु (विचार्यमाणे) विचार करके देखने पर (सः) वह घट (तत्र) तहां (न) नहीं (अस्ति) है (तद्भावविलक्षणा) घटभाव से अन्य ही प्रकार की (सा) वह (मृत्) मृत्तिका (अस्ति) है ॥ २८९ ॥

(भावार्थ)—यहां यह घड़ा है, ऐसा कहने पर प्रत्यक्षरूप से घटज्ञान उत्पन्न होता है, परन्तु विचार करके देखने पर घट नामक कोई पदार्थ ही नहीं है, केवल घट से भिन्न स्वभाव वाली मृत्तिका ही विद्यमान है, ऐसा देखने में आता है २८९

प्रादेशमात्रः परिदृश्यतेऽर्कः
शास्त्रेण सन्दर्शितलक्षयोजनः ।
मानान्तरेण क्वचिदेति बाधां
प्रत्यक्षमप्यत्र हि न व्यवस्था ॥ २९० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अर्कः) सूर्य (प्रादेशमात्रः) बिलस्तभर का (परि-

दृश्यते) दीखता है (शास्त्रेण) शास्त्र के द्वारा (संदर्शितलक्षयोजनः) लाख योजन का दीखता है (मानांतरेण) अन्य प्रमाण के द्वारा (क्वचित्) कहीं (बाधाम्) अपवाद को (एति) प्राप्त होता है (हि) क्योंकि (अत्र) इसविषय में (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष प्रमाण (अपि) भी (व्यवस्था) निर्णय करानेवाला (न) नहीं है॥

(भावार्थ)-सूर्य प्रादेशमात्र (विलस्तभर) कासा दीखता है, परन्तु शास्त्र की दृष्टि से देखाजाय तो लाख योजन का सिद्ध होता है। प्रत्यक्ष देखी हुई वस्तु भी जब दूसरे प्रमाण से बाधित होजाती है तो प्रत्यक्ष प्रमाण भी वस्तु का निर्णय कराने वाला नहीं होसकता॥ २९० ॥

तस्मात् त्वयीदं भ्रमतः प्रतीतं
मृषैव नो सत्यमवेहि साक्षात्।
ब्रह्म त्वमेवासि सुखस्वरूपं
त्वत्तो न भिन्नं विचिनुष्व बुद्धौ॥ २९१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिस से (त्वयि) तेरे विषैं (भ्रमतः) भ्रम से (प्रतीतम्) प्रतीत होता हुआ (इदम्) यह (मृषा-एव) मिथ्या ही है (साक्षात्) प्रत्यक्ष (सत्यम्) यथार्थ (नो) नहीं (अवेहि) जान (त्वम्-एव) तू ही (सुखस्वरूपम्) आनन्दस्वरूप (ब्रह्म) परमात्मा (असि) है (त्वत्तः) तुझ से (भिन्नम्) पृथक् (न) नहीं है [इति) ऐसा (बुद्धौ) बुद्धि में (विचिनुष्व) विचार कर॥ २९१॥

(भावार्थ)-इसलिये तुझ में जो भ्रम के कारण से मनुष्यपना आदि प्रतीत होरहा है, उसको वास्तव में मिथ्या जानना, तू तो आनन्दस्वरूप ब्रह्म है, जरा विचार कर तो देख- ब्रह्म तुझसे भिन्न नहीं है॥ २९१ ॥

लोकांतरे वात्र गुहांतरे वा
तीर्थान्तरे कर्मपरम्परांतरे।
शास्त्रांतरे नास्त्यनुपश्यतामिह
स्वयं परंब्रह्म विचार्यमाणे॥ २९२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अत्र) इस संसारमें (लोकान्तरे) स्वर्ग आदि लोक

में (वा) या (गुहांतरे) किसी गुहामें (वा) या (तीर्थान्तरे) किसी तीर्थमें (कर्मपरम्परांतरे) किसी कर्मपरंपरा में (शास्त्रांतरे) किसी शास्त्रमें [ब्रह्म] ब्रह्म (न) नहीं (अस्ति) है (अनुपश्यताम्) तत्त्वज्ञानियोंको (इह) इस विषयमें (विचार्यमाणे) विचार करनेपर (स्वयम्) अपना आपा ही (परंब्रह्म) परमात्मा है ॥ २९२ ॥

(भावार्थ)-इस संसारमें स्वर्गादि किसी लोकमें, पहाड़ोंकी गुफाओंमें, भिन्न२ तीर्थोंमें, नाना प्रकारके कर्मोंमें अथवा किसी एक शास्त्रमें ब्रह्म नहीं है अर्थात् कितना ही खोजो तहां ब्रह्म नहीं मिलता; किंतु ज्ञानियोंने विचार करके अपने आपेको ही परंब्रह्म जाना है ॥ २९२ ॥

तत्वमात्मस्थमज्ञात्वा मूढः शास्त्रेषु पश्यति।
गोपः कक्षगतं छागं यथा कूपेषु दुर्मतिः ॥२९३॥

अन्वय और पदार्थ-(मूढः) अज्ञानी (आत्मस्थम्) अपनेमें स्थित (तत्त्वम्) स्वरूपको (अज्ञात्वा) न जान कर (शास्त्रेषु) शास्त्रोंमें (पश्यति) देखता है (यथा) जैसे (दुर्मतिः) मन्दबुद्धि (गोपः) गोप (कक्षगतम्) बगलमें के (छागम्) बकरेको (कूपे) कूपमें [पश्यति] देखता है ॥ २९३ ॥

(भावार्थ)—जैसे अज्ञानी ग्वालिया अपनी बगल में दबेहुए बकरे को न जानकर उसको कूएमें प्रतिबिम्बरूपसे देखता है तैसे ही मूढ़ पुरुष अपने में स्थित ब्रह्म को न देखकर शास्त्रमें ढूंढता फिरता है ॥ २९३ ॥

स्वमात्मानं परं मत्वा परमात्मानमन्यथा।
विमृग्यते पुनः स्वात्मा बहिः कोशेषु पण्डितैः २९४

अन्वय और पदार्थ-(स्वम्) अपने (आत्मानम्) स्वरूप को (परम्) ब्रह्म से भिन्न [मत्वा] मानकर (परमात्मानम्) ब्रह्मको (अन्यथा) जीव से भिन्न (मत्वा) जान कर (पुनः) फिर (पण्डितैः) पण्डितमानी पुरुषों करके (कोशेषुबहिः) कोशों से बाहर (मृग्यते) खोजाजाता है ॥ २९४ ॥

(भावार्थ)—शब्द और उसके अर्थमात्र को जान कर पण्डितपने का अभिमान करनेवाले पुरुष अपने आत्मा को ब्रह्म से भिन्न और ब्रह्म को अपने आत्मा से भिन्न मान कर अन्नमय आदि कोषों के बाहर आत्मा को खोजते हैं ॥ २९४ ॥

विस्मृत्य वस्तुनस्तत्त्वमध्यारोप्य च वस्तुनि।

अवस्तुताञ्च तद्धर्मान्मुधा शोचति नान्यथा २९५

अन्वय और पदार्थ-(वस्तुनः) पदार्थ के (तत्त्वम्) स्वरूपको (विस्मृत्य) भूलकर (वस्तुनि) वस्तु में (अवस्तुताम्) मिथ्यावस्तुपने को (तद्धर्मान्) उस मिथ्या वस्तु के धर्मों को (च) भी (अध्यारोप्य) आरोपण करके (मुधा) वृथा (शोचति) शोक करता है (अन्यथा) ऐसा न करने पर (न) शोक नहीं करता है ॥ २८५ ॥

(भावार्थ)-अज्ञानी मनुष्य वस्तु के स्वरूप को भूलकर, यथार्थ वस्तु रस्सी आदि में अवस्तु सर्प आदि का और उसके डरावनापन आदि धर्मों का आरोपण करके वृथा ही शोक करता है, यदि ऐसा न करेतो कदापि शोक न करना पड़े ॥

॥ आत्मानात्मविवेकः ॥

आत्मानात्मविवेकं ते वक्ष्यामि शृणु सादरम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण मुच्यतेऽनात्मबंधनात् ।२९६।

अन्वय और पदार्थ-(आत्मानात्मविवेकम्) आत्मा और अनात्मा का भेद (ते) तेरे अर्थ (वक्ष्यामि) कहूंगा (सादरम्) आदरके साथ (शृणु) सुन (यस्य) जिसके (श्रवणमात्रेण) सुननेमात्रसे (अनात्मबंधनात्) आत्मभिन्न वस्तुओंके बंधनसे (मुच्यते) छूटजाता है ॥ २९६ ॥

(भावार्थ)-मैं तेरे लिये आत्मा और अनात्माका भेद कहता हूं, उसको तू आदरके साथ सुन, जिसको सुनलेने पर मनुष्य आत्मभिन्न वस्तुओं के बंधनसे छूटजाता है ॥ २९६ ॥

इत्युक्त्वाऽभिमुखीकृत्य शिष्यं करुणया गुरुः ।
अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्चयन् ।२९७।
सम्यक् प्रबोधयत्तत्त्वं शास्त्रदृष्टेन वर्त्मना ।
सर्वेषामुपकाराय तत्प्रकारोऽत्र दर्श्यते ॥ २९७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(गुरुः) उपदेश देनेवाला (इति)इसप्रकार (उक्त्वा) कहकर (करुणया) दया करके (शिष्यम्) शिष्यको (अभिमुखीकृत्य) सन्मुख करके (अध्यारोपापवादाभ्याम्) अध्यारोप और अपवादके द्वारा (निष्प्रपञ्चम्) प्रपञ्चहीन ब्रह्मका (प्रपञ्चयन्) विस्तारके साथ वर्णन करताहुआ (शास्त्रदृष्टेन) शास्त्रके द्वारा देखेहुए (वर्त्मना) मार्गसे (तत्त्वम्) स्वरूपको (सम्यक्) भले-

प्रकार (भावोधयत्) ज्ञान कराताहुआ (अत्र) इसविषयमें (सर्वेषाम्) सबोंके (उपकाराय) उपकारके लिये (तत्प्रकारः) उसकी रीति (प्रदर्श्यते) दिखाई जाती है ॥ २९७ ॥ २९८ ॥

(भावार्थ)-इतना कहकर गुरु शिष्यका मुख अपनी ओरको करके, दया भाव दिखाताहुआ अध्यारोप और अपवादके द्वारा प्रपञ्चशून्य ब्रह्मका विस्तार के साथ वर्णन करके, शास्त्रके अनुकूल उपायके द्वारा भलेप्रकार शिष्यको तत्व समझादेय सब लोकोंके उपकारके लिये उसकी रीति दिखाते हैं ॥ २९७ ॥ २९८ ॥

॥ अध्यारोपः ॥

वस्तुन्यवस्त्वारोपो यः सोऽध्यारोप इतीर्यते ।
असर्पभूते रज्ज्वादौ सर्पत्वारोपणं यथा ॥२९९॥

अन्वय और पदार्थ-(वस्तुनि) सत्य पदार्थ में (यः) जो (अवस्त्वारोपः) मिथ्या वस्तुकी कल्पना है (सः) वह (अध्यारोपः) अध्यारोप है (इति) ऐसा (ईर्यते) कहाजाता है (यथा) जैसे (असर्पभूते) वास्तव में जो सर्प नहीं है ऐसे (रज्ज्वादौ) रस्सी आदि में (सर्पत्वारोपणम्) सर्पपने आदि की कल्पना करना है ॥ २९९ ॥

(भावार्थ)—अब ऊपर कहे अध्यारोप और अपवाद में से अध्यारोप का स्वरूप कहते हैं, कि-असली वस्तु में किसी दूसरी मिथ्या वस्तु की कल्पना को पण्डित जन 'अध्यारोप' नाम से कहते हैं । जैसे रस्सी सर्प नहीं है तो भी लोग भ्रमसे अंधेरे में पड़ी हुई रस्सी में सर्प की कल्पना करलेते हैं ॥ २९९ ॥

वस्तु तावत्परं ब्रह्म सत्यज्ञानादिलक्षणम् ।
इदमारोपितं यत्र भाति खे नीलतादिवत् ।३००।

अन्वय और पदार्थ—(तावत्) पहिले तो (परंब्रह्म) परब्रह्मरूप (वस्तु) वास्तविक पदार्थ (सत्यज्ञानादिलक्षणम्) सत्य ज्ञान आदि लक्षणों वाला है (खे) आकाश में (नीलतादिवत्) नीलेपने आदि की समान (यत्र) जिस ब्रह्म में (इदम्) यह जगत् (आरोपितम्) कल्पित (भाति) प्रतीत होता है ३००

(भावार्थ)-परब्रह्म यथार्थ वस्तु है, सत्य, ज्ञान और आनंद उसका स्वरुप लक्षण है, जैसे आकाशमें नीलरूप कल्पित है तैसे ही ब्रह्ममें कल्पना किया हुआ जगत् प्रतीत होता है ॥ ३०० ॥

॥ अज्ञानम् ॥

तत् कारणं यदज्ञानं सकार्यं सद्विलक्षणम् ।
अवस्त्वित्युच्यते सद्भिर्यस्य बाधा प्रदृश्यते ॥ २०१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सकार्यम्) घट पट आदि समस्त जगत् रूप कार्य सहित (सद्विलक्षणम्) ब्रह्मसे भिन्न (यत्) जो (कारणम्) सकल जगत् का उपादान कारण (अज्ञानम्) अविद्या है (तत्) वह (सद्भिः) साधु पुरुषों करके (अवस्तु) मिथ्या वस्तु (इति) ऐसा (उच्यते) कहाजाता है (यस्य) जिसकी (बाधा) निवृत्ति (प्रदृश्यते) देखनेमें आती है ॥ २०१ ॥

(भावार्थ)-जो सब वस्तुओंका मूल कारण है, घट पट आदि सब जगत् जिसका कार्य है, जो ब्रह्मसे भिन्न है और जिसकी निवृत्ति देखनेमे आतीहै, ऐसे अज्ञानको पण्डितजन अवस्तु-कुछ भी नहीं है, ऐसा कहते हैं ॥ २०१ ॥

अवस्तु तत्प्रमाणैर्यद्बाध्यते शुक्तिरौप्यवत् ।
न बाध्यते यत्तद्वस्तु त्रिषु कालेषु शुक्तिवत् ॥ २०२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (शुक्तिरौप्यवत्) सीपीमें प्रतीत होनेवाली चांदी की समान (प्रमाणैः) प्रमाणों के द्वारा (बाध्यते) बाधित होताहै (तत्) वह (अवस्तु) मिथ्या वस्तु है (यत्) जो (शुक्तिवत्) सीपीकी समान (त्रिषु, कालेषु) तीनो कालोंमें (न) नहीं (बाध्यते) बाधित होता है (तत्) वह (वस्तु) सत्य पदार्थ है ॥ २०२ ॥

(भावार्थ)—सीपीमें प्रतीत होनेवाले रजतकी समान जो प्रमाणों के द्वारा बाधित होता है वह ही अवस्तु है और जो सीपीकी समान तीनो कालमें बाधित नहीं होता उसको वस्तु कहते हैं ॥ २०२ ॥

शुक्तेर्बाधा न खल्वस्ति रजतस्य यथा तथा ।
अवस्तुसंज्ञितं यत्तज्जगदध्यासकारणम् ॥ २०३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (रजतस्य) रजत की (बाधा) निवृत्ति है (तथा) तैसे (शुक्तेः) सीपी की (खलु) निश्चय (बाधा) निवृत्ति (न) नहीं (अस्ति) है (यत्) जो (अवस्तुसंज्ञितम्) अवस्तु नाम वाला है (तत्) वह (जगदध्यासकारणम्) जगत् के अध्यास का कारण है ॥ २०३ ॥

(भावार्थ)-सीपी में रजत की प्रतीति होने की जगह जैसे रजत का बाध

होजाता है तैसे ही सीपीका बाध नहीं होता है.जिस अज्ञान को अवस्तु कहा जाता है वही जगत् के अध्यास का कारण है ॥ २०३ ॥

सदसद्भ्यामनिर्वाच्यमज्ञानं त्रिगुणात्मकम् ।
वस्तुतत्त्वावबोधैकबाध्यं तद्बाधलक्षणम् ॥ ०४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अज्ञानम्) अविद्या (सदसद्भ्याम्) सत् और असत् के द्वारा (अनिर्वाच्यम्) वर्णन करने योग्य नहीं है (त्रिगुणात्मकम्) सत्व रज- तमोगुण रूप (वस्तुतत्त्वावबोधैकबाध्यम्) केवल यथार्थ वस्तु का बोध होने पर ही बाधित होनेवाली (तद्बाधलक्षणम्) तत्त्वज्ञान से बाध्य होना ही है लक्षण जिसका ऐसी है ॥ २०४ ॥

(भावार्थ)-अविद्या को ब्रह्म की समान सत् शब्द से भी नहीं कहसकते और आकाश के पुष्प आदि की समान असत् शब्द से भी नहीं कहसकते, किंतु वह मिथ्या है और केवल एक ज्ञान से ही दूर होती, है सत्व-रज तम ये तीन गुण ही उसके स्वरूप हैं, एकमात्र वस्तु के तत्त्व का ज्ञान होने से ही वह दूर होती है और ज्ञान से दूर होजाना ही उसका लक्षण है ॥ २०४ ॥

मिथ्यासंबंधतस्तत्र ब्रह्मण्याश्रित्य तिष्ठति ।
मणौ शक्तिर्यथा तद्वन्नैतदाश्रयदूषकम् ॥२०५॥

अन्वय और पदार्थ-(एतत्) यह अज्ञान (मिथ्यासंबन्धतः) झूठा संबन्ध होनेके कारणसे (मणौ) मणिमें (शक्तिः-यथा) दाहिका शक्तिकी समान (तत्र) उस (ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (आश्रित्य) आश्रय लेकर (तिष्ठति) स्थित रहता है (तद्वत्) उस मणि की समान (आश्रयदूषकम्) आधारमें विकार उत्पन्न करनेवाला (न) नहीं है ॥ २०५ ॥

(भावार्थ)—जैसे सूर्यकांत मणिमें जलानेकी शक्ति रहती है तैसे ही अज्ञान मिथ्या सम्बन्ध से ब्रह्मका आश्रय करके रहता है, परन्तु यह अज्ञान मणिकी समान अपने आश्रयमें विकार उत्पन्न नहीं करता है ॥ २०५ ॥

सद्भावे लिङ्गमेतस्य कार्यमेतच्चराचरम् ।
मानं श्रुतिः स्मृतिश्चाज्ञोऽहमित्यनुभवोपि च२०६

अन्वय और पदार्थ-(एतस्य) इस अज्ञानके (सद्भावे) सत् होनेपर (एतत्)यह (चराचरम्) जङ्गम और स्थावर जगत् (कार्यम्) कार्य है (लिङ्गम्)

चिह्न है (श्रुतिः) वेद (स्मृतिः) धर्मशास्त्र (च) और (अहम्) मैं (अज्ञः) ज्ञानहीन हूं (इति) ऐसा (अनुभवः-अपि) अनुभव भी (मानम्) अज्ञानता का प्रमाण है ॥ ३०६ ॥

(भावार्थ)-यह स्थावर जङ्गमरूप जगत् अज्ञानका कार्य है, कार्यरूप लक्षण के द्वारा अज्ञानके होनेका अनुमान होता है । श्रुति, स्मृति और मैं ज्ञानहीन विपरीत ज्ञानवाला हूं, ऐसा अनुभव भी अज्ञानके अस्तित्व का साधक प्रमाण है ३०६

अज्ञानं प्रकृतिः शक्तिरविद्येति निगद्यते ।
तदेतत्सन्न भवति नासद्वा शुक्तिरौप्यवत् ३०७

अन्वय और पदार्थ-(अज्ञानम्) अज्ञान (प्रकृतिः) जगत्को रचनेवाली प्रकृति (शक्तिः) जगत्को ठहरानेवाली शक्ति (अविद्या) अविद्या (इति) इन नामोंसे (निगद्यते) कहाजाता है (तत्) वह (एतत्) यह अज्ञान (शुक्तिरौप्यवत्) सीपी में भ्रमसे प्रतीत होनेवाले रजतकी समान (सत्) सत्स्वरूप (न) नहीं (भवति) होता है (वा) या (असत्) असत् (न) नहीं [भवति] होता है ॥ ३०७ ॥

(भावार्थ)-पण्डितजन अज्ञानको प्रकृति, शक्ति और अविद्या शब्द से कहते हैं, यह सीपी में प्रतीत होनेवाले रजत की समान सत् वा असत् नहीं है ३०७

सतो भिन्नमभिन्नं वा न दीपस्य प्रभा यथा ।
न सावयवमन्यद्वा बीजस्यांकुरवत् क्वचित् ॥

अन्वय और पदार्थ-(दीपस्य) दीपक की (प्रभा, यथा) दीप्ति की समान (सतः) सत्स्वरूप ब्रह्म से [अज्ञानम्] अज्ञान (भिन्नम्) भिन्न (वा) या (अभिन्नम्) अभिन्न (न) नहीं [निरूप्यते] निरूपण किया-जाता है (वा) अथवा (क्वचित्) कभी (बीजस्य) बीज के (अंकुरवत्) अंकुरको समान (सावयवम्) अवयववाला (अन्यत्) अवयवशून्य (न) नहीं है ॥

(भावार्थ)—जैसे दीपककी प्रभा दीपकसे भिन्न वा अभिन्न कुछ नहीं कहीजासकती, तैसे ही अज्ञान सत् ब्रह्मसे भिन्न या अभिन्न कुछ नहीं कहाजा सकता, जैसे अंकुरको बीजका अंश वा अनंश कुछ भी नहीं कहसकते, तैसे ही अज्ञानको ब्रह्मका अवयव वा अनवयव कुछ नहीं कहाजासकता ॥ ३०८ ॥

अत एतदनिर्वाच्यमित्येव कवयो विदुः ।

समष्टिव्यष्टिरूपेण द्विधा ज्ञानं निगद्यते ॥ ३०९ ॥

अन्वय और पदार्थ--(अतः) इस कारण (कवयः) पण्डित पुरुष (एतत्) इसको (अनिर्वाच्यम्) अनिर्वचनीय (इति-एव) ऐसा ही (विदुः) जानते हैं (अज्ञानम्) अविद्या (समष्टिव्यष्टिरूपेण) एकरूप और पृथक् रूपसे (द्विधा) दो प्रकारकी (निगद्यते) कहीजाती है ॥ ३०९ ॥

भावार्थ-इसलिये विद्वान् पुरुषोंने ऐसा निश्चय कर लिया है,कि-यह अज्ञानरूपा अविद्या अनिर्वचनीय है और समष्टि व्यष्टि भेदसे दो प्रकारकी कहीजाती है ॥३०९॥

नानात्वेन प्रतीतानामज्ञानानामभेदतः ।
एकत्वेन समष्टिः स्याद् भूरुहाणां वनं यथा ३१० ।

अन्वय और पदार्थ--(यथा) जैसे (भूरुहाणाम्) अनेकों वृक्षोंका (वनम्) वन [भवति] होता है [तथा] तैसे ही (नानात्वेन) भिन्न २ रूपसे (प्रतीतानाम्) प्रतीत होनेवाले (अज्ञानानाम्) अज्ञानोंका (अभेदतः) भेद न होनेके कारण (एकत्वेन) एकरूप होने करके (समष्टिः) समष्टि (स्यात्) होगी ॥ ३१० ॥

(भावार्थ)--जैसे वृक्ष अलग अलग अनेकों होते हैं, परन्तु वनरूप में उन को एक कहाजाता है तैसे ही जीवोंके उपाधिरूप भेदसे यद्यपि अज्ञान भिन्न भिन्न अनेकों प्रतीत होते हैं, परन्तु अभेदभावसे उनके एकत्वका व्यवहार होता है, बस एकरूपताको ही समष्टि कहते हैं ॥ ३१० ॥

ईश्वर

इयं समष्टिरुत्कृष्टा सत्त्वांशोत्कर्षतः पुरा ।
मायेति कथ्यते तज्ज्ञैः शुद्धसत्त्वैकलक्षणा ॥३११॥

अन्वय और पदार्थ —(इयम्) यह (समष्टिः) एकरूप अज्ञान (सत्त्वांशोत्कर्षतः) सत्त्वगुणका अंश अधिक होनेके कारण (पुरा) पहिले (तज्ज्ञैः) अविद्याके स्वरूपको जाननेवालों करके (शुद्धसत्त्वैकलक्षणा) रजोगुण तमोगुण से रहित एक शुद्ध सत्त्वगुण ही जिसका स्वरूप है वह (माया) माया नामक ईश्वरकी उपाधि (इति) ऐसा (कथ्यते) कहीजाती है ॥ ३११ ॥

भावार्थ—इस अज्ञानकी समष्टिमें यदि सत्त्वगुणका अंश अधिक हो तो यह उत्तम कहलाती है, केवल सत्त्वगुण ही जिसका स्वभाव है ऐसी अज्ञानकी समष्टि का नाम माया है, विद्वान् कहते हैं कि—वह शुद्ध सत्त्वगुणी माया ही ईश्वरकी उपाधि है ॥ ३११ ॥

मायोपहितचैतन्यं साभासं सत्त्वबृंहितम् ।
सर्वज्ञत्वादिगुणकं सृष्टिस्थित्यन्तकारणम् ॥
अव्याकृतं तदव्यक्तमीश इत्यपि गीयते ॥३१२॥

अन्वय और पदार्थ-(मायोपहितचैतन्यम्) मायारूप उपाधिवाला चैतन्य (साभासम्) चिदाभासयुक्त (सत्त्वबृंहितम्) सत्त्वगुणकी अधिकता वाला (सर्वज्ञत्वादिगुणकम्) सर्वज्ञताआदि गुणोंवाला (सृष्टिस्थित्यन्तकारणम्) सृष्टि, स्थिति और प्रलयका कारण (तत्) प्रसिद्ध (अव्याकृतम्) नाम और रूपके द्वारा व्यक्त न होनेवाला (अव्यक्तम्) व्यक्तभावरहित (ईशः) ऐश्वर्यवान् (इत्यपि) ऐसा भी (गीयते) कहाजाता है ॥ ३१२ ॥

(भावार्थ)—वह शुद्ध सत्त्वगुणमयी माया जिसकी उपाधि है, जो चिदाभास से युक्त है, जिसमें सत्त्वगुणकी बहुतायत है, जो सर्वज्ञता आदि धर्मोंवाला है और जिसके द्वारा जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होती है उसको पण्डित अव्याकृत, अव्यक्त और ईश कहते हैं ॥ ३१२ ॥

सर्वशक्तिगुणोपेतः सर्वज्ञानावभासकः ।
स्वतन्त्रः सत्यसङ्कल्पः सत्यकामः स ईश्वरः ३१३

अन्वय और पदार्थ--[यः] जो (सर्वशक्तिगुणोपेतः) सकल शक्तिरूप गुणोंसे युक्त है (सर्वज्ञानावभासकः) सकल ज्ञानोंका प्रकाशक है (स्वतन्त्रः) माया के अधीन नहीं है (सत्यसङ्कल्पः) सत्य विचारवाला है (सत्यकामः) सत्य कामना वाला है (सः) वह (ईश्वरः) ईश्वर नाम वाला है ॥ ३१३ ॥

(भावार्थ)-जिसमें सकल शक्तिरूप गुण हैं, जो सम्पूर्ण ज्ञानोंका प्रकाशक है, जो माया के वशमें न होकर स्वतन्त्र रहता है, जिसका सङ्कल्प सदा सत्य होता है जौर जिसकी कामना सदा सत्य होती है वही ईश्वर है ॥ ३१३ ॥

तस्यैतस्य महाविष्णोर्महाशक्तेर्महीयसः ।
सर्वज्ञत्वेश्वरत्वादिकारणत्वान्मनीषिणः ।
कारणं वपुरित्याहुः समष्टिं सत्त्वबृंहितम् ॥३१४॥

अन्वय और पदार्थ--(मनीषिणः) महात्मा पुरुष (तस्य) तिस (एतस्य)

इस (महाशक्तेः) बड़ी शक्तिवाले (महीयसः) सर्वव्यापक (महाविष्णोः) महाविष्णुके (सर्वज्ञत्वेश्वरत्वादिकारणत्वात्) सर्वज्ञत्व ईश्वरत्व आदिका कारण होने से (सत्त्ववृंहितम्) सत्त्वगुणकी अधिकता वाली (समष्टिम्) समष्टिको (कारणं वपुः) कारण शरीर है (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं ॥३१४॥

(भावार्थ)-सत्त्वगुणकी अधिकतावाला समष्टि रूप माया नामक अज्ञान सर्वज्ञता ईश्वरता आदिका कारण है इसकारण विवेकी पुरुष इसको महाशक्तिशाली सर्वव्यापक महाविष्णु नामक ईश्वरका कारण शरीर कहते हैं ॥ ३१४ ॥

आनन्दप्रचुरत्वेन साधकत्वेन कोशवत् ।
सैषानन्दमयः कोश इतीशस्य निगद्यते ॥३१५॥

अन्वय और पदार्थ-(कोशवत्) कीटके बन्देकी समान (साधकत्वेन)साधक होनेसे (आनन्दप्रचुरत्वेन) आनन्दकी अधिकता होनेके कारण (सा) वह (एषा) यह (ईशस्य) ईश्वरका (आनन्दमयः,) आनन्दमय (कोशः इति) कोश इस नामवाला (निगद्यते) कहाजाता है ॥ ३१५ ॥

(भावार्थ)-आनन्दकी अधिकता होनेके कारण और कोश कहिये कीड़ा जिसके भीतर बन्द होताहै उस बन्देकी समान आवरण करनेवाला होनेसे इसको ईश्वरका आनन्दमय कोश कहते हैं ॥ ३१५ ॥

सर्वोपरमहेतुत्वात्सुषुप्तिस्थानमिष्यते ।
प्राकृतं प्रलयो यत्र श्राव्यते श्रुतिभिर्मुहुः॥३१६॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वोपरमहेतुत्वात्) सकल लयोंका हेतु होनेसे (सुषुप्तिस्थानम्) सुषुप्ति नाम का स्थान (इष्यते) इच्छा कियाजाता है (यत्र) जिसमें (प्राकृतः) प्राकृत नामवाला (प्रलयः) लय (भवति) होता है (श्रुतिभिः) वेदों के द्वारा (मुहुर्मुहुः) बार बार (श्राव्यते) सुनायाजाता है॥ ३१६ ॥

(भावार्थ)-सकल प्राणियोंके लयका कारण होनेसे जिसको सुषुप्तिस्थान कहते हैं जिस अवस्थाको श्रुतियोंने वारंवार प्राकृत लय नाम से कहा है ॥३१६॥

अज्ञानं व्यष्ट्यभिप्रायादनेकत्वेन भिद्यते ।
अज्ञानवृत्तयो नाना तत्तद्गुणविलक्षणाः॥३१७॥

अन्वय और पदार्थ-(अज्ञानम्) अविद्या (व्यष्ट्यभिप्रायात्) अनेकों तात्पर्य होनेसे (अनेकत्वेन) नाना भेदों करके (भिद्यते) भेदको प्राप्त होती है

(तत्तद्गुणविलक्षणाः) तिन२ गुणोंके कारण भिन्न२ प्रकारकी। (अज्ञानवृत्तयः) अज्ञानकी वृत्तियें (नाना) अनेकों प्रकारकी (भवन्ति) होती हैं॥ ३१७॥

(भावार्थ)-व्यष्टिभाव कहिये भिन्न २ रूपसे अज्ञान अनेकों प्रकारका है और सत्त्व, रज तथा तमोगुणके द्वारा विलक्षण स्वभाववाले अज्ञान की वृत्तियें भी असंख्यों प्रकारकी होजाती हैं॥ ३१७॥

वनस्य व्यष्ट्यभिप्रायाद् भूरुहा इत्यनेकता।
यथा तथैवाज्ञानस्य व्यष्टितः स्यादनेकता॥३१८॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (वनस्य) वनके (व्यष्ट्यभिप्रायात्) व्यष्टिरूप तात्पर्य से (भूरुहाः) अनेकों वृक्ष [सन्ति) हैं (इति) इसप्रकार (अनेकता) अनेकभाव [अस्ति] है (तथा-एव) तैसे ही (अज्ञानस्य) अज्ञानको (व्यष्टितः) व्यष्टिभावसे (अनेकता) अनेकपना (स्यात्) होगा॥ ३१९॥

(भावार्थ)-वन समष्टिरूपसे एक होने पर भी अनेकों वृक्ष होनेके कारण व्यष्टिरूपसे जैसे अनेक कहलाता है,तिसीप्रकार एक ही अज्ञान व्यष्टिरूपसे अनेक कहलाता है॥ ३१८॥

प्रत्यगात्मा

व्यष्टिर्मलिनसत्त्वैषा रजसा तमसा युता।
ततो निकृष्टा भवति योपाधिः प्रत्यगात्मनः॥३१९॥

अन्वय और पदार्थ-(एषा) यह (व्यष्टिः) व्यष्टि भाववाला अज्ञान (मलिनसत्वा) रजोगुण और तमोगुणके द्वारा जिसका सत्वगुण दवागया है ऐसा (रजसा) रजोगुण करके (तमसा) तमोगुण करके (युता) युक्त (या) जो (प्रत्यगात्मनः) व्यापक,आत्माकी (उपाधिः) भेदक धर्म (ततः) उससे (निकृष्टा) हीन (भवति) होता है॥ ३१९॥

(भावार्थ)—इस व्यष्टि अज्ञानमें सत्त्वगुण दवजाता है, उसके ऊपर रजोगुण और तमोगुणका दवाव पड़ता है और वह व्यापक आत्माकी उपाधिसे हीन है॥

चैतन्यं व्यष्ट्यवच्छिन्नं प्रत्यगात्मेति गीयते।
सभासं व्यष्ट्युपहितं सत्तादात्म्येन तद्गुणैः ३२०
अभिभूतः स एवात्मा जीव इत्यभिधीयते।

किञ्चिज्ज्ञत्वानीश्वरत्वसंसारित्वादिधर्मवान् ३२१॥

अन्वय और पदार्थ-(व्यष्ट्यवच्छिन्नः) व्यष्टिरूप अज्ञानसे युक्त (चैतन्यम्) चेतनाशक्ति (प्रत्यगात्मा-इति) प्रत्यगात्मा इस नामसे (गीयते) कहा जाता है (सांभासम्) व्यष्टिरूप अज्ञानमें प्रतिबिम्बित चिदाभास (व्यष्ट्युपहितम्) व्यष्टिरूप अज्ञानकी उपाधिवाला (भवति) होता है सत्तादात्म्येन, ब्रह्मके साथ एकात्मा होने के कारण (तद्गुणैः) ब्रह्मभावको प्राप्त हुए अज्ञानके गुणों करके (अभिभूतः) दबाहुआ (सः) वह (एव) ही (आत्मा) आत्मा (किञ्चिज्ज्ञत्वानीश्वरत्वसंसारित्वादिधर्मवान्) अल्पज्ञपना, अनीश्वरपना और संसारीपना आदि धर्मों वाला (जावः-इति) जीव इस नामसे (अभिधीयते) कहाजाता है३२०

(भावार्थ)-व्यष्टि अज्ञानसे युक्त चैतन्यको प्रत्यगात्मा कहते हैं, व्यष्टि अ- अज्ञान उपाधि होनेपर उस को साभास कहिये चिदाभास कहते हैं, प्रत्यगात्मा भी ब्रह्मके साथ अभिन्न है, उसके गुणोंके द्वारा वही आत्मा जब दब जाता है तब अल्पज्ञपना, अनीश्वरपना और संसारीपना आदि धर्मों वाला जीव कहलाता है ॥ ३२० ॥ ३२१ ॥

अस्य व्यष्टिरहङ्कारकारणत्वेन कारणम् ।

वपुस्तत्राभिमान्यात्मा प्राज्ञ इत्युच्यते बुधैः॥३२२॥

अन्वय और पदार्थ--(बुधैः) पण्डितों करके (अस्य) इस जीवका (व्यष्टिः) व्यष्टि अज्ञान (अहङ्कारकारणत्वेन) अहङ्कार कारण होनेसे (कारणं वपुः) कारण शरीर [उच्यते] कहाजाता है (तत्र) उस कारण शरीरमें (अभिमानी) अहङ्कार वाला (आत्मा) जीव (प्राज्ञः इति) प्राज्ञ इस नामवाला (उच्यते) कहा जाता है ॥ ३२२ ॥

(भावार्थ)--विवेकी पुरुष, अहङ्कारका कारण होने से जीवके व्यष्टि अज्ञान को कारण शरीर और उस कारण शरीरमें अभिमानी आत्माको (जीवको) प्राज्ञ कहते हैं ॥ ३२२ ॥

प्राज्ञत्वमस्यैकाज्ञानभासकत्वेन संमतम् ।

व्यष्टेर्निकृष्टत्वेनास्य नानेकाज्ञानभासकम् ३२३

अन्वय और पदार्थ--(अस्य) इस जीवके (एकाज्ञानभासकत्वेन) केवल एक अज्ञानका साक्षी होने से (प्राज्ञत्वम्) जीवपना (सम्मतम्) माना गया है

(व्यष्टेः) व्यष्टि अज्ञानके निकृष्टत्वेन) हीन होनेके कारण (अनेकाज्ञानभासकम्) अनेकों अज्ञानोंका साक्षी (न) नहीं है ॥ ३२३ ॥

(भावार्थ)-- यह जीव एक कहिये केवल अपने ही अज्ञानका प्रकाशक कहिये साक्षी है, इसकारण इसको प्राज्ञ वा जीव नाम से कहाजाता है । व्यष्टि अज्ञान इसकी उपाधि कहिये मलिन सत्त्व है, इसकारण, इसकी निकृष्टता होनेसे यह अनेका अज्ञानोंका प्रकाशक नहीं होसकता ॥ ३२३ ॥

स्वरूपाच्छादकत्वेनाप्यानन्दप्रचुरत्वतः ।
कारणं वपुरानन्दमयः कोश इतीर्यते ॥ ३२४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(कारणं वपुः अपि) कारण शरीर भी (स्वरूपाच्छादकत्वेन) अपने स्वरूपको ढकने वाला होनेके कारण (आनन्दप्रचुरत्वतः) आनन्दकी अधिकता होने से (आनंन्दमयः) आनन्दमय नामवाला (कोशः) कोश (इति) ऐसा (ईर्यते) कहा जाता है ॥ ३२४ ॥

(भावार्थ)—यह कारण शरीर भी जीवके स्वरूपको ढक देता है और इस में बहुतसा आनन्द विद्यमान है, इसकारण पंडित इसको आनन्दमय कोश कहते हैं ॥ ३२४ ॥

अस्यावस्था सुषुप्तिः स्याद्यत्रानन्दः प्रकृष्यते ।
एषोऽहं सुखमस्वाप्सं न तु किञ्चिदवेदिषम् ३२५
इत्यानन्दसमुत्कर्षः प्रबुद्धेषु प्रदृश्यते ।
समष्टेरपि च व्यष्टेरुभयोर्वनवृक्षवत् ॥ ३२६ ॥
अभेद एव नो भेदो जात्येकत्वेन वस्तुतः ।
अभेद एव ज्ञातव्यस्तथेशप्राज्ञयोरपि ॥ ३२७॥

अन्वय और पदार्थ—(सुषुप्तिः) सुषुप्ति नामवाली गाढ़ निद्रा (अस्य) इस जीवकी (अवस्था) एक प्रकारकी दशा (स्यात्) है (यत्र) जिसमें (आनंदः) सुख (प्रकृष्यते) बढ़ता है (एषः) यह (अहम्) मैं (सुखम्) सुखपूर्वक (अस्वाप्सम्) सोया (तु) किंतु (किञ्चित्) कुछ (न) नहीं (अवेदिषम्) जानसका (इति) इसप्रकार (आनन्दसमुत्कर्षः) आनन्दका आधिक्य (प्रबुद्धेषु) जागेहुए मनुष्योंमें (प्रदृश्यते) देखनेमें आता है (समष्टेः) समष्टि अज्ञानका (च)

और (व्यष्टेः अपि) व्यष्टि अज्ञानका भी (उभयोः) दोनोंका (वनवृक्षवत्) वन और भिन्न भिन्न वृक्षोंके अभेदकी समान वस्तुतः) वास्तवमें (जात्यैकत्वेन) जाति और एकत्वके द्वारा (अभेदः) अभिन्नता (एव) ही (नो) नहीं (भेदः) भिन्नता (तथा) तैसे ही (ईश्वरप्राज्ञयोः--अपि) ईश्वर और जीवका भी (अभेदः-एव) अभेद ही (ज्ञातव्यः) जानना चाहिये ॥ ३२५-३२७ ॥

(भावार्थ) गाढ़निद्रारूप सुषुप्ति जीवकी एक अवस्था है, जिस अवस्था में आनन्दकी अधिकता प्राप्त होती है, मैं बडे सुखसे सोया, कुछ भी नहीं जानसका जागेहुए पुरुष इसप्रकार अपने आनन्दका अनुभव दिखाते हैं। वन और वृक्षोंके समूहकी समान समष्टि और व्यष्टिरूप अज्ञानका अभेद ही देखने में आता है, भेद देखनेमें नहीं आता। वास्तव में जैसे जाति और उस के अन्तर्गत भिन्न २ व्यक्तियोंका भेद नहीं होता हैं तैसेही ईश्वर और जीवका अभेद जानो ॥ ३२५ ॥

सत्युपाध्योरभिन्नत्वे क्व भेदस्तद्विशिष्टयोः ।
एकीभावे तरङ्गाब्ध्योः को भेदः प्रतिबिम्बयोः ३२८

अन्वय और पदार्थ-(उपाध्योः) समष्टि और व्यष्टि इन दोनों उपाधियोंके (अभिन्नत्वे सति) एकत्व होने पर (तद्विशिष्टयोः) उन दोनों उपाधियोंसे युक्तोंका (भेदः) भेद (क्व) कहां ? (तरङ्गाब्ध्योः) तरङ्ग और समुद्रके (एकीभावे) एकत्व होने पर (प्रतिबिम्बयोः) तरङ्ग और समुद्रमें पडे हुए प्रतिबिम्बका (कः) कौन (भेदः) भेद ॥ ३२८ ॥

(भावार्थ)-अज्ञानसमष्टि और अज्ञानव्यष्टि इन दोनों उपाधियोंके अभिन्न होने पर उन उपाधियोंवाले ईश्वर और जीवका भेद होना भी असम्भव है। जब तरंग और समुद्र एक ही ठहरे तो उनमें पडनेवाले दो प्रतिबिम्बोंमें भेद कैसे होसकता हैं ॥ ३२८ ॥

अज्ञानतदवच्छिन्नाभासयोरुभयोरपि ।
आधारः शुद्धचैतन्यं यत्तत्तुर्यमितीर्यते ॥ ३२९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अज्ञानतदवच्छिन्नाभासयोः) अज्ञान और अज्ञानावच्छिन्न चिदाभास (उभयोः--अपि) दोनोंका ही [यः] जो (आधारः) आश्रय है (तत्) वह (शुद्धचैतन्यम्) शुद्ध ब्रह्म है (यत्) जो (तुर्यम्) तुरीय है (इति) इस नामसे (ईर्यते) कहाजाता है ॥ ३२९ ॥

(भावार्थ)-अज्ञान और अज्ञानावच्छिन्न चिदाभास अर्थात् चैतन्यप्रतिबिम्ब इन दोनोंका आधार शुद्ध चैतन्य कहिये शुद्ध ब्रह्म है, पण्डित इसके तुरीय नाम से कहते हैं ॥ ३२९ ॥

जगत्सर्ग

एतदेवाविविक्तं सदुपाधिभ्याञ्च तद्गुणैः ।
महावाक्यस्य वाच्यार्थो विविक्तं लक्ष्य इष्यते ३३०

अन्वय और पदार्थ-- एतत्-एव) यह शुद्ध चैतन्य ही (उपाधिभ्याम्) समष्टि व्यष्टि अज्ञानरूप दो उपाधियोंके द्वारा (च) और (तद्गुणैः) उन दोनों उपाधियोंके गुणोंके द्वारा (अविविक्तं सत्) पृथक् न होता हुआ (महावाक्यस्य) तत्त्वमसि महावाक्यका (वाच्यार्थः) अभिधाशक्तिसे प्राप्त हुआ अर्थ) [तथा] तैसे ही (विविक्तम्) पृथग्भूत [सत्] होता हुआ (लक्ष्यः) लक्ष्य अर्थ (इष्यते) इच्छा कियाजाता है ॥ ३३० ॥

(भावार्थ)-शुद्ध चैतन्य जिस समय पीछे कह हुई समष्टि व्यष्टिरूप दोनों उपाधियोंके और उनके सकल गुणोंके साथ अविविक्तभाव कहिये मिलितभावसे स्थित होता है उस समय वह तत्त्वमसि आदि महावाक्यका वाच्य अर्थ होता है और पृथक् होने पर लक्ष्य अर्थ होता है ॥ ३३० ॥

अनन्तशक्तिसम्पन्नो मायोपाधिक ईश्वरः ।
ईक्षामात्रेण सृजति विश्वमेतच्चराचरम् ॥३३१॥

अन्वय और पदार्थ--(अनन्तशक्तिसम्पन्नः) असंख्यों शक्तियोंवाला (ईश्वरः) परमात्मा (मायोपाधिकः) मायारूप उपाधिवाला होकर (ईक्षामात्रेण) देखलेने मात्रसे (एतत्) इस (चराचरम्) जङ्गम स्थावर रूप (विश्वम्) जगत् को (सृजति) रचता है ॥३३१॥

(भावार्थ)-अनन्त शक्तिवाला ईश्वर, मायारूप उपाधियुक्त होकर दर्शन मात्रसे ही स्थावर जंगमरूप सब जगत्की रचना करता है ॥ ३३१ ॥

अद्वितीयस्वमात्रोऽसौ निरुपादान ईश्वरः ।
स्वयमेव कथं सर्वं सृजतीति न शंक्यताम् ३३२

अन्वय और पदार्थ--(अद्वितीयस्वमात्रः) द्वितीय रहित केवल एक ब्रह्म (निरुपादानः) उपादान कारणसे शून्य (असौ) यह (ईश्वरः) परमेश्वर

सहायताके बिना अपने आप ही सकल सृष्टिको कैसे रचदेता है, ऐसी शङ्का नहीं करसकते ॥ ३२ ॥

निमित्तमप्युपादानं स्वयमेव भवन् प्रभुः ।
चराचरात्मकं विश्वं सृजत्यवति लुम्पति ॥ ३३ ॥

अन्वय और पदार्थ--(प्रभुः) ईश्वर (स्वयमेव) अपने आप ही (निमित्तम्) निमित्त कारण (अपि) और (उपादानम्) उपादान कारण (भवन्) होताहुआ (चराचरात्मकम्) स्थावर जंगमरूप (विश्वम्) जगत्को (सृजति) रचता है (अवति) पालन करता है (लुम्पति) नष्ट करता है ॥ ३३ ॥

(भावार्थ)-सर्वशक्तिमान् परमेश्वर स्वयं ही निमित्त और उपादान कारण रूप होकर इस स्थावर जङ्गम रूप विश्वकी सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं ३३

स्वप्राधान्येन जगतो निमित्तमपि कारणम् ।
उपादानं तथोपाधिप्राधान्येन भवत्ययम् ॥ ३४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अयम्) यह ईश्वर (स्वप्राधान्येन) अपनी अर्थात् चेतनकी प्रधानता करके (निमित्तं कारणम्) निमित्त कारण (तथा) तैसे ही (उपाधिप्राधान्येन) मायारूप उपाधिकी प्रधानताके द्वारा (उपादानम् अपि) उपादान कारण भी (भवति) होता है ॥ ३४ ॥

(भावार्थ)- ईश्वर अपनी प्रधानतासे अर्थात् चैतन्य अंशकी प्रधानता के कारण जगत्का निमित्त कारण है, जैसे कि घट बननेमें उसका निमित्त कारण कुम्हार होता है तथा मायारूप उपाधिकी प्रधानता के कारण से उपादान कारण भी है ॥ ३४ ॥

यथा लूता निमित्तञ्च स्वप्रधानतया भवेत् ।
स्वशरीरप्रधानत्वेनोपादानं तथेश्वरः ॥ ३५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यथा) जैसे (लूता) मकड़ी (स्वप्रधानतया) अपने चैतन्यांशकी प्रधानता करके (निमित्तम्) निमित्त कारण (च) और (स्वशरीरप्रधानत्वेन) अपने शरीरकी प्रधानता करके (उपादानम्) उपादान कारण (भवेत्) होती है (तथा) तैसे ही (ईश्वरः) परमेश्वर [अस्ति] है ।

(भावार्थ)—जैसे मकड़ी कीड़ा अपने शरीरमेंसे तार को निकालता हुआ पूरता जाल तनता है, उस जालेकी रचनामें वह अपने चैतन्य अंशसे तो उस जाले

का निमित्त कारण होता है और अपने शरीररूप अंशसे उस जालेका उपादान कारण होता है इसीप्रकार ईश्वर भी जगत्का निमित्त और उपादान दोनों प्रकार का कारण है ॥ ३५ ॥

तमःप्रधानप्रकृतिविशिष्टात्परमात्मनः ।
अभूत्सकाशादाकाशमाकाशाद्वायुरुच्यते ॥ ३६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तमःप्रधानप्रकृतिविशिष्टात्) तमोगुणप्रधान मायाशंवलित (परमात्मनः) परमात्माके (सकाशात्) सकाशसे (आकाशम्) आकाश (अभूत्) उत्पन्न हुआ (आकाशात्) आकाशसे (वायुः) वायु (उच्यते) कहलाता है ॥ ३६ ॥

(भावार्थ)-मायामें जब तमोगुणकी प्रधानता होती है तब उस मायासे संयुक्त ब्रह्मसे आकाश उत्पन्न होता है और आकाशसे वायुकी उत्पत्ति होती है ॥ ३६ ॥

वायोरग्निस्तथैवाग्नेरापोऽद्भ्यः पृथिवी क्रमात् ।
शक्तेस्तमःप्रधानत्वं तत्कार्ये जाड्यदर्शनात्॥३७॥
आरभन्ते कार्यगुणान् ये कारणगुणा हि ते ।
एतानि सूक्ष्मभूतानि भूतमात्रा अपि क्रमात्॥३८॥

अन्वय और पदार्थ-(तथैव) तैसे ही (वायोः) वायुसे (आपः) जल (अद्भ्यः) जलोंसे (पृथिवी) भूमि (क्रमात्) क्रमसे [उत्पद्यते] उत्पन्न होती है (तत्कार्ये) मायाके कार्य आकाश आदिमें (जाड्यदर्शनात्) जड़ता दीखती है इसकारण (शक्तेः) माया शक्तिकी (तमःप्रधानत्वम्) तमोगुणकी प्रधानता [अनुमीयते] अनुमान कीजाती है (ये) जो (कार्यगुणान्) कार्यके गुणोंको (आरभन्ते) आरम्भ करते हैं (हि) क्योंकि (ते) वह (कारणगुणाः) कारणके गुण (एतानि) इन (सूक्ष्मभूतानि) अपञ्चीकृत सूक्ष्मभूतोंको (भूतमात्राः अपि) भूत मात्राओंको भी (क्रमात्) क्रमसे [आरभन्ते] आरम्भ करते हैं ॥३७॥३८॥

(भावार्थ)-जैसे आकाशसे वायु उत्पन्न हुआ है, तैसे ही वायुसे अग्नि, अग्नि से जल और जलसे पृथिवी क्रमानुसार उत्पन्न हुई है। मायाका कार्य आकाश आदि जब जड़ देखनेमें आता है तब उसका कारण मायाशक्ति को भी तमोगुणप्रधान कहना होगा, क्योंकि-कारणके गुण ही कार्यके गुणोंकी रचना करते हैं, इन आकाश आदि पंचभूतोंको सूक्ष्मभूत और भूतमात्रा भी कहते हैं ॥३७॥३८॥

लिङ्गशरीर—

एतेभ्यः पञ्चभूतेभ्यः सूक्ष्मदेहा भवन्त्यपि ।
स्थूलान्यपि च भूतानि चान्योऽन्यांशविमेलनात् ३९

अन्वय और पदार्थ-(एतेभ्यः) इन (सूक्ष्मभूतेभ्यः) सूक्ष्मभूतोंसे (सूक्ष्मदेहाः) सकल सूक्ष्म शरीर (अपि) भी (अन्योनांशविमेलनात्) सूक्ष्मभूतोंके परस्परके अंशोंके मेलनसे (स्थूलानि , भोगनेके योग्य स्थूल (भूतानि) पञ्चभूत (अपि च) भी (भवन्ति) उत्पन्न होते हैं ॥ ३९ ॥

(भावार्थ)-इन सब सूक्ष्मभूतोंसे सकल सूक्ष्म शरीर और आकाश आदि पांच सूक्ष्म भूतोंके परस्पर अंश मिलनेसे सकल स्थूलभूत उत्पन्न हुए हैं सूक्ष्मभूतोंके अंश मिलनेकी अर्थात् पञ्चीकरणकी यह रीति है, कि-आकाशआदि पञ्चभूतोंमें हरएकके दो भाग करे, फिर हरएक भूतके आधे २ भागके चार भाग करे फिर आकाशके आधे भागके साथ शेष चार भूतों का एक२ अष्टमांश मिलता है तो पञ्चीकृत (स्थूल) आकाश उत्पन्न होता है (इसी प्रकार वायु, तेज,जल आदि के भी पञ्चीकरण को जानो ॥ ३९ ॥

अपञ्चीकृतभूतेभ्यो जातं सप्तदशाङ्गकम् ।
संसारकारणं लिङ्गमात्मनो भोगसाधनम् ॥ ४० ॥

अन्वय और पदार्थ—(अपञ्चीकृतभूतेभ्यः) जिनका पञ्चीकरण नहीं किया गया है ऐसे भूतोंसे (संसारकारणम्) संसारका कारण (आत्मनः) जीवात्मा का (भोगसाधनम्) भोगका साधन (सप्तदशाङ्गकम्) सत्तरह अवयवोंवाला (लिङ्गम्) लिङ्गशरीर (जातम्) उत्पन्न हुआ है ॥ ४० ॥

(भावार्थ)—अपञ्चीकृत पञ्चभूत कहिये सूक्ष्म भूतोंसे सत्तरह अवयवोंवाला लिङ्गशरीर कहिये सूक्ष्म शरीर उत्पन्न हुआ है, यह ही जन्ममरणरूप संसारके प्रवाहका कारण है और वह ही जीवात्माको कर्मफलका भोग कराता है ॥ ४० ॥

श्रोत्रादिपञ्चकञ्चैव वागादीनाञ्च पञ्चकम् ।
प्राणादिपञ्चकं बुद्धिमनसा लिङ्गमुच्यते ॥ ४१ ॥

अन्वय और पदार्थ—(श्रोत्रादिपञ्चकम्) कान आदि पांच (च) और (एव) ही (वागादीनाम्) वाक् आदिका (पञ्चकम्) पांचका समूह (च) और (प्राणादिपञ्चकम्) प्राण आदि पांच वायु (बुद्धिमनसी) बुद्धि और मन (लिङ्गम्) लिङ्गशरीर (उच्यते) कहाजाता है ॥ ४१ ॥

भावार्थ—श्रोत्र आदि पांच ज्ञानेन्द्रियें, वाणी आदि पांच कर्मेन्द्रियें, प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान यह पञ्च प्राण तथा बुद्धि और मन यह सब सत्तरह मिलकर लिङ्गशरीर वा सूक्ष्मशरीर कहलाता है ॥ ४१ ॥

ज्ञानेन्द्रियाणि

श्रोत्रत्वक्चक्षुजिंव्हाघ्राणानि पञ्च जातानि ।
आकाशादीनां सत्त्वांशेभ्यो धीन्द्रियाण्यनुक्रमतः॥४२

अन्वय और पदार्थ—(श्रोत्रत्वक्चक्षुजिव्हाघ्राणानि) श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिव्हा और नासिका (पञ्च) पांच (धीन्द्रियाणि) ज्ञानेन्द्रियें (अनुक्रमतः) क्रमसे (आकाशादीनाम्) आकाश आदिके (सत्त्वांशेभ्यः) सात्विक भागोंसे (जातानि) उत्पन्न हुई हैं ॥ ४२ ॥

(भावार्थ)—श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिव्हा और नासिका ये पांच ज्ञानेन्द्रियें क्रमसे आकाश, वायु तेज, जल और पृथिवीके सत्त्वगुणी अंशोंसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ४२ ॥

अन्तःकरणम्

आकाशादिगताः पञ्च सात्विकांशाः परस्परम् ।
मिलित्वैवान्तःकरणमभवत्सर्वकारणम् ॥ ४३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(आकाशादिगता) आकाश वायु आदिके विषें विद्यमान (पञ्च) पांच (सात्विकांशा) सत्त्वगुणी भाग (परस्परम्) आपसमें (मिलित्वा) मिलकर (एव) ही (सर्वकारणम्) सबका कारण (अंतःकरणम्) अंतःकरण (अभवत्) हुआ है ॥ ४३ ॥

(भावार्थ)—आकाश वायु आदि पञ्च भूतोंके आपसमें मिले हुए सत्त्वगुणी अंशोंसे मन—बुद्धि—चित्त—अहङ्काररूप अंतःकरण उत्पन्न हुआ है, यह अंतःकरण ही सुख दुःख आदि सबका कारण है, क्योंकि—अंतःकरण ही सकल वस्तुओंकी कल्पना करता है ॥ ४३ ॥

प्रकाशकत्वादेतेषां सात्विकांशत्वमिष्यते ।
प्रकाशकत्वं सत्वस्य स्वच्छत्वेन यतस्ततः ॥४४॥

अन्वय और पदार्थ—(यतः) क्योंकि (एतेषाम्) इनके (प्रकाशकत्वात्)

प्रकाशक होनेसे (सात्विकांशत्वम्) सात्विक अंशपना (इष्यते) इच्छा किया जाता है (ततः) तिससे (सत्त्वस्य) सत्त्वगुणके (स्वच्छत्वेन) निर्मल होनेके कारण (प्रकाशकत्वम्) प्रकाशकपना [इष्यते] मानाजाता है ॥ ४४ ॥

(भावार्थ)--श्रोत्र आदि पांच ज्ञानेन्द्रियें और अन्तःकरण ये वस्तुओंके प्रकाशक हैं, इस कारण आकाश आदिके सत्त्वगुणी भागसे उत्पन्न हुए हैं, क्यों कि-सत्त्वगुण स्वच्छ है इसकारण उसका प्रकाशक होना सिद्ध ही है ॥ ४४ ॥

तदन्तःकरणं वृत्तिभेदेन स्याच्चतुर्विधम् ।
मनो बुद्धिरहङ्कारश्चित्तश्चेति तदुच्यते ॥ ४५ ॥

अन्वय और पदार्थ--(तत्) वह (अंतःकरणम्) अंतःकरण (वृत्तिभेदेन) परिणामके भेद करके (चतुर्विधम्) चार प्रकारका (स्यात्) होगा (तत्) वह अंतःकरण (मनः) मन (बुद्धिः) बुद्धि (अहङ्कारः) अहंकार (च) और (चित्तम्) चित्त (इति) इस प्रकार (उच्यते) कहाजाता है ॥४५॥

(भावार्थ)—वह एक ही अन्तःकरण वृत्ति कहिये परिणामके भेदसे मन, बुद्धि, अहङ्कार और चित्त नामसे कहाजाता है ॥ ४५ ॥

सङ्कल्पान्मन इत्याहुर्बुद्धिरर्थस्य निश्चयात् ।
अभिमानादहंकारश्चित्तमर्थस्य चिन्तनात् ॥४६॥

अन्वय और पदार्थ—(सङ्कल्पात्) सङ्कल्प करनेसे (मनः) मन (अर्थस्य) विषयके (निश्चयात्) निश्चय करनेके कारण (बुद्धिः) बुद्धि (अभिमानात्) अभिमान करनेके कारण (अहङ्कारः) अहङ्कार (अर्थस्य) विषयके (चिन्तनात्) चिन्तवन करनेसे (चित्तम्) चित्त (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं ॥ ४६ ॥

(भावार्थ)—वह अंतःकरण ही सङ्कल्प करने की दशामें मन कहलाता है, विषयोंका निश्चय करनेके समय बुद्धि कहलाता है, अभिमान करनेके समय अहङ्कार कहलाता है और विषयोंका चिंतवन करनेके कारण चित्त कहलाताहै॥४६॥

मनस्यपि च बुद्धौ च चित्ताहङ्कारयोः क्रमात् ।
अन्तर्भावोऽत्र बोद्धव्यो लिङ्गलक्षणसिद्धये ॥ ४७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(लिङ्गलक्षणसिद्धये) लिङ्ग शरीरके लक्षणकी सिद्धि के लिये (अत्र) यहां (मनसि-अपि) मनमें भी (च) और (बुद्धौ च) बुद्धि

में भी (क्रमात्) क्रमसे (चित्ताहङ्कारयोः) चित्त और अहङ्कारका (अन्तर्भावः) भीतर समावेश (बोद्धव्यः) जानना ॥ ४७ ॥

भावार्थ—लिङ्ग शरीरके लक्षणकी सिद्धिके लिये मनमें चित्तका और बुद्धिमें अहङ्कारका अन्तर्भाव जानना, क्योंकि—यदि यह अन्तर्भाव नहीं कियाजायगा तो लिङ्गशरीर सत्तरह अवयोंवाला न होकर अधिक अवयवों वाला होजायगा॥४७॥

चिन्तनञ्च मनोधर्मः सङ्कल्पादिर्यथा तथा ।
अन्तर्भावो मनस्येव सम्यक् चित्तस्य सिद्ध्यति ४८

अन्वय और पदार्थ—(यथा) जैसे (सङ्कल्पादिः) सङ्कल्प आदि (मनोधर्मः) मनका धर्म है (तथा) तैसे ही (चिन्तनञ्च) चिंतन भी [मनोधर्मः] मनका धर्म है (मनसि-एव) मनमें ही (चित्तस्य) चित्तका (अंतर्भावः) अन्तर्भाव (सम्यक्) भलेप्रकार से (सिद्ध्यति) सिद्ध होता है ॥ ४८ ॥

(भावार्थ)—सङ्कल्प विकल्प आदिकी समान चिन्तवन करना भी मनका ही धर्म है, इसलिये मनमें ही चित्तका अंतर्भाव होना ठीक है ॥ ४८ ॥

देहादावहमित्येव भावो दृढतरो धियः ।
दृश्यतेऽहंकृतेस्तस्मादन्तर्भावोऽत्र युज्यते ॥ ४९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(देहादौ) शरीर आदिमें (धियः) बुद्धिका (अहम्) मैं (इति-एव) ऐसा ही (दृढतरः) अत्यंत दृढ़ (भावः) संस्कार (दृश्यते) दीखता है (तस्मात्) तिससे (अत्र) इस बुद्धि में (अहंकृतेः) अहङ्कार का (अन्तर्भावः) भीतर समावेश (युज्यते) युक्त होता है ॥ ४९ ॥

(भावार्थ)-शरीर आदिमें मैं-सुखी हूं, मैं दुःखी हूं इत्यादि बुद्धिका अति दृढ़ संस्कार (अहंभाव) देखनेमें आता है, इसलिये बुद्धिमें अहङ्कारका अन्तर्भाव उचित प्रतीत होता है ॥ ४९ ॥

तस्मादेव तु बुद्धेः कर्तृत्वं तदितरस्य करणत्वम् ।
सिद्ध्यत्यात्मन उभयाद्विद्यात्संस्कारकारणं मोहात्॥

अन्वय और पदार्थ—(तस्मात्-एव) तिस कारणसे ही (बुद्धेः) बुद्धिका (कर्तृत्वम्) कर्तापना (तदितरस्य तु) तिससे अन्यका तो (करणत्वम्) करणपना (सिध्यति) सिद्ध होता है (उभयात्) दो प्रकारके (मोहात्) अज्ञान

वश (आत्मनः) आत्माके (संसारकारणम्) जन्म मरणका कारण (विद्यात्) जानै ॥ ५० ॥

(भावार्थ)-इस लिये ही अर्थात् देह आदिमें बुद्धिका अहंभाव देखनेमें आता है इस कारण बुद्धिका कर्त्तापना और मनका करणपना सिद्ध हुआ, कर्त्तापन और करणपन रूप दोनों प्रकारके अज्ञानवश धर्म और अधर्म जीवात्माके जन्म मरणरूप संसारके हेतु होते हैं ॥ ३५० ॥

विज्ञानमयकोशः

विज्ञानमयकोशः स्याद् बुद्धिर्ज्ञानेन्द्रियैः सह ।
विज्ञानप्रचुरत्वेनाप्याच्छादकमतात्मनः ॥ ५१ ॥
विज्ञानमयकोशोऽयमिति विद्वद्भिरुच्यते ।
अयं महानहङ्कारवृत्तिमान् कर्तृलक्षणः ॥
सर्वसंसारनिर्वोढा विज्ञानमयशब्दभाक् ॥ ५२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ज्ञानेन्द्रियैः सह) ज्ञानेन्द्रियोंके साथ (बुद्धिः) बुद्धि (विज्ञानमयकोशः) विज्ञानमयकोश (स्यात्) होगा (विज्ञानप्रचुरत्वेन) ज्ञानकी अधिकताके कारण (आत्मनः) जीवात्माका (आच्छादकतया अपि) आच्छादन करनेवाला होनेसे भी (अयम्) यह (विज्ञानमयकोशः) विज्ञानमयकोश (इति) इस नाम से (विद्वद्भिः विद्वानोंके द्वारा (उच्यते) कहाजाता है (अयम्) यह विज्ञानमयकोश (महान्) महान् नामवाला (अहङ्कारवृत्तिमान्) अहङ्कार नाम की वृत्तिवाला (कर्तृलक्षणः) कर्तापन आदि धर्मवाला (सर्वसंसारनिर्वोढा) जन्म मरण आदि सकल संसारका निर्वाह करने वाला (विज्ञानमयशब्दभाक्) विज्ञानमय नामका भागी [भवति] होता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

(भावार्थ)—श्रोत्र त्वचा आदि पांच ज्ञानेन्द्रियोंके साथ बुद्धि विज्ञानमयकोश नामसे कहीजाती है, विज्ञानकी अधिकता होनेके कारण और जीवात्मा का आवरण करता है, इस कारण पण्डित इसको विज्ञानमयकोश कहते हैं, इसको महान् भी कहते हैं, अभिमान भी इसकी एक वृत्ति कहिये धर्म है, यही कर्त्ता भोक्ता आदि लक्षणोंवाला होता है, जन्मसे लेकर मरण पर्यन्त संसारके सब व्यवहारोंका निर्वाह करता है और विज्ञानमय नामसे कहाजाता है ॥ ५१-५२ ॥

अहं ममेत्येव सदाभिमानं
देहेन्द्रियादौ कुरुते गृहादौ ।
जीवाभिमानः पुरुषोऽयमेव
कर्ता च भोक्ता च सुखी च दुःखी ॥ ५३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(जीवाभिमानः) मैं जीव हूं ऐसे अभिमानवाला (अयम्) यह (पुरुषः एव) पुरुष ही (सदा) सब कालमें (इन्द्रियादौ) देह इन्द्रिय आदिके विषैं (गृहादौ) घर आदिके विषैं (अहम्) मैं (मम) मेरा (इति) ऐसे (एव) ही (अभिमानम्) अहङ्कारको (कुरुते) करता है (अतः) इसकारण (कर्त्ता) कर्त्ता (च) और (भोक्ता च) भोगनेवाला भी (सुखी) सुख युक्त (च) और (दुःखी च) दुःखयुक्त भी [भवति] होता है ॥ ५३ ॥

(भावार्थ)—मैं जीव हूं, ऐसे अभिमानवाले पुरुष सदा शरीर और इन्द्रिय आदिमें तथा घर आदि बाहरकी वस्तुओंमें 'मैं और मेरा' ऐसा अभिमान करते हैं, इसलिये ही कर्त्ता भोक्ता सुखी दुःखी आदि होते हैं, वास्तवमें शरीर आदि और घर आदिसे आत्मा स्वतन्त्र है, विचार करके देखाजाय तो न आत्मा कर्त्ता है न भोक्ता है तथा न आत्माको सुख होता है न दुःख होता है, यह कर्त्ता भोक्ता आदि अभिमानके कारणसे बनरहा है ॥ ५३ ॥

स्ववासनाप्रेरित एव नित्यं,
करोति कर्मोभयलक्षणञ्च ।
भुङ्क्ते तदुत्पन्नफलं विशिष्टं,
सुखञ्च दुःखञ्च परञ्च चात्र ॥ ५४ ॥

अन्वय और पदार्थ-[पुरुषः] पुरुष (स्ववासनाप्रेरितः एव) अपने संस्कार के द्वारा प्रेरित होकर ही (नित्यम्) सदा (उभयलक्षणम्) दोनो प्रकारके (कर्म) कर्मको (करोति) करता है (अत्र) इस संसारमें (च) और (परत्र) परलोकमें (विशिष्टम्) विशेष (तदुत्पन्नफलम्) उससे उत्पन्न हुए फलरूप (सुखम्) सुखको (च) और (दुःखञ्च) दुःखको भी (भुङ्क्ते) भोगता है ५४

भावार्थ-जीव अपनी वासनासे प्रेरित होकर सदा पुण्य पापरूप दोनों प्रकार के कर्म किया करता है और इस लोक तथा परलोकमें उन कर्मों के अनेकों प्रकार फलोंको सुख और दुःखोंकोभोगा करता है ॥ २५४ ॥

नानायोनिसहस्रेषु जायमानो मुहुर्मुहुः
म्रियमाणो भ्रमत्येष जीवः संसारमण्डले ॥२५५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एषः) यह (जीवः) प्राणी (नानायोनिसहस्रेषु) भांति २ की सहस्रों योनियोंमें (मुहुर्मुहुः) वार २ (जायमानः) जन्म लेताहुआ (म्रियमाणः) मरताहुआ (संसारमण्डले) संसारचक्रमें (भ्रमति) घूमता है २५५

भावार्थ-यह जीव पशु पक्षी आदि भांति २ की सहस्रों योनियोंमें वार २ जन्म लेता है और मरता है, इसप्रकार सदा संसारमण्डलमें चक्रफेरी लगाता रहता है

मनोमयःकोशः

मनो मनोमयो कोशो भवेज्ज्ञानेन्द्रियैः सह ।
प्राचुर्यं मनसो यत्र दृश्यतेऽसौ मनोमयः ॥ २५६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ज्ञानेन्द्रियैः,सह) ज्ञानेन्द्रियोंके साथ (मनः) मन (मनोमयः) मनोमय (कोशः) कोश (भवेत्) होगा (यत्र) जहाँ (मनसः) मनका (प्राचुर्यम्) आधिक्य (दृश्यते) दीखता है (असौ) यह (मनोमयः) मनोमय है ॥ २५६ ॥

भावार्थ-श्रोत्र नेत्र आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके साथ मन, मनोमय कोश कहलाता है, जिसमें मनकी प्रधानता देखनेमें आये उसको मनोमयकोश जानो ॥ २५६ ॥

चिन्ताविषादहर्षाद्याः कामाद्या यस्य वृत्तयः
मनुते मनसैवैष फलं कामयते बहिः ॥
यतते कुरुते भुंक्ते तन्मनः सर्वकारणम् ॥ २५७ ॥

अन्वय और पदार्थ -(चिन्ताविषात्) चिन्तारूप विषसे (अस्य)इसकी (अहर्षाद्याः) दुःख आदि (कामाद्याः) काम आदि (वृत्तयः) वृत्तियें [भवन्ति] होती हैं (एषः) यह (मनसा, एव) मनके द्वारा ही (मनुते) मनन करता है (बहिः) बाहर (फलम्) फलको (कामयते) चाहता है (यतते) यत्न करता है (कुरुते) काम करता है (भुंक्ते) भोगता है (तत्) वह (मनः) मन (सर्वकारणम्) सबका कारण है ॥ २५७ ॥

भावार्थ--इस मनोमय कोशके चित्तरूप विषसे अर्जित होनेपर अहर्ष (दुःख) आदि तथा काम क्रोध आदि वृत्तियें उत्पन्न होती हैं और मनुष्य मनसे गौ सुवर्ण आदि बाहरी फलोंकी चाहना करता है, तब मन उद्योग करता है, कार्य करता है, और भोगता है, इस सबका कारण मन ही है ॥ २५७ ॥

मनो ह्यमुष्य प्रवणस्य हेतुरन्तर्बहिश्चार्थमनेन वेत्ति ।
शृणोति जिघ्रत्यमुनैव चेक्षते वक्ति स्पृशत्यत्ति करोति सर्वम् ॥

अन्वय और पदार्थ--(हि) निश्चय (मनः) मन (अस्य) इस (प्रवणस्य) झुकावका (हेतुः) हेतु है (अनेन) इसके द्वारा (अन्तः) भीतर (च) और (बहिः) बाहर (अर्थम्) विषयको (वेत्ति) जानता है (अमुना,एव) इसके द्वारा ही (सर्वम्) सबको (शृणोति) सुनता है (जिघ्रति) सूँघता है (ईक्षते) देखता है (वक्ति) कहता है (स्पृशति) छूता है (अत्ति) खाता है (करोति) करता है

भावार्थ--एकमात्र मन ही इस विषयोंकी ओरके झुकावका कारण है, प्राणी मनके द्वारा ही भीतर और बाहरकी वस्तुओंको जानता है, सब बातोंको सुनता है। गन्धोंको सूँघता है, रूपवान् पदार्थोंको देखता है, बातें करता है, छूता है, भोजन करता है और भांति २ के काम किया करता है। तात्पर्य यह है, कि मन ही सदा बाहरी वस्तुओंका सङ्कल्प किया करता है, इसलिये मन ही सबका कारण है, यदि मन स्थिर नहीं होता है तो इंद्रियोंकी विषयोंके साथ समीपता होने पर भी यथार्थ ज्ञान नहीं होता है, इसलिये ही कहा है, कि—मन ही श्रवण दर्शन आदि करता है ॥ २५८ ॥

बन्धश्च मोक्षो मनसैव पुंसामर्थोऽप्यनर्थोऽप्यमुनैव सिद्धयति ।
शुद्धेन मोक्षो मलिनेन बन्धो विवेकतोऽर्थोऽप्यविवेकतोऽन्यः ॥

अन्वय और पदार्थ--(पुंसाम्) पुरुषोंका (बन्धः) बन्धन (च) और (मोक्षः) मोक्ष (मनसा,एव) मनके द्वारा ही [भवति] होता है (अमुना,एव) इसके द्वारा ही (अर्थः, अपि) भला भी (अनर्थः, अपि) बुरा भी (सिद्धयति) सिद्ध होता है (शुद्धेन) शुद्धसे (मोक्षः) मोक्ष (मलिनेन) मलिनसे (बन्धः) बन्धन [भवति] होता है (विवेकतः) विवेकसे (अर्थः) भला (अपि) और (अविवेकतः) अविवेकसे (अन्यः) अनर्थ [भवति] होता है ॥ २५९ ॥

भावार्थ--मनके द्वारा ही पुरुषका बन्ध और मोक्ष होता है तथा इसके द्वारा

ही भला और बुरा होता है। एक मन ही बन्ध और मोक्ष इन परस्पर विरुद्ध दो बातोंका कारण कैसे हो जाता है ? इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं, कि—रजोगुण और तमोगुणसे न दबे हुए निर्मल-सत्त्वगुणकी अधिकतावाले मनसे मोक्ष होता है और रज तमसे दबेहुए मलिन मनसे बन्धन होता है आत्मा और अनात्माके विवेकसे भला होता है और अविवेकसे अनर्थ होता है ॥ ३५९ ॥

रजस्तमोभ्यां मलिनं त्वशुद्धमज्ञानजं सत्त्वगुणेन रिक्तम् ।
मनस्तमोदोषसमन्वितत्वाज्जडत्वमोहालसताप्रमादैः ॥
तिरस्कृतं सन्नतु वेत्ति वास्तवं पदार्थ तत्त्वं ह्युपलभ्यमानम् ३६०

अन्वय और पदार्थ-(तु) परन्तु (अज्ञानजम्) अविद्यासे उत्पन्न हुआ (मनः) मन (रजस्तमोभ्याम्) रज और तमसे (मलिनम्) मलिन (अशुद्धम्) अस्वच्छ (सत्त्वगुणेन) सत्त्वगुणसे (रिक्तम्) शून्य (तमोदोषसमन्वितत्वात्) तमोरूप दोषयुक्त होनेके कारण (जडत्वमोहालसताप्रमादैः)जड़ता, अज्ञान,आलस्य और असावधानीके द्वारा (तिरस्कृतम्) आच्छादित (सत्) होताहुआ (हि) निश्चय (उपलभ्यमानम्) प्राप्यमान (वास्तवम्) यथार्थ (पदार्थतत्त्वम्) पदार्थके स्वरूपको (तु) तो (न) नहीं (वेत्ति) जानता है ॥ ३६० ॥

भावार्थ-अविद्यासे उत्पन्न हुआ मन जिस समय रजोगुण और तमोगुणसे मलिन, सत्त्वगुणसे शून्य और तमोगुणके दोपसे युक्त होनेके कारण तमोगुणके कार्य—जड़ता, मोह, आलस्य और प्रमाद—से दबा हुआ होता है, उस समय पदार्थ को पाकर भी उसके वास्तविक स्वरूपको नहीं जानने पाता है ॥ ३६० ॥

रजोदोषैर्युक्तं यदि भवति विक्षेपकगुणैः, प्रतीपैःकामाद्यैरनिशमभिभूतं व्यथयति । कथञ्चित्सूक्ष्मार्थावगतिमदपि भ्राम्यति भृशम्, मनो दीपो यद्वत्प्रबलमरुता ध्वस्तमहिमा ॥ ३६१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(दीपः) दीपक (यद्वत्) जैसे (प्रबलमरुता) प्रबल पवनके द्वारा (ध्वस्तमहिमा) नष्ट होगई है महिमा जिसकी ऐसा [भवति] होता है [तद्वत्] तैसे ही (मनः) मन [यदि] जो (रजोदोषैः) रजोगुणके दोषों से (युक्तम्) युक्त (भवति) होता है [तर्हि] तो (प्रतीपैः) प्रतिकूल (कामाद्यैः) काम आदि (विक्षेपकगुणैः) विक्षेपको उत्पन्न करनेवाले गुणोंके द्वारा (अनिशम्) सर्वदा (अभिभूतम्) दबाहुआ [सत्] होकर [जीवम्] जीवको (व्यथ-

यति) पीड़ा देता है (कथञ्चित्) किसीप्रकार (सूक्ष्मार्थावगतिमत्, अपि) सूक्ष्म पदार्थको जानने की शक्तिवाला होकर भी (भृशम्) अधिकतर (भ्राम्यति) भ्रममें पड़ता है ॥ ३६१ ॥

भावार्थ--जैसे दीपक अति प्रबल पवन चलने पर अति चञ्चल हो जाता है और पदार्थों को नहीं दिखासकता, ऐसे ही मनमें यदि रजोगुणके दोष भरजाते हैं तो प्रतिकूलता करनेवाले काम क्रोध आदि विक्षेपमें डालनेवाले गुण आकर दबालेते हैं और जीव इन से दबकर बड़ा कष्ट पाता है, अति सूक्ष्म आत्मा आदि तत्त्वोंको समझनेकी शक्ति होने पर भी उनको समझ नहीं पाता और विषयाभिलाषको पूर्ण करनेके लिये बहुत ही दौड़भागमें लगकर संसारमें चक्कर लगाया करता है।

ततो मुमुक्षुर्भवबन्धमुक्त्यै रजस्तमोभ्याञ्च तदीयकार्यैः ।
वियोज्य चित्तं परिशुद्धसत्त्वं प्रियं प्रयत्नेन सदैव कुर्यात् ॥ ३६२ ॥

अन्वय और पदार्थ--(ततः) तिससे (मुमुक्षुः) मोक्ष चाहनेवाला (भवबन्धमुक्त्यै) संसारबन्धनसे छूटनेके लिये (रजस्तमोभ्याम्) रजोगुण और तमोगुणसे (च) और (तदीयकार्यैः) उनके कार्यों से (चित्तम्) मनको (वियोज्य) अलग करके (सदैव) सदा ही (प्रयत्नेन) उद्योग करके (परिशुद्धसत्त्वम्) निर्मल सत्त्व (प्रियम्) अनुकूल (कुर्यात्) करे ॥ ३६२ ॥

भावार्थ--क्योंकि रज और तमसे मन विक्षिप्त होजाता है, इस लिये मुक्ति चाहनेवाला पुरुष संसारबन्धनसे मुक्त होनेके लिये चित्तको रज और तमसे तथा दुःख मोह आदि उनके कार्मोसे अलग करके सदा उद्योगके साथ विशुद्ध सत्त्ववाले अनुकूल काम करे ॥ ३६२ ॥

गर्भवास-जनि-प्रणाशनजराव्याध्यादिषु प्राणिनां यद्-
दुःखं परिदृश्यते च नरके तच्चिन्तयित्वा मुहुः । दोषा-
नेव विलोक्य सर्वविषयेष्वाशां विमुच्याभितश्चित्तग्र-
न्थिविमोचनाय सुमतिः सत्त्वं समालम्बताम् ॥ ३६३ ॥

अन्वय और पदार्थ--(सुमतिः) श्रेष्ठबुद्धिवाला (प्राणिनाम्) जीवों को (गर्भवासजनिप्रणाशनजराव्याध्यादिषु) गर्भमें रहना, जन्म, मरण, बुढ़ापा, रोग आदिमें (च) और (नरके) नरकमें (यत्) जो (दुःखम्) क्लेश (परिदृश्यते) दीखता है (तत्) उसको (मुहुः) बार २ (चिन्तयित्वा) विचार कर (दोषान्

एव) दोषोंको ही (विलोक्य) देखकर (सर्वविषयेषु) सब विषयोंमें (अनुरागं) अभिलाषको (विमुच्य) छोड़कर (अभितः) चारों ओरसे (चित्तग्रन्थिविमोचनाय) मनकी गाँठ को खोलनेके लिये (सत्त्वम्) सत्त्वगुणको (समालम्बताम्) आश्रयरूपसे ग्रहण करो ॥ ३६३ ॥

भावार्थ—माताके गर्भमें वास, जन्म, मरण, बुढ़ापा और रोग आदिसे तथा नरक में प्राणियोंको जैसा दुःख होता देखनेमें आता है, उस पर बार २ ध्यान देकर और उसमें दोषोंको देखकर सकल विषयोंकी चाहनाको दूर करदेना चाहिये और काम क्रोध आदि चित्तकी गांठको नष्ट करनेके लिये बुद्धिमान् पुरुष एकमात्र सत्त्वगुणका आश्रय लेय ॥ ३६३ ॥

चित्तप्रसादः

यमेषु निरतो यस्तु नियमेषु च यत्नतः ।
विवेकिनस्तस्य चित्तं प्रसादमधिगच्छति ॥ ३६४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तु) परन्तु (यः) जो (यत्नतः) यत्नके साथ (यमेषु) यमोंमें (च) और (नियमेषु) नियमोंमें (निरतः) तत्पर [भवति] होता है (तस्य) तिस (विवेकिनः) विवेकीका (चित्तम्) चित्त (प्रसादम्) निर्मलताको (अधिगच्छति) प्राप्त होता है ॥ ३६४ ॥

भावार्थ—जो यत्नके साथ अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (निर्वाहसे अधिक वस्तुओंका संग्रह न करना), इन यमोंमें तथा शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय (मंत्रजप, या मोक्षका उपदेश देनेवाले शास्त्रों को पढ़ना) और ईश्वरप्रणिधान (सकल कर्मों का फल ईश्वरको अर्पण करना) इन नियमोंमें तत्पर रहता है उस आत्मा और अनात्मा का विवेक रखनेवाले पुरुष का चित्त निर्मल होजाता है ॥ ३६४ ॥

आसुरीं सम्पदं त्यक्त्वा भजेद्यो दैवसम्पदम् ।
मोक्षैककांक्षया नित्यं तस्य चित्तं प्रसीदति ॥ ३६५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (मोक्षैककाङ्क्षया) एकमात्र मोक्षकी इच्छासे (आसुरीम्) असुरोंकी (सम्पदम्) सम्पदाको (त्यक्त्वा) छोड़कर (दैवसम्पदम्) देवताओंकी सम्पदाको (भजेत्) सेवन करे (तस्य) उसका (चित्तम्) चित्त (प्रसीदति) प्रसन्न होता है ॥ ३६५ ॥

भावार्थ-जो एकमात्र मोक्षको पानेकी अभिलाषासे आसुरी सम्पदा (दंभ, दर्प, अभिमान, क्रोध, कठोरता और अज्ञान) को त्यागकर दैवी सम्पदा (अभय, अहिंसा, शुद्धता, ज्ञानयोगमें श्रद्धा, दान, जितेन्द्रियता, यज्ञ, स्वाध्याय । तप, सरलता, अहिंसा, सत्य भाषण, क्रोध न करना, दान, शान्ति, चुगली न खाना प्राणियों पर दया करना, लोभी न होना, कोमलता, लज्जा, चपलता न करना, तेज, क्षमा, धीरज, शौच, किसीसे द्रोह न करना और अभिमान न करना, इन) को स्वीकार करनेवाले पुरुषका चित्त प्रसन्नता, पाता है ॥ ३६५ ॥

परद्रव्यपरद्रोहपरनिन्दापरस्त्रियः ।
नालम्बते मनो यस्य तस्य चित्तं प्रसीदति ॥ ३६६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यस्य) जिसका (मनः) मन (परद्रव्यपरद्रोहपरनिन्दापरस्त्रियः) दूसरोंका धन, दूसरोंसे द्रोह, दूसरोंकी निन्दा और दूसरोंकी स्त्रियोंको (न) नहीं (आलम्बते) आश्रय करता है (तस्य) उसका (चित्तम्) मन (प्रसीदति) प्रसन्नता पाता है ॥ ३६६ ॥

भावार्थ-जिसका मन दूसरोंके धन पर नहीं जाता, दूसरोंसे द्रोह नहीं करता दूसरोंकी निन्दा नहीं करता और दूसरोंकी स्त्रियों पर नहीं लुभियाता है उस का मन स्वच्छता पाता है ॥ ३६६ ॥

आत्मवत्सर्वभूतेषु यः समत्वेन पश्यति ।
सुखं दुःखं विवेकेन तस्य चित्तं प्रसीदति ॥ ३६७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (आत्मवत्) अपनी समान (सर्वभूतेषु) सकल जीवोंमें (समत्वेन) समानभावसे (सुखम्)सुखको (दुःखम्) दुःख को (विवेकेन) विचारके द्वारा (पश्यति)देखता है (तस्य) उसका (चित्तम्) मन (प्रसीदति) प्रसन्नता पाता है ॥ ३६७ ॥

भावार्थ-जो सब जीवोंमें अपनी समान विचारके साथ सुख दुःखको देखता है, उसका चित्त प्रसन्नता पाता है ॥ ३६७ ॥

अत्यन्तं श्रद्धया भक्त्या गुरुमीश्वरमात्मनि ।
यो भजत्यनिशं क्षान्तस्तस्य चित्तं प्रसीदति ॥ ३६८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (क्षान्तः) क्षमावान् (आत्मनि) अपनेमें (अत्यन्तम्) अधिक (श्रद्धया) श्रद्धापूर्वक (गुरुम्) गुरुको (ईश्वरम्) ईश्वर

को (अनिशम्) निरन्तर (भजति) भजता है (तस्य) उसका (चित्तम्) मन (प्रसीदति) प्रसन्नता पाता है ॥ ३६८ ॥

भावार्थ—जो क्षमाशील पुरुष अत्यन्त भक्ति और श्रद्धाके साथ अपनेमें गुरु और ईश्वरकी निरन्तर उपासना करता है, उसका चित्त प्रसन्नता पाता है ३६८

शिष्टान्नमीशार्चनमार्यसेवां तीर्थाटनं स्वाश्रमधर्मनिष्ठाम् ।
यमानुपक्तिं नियमानुवृत्तिं चित्तप्रसादाय वदन्ति तज्ज्ञाः ॥३६९॥

अन्वय और पदार्थ—(तज्ज्ञाः) उसको जाननेवाले (शिष्टान्नम्) बचे हुए अन्नको (ईशार्चनम्) भगवत्पूजनको (आर्यसेवाम्) श्रेष्ठ पुरुषोंकी सेवा को (तीर्थाटनम्) तीर्थ यात्राको (स्वाश्रमधर्मनिष्ठाम्) अपने आश्रमधर्ममें श्रद्धाको (यमानुपक्तिम्) यमोंमें आसक्तिको (नियमानुवृत्तिम्) नियमोंके पालनको (चित्तप्रसादाय)मनकी प्रसन्नताके लिये (वदन्ति) कहते हैं ॥ ३६९ ॥

भावार्थ—ब्रह्मज्ञानी पण्डितोंका कहना है,कि–यज्ञसे बचे हुए अन्नका भोजन, ईश्वरकी आराधना, श्रेष्ठ पुरुषोंकी सेवा, तीर्थोंका भ्रमण, अपने २ आश्रमके लिये विहित धर्ममें प्रेम अहिंसा आदि यमोंका और शौच सन्तोष आदि नियमोंका सेवन, इनसे चित्तमें प्रसन्नता आती है ॥ ३६९ ॥

सत्त्वकारकवस्तुः

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
पूतिपर्युषितादीनां त्यागः सत्त्वाय कल्पते ॥ ३७० ॥

अन्वय और पदार्थ—(कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः) अतिकटु अतिअम्ल, अतिलवण, अति उष्ण, अति तीक्ष्ण, अतिरूक्ष और अति दाहकका (पूतिपर्युषितादीनाम्) सड़ेहुए और वासी आदिका (त्यागः) छोड़ना (सत्त्वाय) सत्त्वगुणके लिये (कल्पते) समर्थ होता है ॥ ३७० ॥

भावार्थ—नीम आदि अति कड़वा, अति चर्परा, अधिकलवणका, बहुत गरम, अति तीखा, अति रूखा जैसे कँगनी कोदों आदि, अतिदाहकारक जैसे सरसों आदि, दुर्गन्धित और वासी इन सबको छोड़देने पर सत्त्वगुण बढ़ने लगता है ३७०

श्रुत्या सत्त्वपुराणानां सेवया सत्त्ववस्तुनः ।
अनुवृत्त्या च साधूनां सत्त्ववृत्तिः प्रजायते ॥ ३७१ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सत्त्वपुराणानाम्) सात्त्विक पुराणोंके (श्रुत्या) सुनने

से (सत्त्ववस्तुनः) सात्विक पदार्थके (सेवया) सेवनसे (च) और (साधूनाम्) साधुओंकी (अनुवृत्त्या) सेवासे (सत्त्ववृत्तिः) सत्त्वगुणी वृत्ति (प्रजायते) होती है॥

भावार्थ–सत्त्वगुणप्रधान पुराणोंको सुनना, सत्त्वगुणप्रधान पदार्थोंका सेवन करना और साधुओंकी सेवा करना इनसे चित्तमें सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है ३७१

यस्य चित्तं निर्विषयं हृदयं यस्य शीतलम् ।
तस्य मित्रं जगत्सर्वं तस्य मुक्तिः करस्थिता ॥ ३७२ ॥

अन्वय और पदार्थ–(यस्य) जिसका (चित्तम्) चित्त (निर्विषयम्) विषयशून्य है (यस्य) जिसका (हृदयम्) हृदय (शीतलम्) शीतल है (सर्वम्) सब (जगत्) संसार (तस्य) उसका (मित्रम्) मित्र है (मुक्तिः) मुक्ति (तस्य) उसके (करस्थिता) हाथमें स्थित है ॥ ३७२ ॥

भावार्थ–जिसके मनमें कोई विषयवासना नहीं है और जिसका अन्तःकरण शीतल सत्त्वगुणसे भराहुआ है, सब जगत् उसका मित्र है और मुक्ति उसको सहजमें ही मिलसकती है ॥ ३७२ ॥

हितपरिमितभोजी नित्यमेकान्तसेवी,
सकृदुचितहितोक्तिः स्वल्पनिद्राविहारः ।
अनुनियमनशीलो यो भजत्युक्तकाले,
सलभत इह शीघ्रं साधु चित्तप्रसादम् ३७३

अन्वय और पदार्थ–(नित्यम्) सदा (हितपरिमितभोजी) हितकारी और नपा तुला खाने वाला (एकान्तसेवी) एकान्तमें रहनेवाला (सकृदुचितहितोक्तिः) थोड़ासा, हितकारी और प्रिय बोलनेवाला (स्वल्पनिद्राविहारः) थोड़ीसी निद्रा और भ्रमण करनेवाला (अनुनियमनशीलः) निरन्तर इंद्रिय संयममें तत्पर (यः) जो (उक्तकाले) विहित समय पर (यः) जो (भजति) भजन करता है (सः) वह (इह) इस संसारमें (शीघ्रम्) शीघ्र (साधु) भले प्रकारसे (चित्तप्रसादम्) मनकी प्रसन्नताको (लभते) पाता है ॥ ३७३ ॥

भावार्थ–जो सदा हितकारी और नपा तुला भोजन खाता है, जिसको एकान्तमें रहनेमें रुचि है, जो थोड़ेसे यथार्थ और प्यारे वचनको बोलता है, जो थोड़ा सोता है और थोड़ा घूमता है, जो नियमके साथ इंद्रिय संयममें लगा रहता है और

ठीक समय पर देवाराधन करता है उसके चित्तमें इस जगत्में शीघ्र ही प्रसन्नता आजाती है ॥ ३७३ ॥

चित्तप्रसादेन विनावगन्तुं बन्धं न शक्नोति परात्मतत्त्वम् ।
तत्त्वावगत्या तु विना विमुक्तिर्न सिध्यति ब्रह्मसहस्रकोटिषु ॥

अन्वय और पदार्थ-[जनः] लोक (चित्तप्रसादेन,विना) चित्तकी प्रसन्नता के विना (बन्धनम्)बन्धनको [तथा] तैसे ही (परात्मतत्त्वम्) परमात्माके स्वरूपको (अवगन्तुम्) जाननेको (न) नहीं (शक्नोति) समर्थ होता है (तु) किंतु (तत्त्वावगत्या, विना) तत्त्वज्ञानके विना (ब्रह्मसहस्रकोटिषु) ब्रह्माके सहस्र करोड़ जन्मोंमें भी (विमुक्तिः) मुक्ति (न) नहीं (सिद्ध्यति) सिद्ध होसकती ॥

भावार्थ-चित्तकी प्रसन्नताके विना कोई बंधन और परमात्माके स्वरूपको नहीं जान सकता, तत्त्वज्ञानके विना एक हज़ार करोड़ बार ब्रह्माका जन्म पाजाने पर भी मुक्ति नहीं हो सकती ॥ ३७४ ॥

मनोऽप्रसादः पुरुषस्य बन्धो मनःप्रसादो भवबन्धमुक्तिः ।
मनःप्रसादाधिगमाय तस्मान्मनोनिरासं विदधीत विद्वान् ॥

अन्वय और पदार्थ-(मनोऽप्रसादः) मनकी अप्रसन्नता (पुरुषस्य) पुरुषका (बंधः) बन्धन है (मनःप्रसादः) मनकी प्रसन्नता (भवबंधमुक्तिः) संसारबंधनसे मुक्तिका कारण है (तस्मात्) तिससे (विद्वान्) पण्डित (मनःप्रसादाधिगमाय) मनकी प्रसन्नताको पानेके लिये (मनोनिरासम्) चित्तकी वृत्तिके निरोधको (विदधीत) करे ॥ ३७५ ॥

भावार्थ-चित्तकी अप्रसन्नता-खोटी वृत्तियोंसे कलुषित होना जीवके बन्धनका कारण है और चित्तकी प्रसन्नता संसारबन्धनसे मुक्ति होनेका कारण है, इसलिये विद्वान्को चाहिये, कि—चित्तकी प्रसन्नताको पानेके लिये चित्तकी वृत्तियोंका निरोध करे ॥ ३७५ ॥

प्राणमयकोशः ।

पञ्चानामेव भूतानां रजोंशेभ्योऽभवन् क्रमात् ।
वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेंद्रियाण्यनु ॥ ३७६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(पञ्चानाम्) पांच (भूतानाम्) भूतोंके (रजोंशेभ्यः) रजोगुणी भागोंसे (अनुक्रमात्) क्रमसे (वाक्पाणिपादपायूपस्थानि) वाणी हाथ

पैर मलत्यागका स्थान और मूत्रोत्सर्गका स्थान (कर्मेन्द्रियाणि) कर्मेन्द्रियें (अभवन्) हुई ॥ ३७६ ॥

भावार्थ-आकाश आदि पञ्चभूतोंके रजोगुणी भागोंसे क्रमानुसार वाणी, हाथ, पैर, पायु, (गुदा) और उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय) ये पांच कर्मेन्द्रियें उत्पन्न हुई हैं ॥

समस्तेभ्यो रजोंशेभ्यो व्योमादीनां क्रियात्मकाः ।
प्राणादयः समुत्पन्नाः पञ्चाप्यान्तरवायवः ॥ ३७७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(व्योमादीनाम्) आकाश आदिके (समस्तेभ्यः) समष्टिरूप (रजोंशेभ्यः) रजोगुणी भागोंसे (क्रियात्मकाः) क्रियास्वभाव (पञ्च) पाँच (प्राणादयः) प्राण आदि (आन्तरवायवः, अपि) भीतरके वायुभी (समुत्पन्नाः) उत्पन्न हुए ॥ ३७७ ॥

भावार्थ-आकाश वायु आदिके सम्मिलित रजोभागसे क्रियास्वभाव प्राण अपान आदि भीतरके पांच वायु उत्पन्न हुए हैं ॥ ३७७ ॥

प्राणो प्राग्गमनेन स्यादपानोऽवाग्गमनेन च ।
व्यानस्तु विश्वग्गमनादुत्क्रान्त्योदान उच्यते ॥ ३७८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्राग्गमनेन) आगे गमन करनेसे (प्राणः) प्राण (स्यात्) होगा (च) और (अवाग्गमनेन) नीचेकी ओरको गमन करनेसे (अपानः) अपान (तु) और (विश्वग्गमनात्) सर्वत्र गमन करनेसे (व्यानः) व्यान (उत्क्रान्त्या) रस आदिको ऊपरको लेजानेसे (उदानः) उदान (उच्यते) कहाजाता है ॥ ३७८ ॥

भावार्थ-एक ही वायु हृदयसे लेकर मुख नासिका पर्यंत गमन करनेके कारण प्राण नामसे कहा जाता है, नाभिसे चरणों पर्यंत नीचेको गमन करनेके कारण अपान कहलाता है, समस्त शरीरमें व्याप्त होनेसे व्यान कहलाता है और रस आदिको ऊपरको लेजानेके कारण उदान कहलाता है ॥ ३७८ ॥

अशितान्नरसादीनां समीकरणधर्मतः ।
समान इत्यभिप्रेतो वायुर्यस्तेषु पञ्चमः ॥ ३७९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अशितान्नरसादीनाम्) खाये हुए अन्न रस आदिके (समीकरणधर्मतः) एकीकरणके धर्मवाला होनेसे (समानः, इति) समान इस

नामसे (अभिप्रेतः) माना गया है (यः) जो (तेषु) उनमें (पञ्चमः) पाँचवाँ (वायुः) वायु है ॥ ३७९ ॥

भावार्थ– खायेहुए अन्न रस आदिका एकीकरण रूप काम करनेसे प्राणादि मेंका पाँचवां वायु समान नामसे कहा जाता है ॥ ३७९ ॥

क्रियैव दिश्यते प्रायः प्राणकर्मेन्द्रियेष्वलम् ।
ततस्तेषां रजोंशेभ्यो जनिरङ्गीकृता बुधैः ॥ ३८० ॥

अन्वय और पदार्थ–(प्राणकर्मेंद्रियेषु) पञ्च प्राण पञ्च कर्मेंद्रियोंमें (प्रायः) सर्वदा (क्रिया, एव) क्रिया ही (अलम्) पूर्णरूपसे (दिश्यते) कही जाती है (ततः) जिससे (बुधैः) पण्डितों करके (ततः) तिससे (तेषाम्) उनके (रजोंशेभ्यः) रजोगुणी भागोंसे (जनिः) उत्पत्ति (अङ्गीकृता) स्वीकार की गयी है ॥ ३८० ॥

भावार्थ–पांच प्राण और पांच कर्मेंद्रियोंमें प्रायः चलन आदि क्रिया ही पूर्ण रूपसे देखनेमें आती है, इसलिये विद्वानोंने आकाश आदिके रजोगुणी भागसे इनकी उत्पत्ति मानी है ॥ ३८० ॥

राजसीन्तु क्रियाशक्तिं तमःशक्तिं जडात्मिकाम् ।
प्रकाशरूपिणीं सत्त्वशक्तिं प्राहुर्महर्षयः ॥ ३८१ ॥

अन्वय और पदार्थ–(तु)परन्तु(महर्षयः) महर्षि (क्रियाशक्तिम्) क्रियाशक्ति को (राजसीम्) रजोगुणकी (जडात्मिकाम्) जड़स्वरूप (तमःशक्तिम्) तमोगुण की शक्तिको (प्रकाशरूपिणीम्) प्रकाशस्वभाव वाली (सत्त्वशक्तिम्) सत्त्वगुणकी शक्तिको (प्राहुः) कहते हैं ॥ ३८१ ॥

भावार्थ–महर्षियोंने क्रिया शक्तिको रजोगुणका कार्य, तमोगुणकी शक्तिको जड़-स्वभाववाली और सत्वगुणकी शक्ति को प्रकाशस्वभाव वाली कहा है ॥ ३८१ ॥

एते प्राणादयः पञ्च पञ्चकर्मेन्द्रियैः सह ।
भवेत्प्राणमयः कोशः स्थूलो येनैव चेष्टते ॥ ३८२ ॥

अन्वय और पदार्थ–(पञ्चकर्मेंद्रियैः, सह) पाँच कर्मेंद्रियोंके साथ (एते) ये (प्राणादयः) प्राण आदि (पञ्च) पाँच (प्राणमयः) प्राणमय (कोशः) कोश (भवेत्) होता (येन,एव) जिसके द्वारा ही (स्थूलः) स्थूल शरीर(चेष्टते) चेष्टा करता है ३८२

भावार्थ–वाणी आदि पञ्च कर्मेन्द्रियें और पाँच वायु ये दश मिल कर प्राणमय कोश कहलाता है और जीवों के स्थूलदेह इसके द्वारा ही चेष्टा करते हैं ॥ ३८२ ॥

यद्यन्निष्पाद्यते कर्म पुण्यम्वा पापमेव वा ।

वागादिभिश्च वपुषा तत्प्राणमयकर्तृकम् ॥ ३८३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वागादिभिः) वाणी आदिके द्वारा (च) और (वपुषा) शरीर करके (पुण्यम्वा) चाहे पुण्यहो (एव) और (पापं, वा) चाहे पाप हो (यत् यत्) जो जो (कर्म) कर्म (निष्पाद्यते) किया जाता है (तत्) वह (प्राणमयकर्तृकम्) प्राणमय कोशका किया हुआ [भवति] होता है ॥३८३॥

भावार्थ-वाणी आदि कर्मेन्द्रियोंसे और शरीरसे जो२ शुभ वा अशुभ कर्म कियां जाताहै, उस सबको करनेवाला प्राणमय कोश ही है ॥ ३८३ ॥

वायुनोच्चालितो वृक्षो नानारूपेण चेष्टते ।

तस्मिन् विनिश्चले सोऽपि निश्चलः स्याद्यथा तथा ॥

प्राणकर्मेन्द्रियैर्देहः प्रेर्यमाणः प्रवर्त्तते ।

नानाक्रियासु सर्वत्र विहिताविहितादिषु ॥३८३॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (वायुना) पवन करके (उच्चालितः) विशेष रूप से चलाया हुआ (वृक्षः) वृक्ष (नानारूपेण) अनेकों प्रकारसे (चेष्टते) चेष्टा करता है (तस्मिन्) उसके (निश्चले) निश्चल होने पर (सोऽपि) वह भी (निश्चलः) निश्चल (स्यात्) होता है (तथा) तैसे ही (प्राणकर्मेन्द्रियैः) प्राण और कर्मेन्द्रियों करके (प्रेर्यमाणः) प्रेरणा किया हुआ (देहः) देह (सर्वत्र) सब (विहिताविहितादिषु) शास्त्रविहित और शास्त्रनिषिद्ध आदि (नानाक्रियासु) नानाप्रकारकी क्रियाओंमें (प्रवर्त्तते) प्रवृत्त होता है ॥३८४॥ ३८५॥

भावार्थ-जैसे पवनके जोरसे हिलाया हुआ वृक्ष भाँति२ की चेष्टायें करता है और पवनके निश्चल होजाने पर वृक्ष भी निश्चल हो जाताहै, ऐसे ही यह स्थूलशरीर पञ्चप्राण और पञ्च कर्मेन्द्रियोंका प्रेरणा किया हुआ सर्वत्र शास्त्रविहित और शास्त्रसे निषिद्ध भाँति२ की क्रियाओं को करने लगता है ॥ ३८४ ॥ ३८५ ॥

कोशत्रयं मिलित्वैतद् वपुः स्यात्सूक्ष्ममात्मनः ।

अतिसूक्ष्मतया लीनस्यात्मनो गमकत्वतः ॥३८६ ॥

लिङ्गमित्युच्यते स्थूलापेक्षया सूक्ष्ममुच्यते ।

सर्वं लिङ्गवपुर्जातमेकधीविषयत्वतः ॥ ३८७ ॥
समष्टिः स्यात्तरुगणः सामान्येन वनं यथा ।
एतत्समष्ट्युपहितं चैतन्यं सफलं जगुः ॥ ३८८ ॥

अन्वय और पदार्थ–(एतत्) यह (कोशत्रयम्) तीन कोश (मिलित्वा) मिलकर (अतिसूक्ष्मतया) अतिसूक्ष्म होनेके कारण (आत्मनः) आत्माका (सूक्ष्मं,वपुः) सूक्ष्म शरीर (स्यात्) होता है (लीनस्य) छुपे हुये (आत्मनः) आत्माका (गमकत्वतः) अनुमान कराने वाला होनेसे (लिङ्गम्) लिङ्ग (इति) ऐसा (उच्यते) कहा जाताहै (स्थूलापेक्षया) स्थूलकी अपेक्षासे (सूक्ष्म) सूक्ष्म (इष्यते) मानाजाता है (सर्वम्) सब (लिङ्गवपुर्जातम्) लिङ्ग शरीरका समूह (एकधीविषयत्वतः) एक ज्ञानका गोचर होनेसे (समष्टिः) एक रूप (स्यात्) होताहै (यथा) जैसे (तरुगणः) वृक्षोंका समूह (सामान्येन) जाति रूपसे (वनम्) एक वन (स्यात्) होताहै (एतत्) इस (समष्ट्युपहितम्) समष्टि लिङ्गशरीर से उपहित (चैतन्यम्) चैतन्यको (सफलम्) सफल (जगुः) कहते हैं ॥३८६॥३८८॥

भावार्थ–विज्ञानमय, मनोमय और प्राणमय ये तीन कोश मिलकर आत्माका सूक्ष्म शरीर कहलाता है, अतिसूक्ष्म होने के कारण इसको सूक्ष्म शरीर और लीन (छुपे हुये) आत्माका अनुमान करानेके कारण लिङ्ग शरीर नामसे कहते हैं, इसको स्थूल शरीरकी अपेक्षा सूक्ष्म माना है । ऐसे लिङ्ग शरीरोंके समूहको एक बुद्धि कहिये हिरण्यगर्भके ज्ञानका विषय होनेसे समष्टि कहते हैं, जैसे कि–वृक्षोंका समूह एक वन नामसे कहा जाता है, पण्डित इस समष्टि उपहित चैतन्यको सफल कहते हैं ॥ ३८६-३८८ ॥

हिरण्यगर्भः सूत्रात्मा प्राण इत्यपि पण्डिताः ।
हिरण्मये बुद्धिगर्भे प्रचकास्ति हिरण्यवत् ॥ ३८९ ॥
हिरण्यगर्भ इत्यस्य व्यपदेशस्ततो मतः ।
समस्तलिङ्गदेहेषु सूत्रवन्मणिपंक्तिषु ॥
व्याप्य स्थितत्वात्सूत्रात्मा प्राणनात्प्राण उच्यते ॥ ३९० ॥

अन्वय और पदार्थ–(पण्डिताः) पण्डित (हिरण्यगर्भः) हिरण्यगर्भ (सूत्रात्मा) सूत्रात्मा (प्राणः) प्राण (इति अपि) ऐसा भी [कथयन्ति] कहते हैं (हिरण्मये) सुवर्णमय (बुद्धिगर्भे) बुद्धिके गर्भमें (हिरण्यवत्) सुवर्णकी समान (चका-

स्ति) प्रकाशवान् होताहै (ततः) तिससे (अस्य) इसका (हिरण्यगर्भ इति) हिरण्यगर्भ ऐसा (व्यपदेशः) नामकरण (मतः) मानाहै (मणिपंक्तिषु) मणियोंकी पंक्तियोंमें (सूत्रवत्) डोरेकी समान (समस्तलिङ्गदेहेषु) सब लिंग शरीरों में (व्याप्य) व्याप्त होकर (स्थितत्वात्) स्थित होनेके कारण (सूत्रात्मा) सूत्रात्मा नामवाला (प्राणनात्) श्वासकी क्रियाको करनेसे (प्राणः) प्राण (उच्यते) कहा जाता है ॥ ३८९ ॥ ३९० ॥

भावार्थ–इसको पण्डित हिरण्यगर्भ, सूत्रात्मा और प्राण कहते हैं। सुवर्णमय अन्तःकरणमें सुवर्ण की समान प्रकाशित होनेके कारण इसका हिरण्यगर्भ नामसे व्यवहार किया जाता है। जैसे मणियों की लड़ियोंमें डोरा पुहा होता है तैसे ही समस्त लिंग शरीरोंमें व्याप्त होनेके कारण यह सूत्रात्मा कहलाता है और श्वास प्रश्वास आदि क्रिया को करानेसे प्राण कहलाता है ॥ ३८९–॥३९० ॥

नैकधीविषयत्वेन लिङ्गं व्यष्टिर्भवत्यथ ।
यदेतद् व्यष्ट्युपहितं चिदाभाससमन्वितम् ॥ ३९१ ॥
चैतन्यं तैजस इति निगदन्ति मनीषिणः ।
तेजोमयान्तःकरणोपाधित्वेनैष तैजसः ॥ ३९२ ॥

अन्वय और पदार्थ– (अथ) और (नैकधीविषयत्वेन) अनेकों बुद्धियों का विषय होनेसे (लिंगम्) लिंगशरीर (व्यष्टिः) भिन्न२ (भवति) होता है (यत्) जिस (एतत्) इस (व्यष्ट्युपहितम्) व्यष्टि लिंगशरीरसे उपहित (चिदाभाससमन्वितम्) अन्तःकरणके प्रतिबिम्बसे युक्त (चैतन्यम्) चैतन्यको (मनीषिणः) पण्डित (तैजसः, इति) तैजस इस नाम वाला (निगदन्ति) कहते हैं (तेजोमयांतःकरणोपाधित्वेन) तेजोमय [अंतःकरण इसकी उपाधि है इसलिये (एषः) यह (तैजसः) तैजस [उच्यते] कहा जाता है ॥३९१ ॥ ३९२ ॥

भावार्थ–व्यक्तिभेद (प्राणिभेद) से अनेकों ज्ञानों का विषय होनेके कारण यह लिंगशरीर व्यष्टि नामसे बोला जाता है। इस व्यष्टि लिंग शरीर से उपहित चिदाभासयुक्त चैतन्यको पण्डित तैजस नामसे कहते हैं तेजोमय अंतःकरण इसकी उपाधि है, अतः इसको तैजस कहते हैं ॥३९१ ॥३९२ ॥

स्थूलात्सूक्ष्मतया व्यष्टिरस्य सूक्ष्मवपुर्मतम् ।
तस्य जागरसंस्कारमयत्वाद्धपुरुच्यते ॥ ३९३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्थूलात्) स्थूल शरीरसे (सूक्ष्मतया) सूक्ष्म होनेके कारण (अस्य) इस तैजसका (व्यष्टिः) भिन्न२ लिंगशरीर (सूक्ष्मवपुः) सूक्ष्म शरीर (मतम्) माना गया है (अस्य) इसके (जागरसंस्कारमयत्वात्) जाग्रत् कालके संस्कारयुक्त होनेसे (वपुः) शरीर (उच्यते) कहा जाता है ॥३९३॥

भावार्थ-स्थूल शरीरकी अपेक्षा सूक्ष्म होनेसे तैजसके व्यष्टि लिंगशरीरको सूक्ष्म देह कहते हैं और जाग्रत्कालके संस्कारोंसे युक्त होनेके कारण इसको वपु कहते हैं ॥ ३९३ ॥

स्वप्ने जागरकालीनवासनापरिकल्पितान् ।
तैजसो विषयान् भुंक्ते सूक्ष्मार्थान् सूक्ष्मवृत्तिभिः ३९४

अन्वय और पदार्थ-(तैजसः) व्यष्टि लिंग शरीरका अभिमानी (स्वप्ने) स्वप्नमें (जागरकालीनवासनापरिकल्पितान्) जाग्रत् काल की वासनाओं से कल्पित (सूक्ष्मार्थान्) सूक्ष्मके निमित्त प्रस्तुत (विषयान्) विषयों को (सूक्ष्मवृत्तिभिः) सूक्ष्म इन्द्रियवृत्तियोंके द्वारा (भुंक्ते) भोगता है ॥ ३९४ ॥

भावार्थ-स्वप्न अवस्थामें, व्यष्टि लिंगशरीरका अभिमानी तैजसपुरुष सूक्ष्म इन्द्रियवृत्तियोंके द्वारा सूक्ष्म विषयोंको भोगता है ॥ ३९४ ॥

समष्टेरपि च व्यष्टेः सामान्येनैव पूर्ववत् ।
अभेद एव ज्ञातव्यो जात्येकत्वे कुतोभिदा ॥ ३९५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(समष्टेः) समष्टिका (च) और (व्यष्टेः, अपि) व्यष्टिका भी (पूर्ववत्) पहलेकी समान (सामान्येन, एव) सामान्यके द्वारा ही अभेदः, एव) अभेद ही (ज्ञातव्यः) जानना चाहिये (जात्येकत्वे) जातिगत एकता होने पर (भिदा) भेद (कुतः) कहाँ ॥ ३९५ ॥

भावार्थ-वन और वृक्षसमूहकी समान समष्टि और व्यष्टिका अभेद जानो, जाति और उसके अन्तर्गत एकता होने पर भेद कैसा ? ॥ ३९५ ॥

द्वयोरुपाध्योरेकत्वे तयोरप्यभिमानिनोः ।
सूत्रात्मनस्तैजसस्याप्यभेदः पूर्ववन्मतः ॥ ३९६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(द्वयोः) दो (उपाध्योः) उपाधियोंके (एकत्वे) एक होने पर (तयोः) उनके (अभिमानिनोः, अपि) अभिमानियोंका भी (सूत्रात्मनः)

सूत्रात्माका (अपि) और (तैजसस्य) तैजसका (पूर्ववत्) पहलेकी समान (अभेदः) अभेद (मतः) मानागया है ॥ ३९६ ॥

भावार्थ-समष्टि और व्यष्टि लिंगशरीरकी दोनों उपाधियोंकी एकता सिद्ध होजाने पर पहलेकी समान उनके अभिमानी हिरण्यगर्भ और तैजस का भी अभेद सिद्ध होगया ॥ ३९६ ॥

स्थूलप्रपञ्चः

एवं सूक्ष्मप्रपञ्चस्य प्रकारः शास्त्रसम्मतः ।
अथ स्थूलप्रपञ्चस्य प्रकारः कथ्यते शृणु ॥ ३९७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एवम्) इसप्रकार (शास्त्रसम्मतः) शास्त्रका माना हुआ (सूक्ष्मप्रपञ्चस्य) सूक्ष्मजगत्का (प्रकारः) प्रकार [कथितः] कहा (अथ) अब (स्थूलप्रपञ्चस्य) स्थूलजगत्का (प्रकारः) प्रकार (कथ्यते) कहाजाता है (शृणु) सुन ॥ ३९७ ॥

भावार्थ-इसप्रकार जैसा शास्त्रका सिद्धान्त है उसके अनुसार सूक्ष्म जगत्का प्रकार वर्णन कर दिया, अब स्थूल जगत्की उत्पत्तिका प्रकार कहते हैं, सुनो ३९७

तान्येव सूक्ष्मभूतानि व्योमादीनि परस्परम् ।
पञ्चीकृतानि स्थूलानि भवन्ति शृणु तत्क्रमम् ॥३९८॥

अन्वय और पदार्थ-(तानि-एव) वे ही (व्योमादीनि) आकाश आदि (सूक्ष्मभूतानि) सूक्ष्मभूत (परस्परम्) आपसमें (पञ्चीकृतानि) पञ्चीकृत होकर (स्थूलानि) स्थूल (भवन्ति) होते हैं (तत्क्रमम्) उनके क्रमको (शृणु) सुन

भावार्थ-वे ही सब आकाश आदि सूक्ष्मभूत आपसमें पञ्चीकृत होकर व्यवहारके योग्य स्थूलरूपमें आजाते हैं, अब उसके क्रमको सुनो ॥ ३९८ ॥

पञ्चीकरणम्

खादीनां भूतमेकैकं सममेव द्विधा द्विधा ।
विभज्य भागं तत्राद्यं त्यक्त्वा भागं द्वितीयकम् ३९९
चतुर्धा सुविभज्याथ तमेकैकं विनिक्षिपेत् ।
चतुर्णां प्रथमे भागे क्रमेण स्वार्धमन्तरा ॥ ४०० ॥

अन्वय और पदार्थ-(खादीनाम्) आकाश आदिमेंके (एकैकम्) एक २

(भूतम्) भूतको (समं, एव) बराबर ही (द्विधा-द्विधा) दो दो भागमें (विभज्य) बाँटकर (तत्र) उन दोनोंमेंसे (आद्यम्) पहले (भागम्) भागको (त्यक्त्वा) छोड़ कर (द्वितीयकम्) दूसरे (भागम्) भागको (चतुर्धा) चार स्थानमें (तु विभज्य) बाँट कर (अथ) अनन्तर (क्रमेण) क्रमसे (स्वार्धम्, अन्तरा) अपने आधेको छोड़ कर (चतुर्णाम्) चारोंमेंके (प्रथमे) पहले (भागे) भागमें (तम्) उस (एकैकम्) एक २ भागको (विनिक्षिपेत्) डाले ॥ ३९९ ॥ ४०० ॥

भावार्थ-आकाश आदि पाँच भूतोंमेंसे हरएकके बराबर बराबर दो भाग करके उनमेंके पहले एक भागको छोड़ कर दूसरे आधेके फिर चार भाग करे, तदनन्तर अपने आधे भागको छोड़ कर क्रमसे अन्य चारोंके प्रथम भागमें एक २ भाग देदेय ॥

ततो व्योमादिभूतानां भागाः पञ्च भवन्ति हि ।
स्वस्वार्धभागेनान्येभ्यः प्राप्तं भागचतुष्टयम् ॥ ४०१ ॥
संयोज्य स्थूलतां यान्ति व्योमादीनि यथाक्रमम् ।
अमुष्य पञ्चीकरणस्याप्रामाण्यं न शंक्यताम् ॥४०२॥

अन्वय और पदार्थ-(ततः) तिससे (व्योमादिभूतानाम्) आकाश आदि भूतोंके (पञ्च) पाँच (भागाः) भाग (भवन्ति) होतेहैं (ते) वे (स्वस्वार्धभागेन) अपने २ आधे भागके साथ (अन्येभ्यः) औरोंसे (प्राप्तम्) पाएहुए (भागचतुष्टयम्) चार भागोंको (संयोज्य) मिलाकर (व्योमादीनि) आकाश आदि (यथाक्रमम्) क्रमके अनुसार (स्थूलताम्) स्थूल भावको (यान्ति) प्राप्त होते हैं (अमुष्य) इस (पञ्चीकरणस्य) पञ्चीकरणकी (अप्रामाण्यम्) अप्रमाणता (न) नहीं (शंक्यताम्) शङ्का करनी चाहिये ॥ ४०१ ॥ ४०२ ॥

भावार्थ-फिर आकाश आदि पञ्चभूतोंके अपने २ आधे भाग और अन्य चारोंके अष्टमांशरूप चार भागोंको मिलाने पर क्रमसे आकाश वायु आदि भूतोंने स्थूलरूप धारण किया है, इस पञ्चीकरण प्रक्रियाके प्रामाणिक होनेमें संदेह नहीं करना चाहिये ॥ ४०१ ॥ ४०२ ॥

उपलक्षणमस्यापि तत्त्रिवृत्करणश्रुतिः ।
पञ्चानामपि भूतानां श्रूयतेऽन्यत्र सम्भवः ॥ ४०३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्त्रिवृत्करणश्रुतिः) वह त्रिवृत्करण श्रुति (अस्य, अपि) इसकी भी (उपलक्षणम्) बोधक है (अन्यत्र) और श्रुतिमें (पञ्चानाम्)

पाँचों (भूतानाम्, अपि) भूतोंकी भी (सम्भवः) उत्पत्ति (श्रूयते) सुननेमें आती है ॥ ४०३ ॥

भावार्थ-त्रिवृत्करण श्रुतिको पञ्चीकरणका उपलक्षण समझना चाहिये, क्योंकि—दूसरी श्रुतिमें पाँच भूतोंकी उत्पत्ति सुननेमें आती है। छान्दोग्य उपनिषद्में लिखा है, कि—"सेयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि इति। तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणीति" उस देवता (ईश्वर) ने विचार किया कि—मैं तेज, जल और अन्नरूप तीन देवताओंके भीतर इस जीवरूपसे प्रवेश करके नाम और रूपका प्रकाश करूँगा। उन तीनके भीतर एक २ का त्रिवृत् (त्र्यात्मक तेज, जल, अन्नरूप) करूँगा। छान्दोग्यकी यह त्रिवृत्करणकी श्रुति पञ्चीकरणका उपलक्षण है, क्योंकि दूसरी श्रुतिमें पञ्चभूतोंकी उत्पत्ति कही है। जो अपनेको प्रकाशित करके साथ २ में दूसरेको भी प्रकाशित करे उसको उपलक्षण कहते हैं। यदि कोई कहे, कि—"काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्" अर्थात् कौओंसे दधिकी रक्षा करो, यहां काक शब्द अपने अर्थको कहकर और जो कोई दधिके नाशक प्राणी हैं उनको भी कहता है, अर्थात् जो २ प्राणी दधिका नाश करते हैं उन सबका ग्रहण होता है, यहाँ भी श्रुतिमें यद्यपि त्रिवृत्करण कहा, परन्तु वह अपनेको कह कर पञ्चीकरणको भी कहता है, ॥ ४०३ ॥

> ततः प्रामाणिकं पञ्चीकरणं मन्यतां बुधैः।
> प्रत्यक्षादिविरोधः स्यादन्यथा क्रियते यदि ॥४०४॥

अन्वय और पदार्थ- (ततः) तिससे (बुधैः) पण्डितों करके (पञ्चीकरणम्) पञ्चीकरण (प्रामाणिकम्) प्रमाणसिद्ध (मन्यताम्) मानना चाहिये (यदि) जो (अन्यथा) इसके प्रतिकूल (क्रियते) किया जाता है, [तर्हि] तो (प्रत्यक्षादिविरोधः) प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंसे विरोध स्यात्) होगा ॥ ४०४ ॥

भावार्थ-इसलिये पण्डितों को पञ्चीकरणकी प्रक्रिया प्रमाणों के अनुकूल माननी चाहिये यदि उसको अप्रमाणिक माना जायगा तो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों के साथ विरोध पड़ेगा ॥ ४०४ ॥

> आकाशवाय्वोर्धर्मस्तु वह्न्यादावुपलभ्यते।
> यथा तथाऽऽकाशवाय्वोर्नाग्न्यादेर्धर्म ईक्ष्यते ॥४०५॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (आकाशवाय्वोः) आकाश और वायु का (धर्मः) धर्म (वन्ह्यादौ) अग्नि आदिमें (उपलक्ष्यते) अनुभवमें आता है (तथा) तैसे (अग्न्यादेः) अग्नि आदिका (धर्मः) धर्म (तु) तो (आकाशवाय्वोः) आकाश और वायुमें (न) नहीं (ईक्ष्यते) देखनेमें आता है ॥४०५॥

भावार्थ-जैसे आकाश और वायुके धर्मका अग्नि जल और पृथिवीमें अनुभव होता है, तैसे अग्नि पृथिवीका धर्म आकाश और वायुमें नहीं पाया जाता ।

ततोऽप्रामाणिकमिति न किञ्चिदपि चिन्त्यताम् ।
खांशव्याप्तिश्च खव्याप्तिर्विद्यते पावकादिषु ॥ ४०६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ततः) तिससे (किञ्चित् , अपि) कुछ भी (अप्रामाणिकम्) प्रमाणशून्य है (इति) ऐसा (न) नहीं (चिन्त्यताम्) विचारना चाहिये (पावकादिषु) अग्नि आदिमें (खांशव्याप्तिः, च) आकाशके अंशकी व्याप्ति भी (खव्याप्तिः) आकाशकी व्याप्ति (विद्यते) है ॥ ४०६ ॥

भावार्थ-इस कारण इस पञ्चीकरणकी प्रक्रियाको कुछ भी अप्रामाणिक नहीं मानना चाहिये, क्यों कि-अग्नि आदिमें हम आकाशका अंश पाते हैं ॥ ४०६ ॥

तेनोपलभ्यते शब्दः कारणव्यातिरेकतः ।
तथा नभस्वतो धर्मोऽप्यग्न्यादावुपलभ्यते ॥ ४०७॥

अन्वय और पदार्थ (तेन) तिससे (कारणस्य) कारणका (अतिरेकतः) आधिक्य होनेके कारण (उपलभ्यते) पायाजाता है (तथा) तैसे ही (अग्न्यादौ) अग्नि आदिमें (नभस्वतः) वायुका (धर्मः, अपि) धर्म भी (उपलभ्यते) पायाजाता है ॥ ४०७ ॥

भावार्थ-अग्नि आदिमें आकाश आदिकी व्याप्ति होनेसे शब्द अपने कारण आकाशके सिवाय वायु आदिमें भी पायाजाता है और वायुका धर्म भी अग्नि आदिमें देखनेमें आता है ॥ ४०७ ॥

न तथा दृश्यते व्याप्तिर्वह्न्यादेः खनभस्वतोः ।
अंशत्वादंशकव्याप्तिस्तद्गतो नोपलभ्यते ॥ ४०८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तथा) तैसे (वह्न्यादेः) अग्नि आदिकी (व्याप्तिः) व्याप्ति (खनभस्वतोः) आकाश और वायुमें (न) नहीं (विद्यते) है (अंश-

कृत्याप्तेः) आकाश आदिके अंशकी व्याप्तिके (सूक्ष्मत्वात्) सूक्ष्म होनेसे (तद्धर्मः) उनका धर्म (न) नहीं (उपलभ्यते) पायाजाता है ॥ ४०८ ॥

भावार्थ-जैसे अग्नि आदिमें आकाश आदिको पाते हैं तैसे आकाश आदिमें अग्नि आदिको नहीं पाते,इसका कारण यह है, कि-आकाश आदिके अंश सूक्ष्म-भावसे अग्नि आदिमें रहते हैं, अतः आकाश आदिका धर्म जाननेमें नहीं आता ४०८

कारणस्यानुरूपेण कार्यं सर्वत्र दृश्यते ।
तस्मात्प्रामाण्यमेष्टव्यं बुधैः पञ्चीकृतेरपि ॥ ४०९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वत्र) सवस्थानोंमें (कारणस्य) कारणके (अनुरूपेण) तुल्यरूपसे (कार्यम्) फल (दृश्यते) दीखता है- (तस्मात्) तिससे (बुधैः) पण्डितोंको (पञ्चीकृतेः, अपि) पञ्चीकरणका भी (प्रामाण्यम्) प्रमाणरूप होना (एष्टव्यम्) मानना चाहिये ॥ ४०९ ॥

भावार्थ-सर्वत्र कारणके अनुरूप ही कार्य देखनेमें आता है, इसलिये पण्डितों को पञ्चीकरण प्रक्रियाको प्रामाणिक मानना चाहिये ॥ ४०९ ॥

भूतगुणाः

अनेनोद्भूतगुणकं भूतं वक्ष्येऽवधारय ।
शब्दैकगुणमाकाशं शब्दस्पर्शगुणोऽनिलः ॥ ४१० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अनेन) इस पञ्चीकरणके द्वारा (उद्भूतगुणकं) प्रकट हुआ गुण जिसका ऐसे (भूतम्) भूतको (वक्ष्ये) कहूँगा (अवधारय) निश्चय कर (आकाशम्) आकाश (शब्दैकगुणम्) एकमात्र शब्द है गुण जिसका ऐसा (अनिलः) वायु (शब्दस्पर्शगुणः) शब्द और स्पर्श गुणवाला है ४१०

भावार्थ-इसप्रकार उद्भूत (प्रकटहुए) गुणवाले भूतका वर्णन करता हूँ तु उसको सुनकर निश्चय कर । आकाशका एक शब्द ही गुण है, वायुके शब्द और स्पर्श दो गुण हैं ॥ ४१० ॥

तेजः शब्दस्पर्शरूपैर्गुणवत् कारणं क्रमात् ।
आपश्चतुर्गुणाः शब्दस्पर्शरूपरसैः क्रमात् ॥ ४११ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तेजः) तेज (शब्दस्पर्शरूपैः) शब्द स्पर्श और रूप के द्वारा (गुणवत्) गुणवाला [अस्ति] है [तत्] वह (क्रमात्) क्रमसे (कारणम्) कारण है (क्रमात्) क्रमसे (आपः) जल (शब्दस्पर्शरूपरसैः) शब्द,

स्पर्श, रूप और रसके द्वारा (चतुर्गुणाः) चार गुणवाले हैं ॥ ४११ ॥

भावार्थ-शब्द, स्पर्श, रूप ये तीन गुण तेजमें हैं, वह तेज अपनेसे अगले भूत का कारण है। शब्द, स्पर्श, रूप और रस ये चार गुण जलमें हैं, यह जल भी क्रमसे अपनेसे अगले भूतका कारण है ॥ ४११ ॥

एतैश्चतुर्भिर्गन्धेन सह पञ्चगुणा मही ।

अन्वय और पदार्थ-(गन्धेन, सह) गन्धके सहित (एतैः) इन (चतुर्भिः) चारके द्वारा (मही) पृथिवी (पञ्चगुणा) पाँच गुणवाली है ॥

भावार्थ-शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पाँच पृथिवीके गुण हैं ।

इन्द्रियनामवर्णनम्

आकाशांशतया श्रोत्रं शब्दं गृह्णाति तद्गुणम् ॥ ४१२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(श्रोत्रम्) श्रवण इन्द्रिय (आकाशांशतया) आकाशका अंश होनेसे (तद्गुणम्) उसके गुण (शब्दम्) शब्दको (गृह्णाति) ग्रहण करता है।

भावार्थ-श्रवण इन्द्रिय आकाशसे उत्पन्न हुई है, इसलिये उसमें आकाशका अंश विद्यमान है, अतएव वह आकाशके गुण शब्दको ग्रहण करती है, ॥ ४१२ ॥

त्वङ्मारुतांशकतया स्पर्शं गृह्णाति तद्गुणम् ।

तेजोंशकतया चक्षू रूपं गृह्णाति तद्गुणम् ॥ ४१३ ॥

अन्वय और पदार्थ- (त्वक्) त्वचा (मारुतांशकतया) वायुका अंश होने के कारण (तद्गुणम्) उसके गुण (स्पर्शम्) स्पर्शको (गृह्णाति) ग्रहण करती है (चक्षुः) आंख (तेजोंशकतया) तेजका अंश होनेके कारण (तद्गुणम्) उसके गुण (रूपम्) रूपको (गृह्णाति) ग्रहण करती है, ॥ ४१३ ॥

भावार्थ-त्वचा इन्द्रिय वायुसे उत्पन्न हुई है, अतः उसमें वायुका भाग विद्यमान है, इसलिये ही वह वायुके गुण स्पर्शको ग्रहण करती है। और चक्षु इन्द्रिय तेजसे उत्पन्न हुआ है, उसमें तेजका भाग विद्यमान है, इसलिये वह तेजके गुण रूपको ग्रहण करता है ॥ ४१३ ॥

अबंशकतया जिव्हा रसं गृह्णाति तद्गुणम् ।

भूम्यंशकतया घ्राणं गन्धं गृह्णाति तद्गुणम् ॥ ४१४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(जिव्हा) जीभ (अबंशकतया) जलका अंश होनेके कारण (तद्गुणम्) उसके गुण (रसम्) रसको (गृह्णाति) ग्रहण करती है

(घ्राणम्) नासिका (भूम्यंशकतया) भूमिकाअंश होनेके कारण (तद्गुणम्) उसके गुण (गन्धम्) गन्धको (गृह्णाति) ग्रहण करती है ॥ ४१४ ॥

भावार्थ-जीभ (रसना इन्द्रिय) जलसे उत्पन्न हुई है, अतः उसमें जलका अंश है, इसलिये वह जलके गुण रसको ग्रहण करती है, और घ्राण इन्द्रिय पृथिवी से उत्पन्न हुई है अतः उसमें पृथिवीका अंश है, इस लिये यह पृथिवीके गुण गन्ध को ग्रहण करती है ॥ ४१४ ॥

करोति खांशकतया वाक् शब्दोच्चारणक्रियाम् ।
वाय्वंशकतया पादौ गमनादिक्रियापरौ ॥ ४१५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वाक्) वाणी (खांशकतया) आकाशका अंशवाली होनेसे (शब्दोच्चारणक्रियाम्) शब्द उच्चारण करनेके कामको (करोति) करती है (पादौ) चरण (वाय्वंशकतया) वायुके अंशवाले होनेसे (गमनादिक्रिया-परौ) गमन आदि क्रियामें तत्पर [स्तः] हैं ॥ ४१५ ॥

भावार्थ-वाक् इन्द्रिय आकाशके रजोभागसे उत्पन्न हुई, आकाशका अंश होनेसे शब्दोंके उच्चारणका काम करती है और चरण वायुके रजोभागसे उत्पन्न होनेके कारण गमन आदि क्रिया करसकते हैं ॥ ४१५ ॥

तेजोंशकतया पाणी वह्न्याद्यर्चनतत्परौ ।
जलांशकतयोपस्थो रेतोमूत्रविसर्गकृत् ॥ ४१७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(पाणी) हाथ (तेजोंशकतया) तेजके अंशवाले होने से (वह्न्याद्यर्चनतत्परौ) अग्नि आदिकी पूजा करनेमें तत्पर [भवतः] होते हैं (उपस्थः) शिश्न (जलांशकतया) जलके अंशवाला होनेसे (रेतोमूत्रविसर्ग-कृत्) वीर्य और मूत्रका त्याग करने वाला [भवति] होता है ॥ ४१६ ॥

भावार्थ-हाथ तेजके रजोगुणी भागसे उत्पन्न हुये हैं, उनमें तेजका अंश है इसलिये अग्नि आदि देवताओंकी पूजामें लगा करते हैं, और उपस्थ जलके रजो-गुणी भागसे उत्पन्न हुआ है अतः वीर्य और मूत्रका त्याग करता है ॥ ४१६ ॥

भूम्यंशकतया पायुः कठिनं मलमुत्सृजेत् ।

अन्वय और पदार्थ-(पायुः) गुदा इन्द्रिय (भूम्यंशकतया पृथिवीके अंश वाली होनेसे (कठिनम्) कठोर (मलम्) विष्ठाको (उत्सृजेत्) त्यागती है ॥

भावार्थ—मलको निकालनेवाली गुदा इन्द्रिय पृथिवीके रजोगुणी भागसे उत्पन्न हुई है, इसलिये वह कठिन (सख्त) विष्ठाका त्याग किया करती है ॥

इन्द्रिय-देवतानि ।

श्रोत्रस्य दैवतं दिक् स्यात्त्वचो वायुर्दृशो रविः ॥ ४१७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(दिक्) दिशा (श्रोत्रस्य) श्रोत्रका (दैवतम्) देवता (स्यात्) होगा (त्वचः) त्वचाका (वायुः) वायु है (दृशः) नेत्रका (रविः) सूर्य है ॥ ४१७ ॥

भावार्थ—दिशाकी अधिष्ठात्री देवता श्रवणेन्द्रियका अधिष्ठात्री देवता है, त्वचाका अधिष्ठात्री देवता वायु और आंखका अधिष्ठात्री देवता सूर्य है ॥ ४१७ ॥

जिह्वाया वरुणो दैवं घ्राणस्य त्वश्विनावुभौ ।
वाचोऽग्निर्हस्तयोरिन्द्रः पादयोस्तु त्रिविक्रमः ॥ ४१८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(जिह्वायाः) रसनाका (दैवम्) देवता (वरुणः) वरुण है (घ्राणस्य) नासिकाके (उभौ) दोनों (अश्विनौ) अश्विनीकुमार हैं (वाचः) वाणीका (अग्निः) अग्नि है (हस्तयोः) हाथोंका (इन्द्रः) इन्द्र है (तु) और (पादयोः) चरणोंका (त्रिविक्रमः) विष्णु है ॥ ४१८ ॥

भावार्थ—रसना इन्द्रियका अधिष्ठात्री देवता वरुण, घ्राणेन्द्रियके अधिदेवता दोनों अश्विनीकुमार, वाणीका अग्नि, दोनों हाथोंका इन्द्र और दोनों चरणोंका अधिदेवता विष्णु है ॥ ४१८ ॥

पायोर्मृत्युरुपस्थस्य त्वधिदैवं प्रजापतिः ।
मनसो दैवतं चन्द्रो बुद्धेर्दैवं बृहस्पतिः ॥ ४१९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(मृत्युः) यम (पायोः) गुदाका (प्रजापतिः, तु) प्रजापति तो (उपस्थस्य) जननेन्द्रियका (अधिदैवम्) अधिष्ठात्री देवता हैं (चन्द्रः) चन्द्रमा (मनसः) मनका (दैवतम्) देवता है (बृहस्पतिः) बृहस्पति (बुद्धेः) बुद्धिका (दैवम्) देवता है ॥ ४१९ ॥

भावार्थ—यम गुदाका अधिष्ठात्री देवता, प्रजापति उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय) का अधिदेवता, चन्द्रमा मनका अधिदेवता और बृहस्पति बुद्धिका अधिदेवता है ४१९

रुद्रस्त्वहंकृतेर्दैवं चेत्रज्ञश्चित्तदैवतम् ।
दिगाद्या देवताः सर्वाः खादिसत्त्वांशसम्भवाः ॥ ४२० ॥

अन्वय और पदार्थ-(तु) और (रुद्रः) रुद्र (अहंकृतेः) अहङ्कारका (दैवम्) देवता है (क्षेत्रज्ञः) जीव (चित्तदैवतम्) चित्तका देवता है (दिगाद्याः) दिशा आदि (सर्वाः) सब (दैवताः) देवता (सात्त्विकांशसमुद्भवाः) सत्त्वगुणी अंश से उत्पन्न हुए हैं ॥ ४२० ॥

भावार्थ-रुद्र अहङ्कारका अधिष्ठात्री देवता है, क्षेत्रज्ञ (जीव) चित्तका अधिष्ठात्री देवता है, दिशा आदि सब देवता आकाश आदि के सत्त्वगुणी अंश से उत्पन्न हुए हैं ॥ ४२० ॥

सन्धिता इन्द्रियस्थानेष्विन्द्रियाणि समन्ततः ।
निगृह्णन्त्यनुगृह्णन्ति प्राणिकर्मानुरूपतः ॥ ४२१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इन्द्रियस्थानेषु) इन्द्रियोंके गोलकोंमें (समन्ततः) चारों ओरसे (सन्धिताः) मिलेहुए (देवताः) अधिष्ठात्री देवता (प्राणिकर्मानुरूपतः) प्राणियोंके कर्मोंके अनुसार (इन्द्रियाणि) इन्द्रियोंके प्रति (निगृह्णन्ति) निग्रह करते हैं (अनुगृह्णन्ति) अनुग्रह करते हैं ॥ ४२१ ॥

भावार्थ-देवता इन्द्रियोंके गोलकोंमें चारों ओरसे स्थित होकर प्राणियोंके कर्मों के अनुसार इन्द्रियोंके ऊपर निग्रह (दण्ड देना) और अनुग्रह करते हैं ॥४२१॥

शरीरकरणग्रामप्राणाहमाधिदैवतम् ।
पञ्चैते हेतवः प्रोक्ता निष्पत्तौ सर्वकर्मणाम् ॥ ४२२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(शरीरकरणग्रामप्राणाहमधिदैवतम्) शरीर इन्द्रियों का समूह, प्राण, अहङ्कार और अधिष्ठात्री देवता (एते) ये (पंच) पाँच (सर्वकर्मणाम्) सकल कर्मों के (निष्पत्तौ) सम्पादनमें (हेतवः) कारण (प्रोक्ताः) कहे हैं॥

भावार्थ-शरीर (अधिष्ठान , चक्षु श्रोत्र आदि इन्द्रियोंका समूह प्राण अपान आदि पञ्च पवनका व्यापार, अहङ्कार (कर्ता) चक्षु आदि इन्द्रियोंके ऊपर अनुग्रह करनेवाले देवता अथवा आदित्य आदिका प्रेरक अन्तर्यामी ये पाँच सब कर्मों के होनेमें कारण हैं ॥ ४२२ ॥

कर्मानुरूपेण गुणादिकं भवेद् गुणानुरूपेण मनःप्रवृत्तिः ।
मनोऽनुवृत्तेरुभयात्मकेन्द्रियैर्निवर्त्यते पुण्यमपुण्यमत्र ।४२३।

अन्वय और पदार्थ-(कर्मानुरूपेण) कर्मके अनुसार गुण आदिक (भवेत्) होता है (गुणानुरूपेण) गुणके अनुसार (मनःप्रवृत्तिः) मनकी प्रवृत्ति होती है

(अत्र) इस संसारमें (मनोऽनुगतैः) मनकी अनुगामी (उभयात्मकेन्द्रियैः) दोनों प्रकारकी इन्द्रियोंके द्वारा (पुण्यम्) शुभ (अपुण्यम्) अशुभ (निवर्त्त्यते) होता है

भावार्थ-जो जैसा कर्म करता है उसके अनुसार ही उसमें सत्त्वगुण वा रजोगुण अथवा तमोगुण प्रकट होता है, गुणके अनुसार चित्तका काम होता है और इस संसारमें प्राणी मनके पीछे २ चलनेवाली ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंके द्वारा पुण्यकर्म और पापकर्मको किया करते हैं ॥ ४२३ ॥

करोति विज्ञानमयोऽभिमानं कर्ताहमेवेति तदात्मना स्थितः।
आत्मा तु साक्षी न करोति किञ्चिन्न कारयत्येव तटस्थवत्सदा॥

अन्वय और पदार्थ-(विज्ञानमयः) विज्ञानमयकोश (अहम्, एव) मैं ही (कर्ता) कर्ता हूं (इति) ऐसे (अभिमानम्) अभिमानको (करोति) करता है (तदात्मना) स्वस्वरूपसे (स्थितः) स्थित हुआ (आत्मा) आत्मा (तु) तो (साक्षी) द्रष्टा है (सदा) सर्वदा (तटस्थवत्) उदासीनकी समान (किञ्चित्) कुछ (न) नहीं (करोति) करता है (एव) और (न) नहीं (कारयति) कराता है ॥ ४२४ ॥

भावार्थ-विज्ञानमय कोश 'मैं ही कर्ता हूं' ऐसा अभिमान किया करता है और सबका साक्षीस्वरूप आत्मा तो अपने स्वरूपमें विद्यमान रहता है, उदासीन रहकर न कुछ करता है और न किसीसे कुछ करवाता है ॥ ४२४ ॥

द्रष्टा श्रोता वक्ता कर्ता भोक्ता भवत्यहङ्कारः।
स्वयमेतद्विकृतीनां साक्षी निर्लेप एवात्मा ॥ ४२५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहङ्कारः) अहङ्कार (स्वयम्) अपने आप (एतद्विकृतीनाम्) इन सब विकारोंका (द्रष्टा) देखनेवाला (श्रोता) सुननेवाला (वक्ता) कहने वाला (कर्त्ता) करने वाला (भोक्ता) भोगने वाला (भवति) होता है (आत्मा) आत्मा (साक्षी) उदासीन (निर्लेपः, एव) निर्लेप ही है ॥ ४२५॥

भावार्थ-अहङ्कार (मैं ऐसा अभिमान करने वाला जीव) इन सब विकार रूप कार्यों का द्रष्टा, श्रोता, वक्ता, कर्त्ता और भोक्ता हुआ करता है, परन्तु आत्मा तो उदासीन और संगरहित निर्लेप ही रहता है ॥ ४२५ ॥

आत्मनः साक्षिमात्रत्वं न कर्तृत्वं न भोक्तृता ।
रविवत्प्राणिभिर्लोके क्रियमाणेषु कर्मसु ॥ ४२६ ॥

अन्वय और पदार्थ- (लोके) लोकमें (प्राणिभिः) जीवों करके (क्रियमाणेषु) किये जाते हुये (कर्मसु) कर्मोंमें (रविवत्) सूर्यकी समान (आत्मनः) आत्माका (साक्षिमात्रत्वम्) साक्षिमात्रपना है (कर्तृत्वम्) कर्त्तापन (न) नहीं (भोक्तृता) भोक्तापन (न) नहीं है ॥ ४२६ ॥

भावार्थ-जैसे सूर्यका उदय होने पर लोग कर्म करते हैं, सूर्य न कर्म करता है, और न किसीसे करवाता है, ऐसे ही प्राणियोंके किये हुए कर्मोंमें आत्माका कर्त्तापन या भोक्तापन नहीं है, वह तो केवल साक्षीरूप है, ॥ ४२६ ॥

न ह्यर्कः कुरुते कर्म न कारयति जन्तवः ।
स्वस्वभावानुरोधेन वर्त्तन्ते स्वस्वकर्मसु ॥ ४२७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(हि) निश्चय (अर्कः) सूर्य (कर्म) कर्म (न) नहीं (कुरुते) करता है (न) नहीं (कारयति) कराता है (जन्तवः) प्राणी (स्वस्वकर्मसु) अपने २ कर्मों में (स्वस्वभावानुरोधेन) अपने २ स्वभावके अनुसार (वर्त्तन्ते) होते हैं ॥ ४२७ ॥

भावार्थ-जैसे सूर्य न कर्म करता है, न किसीसे करवाता है, परन्तु सकल प्राणी अपने २ स्वभावके अनुसार अपने २ काममें लग जाते हैं ॥ ४२७ ॥

तथैव प्रत्यगात्माऽपि रविवन्निष्क्रियात्मना ।
उदासीनतयैवास्ते देहादीनां प्रवृत्तिषु ॥ ४२८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तथा, एव) तैसेही (प्रत्यगात्मा, अपि) जीवात्मा भी (रविवत्) सूर्य की समान (निष्क्रियात्मना) निष्क्रियभावसे ही (देहादीनाम्) शरीर आदिकोंके (प्रवृत्तिषु) व्यापारोंमें (उदासीनतया, एव) निर्लेप भावसे ही (आस्ते) रहता है ॥ ४२८ ॥

भावार्थ-तैसेही जीवात्मा भी सूर्य की समान स्वयं निष्क्रिय होकर शरीर आदि की चेष्टाओंमें उदासीन होकर स्थित रहता है ॥ ४२८ ॥

अज्ञात्वैवं परं तत्त्वं मायामोहितचेतसः ।
स्वात्मन्यारोपयन्त्येतत्कर्तृत्वाद्यन्यगोचरम् ॥ ४२९ ॥

अन्वय और पदार्थ- (एवम्) इस प्रकार (परम्) श्रेष्ठ (तत्त्वम्) तत्त्व को (अज्ञात्वा) न जान कर (मायामोहितचेतसः) जिनका चित्त मायासे मोहित होरहा है ऐसे प्राणी (स्वात्मनि) अपनेमें (एतत्) इस (अन्यगोचरम्) अन्यविषयक

(कर्तृत्वादि) कर्त्तापन आदिको (आरोपयन्ति) आरोपण कर लेते हैं ॥४२९॥

भावार्थ- जिनके चित्त पर मायाका परदा पड़ा है, ऐसे पुरुष आत्मतत्त्वको न जानकर अपनेमें कर्त्तापन भोक्तापन आदि दूसरेके धर्मोंको आरोपण कर लेते हैं ॥

आत्मस्वरूपमविचार्य विमूढबुद्धि-
रारोपयत्यखिलमेतदनात्मकार्यम् ।
स्वात्मन्यसङ्गचितिनिष्क्रिय एव चन्द्रे
दूरस्थमेघकृतधावनवद् भ्रमेण ॥ ४३० ॥

अन्वय और पदार्थ- (विमूढबुद्धिः) भ्रान्त बुद्धिवाला (आत्मस्वरूपम्) आत्मतत्त्वको (अविचार्य) न विचारकर (भ्रमेण) भ्रान्तिके द्वारा (चन्द्रे) चन्द्रमामें (दूरस्थमेघकृतधावनवत्) दूरदेशमें स्थित मेघकी चलनेकी समान (असंगचिति-निष्क्रिये) संग रहित ज्ञानस्वरूप क्रियारहित (स्वात्मनि, एव) अपने आत्मामें ही (अखिलम्) समस्त (एतत्) इस (अनात्मकार्यम्) अनात्माके कार्य को (आरोपयति) आरोपण करता है ॥ ४३० ॥

भावार्थ- जैसे यद्यपि चन्द्रमामें कोई क्रिया नहीं होती है, परन्तु भ्रमवश दूर दौड़तेहुए मेघोंका चलना उसमें आरोपित होता है, चलते मेघ हैं परन्तु लोग कहते हैं कि-चन्द्रमा चल रहा है, ऐसे ही अज्ञानी पुरुष आत्माके यथार्थ स्वरूपको न जान सकनेके कारण असंग, चेतनस्वरूप और क्रियाशून्य आत्मामें, जो आत्मा नहीं है ऐसे देह इन्द्रिय आदिके धर्मोंका आरोपण करलेता है ॥ ४३० ॥

प्रमाणवक्तृश्चैः

आत्मानात्मविवेकं स्फुटतरमग्रे निवेदयिष्यामः ।
इदमाकर्णय विद्वन् जगदुत्पत्तिप्रकारमावृत्त्या ॥ ४३१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अग्रे) आगे (आत्मानात्मविवेकम्) आत्मा और अनात्माके भेदको (स्फुटतरम्) स्पष्टरूपसे (निवेदयिष्यामः) निवेदन करेंगे (विद्वन्) हे ज्ञानी (इदम्) इस (जगदुत्पत्तिप्रकारम्) जगत्की उत्पत्तिकी रीतिको (आवृत्त्या) अभ्यासके द्वारा (आकर्णय) सुन ॥ ४३१ ॥

भावार्थ- हे विद्वन् ! आगे चलकर आत्मा और देह इन्द्रिय आदि अनात्माके विवेकको विशदरूपसे कहेंगे, अब फिर जगत्की उत्पत्ति की प्रणाली को श्रवण कर ॥ ४३१ ॥

पञ्चीकृतेभ्यः खादिभ्यो भूतेभ्यस्त्वीक्षयेशितुः
समुत्पन्नमिदं स्थूलं ब्रह्माण्डं सचराचरम् ॥ ४३२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ईशितुः) ईश्वरके (ईक्षया) दर्शनके द्वारा (पञ्चीकृतेभ्यः)पञ्चीकरण किये हुए (खादिभ्यः) आकाश आदि (भूतेभ्यः) भूतोंसे (इदम्) यह (सचराचरम्) जंगम और स्थावरसहित (स्थूलम्) स्थूल (ब्रह्माण्डम्) जगत् (समुत्पन्नम्) उत्पन्न हुआ है ॥ ४३२ ॥

भावार्थ- ईश्वरके दर्शनके द्वारा आकाश आदि पञ्चीकृत पञ्चभूतोंसे यह चराचर स्थूल जगत् उत्पन्न हुआ है ॥ ४३२॥

व्रीह्याद्योषधयः सर्वा वायुतेजोम्बुभूमयः
सर्वेषामप्यभूदन्नं चतुर्विधशरीरिणाम् ॥ ४३३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वाः) सब (व्रीह्यादयः) धान आदि (ओषधयः) ओषधियें (वायुतेजोऽम्बुभूमयः) पवन, तेज, जल और पृथिवी (सर्वेषाम्) सब (चतुर्विधशरीरिणाम्) चार प्रकारके प्राणियोंका (अन्नम्) अन्न (अभूत्) हुआ ॥ ४३३ ॥

भावार्थ-व्रीहि (धान) आदि सब ओषधि (फल पकने पर मरजाने वाले वृक्ष, वायु, जल, तेज और पृथिवी यह जरायुज, अण्डज, स्वदेज और उद्भिज्ज इन चार प्रकारके प्राणियोंका अन्न (भोजनकी सामग्री) नियत हुआ है ॥ ४३३ ॥

केचिन्मारुतभोजनाः खलु परे चन्द्रार्कतेजोऽशनाः,
केचित्तोयकणाशिनोऽपरिमिताः केचित्तु मृद्भक्षकाः ।
केचित्पर्णशिलातृणादनपराः केचित्तु मांसाशिनः,
केचिद् व्रीहियवान्नभोजनपरा जीवन्त्यमी जन्तवः ॥ ४३४॥

अन्वय और पदार्थ-(खलु) निश्चय (केचित्) कोई (मारुतभोजनाः) पवनभक्षक हैं (परे) दूसरे (चन्द्रार्कतेजोऽशनाः) चन्द्रमा और सूर्यकी किरणों का भोजन करने वाले हैं (अपरिमिताः) परिमाण रहित (केचित्) कोई (तोयकणाशिनः) जलके कणोंका भोजन करनेवाले हैं (तु) और (केचित्) कोई (मृद्भक्षकाः) मृत्तिका खाने वाले हैं (केचित्) कोई (पर्णशिलातृणादनपराः) पत्ते, पत्थर और घास खानेमें तत्पर हैं (तु) और (केचित्) कोई

(मांसाशिनः) मांस खाने वाले हैं (केचित्) कोई (व्रीहियवान्नभोजनपराः) धान्य जौ आदि अन्नका भोजन करने वाले हैं [एवम्] इस प्रकार (अमी) ये (जन्तवः) प्राणी (जीवन्ति) जीते हैं ॥ ४३४ ॥

भावार्थ–कोई २ सर्प आदि वायुका भक्षण करते हैं, दूसरे प्राणी चन्द्रमा और सूर्यकी किरणोंको खाकर रहते हैं, बहुतसे प्राणी जलके कण पीकर रहते हैं, कोई २ जीव मट्टी खाकर रहते हैं, कोई २ प्राणी वृक्षोंके पत्ते पत्थरके टुकड़े और घास खाकर रहते हैं, कोई प्राणी मांसका ही भोजन करते हैं, और कोई २ धान जौ आदि अन्न खाकर रहते हैं इसप्रकार सब प्राणी जीवनका निर्वाह करते हैं ॥ ४३४ ॥

चतुर्विधजन्तवः

जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जाद्याश्चतुर्विधाः ।
स्वस्वकर्मानुरूपेण जातास्तिष्ठन्ति जन्तवः ॥ ४३५ ॥

अन्वय और पदार्थ–(जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जाद्याः) जरायुज, अण्डज, स्वेदज, और उद्भिज्ज आदि (चतुर्विधाः) चार प्रकारके (जन्तवः) प्राणी (स्वस्वकर्मानुरूपेण) अपने २ कर्मके अनुसार (जाताः) जन्म धारण करते हुये (तिष्ठन्ति) स्थित होते हैं ॥ ४३५ ॥

भावार्थ-गर्भवेष्टनकी झिल्लीमें से उत्पन्न होने वाले जरायुज, अण्डेमें से निकलने वाले अण्डज, पसीनेसे उत्पन्न होने वाले स्वेदज, और भूमिको फोड़ कर निकलने वाले उद्भिज, ये चार प्रकारके प्राणी अपने२ कर्मके अनुसार जन्म लेकर जीवन धारण करते हैं ॥ ४३५ ॥

येऽत्र जाता जरायुभ्यस्ते नराद्या जरायुजाः ।
अण्डजास्ते स्युरण्डेभ्यो जाता ये विहगादयः ॥ ४३६ ॥

अन्वय और पदार्थ–(अत्र) इस संसार (ये) जो (जरायुभ्यः) जरायु गर्भसे लपेटने वाले चर्मोंसे (जाताः) उत्पन्न हुये हैं (ते) वे (नराद्याः) मनुष्य आदि (जरायुजाः) जरायुज हैं (ये) जो (विहगादयः) पक्षी आदि (अण्डेभ्यः) अण्डोंसे (जाताः) उत्पन्न हुये हैं (ते) वे (अण्डजाः) अण्डज (स्युः) होंगे ॥ ४३६ ॥

भावार्थ–इस संसारमें जो जरायु (झिल्ली) से जन्म लेते हैं, वे मनुष्य आदि

जरायुज कहलाते हैं और जो अण्डोंसे उत्पन्न होते हैं वे पक्षी आदि अण्डज कहलाते हैं ॥ ४३६ ॥

स्वेदाज्जाताः स्वेदजास्ते यूकालिक्षादयोऽपि च।
भूमिमुद्भिद्य ये जाता उद्भिज्जास्ते द्रुमादयः॥ ४३७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यूका) जूँ (च) और (लिक्षादयः, अपि) लीख आदि भी [ये] जो (स्वेदात्) पसीनेसे (जाताः) उत्पन्न हुये हैं (ते) वे (स्वेदजाः) स्वेदज [कथ्यन्ते] कहे जाते हैं (ये) जो (भूमिम्) पृथिवीको (उद्भिद्य) फोड़ कर (जाताः) उत्पन्न हुये हैं (ते) वे (द्रुमादयः) वृक्ष आदि (उद्भिज्जाः) उद्भिज [कथ्यन्ते] कहे जाते हैं ॥ ४३७ ॥

भावार्थ-जूँ लीख आदि जो पसीनेसे उत्पन्न हुए हैं उनको स्वेदज कहते हैं और जो भूमिको फोड़ कर उत्पन्न हुए हैं वे उद्भिज्ज कहलाते हैं, जैसे कि—वृक्ष आदि ॥ ४३७ ॥

इदं स्थूलवपुर्जातं भौतिकञ्च चतुर्विधम् ।
सामान्येन समष्टिः स्यादेकधीविषयत्वतः ॥ ४३८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इदम्) यह (चतुर्विधम्) चार प्रकारका (भौतिकम्) भूतोंसे उत्पन्न हुआ (स्थूलवपुर्जातम्) स्थूलशरीरोंका समूह (एकधीविषयत्वतः) एक ज्ञानका विषय होनेसे (सामान्येन) जातिरूपसे (समष्टिः) एक (स्यात्) होगा ॥ ४३८ ॥

भावार्थ-यह चार प्रकारका पञ्चभूतोंसे उत्पन्न हुआ स्थूलशरीरोंका समूह विराट् पुरुषके एक ज्ञानका विषय होनेसे जाति रूपमें समष्टि कहलाता है ॥४३८॥

एतत्समष्ट्यवच्छिन्नं चैतन्यं फलसंयुतम् ।
प्राहुर्वैश्वानर इति विराडिति च वैदिकाः ॥ ४३९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वैदिकाः) वेदवेत्ता पुरुष (फलसंयुतम्) फलयुक्त (एतत्) इस (समष्ट्यवच्छिन्नम्) स्थूल शरीरोंकी समष्टिसे युक्त (चैतन्यम्) चेतनाको शक्तिको (वैश्वानर इति) वैश्वानर इस नामसे (च) और (विराट् इति) विराट् इस नामसे (प्राहुः) कहते हैं ॥४३९ ॥

भावार्थ-वेदवेत्ता पण्डित फलसहित इस समष्टि स्थूलशरीरावच्छिन्न चैतन्य को वैश्वानर और विराट् नामसे कहते हैं ॥ ४३९ ॥

वैश्वानरो विश्वनरेष्वात्मत्वेनाभिमानतः ।
विराट् स्याद्विविधत्वेन स्वयमेव विराजनात् ॥ ४४० ॥

अन्वय और पदार्थ-(विश्वनरेषु) जगत्के सकल मनुष्योंमें; (आत्मत्वेन) मेरे हैं इस भावसे (अभिमानतः) अभिमान करनेके कारण (वैश्वानरः) वैश्वानर है (विविधत्वेन) नाना प्रकारके रूपों वाला होनेसे (स्वयम्, एव) आप ही (विराजनात्) विराजमान होनेसे (विराट्) विराट् नाम वाला (स्यात्) होता है ॥ ४४० ॥

भावार्थ-ब्रह्माण्डमें के सकल जीवोंके स्थूलशरीरोंमें मेरे हैं ऐसा अभिमान करनेसे वैश्वानर कहलाता है और वही देव मनुष्य आदि अनेकों रूपोंमें विराजमान होनेसे विराट् कहलाता है ॥ ४४० ॥

चतुर्विधं भूतजातं तत्तज्जातिविशेषतः ।
नैकधीविषयत्वेन पूर्ववद्व्यष्टिरिष्यते ॥ ४४१ ॥

अन्वय और पदार्थ(तत्तज्जातिविशेषतः) तिन २ जातियोंकी विशेषताके कारण (चतुर्विधम्) चार प्रकारका (भूतजातम्) प्राणिसमूह (नैकधीविषयत्वेन) अनेकों ज्ञानोंके गोचर होनेसे (पूर्ववत्) पहलेकी समान (व्यष्टिः) व्यष्टि (इष्यते) मानाजाता है ॥ ४४१ ॥

भावार्थ-जरायुज आदि चार प्रकारके प्राणी—मनुष्य, पक्षी, कीट, वृक्ष आदि भिन्न २ जातियोंमें भाँति २ के रूप पानेके कारण अनेकों बुद्धियोंके गोचर होते हैं, इनको पहलेकी समान व्यष्टि नामसे कहा जाता है ॥ ४४१॥

साभासं व्यष्ट्युपहितं तत्तादात्म्यमुपागतम् ।
चैतन्यं विश्वमित्याहुर्वेदान्तनयकोविदाः ॥ ४४२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वेदान्तनयकोविदाः) वेदान्तके सिद्धान्तको जानने वाले (व्यष्ट्युपहितम्) भिन्न २ स्थूल शरीरोंकी उपाधिवाले (तत्तादात्म्यम्) व्यष्टि स्थूल शरीरोंके साथ एकात्मभावको (उपगतम्) प्राप्त हुए (साभासम्) चैतन्यके स्फुरणयुक्त (चैतन्यम्) चेतना शक्तिको (विश्व इति) विश्व इस नामसे (आहुः) कहते हैं ॥ ४४२ ॥

भावार्थ-वेदान्तशास्त्रमें प्रवीण विद्वान् व्यष्टि स्थूल शरीरोंकी उपाधिवाले और उसके साथ एकात्मभावको प्राप्त हुए आभासयुक्त चैतन्यको विश्वनामसे कहते हैं४४२

विश्वोऽस्मिन् स्थूलदेहेऽत्र स्वाभिमानेन तिष्ठति ।
यतस्ततो विश्व इति नाम्ना सार्थो भवत्ययम् ॥ ४४३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यतः) क्योंकि (अत्र) इस संसारमें (विश्वः) विश्व नामक जीव (अस्मिन्) इस (स्थूलदेहे) स्थूलशरीरमें (स्वाभिमानेन) अपने अपने अभिमानके द्वारा (तिष्ठति) स्थित होता है (ततः) तिससे (अयम्) यह (विश्वः इति, नाम्ना) विश्व इस नामसे (सार्थः) सार्थक (भवति) होता है ४४३

भावार्थ-इस संसारमण्डलमें स्थूल शरीरमें अपना अभिमान करनेके कारण यह 'विश्व' इस सार्थक नामको धारण करता है ॥ ४४३ ॥

व्यष्टिरेषाऽस्य विश्वस्य भवति स्थूलविग्रहः ।
उच्यतेऽन्नविकारित्वात्कोशोऽन्नमय इत्ययम् ॥४४४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एषा) यह (व्यष्टिः) भिन्न २ शरीर (अस्य) इस (विश्वस्य) विश्वका (स्थूलविग्रहः) स्थूलशरीर (भवति) होता है (अयम्) यह स्थूलशरीर (अन्नविकारित्वात्) अन्नके परिणाम वाला होनेसे (अन्नमयः) अन्नमय (कोशः) कोश (इति) इस नामसे (उच्यते) कहा जाता है ॥ ४४४ ॥

भावार्थ-यह व्यष्टि शरीर विश्वका स्थूल शरीर, है यह स्थूल शरीर अन्नका परिणाम रूप होनेसे अन्नमय कोश कहलाता ॥ ४४४ ॥

देहोऽयं पितृभुक्तान्नविकारात् शुक्रशोणितात् ।
जातः प्रवर्धतेऽन्नेन तदभावे विनश्यति ॥४४५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(पितृभुक्तान्नविकारात्) माता पिता के खाये हुये अन्नके विकाररूप (शुक्रशोणितात्) वीर्य रजसे (जातः) उत्पन्न हुआ (अयम्) यह (देहः) स्थूल शरीर) (अन्नेन) अन्नसे (प्रवर्धते) बढ़ता है (तदभावे) उस अन्नके अभावमें (विनश्यति) नष्ट होता है ॥ ४४५ ॥

भावार्थ-माता पिताके खाये हुए अन्नके परिणामरूप रज वीर्यसे उत्पन्न हुआ यह शरीर अन्नसे बढ़ता है और अन्न न मिलने पर नष्ट हो जाता है ४४५

तस्मादन्नविकारत्वेनायमन्नमयो मतः ।
आच्छादकत्वादेतस्याप्यसेः कोशवदात्मनः ॥४४६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (अयम्) यह स्थूलशरीर (अन्न-

विकारित्वात्) अन्नके विकार वाला होनेसे (असेः) तलवारके (कोशवत्) म्यान की समान (एतस्य) इस (आत्मनः, अपि) आत्माका भी (आच्छादकत्वात्) आच्छादन करने वाला होनेसे (अन्नमयः) अन्नमय (कोशः) कोश (मतः) माना गया है ॥ ४४६ ॥

भावार्थ-इसलिये यह स्थूल शरीर अन्नका परिणाम है और तलवारके म्यान की समान आत्माको ढकता है इसलिये इसको अन्नमय कोश कहते हैं ॥ ४४६॥

आत्मनः स्थूलभोगानामेतदायतनं विदुः ।
शब्दादिविषयान् भुंक्ते स्थूलान् स्थूलात्मनि स्थितः ॥४४७॥

अन्वय और पदार्थ-(एतत्) इसको (आत्मनः) आत्माके (स्थूलभोगानाम्) स्थूल भोगोंका (आयतनम्) आश्रय (विदुः) कहते हैं (स्थूलात्मनि) स्थूल शरीरमें (स्थितः) स्थित हुआ (स्थूलान्) स्थूल (शब्दादिविषयान्) शब्द आदि विषयोंको (भुंक्ते) भोगता है ॥ ४४७ ॥

भावार्थ-विद्वान् पुरुष इस स्थूल देहको आत्माके स्थूल भोगका आश्रय कहते हैं, आत्मा इस स्थूलदेहमें रह कर शब्द स्पर्श आदि स्थूलविषयोंको भोगता है ॥

बहिरात्मा ततः स्थूलभोगायतनमुच्यते ।
इन्द्रियैरुपनीतानां शब्दादीनामयं स्वयम् ॥
देहेन्द्रियमनोयुक्तो भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ ४४८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ततः) तिससे (बहिरात्मा) बाहरका आत्मा स्थूल देह (स्थूलभोगायतनम्) स्थूलविषय भोगका आश्रय (उच्यते) कहा जाता है (अयम्) यह आत्मा (स्वयम्) आप (इन्द्रियैः) इन्द्रियोंके द्वारा (उपनीतानाम्) समीप लाये हुये (शब्दादीनाम्) शब्दादि विषयोंका [भोगायतनम्] भोगका आश्रय (मनीषिणः) विद्वान् (देहेन्द्रियमनोयुक्तः) शरीर इन्द्रियें और मनके साथ [आत्मानम्] आत्माको (भोक्ता, इति) भोक्ता है ऐसा (आहुः) कहते हैं ॥ ४४८ ॥

भावार्थ-इसलिये बाहरी आत्मा स्थूलशरीरको स्थूलवस्तुओंके उपभोगका आश्रय कहा जाता है, यह स्थूलदेह इन्द्रियोंके द्वारा पास पहुंचे हुए शब्द स्पर्श आदि अनेकों विषयोंको भोगता है, इसलिये पण्डित जन शरीर इन्द्रियें और मनसे युक्त आत्माको भोक्ता कहते हैं ॥४४८॥

एकादशद्वारवतीह देहे सौधे महाराज इवाक्षवर्गैः ।
संसेव्यमानो विषयोपभोगानुपाधिसंस्थो बुभुजेऽयमात्मा ॥४४९॥

अन्वय और पदार्थ-(अयम्) यह (आत्मा) जीव (उपधिसंस्थः) उपाधिमें स्थित [सन्] होता हुआ (सौधे) अट्टलिकापर (महाराज इव) महाराज जैसे (एकादशद्वारवति) ग्यारहद्वारवाले (इह) इस (देहे) शरीरमें (अक्षवर्गैः) इन्द्रियसमूहके द्वारा (संसेव्यमानः) सेवा किया जाता हुआ (विषयोपभोगान्) विषयभोगोंको (बुभुजे) भोगता हुआ ॥ ४४९ ॥

भावार्थ-जैसे कोई राजा अनेकों द्वार और खिड़कियोंवाले महलमें बैठकर नानाप्रकारके भोगोंको भोगता है, ऐसे ही यह आत्मा उपाधिसे युक्त होकर पाँच ज्ञानेन्द्रियें, पाँच कर्मेन्द्रियें और मन इन ग्यारह द्वारवाले शरीररूप महलमें बैठकर इन्द्रियोंके द्वारा भाँति २ के विषयोंको भोगता है ॥ ४४९ ॥

ज्ञानेन्द्रियाणि निजदैवतचोदितानि,
कर्मेन्द्रियाण्यपि तथा मनआदिकानि ।
स्वस्वप्रयोजनविधौ नियतानि सन्ति,
यत्नेन किङ्करजना इव तं भजन्ते ॥ ४५० ॥

अन्वय और पदार्थ-(निजदैवतचोदितानि) अपने२ अधिष्ठातात्री देवताओंसे प्रेरित (ज्ञानेन्द्रियाणि) पाँच ज्ञानेन्द्रियें (अपि) और (कर्मेन्द्रियाणि) पाँचकर्मेन्द्रियें (तथा) तैसे ही (मनआदिकानि) मन आदि (स्वस्वप्रयोजनविधौ) अपने २ कामके अनुष्ठानमें (नियतानि) नियत (सन्ति) हैं (किङ्करजना इव) सेवकों की समान (यत्नेन) यत्न करके (तत्) उस आत्माको (भजन्ते) सेवते हैं ॥

भावार्थ-अपने २ अधिष्ठात्री देवताके प्रेरणा किये हुए ज्ञानेन्द्रियें, कर्मेन्द्रियें और मन आदि अपने २ काम पर नियुक्त होकर सेवककी समान यत्नके साथ उस आत्माकी सेवा करते हैं ॥ ४५० ॥

यत्रोपभुंक्ते विषयान् स्थूलानेष महामतिः ।
अहं ममेति सैषाऽस्याऽवस्था जाग्रदितीर्यते ॥ ४५१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्र) जिस अवस्थामें (एषः) यह (महामतिः) महाबुद्धिमान् जीव (अहं, मम, इति) मैं हूँ, मेरा है इसप्रकार (स्थूलान्) स्थूल

(विषयान्) विषयोंको (उपभुङ्क्ते) भोगता है (सा) वह (एषा) यह (अस्य) इसकी (जाग्रत्, इति) जाग्रत् इस इस नामकी (अवस्था) अवस्था (ईर्यते) कही जाती है ॥ ४५१ ॥

भावार्थ-जिस अवस्थामें यहात्मा आत्मा मैं भोग करता हूं, ये भोग्य विषय मेरे हैं ऐसा मान कर स्थूल विषयों को भोगता है, इसको आत्माकी जाग्रत् अवस्था कहते हैं ॥ ४५१ ॥

एतत्समष्टिव्यष्ट्योश्चोभयोरप्यभिमानिनोः ।
तद्विश्ववैश्वानरयोरभेदः पूर्ववन्मतः ॥ ४५२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एतत्समष्टिव्यष्ट्योः) इस स्थूल शरीरकी समष्टि व्यष्टि का (च) और (उभयोः) दोनोंके (अभिमानिनोः) अभिमानी (तद्विश्ववैश्वानरयोः) उन विश्व और वैश्वानरका (अभेदः) अभेद (पूर्ववत्) पूर्वकी समान (मतः) माना गया है ॥ ४५२ ॥

भावार्थ-इस व्यष्टि और समष्टि स्थूल शरीरका और दोनों शरीरोंके अभिमानी विश्व और वैश्वानरका तैजस और सूत्रात्मा की समान अभेद माना गया है ॥

स्थूलसूक्ष्मकारणाख्याः प्रपञ्चा ये निरूपिताः ।
ते सर्वेऽपि मिलित्वैकः प्रपञ्चोऽपि महान् भवेत् ४५३

अन्वय और पदार्थ-(ये) जो (स्थूलसूक्ष्मकारणाख्याः) स्थूल सूक्ष्म कारण नाम वाले (प्रपञ्चाः) प्रपञ्च (निरूपिताः) निरूपण किये हैं (ते) वे (सर्वे, अपि) सब ही (मिलित्वा) मिलकर (एकः) एक (महान्) बड़ा (प्रपञ्चः, अपि) प्रपञ्च भी (भवेत्) होगा ॥ ४५३ ॥

भावार्थ-स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन सब प्रपञ्चों (जगतों) का जो वर्णन किया है, ये सब मिलकर एक बड़ाभारी प्रपञ्च (जगत्) कहलाते हैं ॥ ४५३ ॥

महाप्रपञ्चावच्छिन्नं विश्वप्राज्ञादिलक्षणम् ।
विराडादीशपर्यन्तं चैतन्यं चैकमेव तत् ॥ ४५४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(महाप्रपञ्चावच्छिन्नम्) महाजगत्से युक्त (विश्वप्राज्ञादिलक्षणम्) विश्व प्राज्ञ आदिरूप (विराडादीशपर्यन्तम्) विराट्से लेकर ईश पर्यन्त (तत्) वह (चैतन्यं, च) चैतन्य भी (एकं, एव) एक ही है ॥ ४५४ ॥

भावार्थ-वह महान् प्रपञ्चावच्छिन्न, विश्व भाग आदि रूप और विराट्से ईश्वरपर्यन्त सब एक ही चैतन्य है ॥ ४५४ ॥

यदनाद्यन्तमव्यक्तं चैतन्यमजमक्षरम् ।
महाप्रपञ्चेन महाविविक्तं सदयोऽग्निवत् ॥ ४५५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (अनाद्यन्तम्) आदि अन्त रहित है (अजम्) जन्मरहित (अव्यक्तम्) व्यक्तभावरहित (अक्षरम्) अविनाशी (चैतन्यम्) चैतन्य (महाप्रपञ्चेन, सह) समष्टि चैतन्यके साथ (अयोऽग्निवत्) लोहे और अग्निकी समान (अविविक्तं, सत्) अभिन्न होकर [वर्त्तते] है ॥

भावार्थ-जो आदि अन्तशून्य, अजन्मा, अविनाशी चैतन्य लोहे और अग्नि की समान महाप्रपञ्च (समष्टि जगत्) के साथ अभिन्न भावसे विद्यमान है॥४५५॥

तत्सर्वं खल्विदं ब्रह्मेत्यस्य वाक्यस्य पण्डितैः ।
वाच्यार्थ इति निर्णीतं विविक्तं लक्ष्य इत्यपि ॥ ४५६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(पण्डितैः) पण्डितों करके (तत्) वह (सर्वम्) सब (खलु) निश्चय (इदम्) यह (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (निर्णीतम्) निर्णय किया है (विविक्तम्) भिन्न होकर (लक्ष्यः) लक्ष्य (इति, अपि) ऐसा भी ॥ ४५६ ॥

भावार्थ-पण्डित जनोंने महाप्रपञ्चके साथ उस अभिन्न चैतन्यको "यह सब ही ब्रह्म है" इस वाक्यका वाच्यार्थ निर्णय किया है और विविक्त (भिन्न) होने पर इसको लक्ष्य अर्थ भी कहा है ॥ ४५६ ॥

स्थूलाद्यज्ञानपर्यन्तं कार्यकारणलक्षणम् ।
दृश्यं सर्वमनात्मेति विजानीहि विचक्षण ॥ ४५७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विचक्षण) हे विचारशील (स्थूलाद्यज्ञानपर्यन्तम्) स्थूल प्रपञ्चसे अविद्या पर्यन्त (कार्यकारणलक्षणम्) कार्यकारण रूप (सर्वम्) सब (दृश्यम्) दीखनेवाला जड़जगत् (अनात्मा) आत्मासे भिन्न है (इति) ऐसा (विजानीहि) जान ॥ ४५७ ॥

भावार्थ-हे विचारशील ! स्थूल जगत्से अज्ञान (अविद्या)पर्यन्त कार्य कारण रूप इस सब दृश्यको अनात्मा (जड़) जान ॥ ४५७ ॥

आत्मनिरूपणम्

अन्तःकरणतद्वृत्तिद्रष्टृ नित्यमविक्रियम् ।
चैतन्यं यत्तदात्मेति बुद्ध्या बुध्यस्व सूक्ष्मया ॥ ४५८ ॥

अन्वय और पदार्थ–(अन्तःकरणतद्वृत्तिद्रष्टृ) अन्तःकरण और उसकी वृत्तियोंका द्रष्टा (नित्यम्) उत्पत्तिविनाशशून्य (अविक्रियम्) विकाररहित (यत्) जो (चैतन्यम्) चैतन्य है (तत्) वह (आत्मा) आत्मा है (इति) ऐसा (सूक्ष्मया) सूक्ष्म (बुद्ध्या) बुद्धिके द्वारा (बुध्यस्व) जान ॥ ४५८ ॥

भावार्थ–अन्तःकरण और अन्तःकरणकी वृत्तियोंका द्रष्टा (साक्षी) नित्य और विकारशून्य जो चैतन्य है वही आत्मा है, इस तत्त्व को तू अपनी सूक्ष्मबुद्धि से विचार कर समझ ॥ ४५८ ॥

एषः प्रत्यक्स्वप्रकाशो निरंशोऽसङ्गः शुद्धः सर्वदैकस्वभावः ।
नित्याखण्डानन्दरूपो निरीहः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥

अन्वय और पदार्थ–(एषः) यह (प्रत्यक्) व्यापक आत्मा (स्वप्रकाशः) स्वयंप्रकाशस्वरूप (निरंशः) निरवयव (असङ्गः) निःसंग (शुद्धः) निर्मल (सर्वदा) सदा (एकस्वभावः) एकस्वभाव (नित्याखण्डानंदरूपः) नित्य-अखण्ड-आनंदस्वरूप (निरीहः) निष्काम (साक्षी) उदासीन (चेताः) ज्ञानस्वरूप (केवलः) अद्वितीय (च) और (निर्गुणः) गुणोंके सम्पर्क से शून्य है ॥ ४५९ ॥

भावार्थ–यह आत्मा दूसरे प्रकाशकी अपेक्षा न रखने वाला, स्वयंप्रकाश निरवयव, निःसङ्ग, निर्मल, सर्वदा अद्वितीय, नित्य अखण्ड आनन्दस्वरूप निष्क्रिय साक्षी, ज्ञानमय, केवल और निर्गुण है ॥ ४५९ ॥

नैव प्रत्यग्जायते वर्द्धते नो किंचिन्नापक्षीयते नैति नाशम् ।
आत्मा नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो नासौ हन्यो हन्यमाने शरीरे ॥

अन्वय और पदार्थ—(प्रत्यक्) आत्मा (न-एव) निश्चय नहीं (जायते) जन्मता है (नो) नहीं (वर्धते) बढ़ता है (किञ्चित्) कुछ भी (न) नहीं (अपक्षीयते) क्षीण होता है (नाशम्) नाशको (न) नहीं (एति) प्राप्त होता है (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा(नित्यः) अविनाशी (शाश्वतः) सदा काल

रहनेवाला (पुराणः) पुरातन [अस्ति] है (असौ) यह (शरीरे) शरीरके (हन्यमाने) मारेजाने पर (न) नहीं (हन्यः) मारने योग्य [भवति] होता है ४६०

भावार्थ—यह आत्मा न जन्म लेता है, न घटता बढ़ता है, न कुछ क्षीण होता है, न इसका नाश होता है, यह नित्य है, सदा वर्त्तमान रहता है और पुरातन है तथा शरीरका विनाश होने पर इसका नाश नहीं होता ॥ ४६० ॥

जन्मास्तित्वविवृद्धयः परिणतिश्चापक्षतिर्नाशनम्,
दृश्यस्यैव भवन्ति षड् विकृतयो नानाविधा व्याधयः ।
स्थूलत्वादि च नीलताद्यपि मितिर्वर्णाश्रमादिप्रथा,
दृश्यन्ते वपुषो न चात्मन इमे तद्विक्रियासाक्षिणः ॥४६१॥

अन्वय और पदार्थ-(जन्मास्तित्वविवृद्धयः) जन्म, अस्तित्व और वृद्धि (परिणतिः) परिणाम (अपक्षतिः) ह्रास (च) और (नाशनम्) नाश [एताः] ये (षट्) छः (विकृतयः) विकार (च) और (नानाविधाः) नानाप्रकारके (व्याधयः) रोग (दृश्यस्य, एव) दृश्यको ही (भवन्ति) होते हैं (स्थूलत्वादि) स्थूलता आदि (च) और (नीलतादि) नीलपन आदि (अपि) और (वर्णाश्रमादिप्रथा) वर्ण आश्रम आदि की परिपाटी (इमे) ये (वपुषः) शरीरको (दृश्यन्ते) दीखते हैं (च) और (तद्विक्रियासाक्षिणः) उनके विकारोंके साक्षी (आत्मनः) आत्माके (न) नहीं [भवन्ति] होते हैं ॥ ४६१ ॥

भावार्थ-"जायते, अस्ति, वर्द्धते, परिणमते, अपक्षीयते, विनश्यति" उत्पन्न होना, विद्यमान होना, बढ़ना, रूपान्तर होना, घटना और नष्ट होजाना ये छः भावविकार (जायमान पदार्थोंके विकार) और नानाप्रकारके रोग शरीर आदि दृश्य पदार्थोंके ही हुआ करते हैं, स्थूलता आदि, कृष्णता आदि, नाप तोल और वर्णाश्रम आदिकी परिपाटी ये सब शरीरोंमें ही देखनेमें आते हैं, देह आदिके परिणामोंके साक्षी आत्माके ये धर्म नहीं हैं ॥ ४६१ ॥

अस्मिन्नात्मन्यनात्मत्वमनात्मन्यात्मतां पुनः ।
विपरीततयाऽध्यस्य संसरन्ति विमोहतः ॥ ४६२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विमोहतः) मोहवश (अस्मिन्) इस (आत्मनि) आत्मामें (अनात्मत्वम्) अनात्माके धर्मोंको (पुनः) और (विपरीततया)

विपरीतभावसे (अनात्मनि) अनात्मामें (आत्मताम्) आत्माके धर्मोंको (अध्यस्य) आरोपण करके (संसरन्ति) जन्मते और मरते हैं ॥ ४६२ ॥

भावार्थ-प्राणी भ्रान्तिमें पड़कर (मोहवश) आत्मामें देह इन्द्रिय आदि अनात्मपदार्थोंके धर्मोंका और इससे विपरीत देह इन्द्रिय मन आदिमें आत्माके धर्मोंका अध्यास (आरोपण) करके जन्ममरणके प्रवाहमें गोते खाते रहते हैं ४६२

भ्रांत्या मनुष्योऽहमहं द्विजोऽहं तज्ज्ञोऽहमज्ञोऽहमतीव पापः ।
भ्रष्टोऽस्मि शिष्टोऽस्मि सुखी च दुःखीत्येवं विमुह्यात्मनि कल्पयन्ति॥

अन्वय और पदार्थ-[मूढाः] मूढ़ (भ्रान्त्या) भ्रान्तिके कारण (अहम्) मैं (मनुष्यः) मनुष्य हूँ (अहम्) मैं (द्विजः) द्विज हूँ (अहम्) मैं (तज्ज्ञः) इनका जानकार हूँ (अहम्) मैं (अज्ञः) अज्ञानी हूँ (अहम्) मैं (अतीव) अत्यंत ही (पापः) पापी हूं (भ्रष्टः) पतित (अस्मि) हूँ (शिष्टः) सज्जन (अस्मि) हूँ (सुखी) सुखयुक्त (च) और (दुःखी) दुःखयुक्त [अस्मि] हूं (इति) ये (एवम्) इस प्रकार (विमुह्य) मोहमें पड़ कर (आत्मनि) आत्मामें (कल्पयंति) कल्पनायें करते हैं ॥ ४६३ ॥

भावार्थ-मूढ़ प्राणी भ्रांतिमें पड़ कर मैं मनुष्य हूँ, मैं द्विज हूं मैं ज्ञानी हूं मैं अज्ञानी हूं, मैं पतित हूं, मैं योग्य हूं मैं सुखी हूं, और मैं दुःखी हूं, आत्मामें ऐसी २ कल्पनायें किया करते हैं ॥ ४६३ ॥

अनात्मनो जन्मजरामृतिक्षुधातृष्णासुखक्लेशभयादिधर्मान् ।
विपर्ययेण ह्यतथाविधेऽस्मिन्नारोपयन्त्यात्मनि बुद्धिदोषात्४६४

अन्वय और पदार्थ-[जनाः] लोग (बुद्धिदोषात्) बुद्धिके दोषसे (अतथाविधे) जो तैसा नहीं ऐसे (अस्मिन्) इस (आत्मनि) आत्मामें (अनात्मनः) अनात्माके (जन्मजरामृतिक्षुधातृष्णासुखक्लेशभयादिधर्मान्) जन्म, बुढ़ापा, मरण, भूख, प्यास, सुख, दुःख, भय आदि धर्मोंको (विपर्ययेण) विपरीतभावसे (आरोपयन्ति, हि) निश्चितरूपसे आरोपण करते हैं ॥ ४६४ ॥

भावार्थ-प्राणी भ्रान्तिवश, जो जन्म मरण आदि धर्मों वाला नहीं है उस आत्मामें देह इन्द्रियादि अनात्माके जन्म, जरा, मरण भूख, प्यास, सुख, क्लेश आदि धर्मोंका विपरीतभावसे आरोपण करते हैं ॥ ४६४ ॥

भ्रान्त्या यत्र यदध्यासस्तत्कृतेन गुणेन वा ।
दोषेणाप्यणुमात्रेण स न संबध्यते क्वचित् ॥ ४६५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(भ्रांत्या) भ्रान्तिसे (यत्र) जहाँ (यदध्यासः) जिसका अध्यास होता है (तत्कृतेन) उस अध्यासके किये हुए (गुणेन) गुणसे (वा) या (दोषेण) दोषसे (अणुमात्रेण) अणुमात्रसे (अपि) भी (सः) वह (क्वचित्) कहीं (न) नहीं (सम्बध्यते) सम्बन्ध पाता है ॥ ४६५ ॥

भावार्थ-भ्रान्तिसे जिस रज्जु आदिके कारणसे जिस सर्प आदिका अध्यास होता है, उस अध्यासके गुण वा दोषसे उस रज्जु आदिका अणुमात्र भी संबंध नहीं होता है ॥ ४६५ ॥

किं मरुन्मृगतृष्णाम्बुपूरेणार्द्रत्वमृच्छति ।
दृष्टि संस्थितपीतेन शङ्खः पीतायते किमु ॥ ४६६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(मरुत्) पवन (मृगतृष्णाम्बुपूरेण) मरुमरीचिकाके जलप्रवाहसे (आर्द्रत्वम्) गीलेपनको (किम्) क्या (ऋच्छति) पाता है (शङ्खः) शङ्ख (किमु) क्या (दृष्टिसंस्थितपीतेन) दृष्टिमें स्थित पीलेपनके द्वारा (पीलायते) पीला होजाता है ॥ ४६६ ॥

भावार्थ-क्या मरुमरीचिकाके जलसे वायु कभी गीला होसकता है ? कदापि नहीं होसकता। क्या नेत्रमें कमजवायुका पीलापन होनेसे शङ्ख पीला होजाता है ? कदापि नहीं होता ॥ ४६६ ॥

बालकल्पितनैल्येन व्योम किं मलिनायते ।
प्रत्यगात्मन्यविषयेऽनात्माध्यासः कथं प्रभो ॥ ४६७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(बालकल्पितनैल्येन) अज्ञानीकी कल्पना की हुई नीलतासे (किम्) क्या (व्योम) आकाश (मलिनायते) मलिन होजाता है (प्रभो) हे गुरो (अविषये) जो किसीका विषय नहीं ऐसे (प्रत्यगात्मनि) व्यापक आत्मामें (अनात्माध्यासः) अनात्माका अध्यास (कथम्) कैसे [भवति] होता है ॥ ४६७ ॥

भावार्थ-अज्ञानियोंके नीला नीला कहनेसे क्या आकाश नीला होजाता है ? शिष्यने प्रश्न किया, कि-हे प्रभो ! अविषय व्यापक आत्मामें देह इन्द्रियादि अनात्माका अध्यास कैसे होजाता है ? ॥ ४६७ ॥

पुरो दृष्टे हि विषयेऽध्यस्यन्ति विषयान्तरम् ।
तद् दृष्टं शुक्तिरज्ज्वादौ सादृश्याद्यनुबन्धतः ॥ ४६८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(हि) क्योंकि [लोकाः] लोग (पुरः) सामने (दृष्टे) देखे हुए (विषये) विषयमें (विषयांतरम्) दूसरे विषयको (अध्यस्यन्ति) आरोपण करते हैं (तद्) वह (सादृश्याद्यनुबन्धतः) सदृशता आदिके कारणसे (शुक्तिरज्ज्वादौ) सीपी रस्सी आदिमें (दृष्टम्) देखा है ॥ ४६८ ॥

भावार्थ-लोग अपने आगे देखे हुए सीपी रस्सी आदि विषयमें रजत (चाँदी) सर्प आदि अन्य विषयका आरोप किया करते हैं, यह अध्यास सदृशता होनेके कारण सीपी रस्सी आदिमें देखनेमें आता है ॥ ४६८ ॥

परत्र पूर्वदृष्टस्यावभासः स्मृतिलक्षणः ।
अध्यासः स कथं स्वामिन् भवेदात्मन्यगोचरे ॥ ४६९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्वामिन्) हे प्रभो (परत्र) अन्य पदार्थमें (पूर्वदृष्टस्य) पहले देखे हुएका (अवभासः) ज्ञान (स्मृतिलक्षणः) स्मृतिरूप [अस्ति] है (सः) वह (अध्यासः) अध्यास (अगोचरे) अविषय (आत्मनि) आत्मा में (कथम्) कैसे (भवेत्) होगा ॥ ४६९ ॥

भावार्थ-हे प्रभो ! अन्य पदार्थमें पहले देखे हुए पदार्थका अवभास (ज्ञान) स्मृतिरूप होता है, वह अध्यास अविषय आत्मामें कैसे हो सकता है ? ॥ ४६९ ॥

नानुभूतं कदाप्यात्माऽननुभूतस्य वस्तुनः ।
सादृश्यं सिध्यति कथमनात्मनि विलक्षणे ॥ ४७० ॥

अन्वय और पदार्थ-(आत्मा) आत्मा (कदापि) कभी भी (न) नहीं (अनुभूतः) जाना गया है (विलक्षणे) भिन्न रूप (अनात्मनि) अनात्मामें (सादृश्यम्) सदृशता (कथम्) कैसे (सिद्ध्यति) सिद्ध हो सकती है ॥ ४७० ॥

भावार्थ-आत्मा कभी भी अनुभूत (ज्ञात) नहीं होता । आत्मा तो शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वरूप है, उसकी अपनेसे सर्वथा भिन्न देह आदि अनात्मपदार्थमें तुल्यता कैसे दिखलायी जा सकती है ? ॥ ४७० ॥

अनात्मन्यात्मताध्यासः कथमेष समागतः ।
निवृत्तिः कथमेतस्य केनोपायेन सिध्यति ॥ ४७१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एषः) यह (अनात्मनि) आत्मभिन्न वस्तुमें (आत्मताध्यासः) आत्मभावका अध्यास (कथम्) कैसे (समागतः) आगया (एतस्य) इसकी (निवृत्तिः) हानि (केन) किस (उपायेन) उपायसे (कथम्) कैसे (सिध्यति) सिद्ध होती है ॥ ४७१ ॥

भावार्थ-अनात्मा देह इन्द्रिय आदिमें यह आत्माका अध्यास कैसे आगया ? और यह किस उपायसे कैसे दूर होय? ॥४७१ ॥

उपाधियोग उभयोः सम एवेशजीवयोः ।
जीवस्यैव कथं बन्धो नेश्वरस्यास्ति तत्कथम् ॥ ४७२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ईशजीवयोः) ईश्वर और जीव (उभयोः) दोनोंको (उपाधियोगः) उपाधि का सम्बन्ध (समः एव) समान ही है [एवं सति] ऐसा होते हुए (बन्धः) बंधन (जीवस्य, एव) जीवको ही (कथम्) कैसे [भवति] होता है (तत्) वह (इतरस्य) दूसरेको (कथम्) कैसे (न) नहीं (अस्ति) है ॥ ४७२ ॥

भावार्थ-जीवकी उपाधि अविद्या है और ईश्वरकी माया है, इस प्रकार जीव और ईश्वर दोनोंको ही उपाधिका संबन्ध एकसा है, ऐसा होते हुए भी जीवको ही उपाधिका बन्धन क्यों होता है, ईश्वरको बन्धन क्यों नहीं होता ? ॥ ४७२ ॥

एतत्सर्वं दयादृष्ट्या करामलकवत् स्फुटम् ।
प्रतिपादय सर्वज्ञ श्रीगुरो करुणानिधे ॥ ४७३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वज्ञ) सबको जानने-वाले (करुणानिधे) दयासागर (श्रीगुरो) हे गुरुदेव (दयादृष्ट्या) दयाकी दृष्टि करके (एतत्) इस (सर्वम्) सबको (करामलकवत्) हाथमें धरे हुए आमलेकी समान (स्फुटम्) स्पष्ट (प्रतिपादय) वर्णन करिये ॥ ४७३ ॥

भावार्थ-हे इस सब तत्त्वको जानने वाले दयासागर गुरुदेव ! कृपादृष्टि करके इस विषयका सब तत्त्व हाथमें धरे हुए आमलेके फलकी समान विशदरूपसे दरसा दीजिये ॥ ४७३ ॥

श्रीगुरुरुवाच

न सावयव एकस्य नात्मा विषय इष्यते ।
अस्यास्मत्प्रत्ययार्थत्वादपरोक्षाच्च सर्वशः ॥ ४७४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(श्रीगुरुः) श्रीगुरु (उवाच) बोले (आत्मा) आत्मा (सावयवः) अवयवों वाला (न) नहीं (एकस्य) अद्वितीय (अस्य) इसका (अस्मत्प्रत्ययविषयत्वात्) अहं ज्ञानका विषय होनेके कारणसे (सर्वशः) सब प्रकार (अपरोक्षात्, च) अपरोक्ष होनेसे भी (विषयः) विषय (न) नहीं (इष्यते) इष्ट होता है ॥ ४७४ ॥

भावार्थ-शिष्यके प्रश्नको सुन कर श्रीगुरुदेवने कहा, कि-आत्मा सावयव नहीं है और किसीका विषय भी नहीं होता है, क्योंकि-यह आत्मा अद्वितीय है, केवल अहंज्ञानका विषय है और सबको ही सब प्रकारसे प्रत्यक्ष होता है ४७४

प्रसिद्धिरात्मनोऽस्त्येव न कस्यापि च दृश्यते ।
प्रत्ययो नाहमस्मीति न ह्यस्ति प्रत्यगात्मनि ॥ ४७५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आत्मनः) आत्माकी (प्रसिद्धिः) प्रथा (अस्ति, एव) है ही (च) और (अहम्) मैं (न) नहीं (अस्मि) हूँ (इति) ऐसा (प्रत्ययः) ज्ञान (कस्य, अपि) किसीको भी (न) नहीं (दृश्यते) दीखता है (हि) क्योंकि (प्रत्यगात्मनि) व्यापक आत्मामें [तादृक् ज्ञानम्] तैसा ज्ञान (न) नहीं (अस्ति) है ॥ ४७५ ॥

भावार्थ-सबको ही आत्माके विषयका ज्ञान है, 'मैं नहीं हूँ' ऐसी प्रतीति किसीको भी नहीं होती, क्यों कि-सर्वत्र व्यापक आत्मामें ऐसा ज्ञान हो ही नहीं सकता

न कस्यापि स्वसद्भावे प्रमाणमभिकांक्ष्यते ।
प्रमाणानाञ्च प्रामाण्यं यन्मूलं किन्तु बोधयेत् ४७६

अन्वय और पदार्थ-(कस्य, अपि) किसीके भी (स्वसद्भावे) आत्माके सद्भावमें (प्रमाणम्) प्रमाण (न) नहीं (अभिकांक्ष्यते) चाहा जाता है (प्रमाणानाम्) प्रमाणोंकी (प्रामाण्यम्) प्रमाणता (यन्मूलम्) जिसके आधार पर है (किन्तु) परन्तु (बोधयेत्) जतादेगा ॥ ४७६ ॥

भावार्थ-अपने अस्तित्वके विषयमें किसीको भी किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं होती है, जिसका अवलम्ब लेकर प्रमाणोंकी प्रमाणता सिद्ध होती है, उसके ज्ञानके लिये प्रमाणकी क्या आवश्यकता है ? परन्तु प्रमाण केवल वस्तुको जता देता है ॥ ४७६ ॥

मायाकार्यैस्तिरोभूतो नैव ह्यात्माऽनुभूयते ।
मेघवृन्दैर्यथा भानुस्तथाऽयमहमादिभिः ॥ ४७७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (मेघवृन्दैः) घनघटाओंके द्वारा (भानुः) सूर्य,(तथा) तैसे (मायाकार्यैः) मायाके कार्य (अहमादिभिः) अहङ्कार आदि के द्वारा (तिरोभूतः) ढका हुआ (अयम्) यह (आत्मा) स्वस्वरूप (नैव) नहीं (अनुभूयते) अनुभवमें आता है ॥ ४७७ ॥

भावार्थ-जैसे घनघटाओंसे ढका हुआ सूर्य लोगोंके नेत्रोंका विषय नहीं होता, ऐसे ही मायाके कार्य अहङ्कार आदिसे ढका हुआ आत्मा लोगोंके अनुभवमें नहीं आता ॥ ४७७ ॥

पुरःस्थ एव विषये वस्तुन्यध्यस्यतामिति ।
नियमो न कृतः सद्भिर्भ्रान्तिरेवात्र कारणम् ॥ ४७८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सद्भिः) सज्जनों करके (पुरःस्थे) सामने स्थित (विषये) विषयरूप (वस्तुनि) वस्तुमें (अध्यस्यताम्) अध्यास होय (इति) इस प्रकार (नियमः) नियम (न) नहीं (कृतः) किया है (अत्र) इस विषय में (भ्रान्तिः, एव) भ्रान्ति ही (कारणम्) कारण है ॥ ४७८ ॥

भावार्थ-केवल सामने धरी हुई सीपी रज्जु आदि वस्तुमें ही अध्यास होगा, ऐसा कोई नियम शास्त्रके ज्ञाता विद्वानोंने नहीं किया है, इस अध्यासका कारण तो भ्रान्ति ही है ॥ ४७८ ॥

दृगाद्यविषये व्योम्नि नीलतादि यथाऽबुधः ।
अध्यस्यति तथैवाऽस्मिन्नात्मन्यपि मतिभ्रमात् ४७९

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (अबुधः) अज्ञानी (दृगाद्यविषये) चक्षु आदिके अगोचर (व्योम्नि) आकाशमें (नीलतादि) नीलेपन आदिको (अध्यस्यति) आरोपित करता है (तथा, एव) तैसे ही (मतिभ्रमात्) बुद्धि के दोषके कारणसे (अस्मिन्) इस (आत्मनि, अपि) आत्मामें भी (अध्यस्यति) आरोप करता है ॥ ४७९ ॥

भावार्थ-जैसे अज्ञानी पुरुष, नेत्र आदिसे प्रत्यक्ष न होने वाले आकाशमें नीलेपन आदिका आरोपण करते हैं, ऐसे ही भ्रान्तिरूप बुद्धिके दोषके कारणसे आत्मामें भी आरोप किया करते हैं ॥ ४७९ ॥

अनात्मन्यात्मताऽध्यासे न सादृश्यमपेक्षते ।
पीतोऽयं शङ्ख इत्यादौ सादृश्यं किमपेक्षितम् ॥ ४८० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अनात्मनि) अनात्म वस्तुमें (आत्मताध्यासे) आत्मभावके अध्यासमें (सादृश्यम्) तुल्यताको (न) नहीं (अपेक्षते) अपेक्षा करता है (अयम्) यह (शङ्खः) शङ्ख (पीतः) पीला है (इत्यादौ) इत्यादि में (किम्) क्या (सादृश्यम्) तुल्यत्व (अपेक्षितम्) अपेक्षित होता है ४८०

भावार्थ-देह इन्द्रिय आदि अनात्म वस्तुओंमें आत्माका अध्यास होनेमें किसी प्रकारके सादृश्यकी अपेक्षा नहीं कीजाती । शङ्ख पीला है, इत्यादि स्थलोंमें क्या सादृश्यकी अपेक्षा करते हो ? ॥ ४८० ॥

निरुपाधिभ्रमेष्वस्मिन्नैवापेक्षा प्रदृश्यते ।
सोपाधिष्वेव तद् दृष्टं रज्जुसर्पभ्रमादिषु ॥ ४८१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अस्मिन्) इस संसारमें (निरुपाधिभ्रमेषु) उपाधि हीन भ्रान्तिस्थलोंमें [सादृश्यस्य] सादृश्यकी (अपेक्षा) अपेक्षा (नैव) निश्चय नहीं (प्रदृश्यते) देखनेमें आती है (सोपाधिषु) उपाधियुक्त (रज्जुसर्पभ्रमादिषु एव) रस्सी सर्प आदिके भ्रमस्थलोंमें ही (तत्) वह (दृष्टम्) देखा है ॥४८१॥

भावार्थ-उपाधिशून्य भ्रान्तिके स्थलमें सादृश्यकी अपेक्षा कभी देखनेमें नहीं आती, रस्सीमें सर्पकी भ्रान्ति होना इत्यादि उपाधियुक्त भ्रान्तिके स्थलोंमें ही सादृश्यकी अपेक्षा देखनेमें आती है । तात्पर्य यह है, कि-भ्रान्ति दो प्रकारकी होती है—सोपाधिक और निरुपाधिक । सीपीमें चाँदीकी और रस्सीमें सर्पकी इत्यादि सोपाधिक भ्रान्ति है और ब्रह्ममें जगत्के अध्यासको निरुपाधिक भ्रान्ति कहते हैं । सीपीमें जो चाँदीकी भ्रान्ति होती है वह चमकके कारणसे होती है, यह चमक ही उपाधि है परन्तु सर्वत्र सदृशता ही अध्यास का कारण होती है यह नहीं कहा जासकता, क्योंकि-जब शखमें पीलेपनकी भ्रान्ति होती है, उस समय कोई सदृशता नहीं होती, इसलिये भ्रान्ति ही अध्यासका कारण है, इस भ्रान्तिके कारणसे ही ब्रह्ममें जगत्का अध्यास होता है ॥ ४८१ ॥

तथापि किञ्चिद्वक्ष्यामि सादृश्यं शृणु तत्परम् ।
अत्यन्तनिर्मलः सूक्ष्म आत्माऽयमतिभास्वरः ॥४८२॥

अन्वय और पदार्थ-(तथापि) तो भी (किञ्चित्) कुछ (सादृश्यम्) सदृशताको (वक्ष्यामि) कहूँगा (तत्परः) सावधान [सन्] होता हुआ (शृणु) सुन (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (अत्यन्तनिर्मलः) अतिस्वच्छ (सूक्ष्मः) सूक्ष्म (अतिभास्वरः) अत्यन्त दीप्तिमान् (अस्ति) है ॥ ४८२ ॥

भावार्थ—यद्यपि निरुपाधि ब्रह्ममें सादृश्यकी अपेक्षा नहीं है, तथापि कुछ सादृश्य दिखानेका उद्योग करते हैं, हे शिष्य ! सावधान होकर सुन—आत्मा अत्यन्त स्वच्छ, सूक्ष्म और अत्यन्त दीप्तिमान् है ॥ ४८२॥

बुद्धिस्तथैव सत्त्वात्मा साभासा भास्वराऽमला ।
सान्निध्यादात्मवद् भाति सूर्यवत्स्फटिको यथा ॥ ४८३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तथैव) तैसे ही (बुद्धिः) अन्तःकरण (सत्त्वात्मा) सात्त्विक स्वभाव (साभासा) चैतन्यके प्रतिबिम्बसे युक्त (भास्वरा) तेजयुक्त (अमला) स्वच्छ [अस्ति] है (यथा) जैसे (स्फटिकः) काँच (सूर्यवत्) सूर्यकी समान (भाति) प्रकाशित होता है (सान्निध्यात्) आत्माके अत्यन्त समीपता के कारण से [तद्वत्] तैसे ही [इयम्] यह [बुद्धिः, अपि] अन्तःकरण भी (आत्मवत्) आत्माकी समान (भाति) भासता है ॥ ४८३ ॥

भावार्थ—ऐसे ही बुद्धि भी सत्त्वगुणी स्वभाव वाली, चैतन्यके प्रतिबिम्ब से युक्त, दीप्त और मलिनतारहित है, जैसे काँच सूर्यकी समान चमकता है, ऐसे ही आत्माकी समीपताके कारणसे बुद्धि भी आत्माकी समान भासती है ॥ ४८३ ॥

आत्माभासा ततो बुद्धिर्बुद्ध्याभासं ततो मनः ।
अक्षाणि मनआभासान्यक्षाभासमिदं वपुः ॥
अत एवात्मताबुद्धिर्देहाक्षादावनात्मनि ॥ ४८४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ततः) तिससे (बुद्धिः) बुद्धि (आत्मभासा) आत्माकी समान भासने वाली है (ततः) तिससे (मनः) मन (बुद्ध्याभासम्) बुद्धिकी समान भासता है (अक्षाणि) इन्द्रियें (मनआभासानि) मनकी समान भासती है (इदम्) यह (वपुः) शरीर (अक्षाभासम्) इन्द्रियोंकी समान भासता है (अतएव) इस कारण ही (अनात्मनि) जो आत्मा नहीं है ऐसे (देहाक्षादौ) देह इन्द्रिय आदिमें (आत्मताबुद्धिः) आत्मत्वका ज्ञान (भवति) होता है ॥ ४८४ ॥

भावार्थ—अति समीपताके कारणसे और स्वच्छताके कारणसे बुद्धिरूप दर्पण में आत्माका प्रतिबिम्ब पड़ने पर बुद्धि आत्माकी समान भासने लगती है, आत्म-प्रतिबिम्ब युक्त बुद्धिकी समीपतासे मन बुद्धिसा भासने लगता है, मनकी अति समीपताके कारणसे इन्द्रिय मनसी भासने लगती हैं और उन इन्द्रियोंकी अति

सभी पताके कारण शरीर इन्द्रियोंकी समान भासता है, इस कारणसे ही देह इन्द्रिय आदि अनात्मवस्तुओंमें आत्मतादात्म्यका अध्यास होता है ॥ ४८४ ॥

मूढानां प्रतिबिम्बादौ बालानामिव दृश्यते ।
सादृश्यं विद्यते बुद्धावात्मनोऽध्यासकारणम् ॥ ४८५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(बालानाम्) बालकोंको (प्रतिबिम्बादौ इव) प्रतिबिम्ब आदिमें जैसे (मूढानाम्) मूढोंको [अध्यासः] अध्यास (दृश्यते) दीखता है (बुद्धौ) बुद्धिमें (अध्यासकारणम्) अध्यासका कारण (आत्मनः) आत्मा की (सादृश्यम्) सदृशता (विद्यते) है ॥ ४८५ ॥

भावार्थ-जैसे बालकोंको प्रतिबिम्बको बिम्बकी समान ही समझते हुए देखते हैं, तैसे ही अज्ञानियोंको भी अनात्मा देह आदिमें आत्मबुद्धि देखते हुए, देखते हैं, बुद्धिमें भी अध्यासका कारण आत्माका सादृश्य विद्यमान है ॥४८५॥

अनात्मन्यहमित्येव योऽयमध्यास ईरितः ।
स्यादुत्तरोत्तराध्यासे पूर्वपूर्वस्तु कारणम् ॥ ४८६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अनात्मनि) अनात्मामें (अहम्) मैं (इति, एव) इसप्रकारका ही (यः) जो (अयम्) यह (अध्यासः) अध्यास (ईरितः) कहा है (उत्तरोत्तराध्यासे) अगले २ अध्यासमें (पूर्वपूर्वः, तु) पहला २ ही (कारणम्) कारण (स्यात्) होगा ॥ ४८६ ॥

भावार्थ-अनात्मा देह इन्द्रिय आदिमें जो—मैं स्थूल हूँ, मैं कारण हूँ, मैं बहरा हूँ, इसप्रकारका अध्यास कहा है, उस अगले २ अध्यासमें पहला २ अध्यास ही कारण है, इसप्रकार अध्यास अनादि है ॥ ४८६ ॥

सुप्तिमूर्च्छोत्थितेष्वेव दृष्टः संसारलक्षणः ।
अनादिरेषाऽविद्याऽतः संस्कारोऽपि च तादृशः ॥ ४८७॥

अन्वय और पदार्थ-(सुप्तमूर्च्छोत्थितेषु, एव) निद्रा और मूर्च्छासे उठेहुए प्राणियोंमें ही (संसारलक्षणः) संसारलक्षण (दृष्टः) देखागया है (अतः) इससे (एषा) यह (अविद्या) अविद्या (अनादिः) आदिशून्य है (च) और (संस्कारः, अपि) वासना भी (तादृशः) तैसी ही है ॥ ४८७ ॥

भावार्थ-निद्रा और मूर्च्छासे उठेहुए प्राणियोंमें ही संसाररूप अध्यास देखने में आता है, इसलिये ही यह अविद्या (अज्ञान) अनादि है और उसका संस्कार (वासना) भी अनादि है ॥ ४८७ ॥

अध्यासबाधागमनस्य कारणं शृणु प्रवक्ष्यामि समाहितात्मा ।
यस्मादिदं प्राप्तमनर्थजातं जन्माप्ययव्याधिजरादियुक्तम् ॥ ४८८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अध्यासबाधागमनस्य) अध्यासजनित दुःखके आनेके (कारणम्) हेतुको (प्रवक्ष्यामि) कहूंगा (समाहितात्मा) एकाग्रचित्त [सन्] होता हुआ (शृणु) सुन (यस्मात्) जिससे (इदम्) यह (जन्माप्ययव्याधि-जरादियुक्तम्) जन्म मरण रोग बुढ़ापे आदिका से युक्त (अनर्थजातम्) अनर्थों का समूह (प्राप्तम्) पाया है ॥ ४८८ ॥

भावार्थ-मैं तुझे अध्याससे उत्पन्न होने वाले बाधा अर्थात् संसार दुःखका कारण बताता हूं, तू उसको सावधान होकर सुन—जिस अध्यासके कारणसे मनुष्य जन्म मरण रोग और बुढ़ापे आदिके दुःख रूप भाँति २ के अनर्थोंमें फँसा करते हैं ॥ ४८८ ॥

आत्मोपाधेरविद्याया अस्ति शक्तिद्वयं महत् ।
विक्षेप आवृतिश्चेति याभ्यां संसार आत्मनः ॥ ४८९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आत्मोपाधेः) आत्माकी उपाधिरूप (अविद्यायाः) अविद्याकी (महत्) बड़ी भारी (शक्तिद्वयम्) दो शक्तियें (अस्ति) हैं (विक्षेपः) विक्षेप (च) और (आवृतिः) आवरण (इति) ये (याभ्याम्) जिनसे (आत्मनः) आत्माको (संसारः) संसार (भवति) होता है ॥४८९॥

भावार्थ-आत्माकी उपाधिजो अविद्या है, उसकी विक्षेप और आवरण ये दो बड़ीभारी शक्तियें हैं,इन दोनों शक्तियोंसे ही आत्माका संसारमें आगमन होता है।

आवृतिस्तमसः शक्तिस्तद्ध्यावरणकारणम् ।
मूलाविद्येति सा प्रोक्ता यया संमोहितं जगत् ॥ ४९० ॥

अन्वय और पदार्थ-(आवृतिः) आवरण (तमसः) तमोगुणका (शक्तिः) धर्म है (तत्, हि) वह ही (आवरणकारणम्) आवरणका कारणहै (सा) वह (मूलाविद्या) मूल अविद्या (इति) इस नामसे (प्रोक्ता) कही है (यया) जिसके द्वारा (जगत्) संसार (संमोहितम्) महामोहको प्राप्त है ॥ ४९० ॥

भावार्थ-अविद्याकी सत्त्व रज और तम ये तीन शक्तियें (धर्म) हैं, इनमें तमो-गुणका धर्म आवरण है, वही आत्मस्वरूपके आवरणका कारण होरहा है, उसको मूलाऽविद्या नामसे कहागया है और उसके कारण ही यह संसार महामोहमें पड़ा

है। अविद्या दो प्रकारकी है—मूलाविद्या और तूलाविद्या। समष्टि अविद्याका नाम मूलाविद्या है और प्रत्येक जीवगत व्यष्टि अविद्याका नाम तूलाविद्या है। जिसको तत्त्वज्ञान होजाता है उसकी वह तूलाविद्या नष्ट होजाती, है, इसलिये एक की मुक्ति होनेमें सबकी मुक्तिका प्रसंग नहीं आता॥ ४६०॥

विवेकवानप्यतियौक्तिकोऽपि, श्रुतात्मतत्त्वोऽपि च पण्डितोऽपि।
शक्त्या यया संवृतबोधदृष्टिरात्मानमात्मस्थमिदं न वेद॥ ४६१॥

अन्वय और पदार्थ-(विवेकवान्, अपि) विवेकवाला भी (अतियौक्तिकः, अपि) बड़ी २ युक्तियें जाननेवाला भी (श्रुतात्मतत्त्वः, अपि) आत्माके तत्त्व को सुनलेनेवाला भी (च) और (पण्डितः, अपि) ज्ञानवान् भी (यया) जिस (शक्त्या) शक्ति करके (संवृतबोधदृष्टिः) जिसकी ज्ञानदृष्टि ढकगयी है वह (आत्मस्थम्) आत्मामें स्थित (आत्मानम्) आत्माको (न) नहीं (वेद) जानता है॥ ४६१॥

भावार्थ आत्मा अनात्माके भेदको जाननेवाला विवेकी हो, चाहे युक्तियोंको जाननेवाला बड़ाभारी तार्किक हो, अथवा जिसने उत्तम रूपसे आत्माके स्वरूपको सुना हो ऐसा मनुष्य हो, और चाहे ज्ञानवान् पण्डित ही क्यों न हो, आवरण-शक्तिसे ज्ञानचक्षुके ढकजाने पर इनमेंसे कोईभी अपनेमें विद्यमान (स्वप्रतिष्ठ) आत्माको नहीं जान सकता॥ ४६१॥

विक्षेपनाम्नी रजसस्तु शक्तिः
प्रवृत्तिहेतुः पुरुषस्य नित्यम्।
स्थूलादिलिङ्गान्तमशेषमेतद्
यया सदात्मन्यसदेव सूयते॥ ४६२॥

अन्वय और पदार्थ-(रजसः) रजोगुणकी (विक्षेपनाम्नी) विक्षेप नाम वाली (शक्तिः, तु) शक्ति ही (पुरुषस्य) पुरुषकी (नित्यम्) निरन्तर (प्रवृत्तिहेतुः) प्रवृत्तिका कारण [भवति] होती है (यया) जिस शक्तिके द्वारा (आत्मनि) आत्मामें (एतत्) यह (स्थूलादिलिङ्गान्तम्) स्थूलसे लेकर बुद्धि-पर्यन्त (अशेषम्) सब (असत्, एव) मिथ्या वस्तु ही (सदा) सर्वदा (सूयते) उत्पादित होता है॥ ४६२॥

भावार्थ रजोगुणकी विक्षेप नामवाली शक्ति निरन्तर पुरुषकी प्रवृत्ति

कारण होती है, जो विक्षेप शक्ति सर्वदा आत्मामें घट पट देह आदि स्थूल वस्तुसे लेकर बुद्धि पर्यन्त सकल मिथ्या वस्तुओंको आरोपित करती है ॥ ४६२ ॥

निद्रा यथा पूरुषमप्रमत्तं,
समावृणोतीयमपि प्रतीचम्
तथाऽऽवृणोत्यावृतिशक्तिरन्त-
र्विक्षेपशक्तिं परिजृम्भयन्ती ॥ ४६३ ॥

अन्वय और पदार्थ (यथा) जैसे (निद्रा) सुषुप्ति (अप्रमत्तम्) सावधान (पूरुषम्) मनुष्यको (समावृणोति) ढकलेती है (तथा) तैसे ही (विक्षेपशक्तिम्) विक्षेपशक्तिको (परिजृम्भयन्ती) बढ़ाती हुई (इयम्) यह (आवृतिशक्तिः, अपि) आवरण शक्ति भी (प्रतीचम्) जीवात्माको (आवृणोति) ढकलेती है ॥ ४६३ ॥

भावार्थ-जैसे निद्रा अत्यन्त सावधान मनुष्यको भी घेर कर मानो उसके ऊपर परदा डाल देती है, ऐसे ही आवरणशक्ति अन्तःकरणमें विक्षेप शक्तिको बढ़ाती हुई आत्माके ऊपर परदासा डाल देती है ॥ ४६३ ॥

शक्त्या महत्याऽऽवरणाभिधानया
समावृते सत्यमलस्वरूपे ।
पुमाननात्मन्यहमेष एवे-
त्यात्मत्वबुद्धिं विदधाति मोहात् ॥ ४६४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आवरणाभिधानया) आवरण नामवाली (महत्या) बड़ीभारी (शक्त्या) शक्ति करके (अमलस्वरूपे) स्वच्छस्वभाव [आत्मनि] आत्मा के (समावृते, सति) आवरण युक्त हो जाने पर (पुमान्) पुरुष (मोहात्) अज्ञानसे (अनात्मनि) अनात्मामें (एषः) यह (अहम्, एव) मैं ही [अस्मि] हूँ (इति) इस प्रकार (आत्मत्वबुद्धिम्) आत्मपनकी बुद्धिको (विदधाति) करता है ॥ ४६४ ॥

भावार्थ स्वच्छस्वभाव आत्माके ऊपर बड़ी भारी आवरण शक्तिके द्वारा परदासा पड़ जाने पर, पुरुष अज्ञानवश अनात्मा देह आदिमें 'यह मैं ही हूँ' ऐसा मान कर आत्मत्वका ज्ञान स्थापन कर बैठता है ॥ ४६४ ॥

यथा प्रसुप्तिप्रतिभासदेहे
स्वात्मत्वधीरेष तथा ह्यनात्मनः।
जन्माप्ययक्षुद्भयतृट्श्रमादी-
न्यारोपयत्यात्मनि तस्य धर्मान्॥ ४९५॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (प्रसुप्तिप्रतिभासदेहे) सुषुप्ति कालमें भासने वाले देहमें (स्वात्मत्वधीः) यही मेरा आत्मा है ऐसी बुद्धि [भवति] होती है (तथा,हि) तैसेही (एषः) यह पुरुष (तस्य) उस (अनात्मनः) अनात्माके (जन्माप्ययक्षुद्भयतृट्श्रमादीन्) जन्म मरण भूख भय प्यास थकावट आदि (धर्मान्) धर्मों को (आत्मनि) आत्मामें (आरोपयति) आरोपित करता है॥ ४९५॥

भावार्थ-जैसे सुषुप्तिके समय भासने वाले देहमें यही मैं हूँ, ऐसा आत्मत्व ज्ञान होता है, तैसे ही मनुष्य आत्मामें जन्म मरण भूख भय प्यास और परिश्रम आदि अनात्माके धर्मोंका आरोपण कर लेता है॥ ४९५॥

विक्षेपशक्त्या परिचोद्यमानः
करोति कर्माण्युभयात्मकानि।
भुञ्जान एतत्फलमप्युपात्तं,
परिभ्रमत्येव भवाम्बुराशौ॥ ४९६॥

अन्वय और पदार्थ-[आत्मा] आत्मा (विक्षेपशक्त्या) विक्षेप शक्ति के द्वारा (परिचोद्यमानः) प्रेरणा किया हुआ (उभयात्मकानि) दोनों प्रकार के (कर्माणि) कर्मोंको (करोति) करता है (उपात्तम्) ग्रहण किये हुये (एतत्फलम्, अपि) इस कर्मके फलको भी (भुञ्जानः) भोगता हुआ (भवाम्बुराशौ) संसारसमुद्रमें (परिभ्रमति, एव) घूमता ही रहता है॥ ४९६॥

भावार्थ-आत्मा विक्षेप शक्तिसे प्रेरित होकर भले और बुरे दोनों प्रकारके कर्मोंको करता है, और उन कर्मसे मिले हुए फलको भोगता हुआ इस संसार-सागरमें घूमा करता है॥ ४९६॥

अध्यासदोषात्समुपागतोऽयम्
संसारबन्धः प्रबलःप्रतीचः।

यद्योगतः क्लिश्यति गर्भवास-
जन्माप्ययक्लेशभयैरजस्रम् ॥ ४६७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अध्यासयोगात्) अध्यासके कारणसे (प्रत्यक्प्रतीचः) बलवान् आत्मा को (अयम्) यह (संसारबन्धः) भवबन्धन (समुपागतः) प्राप्त हुआ है (यद्योगतः) जिसके सम्बन्धसे (गर्भवासजन्माप्ययक्लेशभयैः) गर्भवास जन्म मरण दुःख और भयके द्वारा (अजस्रम्) निरन्तर (क्लिश्यति) क्लेश पाता है ॥ ४६७ ॥

भावार्थ-अध्यासके दोषसे बलवान् (नित्य ज्ञानस्वरूप) आत्माको यह संसारबन्धन हुआ है, जिस अध्यासका सम्बन्ध होनेके कारण आत्मा गर्भमें निवास, जन्म, मरण दुःख और भय पाकर निरन्तर क्लेशका अनुभव करता है ॥

अध्यासो नाम खल्वेष वस्तुनो योऽन्यथाग्रहः ।
स्वाभाविकभ्रान्तिमूलं संसृतेरादिकारणम् ॥ ४६८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वस्तुनः) वस्तुका (यः) जो (अन्यथाग्रहः) अन्यरूपसे ग्रहण है (एषः) यह (खलु) निश्चय (अध्यासः, नाम) अध्यास नामका (स्वाभाविकभ्रान्तिमूलम्) स्वाभाविक भ्रमरूप हेतुवाला (संसृतेः) संसार का (आदिकारणम्) मूल कारण [अस्ति] है ॥ ४६८ ॥

भावार्थ-रज्जु आदि वस्तुके सर्पादि रूपसे ज्ञानको अध्यास कहते हैं, अनादि भ्रम ही इसका कारण है और यही संसारका मूल कारण है ॥ ४६८ ॥

सर्वानर्थस्य तद्बीजं योऽन्यथाग्रह आत्मनः ।
ततः संसारसम्पातः सततक्लेशलक्षणः ॥ ४६९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आत्मनः) आत्माका (यः) जो अन्यथाग्रहः) अन्य प्रकारका ज्ञान है (तत्) वह (सर्वानर्थस्य) सकल अनर्थोंका (बीजम्) कारण है (ततः) उससे (सततक्लेशलक्षणः) सर्वदा क्लेशरूप (संसारसम्पातः) संसारकी प्राप्ति [भवति] होती है ॥ ४६९ ॥

भावार्थ-आत्माका अन्य प्रकारका (सुखी दुःखी रूपसे) जानना ही सकल अनर्थोंका कारण है, इस आत्माके अन्यथा ज्ञानसे सदा क्लेशरूप संसारकी प्राप्ति होती है ॥ ४६९ ॥

अध्यासादेव संसारो नष्टेऽध्यासे न दृश्यते ।

तदेतदुभयं स्पष्टं पश्य त्वं बद्धमुक्तयोः ॥ ५०० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अध्यासात्, एव) अध्याससे ही (संसारः) संसार [भवति] होता है (अध्यासे) अध्यासके (नष्टे) नष्ट होजाने पर (न) नहीं (दृश्यते) दीखता है (त्वम्) तू (बद्धमुक्तयोः) बद्ध और मुक्तके (तत्) उस (एतत्) इस (उभयम्) दोनोंको (स्पष्टम्) स्पष्ट (पश्य) देख॥५००॥

भावार्थ-अध्यासके कारणसे संसार है, अध्यासके नष्ट होजाने पर संसार देखनेमें नहीं आता, तू बद्ध और मुक्त दोनोंके संसार और असंसारको स्पष्ट देख ले ॥ ५०० ॥

बद्धं प्रवृत्तितो विद्धि मुक्तं विद्धि निवृत्तितः ।
प्रवृत्तिरेव संसारो निवृत्तिर्मुक्तिरिष्यते ॥ ५०१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रवृत्तितः) प्रवृत्तिमार्गसे (बद्धम्) बन्धनमें पड़ा हुआ (विद्धि) जान (निवृत्तितः) निवृत्तिमार्गसे (मुक्तम्) बन्धनसे छूटा हुआ (विद्धि) जान (प्रवृत्तिः, एव) प्रवृत्ति ही (संसारः) संसार है (निवृत्तिः) निवृत्ति (मुक्तिः) मुक्ति (इष्यते) मानी जाती है ॥ ५०१ ॥

भावार्थ-हे शिष्य ! तू समझ ले, कि—प्रवृत्तिसे जीव बन्धनमें पड़ता है और निवृत्तिसे मुक्ति पाता है, विद्वानोंका मत है, कि-कर्म करनेमें प्रवृत्ति (इच्छा) ही संसार (आवागमन) है और कर्म आदिसे निवृत्ति ही मुक्ति है ॥ ५०१ ॥

आत्मनः सोऽयमध्यासो मिथ्याज्ञानपुरःसरः ।
असत्कल्पोऽपि संसारं तनुते रज्जुसर्पवत् ॥ ५०२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(मिथ्याज्ञानपुरः सरः) मिथ्याज्ञानपूर्वक (सः) वह (अयम्) यह (अध्यासः) अध्यास (रज्जुसर्पवत्) रस्सीके सर्पकी समान (असत्कल्पः, अपि) मिथ्या होकर भी (आत्मनः) आत्माके (संसारम्) संसारको (तनुते) फैलाता है ॥ ५०२ ॥

भावार्थ-अध्यासका आदिकारण मिथ्याज्ञान है, वह अध्यास रज्जुमें भासमान सर्पकी समान मिथ्या होने पर भी आत्माके आवागमनरूप संसारका विस्तार कर देता है ॥ ५०२ ॥

उपाधियोगसाम्येऽपि जीववत्परमात्मनः ।
उपाधिभेदान्नो बन्धस्तत्कार्यमपि किञ्चन ॥ ५०३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(जीववत्) जीवकी समान (परमात्मनः) परमात्मा का (उपाधियोगसाम्ये, अपि) उपाधिका संवन्ध समान होने पर भी (उपाधिभेदात्) उपाधिमें भेद होनेसे (वन्धः) वन्धन (तत्कार्यम्, अपि) उसका कार्य भी (किञ्चन) कुछ (नो) नहीं है ॥ ५०३ ॥

भावार्थ-जीवकी समान ही परमात्माको भी उपाधिका संवन्ध है, परन्तु तो भी परमात्माकी उपाधि शुद्ध सत्त्वप्रधान माया है और जीवकी उपाधि मलिन सत्त्वप्रधान अविद्या है, इस उपाधिके भेदसे परमात्माको वन्धन या वन्धनका कार्य दुःखका अनुभव आदि कुछ नहीं होता है ॥ ५०३ ॥

अस्योपाधिः शुद्धसत्त्वप्रधाना
माया यत्र त्वस्य नास्त्यल्पभावः ।
सत्त्वस्यैवोत्कृष्टता तेन वन्धो
नो विक्षेपस्तत्कृतो लेशमात्रः ॥ ५०४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(शुद्धसत्त्वप्रधाना) जिसमें शुद्ध सत्त्वगुण प्रधान है ऐसी (माया) माया (उपाधिः) उपाधि है (तु) और (यत्र) जिसमें (अल्पभावः) परिच्छिन्नभाव (न) नहीं (अस्ति) है (सत्त्वस्य) सत्त्वगुणकी (एव) ही (उत्कृष्टता) उत्तमता [अस्ति] है (तेन) तिससे (विक्षेपः) विक्षेप (तत्कृतः) उसका किया हुआ (वन्धः) वन्धन (लेशमात्रः) लेशमात्र (नो) नहीं [अस्ति] है ॥ ५०४ ॥

भावार्थ-जीव और ईश्वरको उपाधिका सवन्ध समान होनेपर भी जो जीवको वन्धन होता है और ईश्वरको वन्धन नहीं होता, इसका कारण यह है, कि-केवल सत्त्वगुण प्रधान माया ही जिसकी उपाधि है और जिसमें परिच्छिन्न भाव नहीं है तथा जिसमें सत्त्वगुणकी उत्कृष्टता देखनेमें आती है, उस ईश्वरमें विक्षेप या उस विक्षेपके कारणसे होनेवाला वन्धन आदि कुछ भी नहीं होता है ५०४

सर्वज्ञोऽप्रतिबद्धबोधविभवस्तेनैव देवः स्वयं,
मायां स्वामवलम्ब्य निश्चलतया स्वच्छन्दवृत्तिः प्रभुः ।
सृष्टिस्थित्यदनप्रवेशयमनव्यापारमात्रेच्छया,
कुर्वन् क्रीडति तद्रजस्तम उभे संस्तभ्य शक्त्या स्वया ५०५

अन्वय और पदार्थ-(सर्वज्ञः) सब विषयोंके ज्ञान वाला (अप्रतिरुद्धबोधविभवः) जिसके ज्ञानरूप ऐश्वर्यमें कुछ रुकावट नहीं है ऐसा (देवः) ईश्वर (तेन, एव) तिस कारणसे ही (स्वयम्) अपने आप (निश्चलतया) व्यापार शून्य होनेके कारण (स्वाम्) अपनी (मायाम्) मायाको (अवलम्ब्य) अवलम्बन करके (स्वच्छन्दवृत्तिः) अपने अभिप्रायके अनुसार स्थितिको पाने वाला (प्रभुः) सर्वसमर्थ [सन्] होता हुआ (सृष्टिस्थित्यदनप्रवेशयमनव्यापारमात्रेच्छया) सृष्टि स्थिति प्रलय प्रवेश और नियममें रखनेके व्यापारमात्रकी इच्छासे (स्वया) अपनी (शक्त्या) शक्तिके द्वारा (तत्) उस (रजः) रजोगुण (तमः) तमोगुण (उभे) दोनोंको (संस्तभ्य) रोक कर (कुर्वन्) सृष्टि आदि करता हुआ (क्रीडति) क्रीड़ा करता है ॥ ५०५ ॥

भावार्थ-जो सर्वज्ञ है और जिसके ज्ञानरूप ऐश्वर्यमें किसी प्रकारकी रुकावट नहीं है वही परमेश्वर स्वयं व्यापाररहित होकर भी अपनी मायाका अवलम्बन करता हुआ स्वच्छन्द भावसे विराजमान है और सब कुछ कर सकने वाला प्रभु है तथा सृष्टि, पालन, प्रलय, प्रवेश और नियममें रखनेके व्यापारमात्रकी इच्छासे अपनी शक्तिके द्वारा रज और तम इन दोनों गुणोंको दबा कर सृष्टि स्थिति आदि सब कार्योंको करता हुआ लीला करता रहता है ॥ ५०५ ॥

तस्मादावृत्तिविक्षेपौ किञ्चित्कर्तुं न शक्नुतः ।
स्वयमेव स्वतंत्रोऽसौ तत्प्रवृत्तिनिरोधयोः ॥ ५०६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (आवृत्तिविक्षेपौ) आवरण और विक्षेप (किञ्चित्) कुछ (कर्तुम्) करनेको (न) नहीं (शक्नुतः) समर्थ होते हैं (असौ) वह (स्वयम्, एव) आप ही (तत्प्रवृत्तिनिरोधयोः) उनकी प्रवृत्ति और निवृत्तिमें (स्वतंत्रः) स्वतंत्र है ॥ ५०६ ॥

भावार्थ-इसलिये आवरणशक्ति और विक्षेपशक्ति ईश्वरमें अपना कुछ भी प्रभाव नहीं कर सकतीं, किन्तु ईश्वर ही इन दोनों शक्तियोंकी प्रवृत्ति और निवृत्तिके विषयमें स्वतंत्र है ॥ ५०६ ॥

तमेव सा धीक्रमेति श्रुतिर्वक्ति महेशितुः ।
निग्रहानुग्रहे शक्तिरावृत्तिक्षेपयोर्यतः ॥ ५०७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सा) वह (श्रुतिः) वेद (तम्, एव) उसको ही

(धीकर्मा, इति) बुद्धिकर्मा इस नामसे (वक्ति) कहता है (यतः) क्योंकि (महेशितुः) महेश्वरको (आवृतिविक्षेपयोः) आवरण और विक्षेपकी (निग्रहानुग्रहे) प्रवृत्ति और निवृत्ति के विषयमें (शक्तिः) सामर्थ्य [अस्ति] है ५०७

भावार्थ-क्योंकि-महेश्वरमें आवरणशक्ति और विक्षेप शक्तिकी प्रवृत्ति और निवृत्ति करनेकी शक्ति है अर्थात् वह चाहे तो इन शक्तियोंको काम करने देय और न चाहे तो न करने देय, इसलिये ही श्रुतिने उसका 'धी कर्म' नाम कहा है ५०७

रजसस्तमसश्चैव प्राबल्यं सत्त्वहानतः ।
जीवोपाधौ तथा जीवे तत्कार्यं बलवत्तरम् ॥ ५०८ ॥

अन्वय और पदार्थ (जीवोपाधौ) जीवकी उपाधिमें (तथा) तैसे ही (जीवे) जीवमें (सत्त्वहानतः) सत्त्व गुणका अभाव होनेसे (रजसः) रजकी (च) और (तमसः, एव) तमकी भी (प्राबल्यम्) प्रबलता [भवति] होती है (तत्कार्यम्) उनका काम (बलवत्तरम्) अधिक बलवान् (दृश्यते) दीखता है ॥५०८॥

भावार्थ-जीवकी उपाधिरूप मलिन सत्त्वप्रधान अविद्यामें और देह आदिके अभिमानी जीवमें सत्त्वगुणकी कमी होनेसे रजोगुण और तमोगुणकी प्रबलता होती है तथा इन दोनों गुणोंका कार्य भी अधिकतासे देखने में आता है ॥५०८॥

तेन बन्धोऽस्य जीवस्य संसारोऽपि च तत्कृतः ।
संप्राप्तः सर्वदा यत्र दुःखं भूयः स ईक्षते ॥ ५०९ ॥

अन्वय और पदार्थ (तेन) तिससे (अस्य) इस (जीवस्य) जीवको (बन्धः) बन्धन (च) और (तत्कृतः) उसका किया हुआ (संसारः ,अपि) संसार भी (सर्वदा) सब समय (संप्राप्तः) प्राप्त होता है (यत्र) जिसमें (सः) वह (भूयः) वार २ (दुःखम्) दुःखको (ईक्षते) देखता है ॥ ५०९ ॥

भावार्थ-जीवमें इस रजोगुण तमोगुणकी प्रबलतासे ही जीवको बन्धन और बन्धनसे सदा आवागमन होता है, और इस अवस्थामें जीव वारम्वार दुःखका अनुभव करता है ॥ ५०९ ॥

एतस्य संसृतेर्हेतुरध्यासोऽर्थविपर्ययः ।
अध्यासमूलमज्ञानमाहुरावृतिलक्षणम् ॥ ५१० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अर्थविपर्ययः) पदार्थका अन्यथाभाव रूप (अध्यासः) अध्यास (एतस्य) इसके (संसृतेः) संसारका (हेतुः) कारण है [पण्डिताः]

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते।
कर्मणः कार्यमेवैषा जन्तुमृत्युपरम्परा ॥ ५१२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(जन्तुः) प्राणी (कर्मणा) कर्मके द्वारा (जायते) जन्म लेता है (कर्मणा, एव) कर्मके द्वारा ही (प्रलीयते) नष्ट होता है (एषा) यह (जन्ममृत्युपरम्परा) उत्पत्ति नाशका प्रवाह (कर्मणः, एव) कर्मका ही (कार्यम्) फल है ॥ ५१२ ॥

भावार्थ-जीव कर्मके अनुसार ही जन्मता है और कर्मके अनुसार ही मरता है, यह जन्म मरणका प्रवाह कर्म का ही फल है ॥ ५१२ ॥

नैतस्मात्कर्मणः कार्यमन्यदस्ति विलक्षणम्।
अज्ञानकार्यं तत्कर्म यतोऽज्ञानेन वर्धते ॥ ५१३ ॥

अन्वय और पदार्थ- (कर्मणः) कर्मके (एतस्मात्) इससे (विलक्षणम्) विलक्षण (अन्यत्) और (कार्यम्) कार्य (न) नहीं अस्ति है (यतः) क्योंकि (तत्) वह (कर्म) कर्म (अज्ञानकार्यम्) अज्ञानका कार्य है (अज्ञानेन) अज्ञान के द्वारा (वर्धते) बढ़ता है ॥ ५१३ ॥

भावार्थ जन्म मरणके प्रवाहके सिवाय कर्मका और कोई विलक्षण (मुक्ति) फल नहीं है क्यों कि कर्म अज्ञानका कार्य है और अज्ञानसे ही बढ़ता है ॥ ५१३ ॥

यद्येन वर्धते तेन नाशस्तस्य न सिध्यति।
येन यस्य सहावस्था विरोधाय न कल्पते ॥ ५१४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो वस्तु (येन) जिसके द्वारा (वर्धते) बढ़ती है (तेन) उस के द्वारा (तस्य) उसका (नाशः) नाश (न) नहीं (सिध्यति) सम्पादित होता है (येन) जिसके साथ (यस्य) जिसकी (सहावस्था) साथ स्थिति [भवति] होती है [तत्] वह [तस्य] उसके (विरोधाय) विरोधके लिये (न) नहीं (कल्पते) सिद्ध होता है ॥ ५१४ ॥

भावार्थ जो वस्तु जिससे बढ़ती है, उसके द्वारा उसका नाश नहीं होता, जो वस्तु जिसके साथ एकत्र रहती वह उसकी निवर्त्तक नहीं होती। तात्पर्य यह है, कि कर्मकी उत्पत्ति अज्ञानसे होती है। नित्य-शुद्ध बुद्धस्वरूप आत्मामें ब्राह्मणत्व आदि धर्मका आरोप करके पुरुष ब्राह्मण आदिके लिये विधान किये हुए कर्मोंको करने लगता है, इसलिये अज्ञान ही कर्म का कारण है। अज्ञानसे कर्म बढ़ता है

जब कर्म अज्ञानजन्य है और अज्ञानसे बढ़ता है तो फिर वह कर्म अज्ञानका निवर्त्तक कैसे हो सकता है ? संसारमें देखते हैं, कि—जो जिससे जन्मता है, या बढ़ता है, वह उसका नाशक नहीं होता। एक बात और भी है, कि—जो जिसके साथ एकत्र रहता है, वह उसका नाश्य या नाशक नहीं हो सकता। प्रकाश अन्धकारका नाशक है, इसलिये वे दोनों एकत्र नहीं रह सकते, परन्तु कर्म और अज्ञान एकत्र रहते हैं इसलिये इन दोनोंमें नाश्य नाशक भाव नहीं है, किन्तु एकमात्र ज्ञान ही अज्ञान का नाशक है ॥ ५१४ ॥

नाशकत्वं तदुभयोः को नु कल्पयितुं क्षमः ।
सर्वं कर्माविरोध्येव सदा ज्ञानस्य सर्वदा ॥ ५१५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(कः, नु) कौन (तदुभयोः) उन दोनोंके (नाशकत्वम्) नाशकपनेको (कल्पयितुम्) कल्पना करने को (क्षमः) समर्थ है (सर्वम्) सब (कर्म) कर्म (सदा) सब समय (अज्ञानस्य) अज्ञानका (सर्वदा) नियत रूपसे (अविरोध एव) विरोध न करने वाला ही है ॥ ५१५ ॥

भावार्थ—कर्म और अज्ञान इन दोनोंमें कर्म अज्ञानका नाश कर देगा, इसकी कल्पना भी कौन कर सकता है ? किसी समय भी अज्ञानके साथ कर्मका विरोध देखने में नहीं आता ॥ ५१५ ॥

ततोऽज्ञानस्य विच्छित्तिः कर्मणा नैव सिध्यति ।
यस्य प्रध्वंसजनको यत्संयोगोऽस्ति तत्क्षणे ॥ ५१६ ॥
तयोरेव विरोधित्वं युक्तं भिन्नस्वभावयोः ।
तमःप्रकाशयोर्यद्वत् परस्परविरोधिता ॥ ५१७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ततः) तिससे (कर्मणा) कर्मके द्वारा (अज्ञानस्य) अज्ञानका (विच्छित्तिः) नाश (नैव) कदापि नहीं (सिध्यति) सिद्ध होता है (तत्क्षणे) उस क्षणमें (यत्संयोगः) जिसका संयोग (यस्य) जिसका (प्रध्वंसजनकः) नाशका कारण (अस्ति) है (भिन्नस्वभावयोः) पृथक् २ स्वभाव वाले (तयोः, एव) उन दोनोंका ही (विरोधित्वम्) विरोधिपना (युक्तम्) उचित है (यद्वत्) जैसे (तमःप्रकाशयोः) अन्धकार और प्रकाशका (परस्परविरोधिता) आपसमें विरोधीपन [अस्ति] है ॥ ५१६ ॥ ५१७ ॥

भावार्थ-इसलिये कर्मसे अज्ञानका नाश नहीं हो सकता, उस क्षणमें जिस ज्ञान का संयोग कर्मके नाशका हेतु है, उन ज्ञान कर्म दोनोंका ही विरोध होना उचित है, जैसे कि—अन्धकार और प्रकाशमें परस्पर विरोध देखते हैं। तात्पर्य यह है कि—हम ऐसी एक सामान्य व्याप्ति (नियम) देखते हैं, कि—समान काल में जिसका संयोग जिसके नाशका कारण होता है मनमें परस्पर विरोध देखने में आता है, जैसे कि—प्रकाश और अन्धकार का। प्रकाश और अन्धकार परस्पर विरुद्ध पदार्थ हैं, जिस समय प्रकाशका संयोग होता है, उस समय अन्धकारका विध्वंस होजाता है, इसलिये प्रकाश अन्धकारके नाशका कारण है, इसलिये प्रकाश और अन्धकारमें परस्पर विरुद्धता विद्यमान है, ऐसे ही जब ज्ञानका सम्बन्ध होता है, तब अज्ञानका नाश होता है, अतः ज्ञान अज्ञानके नाशका कारण है ॥५१७॥

अज्ञानज्ञानयोस्तद्वदुभयोरेव दृश्यते ।
न ज्ञानेन विना नाशस्तस्य केनापि सिध्यति ॥ ५१८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तद्वत्) तैसेही (उभयोः) दोनों (अज्ञानज्ञानयोः) अज्ञान ज्ञानका (एव) ही [विरोधः] विरोध (दृश्यते) दीखता है (ज्ञानेन,-विना) ज्ञानके सिवाय (तस्य) उसका (नाशः) नाश (केन, अपि) किसी से भी (न) नहीं (सिध्यति) सिद्ध होता है ॥ ५१८ ॥

भावार्थ-अन्धकार और प्रकाशकी समान अज्ञान और ज्ञान इन दोनोंका भी परस्पर विरोध देखने में आता है, ज्ञानके सिवाय किसीसे भी अज्ञानका नाश नहीं हो सकता ॥ ५१८ ॥

तस्मादज्ञानविच्छित्त्यै ज्ञानं सम्पादयेत्सुधीः ।
आत्मानात्मविवेकेन ज्ञानं सिध्यति नान्यथा ॥ ५१९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (सुधीः) बुद्धिमान् (अज्ञानविच्छित्त्यै) अविद्याके नाशके लिये (ज्ञानम्) ज्ञान को (सम्पादयेत्) प्राप्त करे (आत्मानात्मविवेकेन) आत्मा और अनात्माके विवेकके द्वारा (ज्ञानम्) ज्ञान (सिध्यति) सिद्ध होता है (अन्यथा) और प्रकारसे (न) नहीं ॥ ५१९ ॥

भावार्थ-इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य अज्ञानके नाशके लिये ज्ञान को प्राप्त करे, वह तत्त्वज्ञान आत्मा और अनात्मपदार्थके भेद ज्ञानसे उत्पन्न होता है, और किसी प्रकारसे नहीं ॥ ५१९ ॥

युक्त्यात्मानात्मनोस्तस्मात्करणीयं विवेचनम् ।
अनात्मन्यात्मताबुद्धिग्रन्थिर्येन विदीर्यते ॥ ५२० ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (युक्त्या) युक्तिके द्वारा (आत्मानात्मनोः) आत्मा और अनात्माका (विवेचनम्) विवेक (करणीयम्) करना चाहिये (येन) जिससे (अनात्मनि) अनात्मामें (आत्मबुद्धिग्रन्थि) आत्मज्ञान रूप गाँठ (विदीर्यते) खुल जाती है ॥ ५२० ॥

भावार्थ-इसलिये उस तत्त्वज्ञानको पानेके निमित्त युक्तिके द्वारा आत्मा और अनात्मा (देह आदि) का विवेक करना चाहिये, जिस विवेकके द्वारा अनात्मा देह आदिमें आत्मबुद्धि रूप गाँठ पड़ रही है, वह गाँठ खुल जाती है ॥ ५२० ॥

आत्मानात्मविवेकार्थं विवादोऽयं निरूप्यते ।
येनात्मानात्मनोस्तत्त्वं विविक्तं प्रस्फुटायते ॥ ५२१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आत्मानात्मविवेकार्थम्) आत्मा और अनात्माके विवेकके लिये (अयम्) यह विवादः) विवाद (निरूप्यते) निरूपण किया जाता है (येन) जिसके द्वारा (आत्मानात्मनोः) आत्मा और अनात्माका (तत्त्वम्) यथार्थ स्वरूप (विविक्तम्) पृथक् २ (प्रस्फुटायते) स्पष्ट होता है ॥

भावार्थ-आत्मा और अनात्मा देहादिका विवेक होनेके लिये वादिप्रतिवादियोंके विवादको दिखाते हैं, कि—जिस विवादसे आत्मा और अनात्माका यथार्थ स्वरूप पृथक् २ प्रकट होजाता है ॥ ५२१ ॥

मूढा अश्रुतवेदान्ताः स्वयं पण्डितमानिनः ।
ईशप्रसादरहिताः सद्गुरोश्च बहिर्मुखाः ॥ ५२२ ॥
विवदन्ति प्रकारं तं शृणु वक्ष्यामि सादरम् ।

अन्वय और पदार्थ-(अश्रुतवेदान्ताः) जिन्होंने वेदान्तको नहीं सुना है वे (स्वयम्) आपही (पण्डितमानिनः) पण्डित माननेवाले (ईशप्रसादरहिताः) ईश्वरके अनुग्रहसे शून्य (च) और (सद्गुरोः) श्रेष्ठ गुरुसे (बहिर्मुखाः) पलटे हुए (मूढाः) मूढ़ पुरुष (विवदन्ति) विवाद करते हैं (तम्) उस (प्रकारम्) रीतिको (वक्ष्यामि) कहूँगा (सादरम्) आदरकेसाथ (शृणु) सुन ॥५२२॥

भावार्थ-जिन्होंने वेदान्त शास्त्र को नहीं सुना, जो आपही अपनेको बड़ा

बुद्धिमान् समझते हैं, जिनके ऊपर ईश्वरका अनुग्रह नहीं है, और जिन्होंने श्रेष्ठ गुरुकी सेवा नहीं की है, ऐसे मूढ़ पुरुष आत्माके विषयमें जैसा वाद विवाद करते हैं, वह रीति मैं सुनाता हूँ आदरके साथ सुन ॥ ५२२ ॥

पुत्रात्मवादः ।

अत्यन्तपामरः कश्चित्पुत्र आत्मेति मन्यते ॥ ५२३ ॥
आत्मनीव स्वपुत्रेऽपि प्रबलप्रीतिदर्शनात् ।
पुत्रे तु पुष्टे पुष्टोऽहं नष्टे नष्टोऽहमित्यतः ॥ ५२४ ॥
अनुभूतिबलाच्चापि युक्तितोऽपि श्रुतेरपि ।
आत्मा वै पुत्रनामासत्येवं च वदति श्रुतिः ॥ ५२५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(कश्चित्) कोई (अत्यन्तपामरः) अति मूढ़ (आत्मनि, इव) अपने आत्मामें जैसे (स्वपुत्रे, अपि) अपने पुत्रमें भी (प्रबलप्रीतिदर्शनात्) प्रबल प्रीति दीखनेसे (तु) और (पुत्रे, पुष्टे) पुत्रके पुष्ट होने पर (अहम्) मैं (पुष्टः) पुष्ट होगया (नष्टे) मरने (अहम्) मैं (नष्टः) मर गया (इत्यतः) ऐसा माननेके कारण (च) और (अनुभूतिबलात्, अपि) अनुभवके बलसे भी (युक्तितः, अपि) युक्तिसे भी (च) और (वै) निश्चय (पुत्रनामा) पुत्र नाम वाला (आत्मा) आत्मा (अस्ति) है (एवम्) ऐसा (श्रुतिः) श्रुति (वदति) कहती है (इति) इस कारण (श्रुतेः, अपि) वेदके प्रमाणसे भी (पुत्रः) पुत्र (आत्मा) आत्मा है (इति) ऐसा (मन्यते) मानता है ॥ ५२३—५२५ ॥

भावार्थ कोई अत्यन्त मूढ़ पुरुष अपने आत्माकी समान पुत्रमें भी प्रबल प्रीति देखकर ऐसा मानता है कि—पुत्रके पुष्ट होने पर मैं पुष्ट हो गया, पुत्रके नष्ट होने पर मैं नष्ट होगया ऐसा भाव हुआ करता है, इस कारणसे, इस अनुभव से, युक्तिसे श्रुति कहती है कि—पुत्र नाम वाला आत्मा है, इस वेदके प्रमाणसे भी पुत्रको ही आत्मा मानता है ॥ ५२३ ॥ ५२४ ॥ ५२५ ॥

दीपाद्दीपो यथा तद्वत्पितुः पुत्रः प्रजायते ।
पितुर्गुणानां तनये बीजांकुरवदीक्षणात् ॥ ५२६ ॥
अतोऽयं पुत्र आत्मेति मन्यते भ्रान्तिगत्तमः ।

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (दीपात्) दीपक से (दीपः) दीपक [प्रज्वाल्यते] प्रकाशित किया जाता है (तद्वत्) तैसे ही (पितुः) पितासे (पुत्रः) पुत्र (प्रजायते) उत्पन्न होता है (तनये) पुत्रमें (पितुः) पिताके

(गुणानाम्) गुणोंके (बीजांकुरवत्) बीजके गुण अंकुरमें दीखने की समान (ईक्षणात्) देखने से (अतः) इससे (अयम्) यह (पुत्रः) पुत्र (आत्मा) आत्मा [अस्ति] है (इति) ऐसा (भ्रान्तिमत्तमः) अत्यन्त भ्रान्तिमें पड़ा हुआ मनुष्य (मन्यते) मानता है ॥ ५२६ ॥

भावार्थ जैसे एक दीपकसे दूसरा दीपक प्रज्वलित कर लिया जाता है, ऐसे ही पितासे पुत्र भी उत्पन्न हो जाता है,जैसे अंकुरमें बीजके गुण देखनेमें आते हैं, ऐसे ही पुत्रमें पिताके गुण देखे जाते हैं इस कारणसे अत्यन्त भ्रान्ति में पड़ा हुआ मूढ़ मनुष्य मानता है कि—पुत्र ही आत्मा है ॥ ५२६ ॥

देहात्मवादः

तन्मतं दूषयत्यन्यः पुत्र आत्मा कथन्त्विति ॥ ५२७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अन्यः, तु) दूसरा तो (पुत्रः) पुत्र (कथम्) कैसे (आत्मा) आत्मा [भवितुम्, अर्हति] हो सकता है (इति) इस प्रकार (तन्मतम्) उसके मतको (दूषयति) दूषित करता है ॥ ५२७ ॥

भावार्थ-परन्तु दूसरा वादी कहता है, कि—पुत्र आत्मा कैसे हो सकताहै ? और वह पुत्रात्मावादी के मतमें दोष दिखलाता है ॥ ५२७ ॥

प्रीतिमात्रात्कथं पुत्र आत्मा भवितुमर्हति ।
अन्यत्रापीक्ष्यते प्रीतिः क्षेत्रपात्रधनादिषु ॥ ५२८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रीतिमात्रात्) प्रेममात्रसे (पुत्रः) पुत्र (कथम्) कैसे (आत्मा) आत्मा (भवितुं, अर्हति) हो सकता है (अन्यत्र) पुत्रसे अन्य (क्षेत्रपात्रधनादिषु, अपि) भूमि पात्र धन आदिमें भी (प्रीतिः) प्रेम (ईक्ष्यते) देखनेमें आता है ॥ ५२८ ॥

भावार्थ—पुत्रमें बड़ाभारी प्रेम होता है, केवल इस कारणसे ही पुत्र आत्मा कैसे हो सकता है ? क्यों कि—पुत्र के सिवाय भूमि, पात्र, धन आदिमें भी प्राणीका प्रेम देखते हैं ॥ ५२८ ॥

पुत्राद्विशिष्टा देहेऽस्मिन् प्राणिनां प्रीतिरिष्यते ।
प्रदीप्ते भवने पुत्रं त्यक्त्वा जन्तुः पलायते ॥ ५२९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अस्मिन्) इस (देहे) देहमें (प्राणिनाम्) प्राणियोंकी (पुत्रात्) पुत्रसे (विशिष्टा) अधिक (प्रीतिः) प्रीति (इष्यते) मानी जाती है

(भवने, प्रदीप्ते) घरके जलने पर (जन्तुः) प्राणी (पुत्रम्) पुत्रको (त्यक्त्वा) छोड़कर (पलायते) भागजाता है ॥ ५२६ ॥

भावार्थ-इस देहमें पुत्रसे अधिक प्रीति देखनेमें आती है, देखो-यदि घरमें आग लगजाती है तो प्राणी इस पुत्रको छोड़कर अपने देहको लेकर भागता है ५२६

तं विक्रीणाति देहार्थं प्रतिकूलं निहन्ति च ।

तस्मादात्मा तु तनयो न भवेच्च कदाचन ॥ ५३० ॥

अन्वय और पदार्थ-[जनः] प्राणी (देहार्थम्) देहके लिये (तम्) इस पुत्रको (विक्रीणाति) बेच डालता है (च) और (प्रतिकूलम्) अपना अनिष्ट करने वालेको (निहन्ति) मारडालता है (तस्मात्, च) इसकारणसे भी (तनयः,तु) पुत्र तो (कदाचन) कभी भी (आत्मा) आत्मा (न) नहीं (भवेत्) होगा ५३०

भावार्थ-प्राणी अपने देहकी रक्षाके लिये पुत्रको बेच डालता है तथा अपना अनिष्टकारी हुआ तो उसको मार भी डालता है, इसलिये भी पुत्र कभी आत्मा नहीं होसकता ॥ ५३० ॥

गुणरूपादिसादृश्यं दीपवन्न सुते पितुः ।

अव्यङ्गाज्जायते व्यङ्गः सुगुणादपि दुर्गुणः ॥ ५३१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सुते) पुत्रमें (दीपवत्) दीपककी समान (पितुः) पिताके (गुणरूपादिसादृश्यम्) गुण रूप आदिकी तुलना (न) नहीं [भवति] होती है (अव्यङ्गात्) पूर्ण अङ्गोंवालेसे (व्यङ्गः) हीनाङ्ग (अपि) और (सुगुणात्) श्रेष्ठ गुणोंवालेसे (दुर्गुणः) दुर्गुणी (जायते) उत्पन्न होता है ५३१

भावार्थ-एक दीपकसे प्रकट हुआ दूसरा दीपक जैसे पहले दीपककी समान ही गुण वाला होता है, तैसे पुत्रमें पिताकी समान रूप गुण आदि देखनेमें नहीं आते, देखो पूर्ण अंगोंवाले पितासे काँणा बहरा आदि हीनांग और श्रेष्ठ गुणों वाले पितासे दुर्गुणी पुत्र उत्पन्न होजाता है ॥ ५३१ ॥

आभासमात्रास्ताः सर्वा युक्तयोऽयुक्तयोऽपि च ।

पुत्रस्य पितृवद् गेहे सर्वकार्येषु वस्तुषु ॥ ५३२ ॥

स्वामित्वद्योतनायास्मिन्नात्मत्वमुपचर्यते ।

श्रुत्या तु मुख्यया वृत्त्या पुत्र आत्मेति नोच्यते ॥५३३॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वाः) सब (ताः) वे (युक्तयः, अपि) युक्तियें

भी (उक्तयः, अपि) वाक्य भी (आभासमात्राः) आभासमात्र हैं (पितृवत्) पिताकी समान (गेहे) घरमें (सर्वकार्येषु) सकल कार्यों में (वस्तुषु) वस्तुओं में (पुत्रस्य) पुत्रके (स्वामित्वद्योतनाय) प्रभुत्वको सूचित करनेके लिये (अस्मिन्) इस पुत्रमें (आत्मत्वम्) आत्मभाव (उपचर्यते) आरोपण करलिया है (तु) और (श्रुत्या) श्रुतिके द्वारा (पुत्रः) पुत्र (आत्मा) आत्मा है (इति) यह बात (मुख्यया) मुख्य (वृत्त्या) वृत्तिके द्वारा (न) नहीं (उच्यते) कही जाती है ॥ ५३२ ॥ ५३३ ॥

भावार्थ-पुत्रात्मवादीने जो युक्तियें दिखाई हैं और प्रमाणवाक्य कहे हैं, वे सब आभासमात्र हैं वास्तविक युक्ति नहीं है, युक्तिसी भासती है, अतः युक्ति नहीं है, किन्तु युक्त्याभास हैं, और प्रमाणवाक्य वाक्याभास हैं, जैसे घरमें सकल कार्य और सकल पदार्थों पर पिताकी प्रभुता है ऐसेही पुत्र की भी प्रभुता है, यह बात सूचित करनेके लिये पुत्रमें आत्म शक्तिका उपचार (गौण प्रयोग) किया है । श्रुतिनेभी मुख्य वृत्ति (अभिदाशक्ति) से पुत्र को आत्मा नहीं कहा है ॥ ५३२ ॥ ५३३ ॥

औपचारिकमात्मत्वं पुत्रे तस्मान्न मुख्यतः ।
अहंपदप्रत्ययार्थो देह एव न चेतरः ॥ ५३४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (पुत्रे) पुत्रमें (औपचारिकम्) गौण (आत्मत्वम्) आत्मपना [अस्ति] है (मुख्यतः) मुख्यभावसे (न) नहीं (देहः,एव) देहही (अहंपदप्रत्ययार्थः) अहं शब्दके ज्ञानका विषय है (इतरः) दूसरा (न, च) नहीं है ॥ ५३४ ॥

भावार्थ-इसलिये पुत्रमें जो आत्मत्वका प्रयोग है वह गौण है, मुख्य नहीं है, केवल एक देह ही अहं शब्दके ज्ञानका विषय (आत्मा) है, पुत्र आदि और कोई नहीं है ॥ ५३४ ॥

प्रत्यक्षः सर्वजन्तूनां देहोऽहमिति निश्चयः ।
एष पुरुषोऽन्नरस-मय इत्यपि च श्रुतिः ॥ ५३५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (देहः) शरीर [अस्मि] हूँ (इति) यह (निश्चयः) निश्चय (सर्वजन्तूनाम्) सकल प्राणियों को (प्रत्यक्षः) प्रत्यक्ष है (च) और (एषः) यह (पुरुषः) पुरुष (अन्नरसमयः) अन्नके रसका विकार है (इति) ऐसी (श्रुतिः, अपि) श्रुति भी (अस्ति) है ॥ ५३५ ॥

बुद्धिमान् समझते हैं, जिनके ऊपर ईश्वरका अनुग्रह नहीं है, और जिन्होंने श्रेष्ठ गुरुकी सेवा नहीं की है, ऐसे मूढ़ पुरुष आत्माके विषयमें जैसा वाद विवाद करते हैं, वह रीति मैं सुनाता हूँ आदरके साथ सुन ॥ ५२२ ॥

पुत्रात्मवादः ।

अत्यन्तपामरः कश्चित्पुत्र आत्मेति मन्यते ॥ ५२३ ॥
आत्मनीव स्वपुत्रेऽपि प्रबलप्रीतिदर्शनात् ।
पुत्रे तु पुष्टे पुष्टोऽहं नष्टे नष्टोऽहमित्यतः ॥ ५२४ ॥
अनुभूतिबलाच्चापि युक्तितोऽपि श्रुतेरपि ।
आत्मा वै पुत्रनामासतीयेवं च वदति श्रुतिः ॥ ५२५ ॥

अन्वयऔर पदार्थ-(कश्चित्) कोई (अत्यन्तपामरः) अति मूढ़ (आत्मनि, इव) अपने आत्मामें जैसे (स्वपुत्रे, अपि) अपने पुत्रमें भी (प्रबलप्रीतिदर्शनात्) प्रबल प्रीति दीखनेसे (तु) और (पुत्रे, पुष्टे) पुत्रके पुष्ट होने पर (अहम्) मैं (पुष्टः) पुष्ट होगया (नष्टे) मरने (अहम्) मैं (नष्टः) मर गया (इत्यतः) ऐसा माननेके कारण (च) और (अनुभूतिबलात्, अपि) अनुभवके बलसे भी (युक्तितः, अपि) युक्तिसे भी (च) और (वै) निश्चय (पुत्रनामा) पुत्र नाम वाला (आत्मा) आत्मा (अस्ति) है (एवम्) ऐसा (श्रुतिः) श्रुति (वदति) कहती है (इति) इस कारण (श्रुतेः, अपि) वेदके प्रमाणसे भी (पुत्रः) पुत्र (आत्मा) आत्मा है (इति) ऐसा (मन्यते) मानता है ॥ ५२३—५२५ ॥

भावार्थ कोई अत्यन्त मूढ़ पुरुष अपने आत्माकी समान पुत्रमें भी प्रबल प्रीति देखकर ऐसा मानता है कि—पुत्रके पुष्ट होने पर मैं पुष्ट हो गया, पुत्रके नष्ट होने पर मैं नष्ट होगया ऐसा भाव हुआ करता है, इस कारणसे, इस अनुभव से, युक्तिसे श्रुति कहती है कि—पुत्र नाम वाला आत्मा है, इस वेदके प्रमाणसे भी पुत्रको ही आत्मा मानता है ॥ ५२३ ॥ ५२४ ॥ ५२५ ॥

दीपाद्दीपो यथा तद्वत्पितुः पुत्रः प्रजायते ।
पितुर्गुणानां तनये बीजांकुरवदीक्षणात् ॥ ५२६ ॥
अतोऽयं पुत्र आत्मेति मन्यते भ्रान्तिमत्तमः ।

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (दीपात्) दीपक से (दीपः) दीपक [प्रज्वाल्यते] प्रकाशित किया जाता है (तद्वत्) तैसे ही (पितुः) पितासे (पुत्रः) पुत्र (प्रजायते) उत्पन्न होता है (तनये) पुत्रमें (पितुः) पिताके

(गुणानाम्) गुणोंके (बीजांकुरवत्) बीजके गुण अंकुरमें दीखने को समान (ईक्षणात्) देखने से (अतः) इससे (अयम्) यह (पुत्रः) पुत्र (आत्मा) आत्मा [अस्ति] है (इति) ऐसा (भ्रान्तिमत्तमः) अत्यन्त भ्रान्तिमें पड़ा हुआ मनुष्य (मन्यते) मानता है ॥ ५२६ ॥

भावार्थ जैसे एक दीपकसे दूसरा दीपक प्रज्वलित कर लिया जाता है, ऐसे ही पितासे पुत्र भी उत्पन्न हो जाता है,जैसे अंकुरमें बीजके गुण देखनेमें आते हैं, ऐसे ही पुत्रमें पिताके गुण देखे जाते हैं इस कारणसे अत्यन्त भ्रान्ति में पड़ा हुआ मूढ़ मनुष्य मानता है कि—पुत्र ही आत्मा है ॥ ५२६ ॥

देहात्मवादः

तन्मतं दूषयत्यन्यः पुत्र आत्मा कथन्त्विति ॥ ५२७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अन्यः, तु) दूसरा तो (पुत्रः) पुत्र (कथम्) कैसे (आत्मा) आत्मा [भवितुम्, अर्हति] हो सकता है (इति) इस प्रकार (तन्मतम्) उसके मतको (दूषयति) दूषित करता है ॥ ५२७ ॥

भावार्थ-परन्तु दूसरा वादी कहता है, कि-पुत्र आत्मा कैसे हो सकताहै ? और वह पुत्रात्मोवादी के मतमें दोष दिखलाता है ॥ ५२७ ॥

प्रीतिमात्रात्कथं पुत्र आत्मा भवितुमर्हति ।
अन्यत्रापीक्ष्यते प्रीतिः क्षेत्रपात्रधनादिषु ॥ ५२८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रीतिमात्रात्) प्रेममात्रसे (पुत्रः) पुत्र (कथम्) कैसे (आत्मा) आत्मा (भवितुं, अर्हति) हो सकता है (अन्यत्र) पुत्रसे अन्य (क्षेत्रपात्रधनादिषु, अपि) भूमि पात्र धन आदिमें भी (प्रीतिः) प्रेम (ईक्ष्यते) देखनेमें आता है ॥ ५२८ ॥

भावार्थ-पुत्रमें बड़ाभारी प्रेम होता है, केवल इस कारणसे ही पुत्र आत्मा कैसे हो सकता है ? क्यों कि-पुत्र के सिवाय भूमि, पात्र, धन आदिमें भी प्राणीका प्रेम देखते हैं ॥ ५२८ ॥

पुत्राद्विशिष्टा देहेऽस्मिन् प्राणिनां प्रीतिरिष्यते ।
प्रदीप्ते भवने पुत्रं त्यक्त्वा जन्तुः पलायते ॥ ५२९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अस्मिन्) इस (देहे) देहमें (प्राणिनाम्) प्राणियोंकी (पुत्रात्) पुत्रसे (विशिष्टा) अधिक (प्रीतिः) प्रीति (इष्यते) मानी जाती है

(भवने, प्रदीप्ते) घरके जलने पर (जन्तुः) प्राणी (पुत्रम्) पुत्रको (त्यक्त्वा) छोड़कर (पलायते) भागजाता है ॥ ५२९ ॥

भावार्थ-इस देहमें पुत्रसे अधिक प्रीति देखनेमें आती है, देखो-यदि घरमें आग लगजाती है तो प्राणी इस पुत्रको छोड़कर अपने देहको लेकर भागता है ५२९

तं विक्रीणाति देहार्थं प्रतिकूलं निहन्ति च ।

तस्मादात्मा तु तनयो न भवेच्च कदाचन ॥ ५३० ॥

अन्वय और पदार्थ-[जनः] प्राणी (देहार्थम्) देहके लिये (तम्) उस पुत्रको (विक्रीणाति) बेच डालता है (च) और (प्रतिकूलम्) अपना अनिष्ट करने वालेको (निहन्ति) मारडालता है (तस्मात्, च) इसकारणसे भी (तनयः,तु) पुत्र तो (कदाचन) कभी भी (आत्मा) आत्मा (न) नहीं (भवेत्) होगा ५३०

भावार्थ-प्राणी अपने देहकी रक्षाके लिये पुत्रको बेच डालता है तथा अपना अनिष्टकारी हुआ तो उसको मार भी डालता है, इसलिये भी पुत्र कभी आत्मा नहीं होसकता ॥ ५३० ॥

गुणरूपादिसादृश्यं दीपवन्न सुते पितुः ।

अव्यङ्गाज्जायते व्यङ्गः सुगुणादपि दुर्गुणः ॥ ५३१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सुते) पुत्रमें (दीपवत्) दीपककी समान (पितुः) पिताके (गुणरूपादिसादृश्यम्) गुण रूप आदिकी तुलना (न) नहीं [भवति] होती है (अव्यङ्गात्) पूर्ण अङ्गोंवालेसे (व्यङ्गः) हीनाङ्ग (अपि) और (सुगुणात्) श्रेष्ठ गुणोंवालेसे (दुर्गुणः) दुर्गुणी (जायते) उत्पन्न होता है ५३१

भावार्थ-एक दीपकसे प्रकट हुआ दूसरा दीपक जैसे पहले दीपककी समान ही गुण वाला होता है, तैसे पुत्रमें पिताकी समान रूप गुण आदि देखनेमें नहीं आते, देखो पूर्ण अंगोंवाले पितासे काँणा बहरा आदि हीनांग और श्रेष्ठ गुणों वाले पितासे दुर्गुणी पुत्र उत्पन्न होजाता है ॥ ५३१ ॥

आभासमात्रास्ताः सर्वा युक्तयोऽयुक्तयोऽपि च ।

पुत्रस्य पितृवद्गेहे सर्वकार्येषु वस्तुषु ॥ ५३२ ॥

स्वामित्वद्योतनायास्मिन्नात्मत्वमुपचर्यते ।

श्रुत्या तु मुख्यया वृत्त्या पुत्र आत्मेति नोच्यते ॥५३३॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वाः) सब (ताः) वे (युक्तयः, अपि) युक्तियें

भी (उक्तयः, अपि) वाक्य भी (आभासमात्राः) आभासमात्र हैं (पितृवत्) पिताकी समान (गेहे) घरमें (सर्वकार्येषु) सकल कार्योंमें (वस्तुषु) वस्तुओंमें (पुत्रस्य) पुत्रके (स्वामित्वद्योतनाय) प्रभुत्वको सूचित करनेके लिये (अस्मिन्) इस पुत्रमें (आत्मत्वम्) आत्मभाव (उपचर्यते) आरोपण करलिया है (तु) और (श्रुत्या) श्रुतिके द्वारा (पुत्रः) पुत्र (आत्मा) आत्मा है (इति) यह बात (मुख्यया) मुख्य (वृत्त्या) वृत्तिके द्वारा (न) नहीं (उच्यते) कही जाती है ॥ ५३२ ॥ ५३३ ॥

भावार्थ-पुत्रात्मवादीने जो युक्तियें दिखाई हैं और प्रमाणवाक्य कहे हैं, वे सब आभासमात्र हैं वास्तविक युक्ति नहीं हैं, युक्तिसी भासती है, अतः युक्ति नहीं है, किन्तु युक्त्याभास हैं, और प्रमाणवाक्य वाक्याभास हैं, जैसे घरमें सकल कार्य और सकल पदार्थों पर पिताकी प्रभुता है ऐसेही पुत्र की भी प्रभुता है, यह बात सूचित करनेके लिये पुत्रमें आत्म शक्तिका उपचार (गौण प्रयोग) किया है। श्रुतिनेभी मुख्य वृत्ति (अभिधाशक्ति) से पुत्र को आत्मा नहीं कहा है ॥ ५३२ ॥ ५३३ ॥

औपचारिकमात्मत्वं पुत्रे तस्मान्न मुख्यतः ।
अहंपदप्रत्ययार्थो देह एव न चेतरः ॥ ५३४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (पुत्रे) पुत्रमें (औपचारिकम्) गौण (आत्मत्वम्) आत्मपना [अस्ति] है (मुख्यतः) मुख्यभावसे (न) नहीं (देहः,एव) देहही (अहंपदप्रत्ययार्थः) अहं शब्दके ज्ञानका विषय है (इतरः) दूसरा (न, च) नहीं है ॥ ५३४ ॥

भावार्थ-इसलिये पुत्रमें जो आत्मत्वका प्रयोग है वह गौण है, मुख्य नहीं है, केवल एक देह ही अहं शब्दके ज्ञानका विषय (आत्मा) है, पुत्र आदि और कोई नहीं है ॥ ५३४ ॥

प्रत्यक्षः सर्वजन्तूनां देहोऽहमिति निश्चयः ।
एष पुरुषोऽन्नरस-मय इत्यपि च श्रुतिः ॥ ५३५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (देहः) शरीर [अस्मि] हूँ (इति) यह (निश्चयः) निश्चय (सर्वजन्तूनाम्) सकल प्राणियों को (प्रत्यक्षः) प्रत्यक्ष है (च) और (एषः) यह (पुरुषः) पुरुष (अन्नरसमयः) अन्नके रसका विकार है (इति) ऐसी (श्रुतिः, अपि) श्रुति भी (अस्ति) है ॥ ५३५ ॥

भावार्थ-देह ही मैं (अहम्पदवाच्य) है, ऐसा प्रत्यक्ष निश्चय सबही प्राणियों को होता है यह पुरुष अन्नके सारांशका विकाररूप है, यह बात श्रुतिने भी कही है ॥ ५३५ ॥

पुरुषत्वं वदत्यस्य स्वात्मा हि पुरुषस्ततः ।
आत्माऽयं देह एवेति चार्वाकेन विनिश्चितम् ॥ ५३६ ॥

अन्वय और पदार्थ- [श्रुतिः] श्रुति (अस्य) इस देह के (पुरुषत्वम्) पुरुषपनेको (वदति) कहती है (ततः) तिससे (पुरुषः) पुरुष (स्वात्मा हि) स्वस्वरूप ही [अस्ति] है (अयम्) यह (देहः, एव) देहही (आत्मा) आत्मा है (इति) ऐसा (चार्वाकेन) चार्वाकने (विनिश्चितम्) निश्चय किया है ॥५३६॥

भावार्थ-श्रुतिने इस शरीर को पुरुषपद से कहा है, इसलिये पुरुष (देह) ही आत्मा है, इस प्रकार चार्वाकने निश्चय किया है, कि—यह दृश्यमान देह ही आत्मा है ॥ ५३६ ॥

इन्द्रियात्मवादः

तन्मतं दूषयत्यन्योऽसहमानः पृथग्जनः ।
देह आत्मा कथं नु स्यात्परतन्त्रो ह्यचेतनः ॥ ५३७ ॥

अन्वय और पदार्थ (असहमानः) न सहता हुआ (अन्यः) दूसरा (पृथग्जनः) पण्डितोंसे पृथक् पुरुष (तन्मतम्) उस देहात्मवादी के मतको (दूषयति) दूषित करता है (नु) अरे (देहः) देह (आत्मा) आत्मा (कथम्) कैसे (स्यात्) होगा (हि) क्योंकि (परतन्त्रः) परवश (अचेतनः) जड़ (अस्ति) है ॥ ५३७ ॥

भावार्थ-पण्डितोंसे बहिष्कृत दूसरा मूर्ख पुरुष, देहात्मवादी के मतको न सह कर उसके मतमें दोष दिखाता है, कि—देह आत्मा कैसे हो सकता है ? क्यों कि—यह तो इन्द्रियों के अधीन और जड़ है ॥ ५३७ ॥

इन्द्रियैश्चाल्यमानोऽयं चेष्टते न स्वतः क्वचित् ।
आश्रयश्चक्षुरादीनां गृहवद् गृहमेधिनाम् ॥ ५३८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अयम्) यह (इन्द्रियैः) इन्द्रियों करके (चाल्यमानः) चलाया जाता हुआ (चेष्टते) चेष्टा करता है (स्वतः) स्वयं (क्वचित्) कहीं (न) नहीं [अयम्] यह (गृहमेधिनाम्) गृहस्थोंके (गृहवत्) घरकी समान (चक्षुरादीनाम्) चक्षु आदिका (आश्रयः) आश्रय है ॥ ५३८ ॥

भावार्थ-इस देहको इन्द्रियें चलाती हैं तब चेष्टा करता है, अपने आप कोई व्यापार नहीं करसकता, जैसे घर गृहस्थोंका आश्रय है, ऐसे ही देह इन्द्रियोंका आश्रय है ॥ ५३८ ॥

बाल्यादिनानावस्थावान् शुक्रशोणितसम्भवः ।
अतः कदापि देहस्य नात्मत्वमुपपद्यते ॥ ५३९ ॥

अन्वय और पदार्थ-[देहः] देह (बाल्यादिनानावस्थावान्) बालकपन आदि नाना अवस्थाओं वाला (शुक्रशोणितसंभवः) वीर्य और रजसे उत्पत्ति वाला [अस्ति] है (अतः) इसलिये (देहस्य) देहका (आत्मत्वम्) आत्मा होना (कदापि) कभी भी (न) नहीं (उपपद्यते) सिद्ध होता है ॥ ५३९ ॥

भावार्थ-इस शरीरमें बालक जवानी आदि अनेकों अवस्थायें आती हैं और चलीजाती हैं तथा यह पिताके वीर्य और माताके रजसे उत्पन्न होता है, इसलिये यह देह आत्मा कदापि नहीं हो सकता ॥ ५३९ ॥

बधिरोऽहञ्च काणोऽहं मूक इत्यनुभूतितः ।
इन्द्रियाणि भवन्त्यात्मा येषामस्त्यर्थवेदनम् ॥ ५४० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (बधिरः) बहरा (अहम्) मैं (काणः) काणा (च) और (मूकः) गूंगा [अस्मि] हूं (इति) ऐसे (अनुभूतितः) अनुभवसे (इन्द्रियाणि) इन्द्रियें (आत्मा) आत्मा (भवन्ति) होती हैं (येषाम्) जिनको (अर्थवेदनम्) विषयोंका ज्ञान (अस्ति) है ॥ ५४० ॥

भावार्थ-मैं सुननेकी शक्तिसे हीन बहरा हूं, मैं नेत्रविहीन काणा हूँ और मैं वाक्शक्तिशून्य गूंगा हूँ, ऐसा अनुभव होनेके कारण इन्द्रियें ही आत्मा हो सकती हैं, क्योंकि-इन्द्रियोंको विषयोंका ज्ञान है ॥ ५४० ॥

इन्द्रियाणां चेतनत्वं देहे प्राणाः प्रजापतिम् ।
एतमेत्येत्यूचुरिति श्रुत्यैव प्रतिपद्यते ॥ ५४१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(देहे) शरीरमें (प्राणाः) इन्द्रियें (एतम्) इस (प्रजापतिम्) प्रजापतिको (एत्य) प्राप्त होकर (इति) इसप्रकार (ऊचुः) बोलीं (इति) इस (श्रुत्या, एव) श्रुति करके ही (इन्द्रियाणाम्) इन्द्रियोंका (चेतनत्वम्) चेतनपना (प्रतिपाद्यते) सिद्ध कियाजाता है ॥ ५४१ ॥

भावार्थ-शरीरमेंकी इन्द्रियोंने प्रजापतिके पास जा करके यह बात कही, इस श्रुतिसे भी इन्द्रियोंका चेतन (आत्मा) होना सिद्ध होता है ॥ ५४१ ॥

यतस्तस्मादिन्द्रियाणां युक्तमात्मत्वमित्यमुम् ।
निश्चयं दूषयत्यन्योऽसहमानः पृथग्जनः ॥ ५४२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यतः) क्योंकि श्रुति ऐसा कहती है (तस्मात्) जिससे (इन्द्रियाणाम्) इन्द्रियोंका (आत्मत्वम्) आत्मा होना (युक्तम्) उचित है (इति) ऐसे (अमुम्) इस (निश्चयम्) निश्चयको (असहमानः) न सहता हुआ (अन्यः) दूसरा (पृथग्जनः) मूढ़ पुरुष (दूषयति) दूषण देता है ॥ ५४२ ॥

भावार्थ-क्योंकि—श्रुतिने ऐसा कहा है, इसलिये इन्द्रियों का आत्मा होना उचित ही है, दूसरा मूढ़ पुरुष इस निश्चयको न सहकर इसमें दोष दिखाता है५४२

प्राणात्मवादः

इन्द्रियाणि कथन्त्वात्मा करणानि कुठारवत् ।
करणस्य कुठारादेश्चेतनत्वं न हीक्ष्यते ॥ ५४३ ।

अन्वय और पदार्थ-(तु) किन्तु (इन्द्रियाणि) इन्द्रियें (कथम्) कैसे (आत्मा) आत्मा [भवेयुः] होजायँगी (कुठारवत्) कुठारकी समान (करणानि) करण [सन्ति] हैं (कुठारादेः) कुठार आदि (करणस्य) करण का (चेतनत्वम्) चेतनपना (नहि) नहीं (ईक्ष्यते) देखनेमें आता है ॥ ५४३ ॥

भावार्थ-इन्द्रियें आत्मा कैसे होसकती हैं ? वे तो वृक्ष काटने के कुठारकी समान करण हैं, कुठार आदि करणका चेतनपना कहीं भी देखनेमें नहीं आता ॥४३

श्रुत्याधिदेवतावाद इन्द्रियेषूपचर्यते ।
न तु साक्षादिन्द्रियाणां चेतनत्वमुदीर्यते ५४४

अन्वय और पदार्थ-(श्रुत्या) श्रुति करके (अधिदेवतावादः) इन्द्रियों के अधिष्ठात्री देवताका कथन (इन्द्रियेषु) इन्द्रियोंमें (उपचर्यते) गौण भावसे प्रयोग किया जाता है (साक्षात्) प्रत्यक्ष रूपसे (चेतनत्वं तु) चेतनपना तो (न) नहीं (उदीर्यते) कहा जाता है ॥ ५४४ ॥

भावार्थ-श्रुतिमें जो इन्द्रियोंके कहने और उत्तर पानेकी बात देखनेमें आती है यह साक्षात् इन्द्रियोंकी बात चीत नहीं है, किन्तु उन इन्द्रियोंके अधिष्ठात्री देव-

ताओंका संवाद इन्द्रियोंमें आरोपित कर लिया गया है, श्रुतिने इन्द्रियोंकी साक्षात् चेतनता कहीं नहीं कही है ॥ ५४४ ॥

अचेतनस्य दीपादेरर्थाभासकता यथा ।
तथैव चक्षुरादीनां जडानामपि सिध्यति ॥ ५४५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अचेतनस्य) जड़ (दीपादेः) दीपक आदिका (यथा) जैसे (अर्थाभासकता) पदार्थका प्रकाशकपना है (तथा, एव) तैसे ही (जड़ानाम्) जड़ (चक्षुरादीनाम्, अपि) चक्षु आदिकोंका भी (सिध्यति) सिद्ध होता है ॥ ५४५ ॥

भावार्थ-इन्द्रियोंको विषयोंका ज्ञान होता है, अतः इन्द्रियें आत्मा हैं, यह जो युक्ति दी थी, उसमें दोष दिखाते हैं, कि—अचेतन दीपक आदि जैसे घट पटादि पदार्थोंको प्रकाशित करते हैं, ऐसे ही अचेतन चक्षु आदि इन्द्रियें भी विषयोंको प्रकाशित कर देती हैं ॥ ५४५ ॥

इन्द्रियाणां चेष्टयिता प्राणोऽयं पञ्चवृत्तिकः ।
सर्वावस्थास्ववस्थावान् सोऽयमात्मत्वमर्हति
अहं क्षुधावान् तृष्णावान् इत्याद्यनुभवादपि ॥ ५४६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अयम्) यह (पञ्चवृत्तिकः) पाँच वृत्तियों वाला (प्राणः) मुख्य प्राण (इन्द्रियाणाम्) इन्द्रियोंका (चेष्टयिता) चेष्टा कराने वाला है (सर्वावस्थासु) सब अवस्थाओंमें (अवस्थावान्) अवस्था वाला (सः) वह (अयम्) यह (आत्मत्वम्) आत्मा न होनेको (अर्हति) योग्य है (अहम्) मैं (क्षुधावान्) भूखा हूं (तृष्णावान्) प्यासा हूं (इत्यादि) ऐसा २ (अनुभवात्, अपि) अनुभव होनेसे भी [प्राणः, आत्मा] प्राण आत्मा है ५४६

भावार्थ-प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान इन पाँच वृत्तियों वाला मुख्य प्राण इन्द्रियोंको चेष्टा कराता है, बालकपन जवानी आदि सब अवस्थाओं में अवस्थाओं वाला यह प्राण आत्मा हो सकताहै, मैं भूखसे घबड़ा रहा हूं, मैं प्याससे व्याकुल हूँ, ऐसा २ अनुभव होनेसे भी प्राण को आत्मा कहा जा सकता है ॥ ५४६ ॥

श्रुत्याऽन्योन्तर आत्मा प्राणमय इतीर्यते यस्मात् ।

तस्मात्प्राणात्मत्वं युक्तं नो क्वापि करणसंज्ञानाम् ५४७

अन्वय और पदार्थ-(यस्मात्) जिससे (श्रुत्या) श्रुतिके द्वारा (अन्यः) दूसरा (अन्तरः) भीतरका (आत्मा) आत्मा (प्राणमयः, इति) प्राणमय इस नाम वाला (ईर्यते) कहा जाता है (तस्मात्) तिससे (प्राणात्मत्वम्) प्राण का आत्मा होना (युक्तम्) उचित है (करणसंज्ञानाम्) करण नाम वालोंका (क्वापि) कहीं भी (नो) नहीं ॥ ५४७ ॥

भावार्थ-अन्नमय कोशसे और भी भीतर स्थित जो प्राणमय कोश है, वही आत्मा है, यह बात श्रुतिने भी कही, इसलिये प्राण ही आत्मा है, इन्द्रियें आत्मा नहीं हैं ॥ ५४७ ॥

मनमात्मवादः

एवं निश्चयमेतस्य दूषयत्यपरो जड़ः ।

प्राणस्यात्मा कथं प्राणो वायुरेवैष आन्तरः ॥ ५४८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अपरः) दूसरा (जड़ः) मूढ़ (एतस्य) इसके (एवम्) ऐसे (निश्चयम्) निश्चयको (दूषयति) दूषण देता है (प्राणः) प्राण (कथम्) कैसे (आत्मा) आत्मा (भवति) हो सकता है (एषः) यह (आन्तरः) भीतरका (वायुः एव) पवन ही है ॥ ५४८ ॥

भावार्थ- दूसरा मूढ़ मनुष्य प्राणात्मवादी के ऐसे निश्चयमें दोष दिखाता है, वह कहता है, कि—प्राण आत्मा कैसे हो जायगा, प्राण तो आत्मासे उत्पन्न हुआ भीतरी पवन है ॥ ५४८ ॥

वहिर्यात्यन्तरायाति भस्त्रिकावायुवन्मुहुः ।

न हितं वाहितं वा स्वमन्यद्वा वेद किञ्चन ॥ ५४९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(भस्त्रिकावायुवत्) धौंकनी के वायुकी समान (मुहुः) बार २ (वहिः) बाहर (याति) जाता है (अन्तः) भीतरको (आयाति) लौट आता है (हितम्) हितको (वा) वा (अहितम्) अहितको (वा) या (स्वम्) अपने आपको (वा) या (अन्यद्) दूसरेको (किञ्चन) कुछ भी (न) नहीं (वेद) जानता है ॥ ५४९ ॥

भावार्थ-जैसे लुहारकी धौंकनीका वायु बार २ बाहर को आता है और भीतरको चला जाता है, ऐसे ही यह, प्राणवायु भी एक बार देहसे बाहर चला

आता है, और फिर देहके भीतर जा पहुंचता है, यह हित, अहितको, अपने आपको अथवा दूसरेको कुछ भी नहीं जानता है ॥ ५४९ ॥

जडस्वभावश्चपलः कर्मयुक्तश्च सर्वदा ।
प्राणस्य भानं मनसि स्थिते सुप्ते न दृश्यते ॥ ५५० ॥

अन्वय और पदार्थ-[एषः] यह [प्राणः] प्राण (जडस्वभावः) जड स्वभाव वाला (चपलः) चपल (च) और (सर्वदा) सब काल में (कर्मयुक्तः) कर्म करने वाला है (सुप्ते) सो जाने पर (मनसि, स्थिते) मनके विद्यमान होते हुए (प्राणस्य) प्राण का (भानम्) भान (न) नहीं (दृश्यते) दीखता है ५५०

भावार्थ-प्राण अचेतन, चञ्चल और सदा क्रियाशील है, सोये हुए मनुष्य का मन तो स्थित रहता है, परंतु प्राण की ज्ञानशक्ति देखने में नहीं आती ॥५५०॥

मनस्तु सर्वं जानाति सर्ववेदनकारणम् ।
यत्तस्मान्मन एवात्मा प्राणस्तु न कदाचन ॥ ५५१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तु) परंतु (मनः) मन (सर्वम्) सबको (जानाति) जानता है (यत्) क्योंकि (सर्ववेदांतकारणम्) सब विषयों के ज्ञान का हेतु है (तस्मात्) तिससे (मनः, एव) मन ही (आत्मा) आत्मा है (तु) और (प्राणः) प्राण (कदाचन) कभी (न) नहीं है ॥ ५५१ ॥

भावार्थ—क्योंकि-मन सब विषयों को जानता है और सब विषयों के ज्ञानका कारण है, इसलिये मन ही आत्मा है, प्राण कभी आत्मा नहीं होसकता ५५१

संकल्पवानहं चिंतावानहञ्च विकल्पवान् ।
इत्याद्यनुभवादन्योऽन्तर आत्मा मनोमयः ॥ ५५२ ॥
इत्यादिश्रुतिसद्भावाद्युक्ता मनस आत्मता ।
इति निश्चयमेतस्य दूषयत्यपरो जडः ॥ ५५३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्, संकल्पवान्) मैं सङ्कल्प करता हूँ (चिंतावान्) चिंता करता हूँ (च) और (अहम्) मैं (विकल्पवान्) विकल्प करता हूँ (इत्याद्यनुभवात्) ऐसे २ अनुभव से (अन्यः) दूसरा (अंतरः) भीतर का (मनोमयः) मनोमय (आत्मा) आत्मा है (इत्यादिश्रुतिसद्भावात्) इत्यादि श्रुतिप्रमाण होनेसे (मनसः) मनका (आत्मा) आत्मा होना (युक्तः) उचित

है (एतस्य) इसके (इति) ऐसे (निश्चयम्) निश्चयको (अपरः) दूसरा (जड़ः) जड़ मनुष्य (दूषयति) दूषित करता है ॥ ५५३ ॥

भावार्थ—मैं इसप्रकार सङ्कल्प करता हूँ, मैं अमुक विषयकी चिंता करता हूँ, मैं 'यह ठीक है या नहीं, इसप्रकार विकल्प करता हूँ, ऐसा अनुभव होने से तथा प्राणमय कोशकी अपेक्षा भीतर और एक मनोमय कोश नामका आत्मा है, ऐसा वेदवाक्य होने से मनको आत्मा कहना उचित ही है, परंतु दूसरा अज्ञानी मनुष्य मन आत्मवादी के इस सिद्धांत में भी दोष दिखाता है ॥ ५५३ ॥

॥बुद्ध्यात्मवादः॥

कथं मनस आत्मत्वं करणस्य दृगादिवत् ।
कर्तृप्रयोज्यं करणं न स्वयन्तु प्रवर्त्तते ॥ ५५४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(दृगादिवत्) चक्षु आदि की समान (करणस्य) करण (मनसः) मनका (आत्मत्वम्) आत्मा होना (कथम्) कैसे [भवितुं, अर्हति] होसकता है (कर्तृप्रयोज्यम्) कर्त्ता से प्रेरित होने वाला (करणम्) करण (स्वयं, तु) अपने आप तो (न) नहीं (प्रवर्त्तते) प्रवृत्त होता है ॥५५४॥

भावार्थ—मन भी चक्षु आदि इंद्रियों की समान एक इंद्रिय है वह आत्मा कैसे होसकता है ? करण को कर्त्ता कर्म में लगाता है, करण अपने आप किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता ॥ ५५४ ॥

करणप्रयोक्ता यः कर्त्ता तस्यैवात्मत्वमर्हति ।
आत्मा स्वतंत्रः पुरुषो न प्रयोज्यः कदाचन ॥ ५५५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (करणप्रयोक्ता) करणका प्रयोग करानेवाला (कर्त्ता) कर्त्ता है (तस्य, एव) उसका ही (आत्मत्वम्) आत्मपना (अर्हति) योग्य है । स्वतन्त्रः) स्वतंत्र (पुरुषः) पुरुष (आत्मा) आत्मा होता है (प्रयोज्यः) परवश चेष्टावाला (कदाचन) कभी (न) नहीं ॥ ५५५ ॥

भावार्थ-जो करण (कार्यसाधक) का चेष्टा करानेवाला और कर्त्ता होता है वही आत्मा कहा जासकता है, स्वतंत्र पुरुष (शरीर इन्द्रियादि में व्यापक) ही आत्मा है, पराधीन होकर चेष्टा करने वाले देह इन्द्रियादि करण कभी आत्मा नहीं होसकते ॥ ५५५ ॥

अहं कर्त्ताऽस्म्यहं भोक्ता सुखीत्यनुभवादपि ।

बुद्धिरात्मा भवत्येव बुद्धिधर्मो ह्यहंकृतिः ॥ ५५६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (कर्त्ता) कर्तृत्व शक्तिवाला (अहम्) मैं (भोक्ता) भोगनेवाला (सुखी) सुखका अनुभव करनेवाला (अस्मि) हूँ (इति) ऐसे (अनुभवात्, अपि) अनुभवसे भी (बुद्धिः) बुद्धि (आत्मा) आत्मा (भवति) होती है (हि) क्योंकि (अहंकृतिः) अहङ्कार (बुद्धिधर्मः, एव) बुद्धि का ही धर्म है ॥ ५५६ ॥

भावार्थ-मैं कर्त्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ, मैं सुखी हूँ, इत्यादि अनुभवसे बुद्धि को आत्मा कहा जासकता है, क्यों कि-अहङ्कार बुद्धिका ही धर्म है ॥ ५५६ ॥

अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमय इति वदति निगमः ।

मनसोऽपि च भिन्नविज्ञानमयं कर्तृरूपमात्मानम् ५५७

अन्वय और पदार्थ-(अन्यः) इससे दूसरा (अन्तरः) भीतर का (विज्ञानमयः) विज्ञानमय (आत्मा) आत्मा है (इति) ऐसा (निगमः) वेद (वदति) कहता है (च) और (मनसः, अपि) मनसे भी (भिन्नम्) पृथक् (कर्तृरूपम्) कर्त्तारूप (विज्ञानमयम्) विज्ञानमय (आत्मानम्) आत्माको [वदति] कहता है ॥ ५५७ ॥

भावार्थ-मनोमय कोशसे पृथक् भीतर विज्ञानमय नामका आत्मा है, ऐसा श्रुतिने भी कहा है तथा मनसे जुदा रूप कर्त्तापन [विज्ञानमय] आत्मा है ऐसा भी कहा है ॥ ५५७ ॥

विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणि तनुतेऽपि च ।

इत्यस्य कर्तृता श्रुत्या मुखतः प्रतिपाद्यते ॥

तस्माद् युक्तात्मता बुद्धेरिति बौद्धेन निश्चितम् ॥ ५५८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विज्ञानम्) विज्ञान (यज्ञम्) सङ्कल्पको (तनुते) फैलाता है (च) और (कर्माणि, अपि) कर्मोंको भी (तनुते) फैलाता है (इति) इस प्रकार (श्रुत्या) श्रुतिके द्वारा (अस्य) इस बुद्धिका (कर्तृता) कर्त्तापन (मुखतः) कण्ठरव से (प्रतिपाद्यते) वर्णन किया जाता है (तस्माद्) तिससे (बुद्धेः) बुद्धिका (आत्मता) आत्मा होना (युक्ता) उचित है (इति) ऐसा (बौद्धेन) बौद्ध ने (निश्चितम्) निश्चय किया है ॥ ५५८ ॥

भावार्थ-बुद्धि संकल्प करती है और भाँति २ के कर्म करती है, यह बात

श्रुतिने भी कण्ठ खोल कर स्पष्ट कही है, इसलिये बुद्धिका आत्मा होना उचित ही है, ऐसा बौद्धने निश्चय किया है ॥ ५५८ ॥

अज्ञानात्मवादः

प्राभाकरस्तार्किकश्च तावुभावप्यमर्षया ।
तन्निश्चयं दूषयतो बुद्धिरात्मा कथं त्विति ॥ ५५९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्राभाकरः) प्रभाकरके मतवाला (च) और (तार्किकः) नैयायिक (तौ) वे (उभौ, अपि) दोनों ही (अमर्षया) असहनशीलतासे (बुद्धिः) बुद्धि (कथं, तु) कैसे (आत्मा) आत्मा [भवितुं, अर्हति] होसकती है (इति) इस प्रकार (तन्निश्चयम्) उसके निश्चयको (दूषयतः) दूषित करते हैं ॥

भावार्थ-प्रभाकरके मतवाले और नैयायिक ये दोनोंही असहिष्णुताके कारण बुद्धि आत्मा कैसे होसकती है ?, यह कहते हुए बुद्ध्यात्मवादीके सिद्धान्तमें दोष दिखलाते हैं ॥ ५५९ ॥

बुद्धेरज्ञानकार्यत्वाद्विनाशित्वात्प्रतिक्षणम् ।
बुद्ध्यादीनाञ्च सर्वेषामज्ञाने लयदर्शनात् ॥ ५६० ॥
अज्ञोऽहमित्यनुभवादास्त्रीबालादिगोचरात् ।
भवत्यज्ञानमेवात्मा न तु बुद्धिः कदाचन ॥ ५६१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(बुद्धेः) बुद्धिके (अज्ञानकार्यत्वात्) अज्ञानका कार्य होनेसे (प्रतिक्षणम्) क्षण २ में (विनाशित्वात्) नाशवाली होनेसे (च) और (बुद्ध्यादीनाम्) बुद्धि आदि (सर्वेषाम्) सबका (अज्ञाने) ज्ञानाभाव में (लयदर्शनात्) नाश देखनेसे (अहम्) मैं (अज्ञः) ज्ञानहीन हूँ (इति) ऐसा (आस्त्रीबालादिगोचरात्) स्त्री बालकों तकके गोचर (अनुभवात्) अनुभव होनेसे (अज्ञानं, एव) अज्ञान ही (आत्मा) आत्मा (भवति) होता है (बुद्धिः,तु) बुद्धि तो (कदाचन) कभी (न) नहीं ॥ ५६० ॥५६१॥

भावार्थ-बुद्धिके आत्मा न होनेमें युक्ति दिखाते हैं,कि-बुद्धि अज्ञानका कार्य है, प्रतिक्षणमें विनष्ट हुआ करती है, बुद्धि आदि सब वस्तुओंका अज्ञानमें लय होना देखते हैं और मैं अज्ञानी हूँ, ऐसा अनुभव स्त्री और बालकों तक सबको ही होता है, इसलिये ही अज्ञान ही आत्मा है, बुद्धि कभी आत्मा नहीं हो सकती ॥

विज्ञानमयादन्यं त्वानन्दमयं परं तथात्मानम् ।
अन्योऽऽन्तर आत्मानन्दमय इति वदति वेदोऽपि ५६२

अन्वय और पदार्थ-(तु) परन्तु (अन्यः) विज्ञानमय कोशसे अन्य (आन्तरः) भीतर स्थित (आनन्दमयः)आनन्दमय (आत्मा) आत्मा है (इति) इस प्रकार (वेदः, अपि) वेद भी (विज्ञानमयात्) विज्ञानमयसे (अन्यम्) भिन्न (तथा) तैसेही (परम्) श्रेष्ठ (आनन्दमयम्) आनन्दमय (आत्मानम्) आत्माको (वदति) कहता है ॥ ५६२ ॥

भावार्थ-बुद्धिसे अन्य भीतर आनन्दमय आत्मा है,इस प्रकार वेद बुद्धिरूप विज्ञानमय कोशसे भिन्न तथा उत्तम आनन्दमय आत्माको बताता है ॥ ५६२ ॥

दुःखप्रत्ययशून्यत्वादानन्दमयता मता ।
अज्ञाने सकलं सुप्तौ बुद्ध्यादि प्रविलीयते ॥ ५६३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(दुःखप्रत्ययशून्यत्वात्) दुःखकी प्रतीतिसे शून्य होनेके कारण (आनन्दमयता) आनन्दरूपता (मता) मानी गई है (सुप्तौ) निद्राकालमें (बुद्ध्यादि) बुद्धि आदि (सकलम्) सब (अज्ञाने) अज्ञानमें (प्रविलीयते) लीन होजाता है ॥ ५६३ ॥

भावार्थ—अज्ञानमें दुःख की प्रतीति नहीं होती, इसलिये अज्ञानको आनन्दमय कहा है, क्योंकि-सोने पर सुषुप्तिमें बुद्धि आदि सब वस्तुओंका अज्ञानमें लय होजाता है, तात्पर्य यह है, कि-अज्ञानका अर्थ है—ज्ञानाभाव, परन्तु श्रुतिमें आत्मा को आनन्दमय कहा है, अज्ञान और आनन्दमय एक कैसे होसकते हैं ? अज्ञानको आत्मा माननेवालेके मतसे इसका यह उत्तर है, कि—श्रुतिमें जिस आनन्दकी बात कही है उसका अर्थ है—दुःखका अभाव । मोक्ष वा सुषुप्तिमें आनन्द नहीं होता है, किन्तु दुःख नहीं होता इसलिये आनन्द शब्दका प्रयोग किया जाता है, लोकमें भी ऐसा प्रयोग देखनेमें आता है । "भाराद्यपगमे सुख्यहं संवृत्तः" बोझा दूर होजाने पर मैं सुखी होगया, ऐसा कहते हैं । वास्तवमें बोझा हट जाने पर दुःख दूर होजाता है, उसके ही लिये सुख शब्दका प्रयोग किया जाता है । इसलिये आनन्द शब्दका अर्थ है—दुःखज्ञानका अभाव ॥ ५६३ ॥

दुःखिनोऽपि सुषुप्तौ तु आनन्दमयता ततः ।
सुप्तौ किञ्चिन्न जानामीत्यनुभूतिश्च दृश्यते ॥ ५६४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ततः) तिससे (दुःखिनः, अपि) दुःखी पुरुषको भी (सुषुप्तौ) सुषुप्तिकालमें (तु) तो (आनन्दमयता) आनन्दरूपता [भवति] होती है (सुप्तौ) सुषुप्तिकालमें (किञ्चित्) कुछ (न) नहीं (जानामि) जानता हूँ (इति) ऐसा (अनुभूतिः, च) अनुभव भी (दृश्यते) दीखता है ॥

भावार्थ-इसलिये सुषुप्ति कालमें दुःखी पुरुषको भी आनन्दमयता होती है, मैं कुछ नहीं जानता, ऐसा अनुभव सुषुप्तिकालमें होता है ॥ ५६४ ॥

यत एवमतो युक्ता ह्यज्ञानस्यात्मता ध्रुवम् ।
इति तन्निश्चयं भाट्टा दूषयन्ति स्वयुक्तिभिः ॥ ५६५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यतः) क्योंकि (एवम्) ऐसा है (अतः) इसलिये (अज्ञानस्य) अज्ञानका (आत्मता) आत्मा होना (ध्रुवम्) निश्चय (युक्ता हि) उचित ही है (इति) इस प्रकार (तन्निश्चयम्) उनके निश्चयको (भाट्टाः) भट्ट मतवाले (स्वयुक्तिभिः) अपनी युक्तियोंसे (दूषयन्ति) दूषित करते हैं ५६५ ॥

भावार्थ-क्योंकि-इस प्रकार युक्तियोंसे अज्ञानका आत्मा होना सिद्ध किया है, इसलिये भट्टमत वाले इस सिद्धिमें दोप दिखाते हैं ॥ ५६५ ॥

ज्ञानाज्ञानात्मवादः

कथमज्ञानमेवात्माज्ञानं चाप्युपलभ्यते ।
ज्ञानाभावे कथं विद्युरज्ञोऽहमिति चात्मताम् ॥
अस्वाप्सं सुखमेवाऽहं न जानाम्यत्र किञ्चन ॥ ५६६ ॥
इत्यज्ञानमपि ज्ञानं प्रबुद्धेषु प्रदृश्यते ।
प्रज्ञानघन एवानन्दमय इत्यपि च श्रुतिः ॥ ५६७ ॥
अब्रवीत्युभयात्मत्वमात्मनः स्वयमेव सा ॥
आत्मातश्चिज्जडतनुः खद्योत इव संमतः ॥ ५६८ ॥

अन्वय और पदार्थ (अज्ञानं, एव) अज्ञान ही (आत्मा) आत्मा (कथम्) कैसे [भवितुं, अर्हति) होसकता है (ज्ञानं, च, अपि) ज्ञान भी (उपलभ्यते) पाया जाता है (ज्ञानाभावे) ज्ञानके न होने पर (अहम्) मैं (अज्ञः) ज्ञान-हीन हूँ (इति) यह (च) और (आत्मताम्) आत्मत्वको (कथम्) कैसे (विद्युः) जानें (अहम्) मैं (सुखं, एवं) सुखपूर्वक ही (अस्वाप्सम्) सोया

(अत्र) इस विषय में (किञ्चन) कुछ (न) नहीं (जानामि) जानता हूँ (इति) इस प्रकार (अज्ञानम्, अपि) अज्ञान भी (ज्ञानम्) ज्ञानरूप (प्रबुद्धेषु) जागे हुओंमें (प्रदृश्यते) दीखता है (च) और (प्रज्ञानघनः) ज्ञानमूर्त्ति (आनन्दमयः) आनन्दमय है (इति) इस प्रकार (सा) वह (श्रुतिः, अपि) श्रुति भी (स्वयं, एव) अपनेआपही (उभयात्मत्वम्) ज्ञानाज्ञान रूपत्व को (प्रब्रवीति) कहती है (अतः) इस कारण (आत्मा) आत्मा (खद्योतः, इव) पटवीजनेकी समान (चिज्जड़तनुः) चेतन और जड़स्वभाव (सम्मतः) माना गया है ॥ ५६६ ॥ ५६७ ॥ ५६८ ॥

भावार्थ-आत्मा ज्ञानाज्ञान स्वरूप है, इस विषयमें भट्टमत वाले युक्ति देते हैं, कि-यदि केवल अज्ञानको ही आत्मा माना जाय तो-मैं अज्ञ हूँ, मैं नहीं जानता इस अज्ञानका ज्ञान कैसे होगा ? जब अज्ञानविषयक ज्ञान होता है तब केवल अज्ञानको आत्मा नहीं कहा जासकता, किन्तु ज्ञानाज्ञानको ही आत्मा कहना चाहिये, मैं सुखसे सोया, मुझे कुछ भी नहीं मालूम हुआ, ऐसा अज्ञानविषयक ज्ञान जागे हुए मनुष्योंमें देखने में आता है। प्रज्ञानघन ही आनन्दमय है, यह श्रुति स्वयं आत्माको ज्ञान अज्ञान उभयरूप कहती है, इसलिये आत्मा खद्योत (पटवीजने) की समान चैतन्य और जड़स्वभाव है अर्थात् जैसे पटवीजना क्षणभर को प्रकाश कर देता है इसलिये चेतन है और फिर अगले क्षणमें उसका प्रकाश नहीं रहता इसलिये वह जड़ भी है, इस प्रकार ही ज्ञान और अज्ञान दोनोंका अनुभव होनेसे आत्मा ज्ञानाज्ञानरूप है ॥ ५६६ ॥ ५६७ ॥ ५६८ ॥

शून्यात्मवादः

न केवलाज्ञानमयः घटकुड्यादिवज्जडः ।
इति निश्चयमेतेषां दूषयत्यपरो जडः ॥ ५६९ ॥

अन्वय और पदार्थ-[आत्मा] आत्मा (घटकुड्यादिवत्) घड़े दीवार आदिकी समान (जडः) अचेतन (केवलाज्ञानमयः) केवल अज्ञानमय (न) नहीं है (इति) ऐसा कहता हुआ (अपरः) दूसरा (जडः) मूढ़ (एतेषाम्) इनके (निश्चयम्) सिद्धान्तको (दूषयति) दूषित करता है ॥ ५६९ ॥

भावार्थ-घट दीवार आदिकी समान जड, केवल अज्ञानमात्र आत्मा नहीं हो सकता, ऐसा कहता हुआ दूसरा मूढ़ पुरुष भट्टमतवादीके सिद्धान्तमें दोष दिखाता है ॥ ५६९ ॥

ज्ञानाज्ञानमयस्त्वात्मा कथं भवितुमर्हति।
परस्परविरुद्धत्वात्तेजस्तिमिरवत्तयोः ॥ ५७० ॥

अन्वय और पदार्थ-(तु) किन्तु (तेजस्तिमिरवत्) तेज और अन्धकार की समान (तयोः) उनके (परस्परविरुद्धत्वात्) आपसमें विरुद्ध होनेके कारण (ज्ञानाज्ञानमयः) ज्ञान अज्ञानमय (आत्मा) आत्मा (कथम्) कैसे (भवितुं, अर्हति) होसकता है ॥ ५७० ॥

भावार्थ-परन्तु प्रकाश और अन्धकारकी समान ज्ञान अज्ञान परस्पर विरोधी हैं, दोनों एकत्र रह ही नहीं सकते, फिर आत्मा ज्ञानाज्ञानरूप कैसे हो जायगा ?

सामानाधिकरण्यं वा संयोगो वा समाश्रयः।
तमःप्रकाशवज्ज्ञानाज्ञानयोर्न हि सिध्यति ॥ ५७१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(हि) क्योंकि (तमःप्रकाशवत्) अन्धकार और प्रकाशकी समान (ज्ञानाज्ञानयोः) ज्ञान और अज्ञानका (सामानाधिकरण्यम्) एक अधिकरणमें होना (वा) या (संयोगः) संयोग (वा) या (समाश्रयः) समान आश्रय (न) नहीं (सिध्यति) सिद्ध होता है ॥ ५७० ॥

भावार्थ-अन्धकार और प्रकाशकी समान ज्ञान और अज्ञानका एक अधिकरण नहीं होसकता अर्थात् जहाँ अन्धकार रहे वहाँ ही प्रकाश भी रहे या जहां ज्ञान रहे वहां ही अज्ञान भी रहे यह नहीं होसकता अथवा इनका संयोग अथवा एक आश्रय भी नहीं होसकता ॥ ५७१ ॥

अज्ञानमपि विज्ञानं बुद्धिर्वाऽपि च तद्गुणाः।
सुषुप्तौ नोपलभ्यन्ते यत्किञ्चिदपि चापरम् ॥ ५७२ ॥
मात्रादिलक्षणं किन्तु शून्यमेवोपलभ्यते ।
सुषुप्तौ नान्यदस्त्येव नाऽहमप्यासमित्यनु ॥ ५७३ ॥
सुप्तोत्थितजनैः सर्वैः शून्यमेवानुस्मर्यते।
यत्ततः शून्यमेवात्मा न ज्ञानाज्ञानलक्षणः ॥ ५७४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अज्ञानम्) ज्ञानाभाव-विपयक (ज्ञानं, अपि) ज्ञान भी (अपि वा) या (बुद्धिः) ज्ञान (च) और (तद्गुणाः) ज्ञान और अज्ञान के गुण (सुषुप्तौ) सुषुप्तिकालमें (न) नहीं (उपलभ्यन्ते) पाये जाते हैं (च)

अथवा (अपरम्) और (यत्किञ्चित्, अपि) जो कुछ भी (मात्रादिलक्षणम्) प्रमाता आदिरूप (किं, नु) क्या होता है ? (शून्यं एव) शून्य ही (उपलभ्यते) पायाजाता है (सुषुप्तौ) सुषुप्तिकालमें (अन्यत्) और कुछ (न-अस्ति-एव) होता ही नहीं (अहं, अपि) मैं भी (न) नहीं (आसम्) था (यत्) क्योंकि (इति) ऐसा (अनु) पीछे (सर्वैः) सब (सुप्तोत्थितजनैः) सोकर उठे हुए मनुष्यों करके (शून्यं, एव) शून्य ही (अनुस्मर्यते) फिर स्मरण कियाजाता है (ततः) तिससे (शून्यम्, एव) शून्य ही (आत्मा) आत्मा है (ज्ञानाज्ञान-लक्षणः) ज्ञान अज्ञानरूप (न) नहीं है ॥ ५७२ ॥ ५७३ ॥ ५७४ ॥

भावार्थ—'मैं नहीं जानता' ऐसे अज्ञानके विषयका ज्ञान, भावविषयक ज्ञान और इनके धर्म अर्थात् ज्ञानका धर्म प्रकाश तथा अज्ञानका धर्म आवरण सुषुप्ति-कालमें प्रतीत नहीं होते और जो कुछ प्रमाता, प्रमेय, प्रमिति आदि हैं वह भी शून्य-रूप ही होता है, क्योंकि—सुषुप्तिकालमें और कोई वस्तु नहीं थी, मैं भी नहीं था, ऐसा सोकर उठेहुए सब ही मनुष्योंको स्मरण होता है, इसलिये शून्य ही आत्मा है, ज्ञानाज्ञानरूप आत्मा नहीं होसकता ॥ ५७२ ॥ ५७३ ॥ ५७४ ॥

वेदेनाप्यसदेवेदमग्र आसीदिति स्फुटम् ।
निरूप्यते यतस्तस्माच्छून्यस्यैवात्मता मता ॥ ५७५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यतः) क्योंकि (वेदेन, अपि) वेदके द्वारा भी (इदम्) यह जगत् (अग्रे) सृष्टिसे पहिले (असत्, एव) शून्य ही (असीत्) था (इति) ऐसा (स्फुटम्) स्पष्ट (निरूप्यते) वर्णन कियाजाता है (तस्मात्) तिससे (शून्यस्य) शून्यका (आत्मता) आत्मा होना (मता) माना गया है ५७५

भावार्थ—केवल युक्तिसे ही शून्यका आत्मा होना सिद्ध नहीं है, किन्तु इस विषयमें वेदका प्रमाण भी है—यह जगत् उत्पत्तिसे पहिले असत् (शून्य) था, इसप्रकार श्रुतिने भी शून्यका आत्मा होना स्पष्ट कहा है, अतः शून्यको ही आत्मा कहना चाहिये ॥ ५७५ ॥

असन्नेव घटः पूर्वं जायमानः प्रदृश्यते ।
न हि कुम्भः पुरैवान्तः स्थित्वोदेति बहिर्मुखः ॥ ५७६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(पूर्वम्) पहिले (असत्, एव) अभाववाला ही (घटः) घड़ा (जायमानः) उत्पन्न होता हुआ (प्रदृश्यते) दीखता है (हि) क्योंकि—(पुरा, एव) पहिले ही (कुम्भः) घड़ा (अन्तः) मट्टी के भीतर

(स्थित्वा) स्थित होकर (बहिर्मुखः) बाहर को मुख किये हुए (न) नहीं (उदेति) उदित होता है ॥ ५७६ ॥

भावार्थ-पहले घट नहीं था और उत्पन्न होकर लोगों के नेत्रोंके सामने आ जाता है, उत्पत्ति से पहिले घड़ा मट्टी के भीतर धरा हुआ था और उत्पत्तिके समय वह बाहर को मुख करके निकल पड़ा हो, ऐसा नहीं होता है ॥ ५७६ ॥

यत्तस्मादसतः सर्वं सदिदं समजायत ।
ततः सर्वात्मना शून्यस्यैवात्मत्वं समर्हति ॥ ५७७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) क्योंकि [एवं, अस्ति] ऐसा है (तस्मात्) तिससे (इदम्) यह (सर्वम्) सब (सत्) सत् वस्तु (असतः) शून्य से (समजायत) उत्पन्न हुआ था (ततः) तिससे (सर्वात्मना) सब प्रकार (शून्यस्य, एव) शून्यका ही (आत्मत्वम्) आत्मा होना (समर्हति) हो सकता है ।५७६।

भावार्थ-क्योंकि-घड़ा मट्टीके भीतरसे धराहुआ नहीं निकल आता है, इसलिये यह सब दीखने वाले घट पट आदि सत् पदार्थ शून्यसेही उत्पन्न हुए हैं, इस लिये सब प्रकारसे शून्य ही आत्मा हो सकता है ॥ ५७७ ॥

इत्येवं पण्डितंमन्यैः परस्परविरोधिभिः ।
तत्तन्मतानुरूपाल्पश्रुतियुक्त्यनुभूतिभिः ॥ ५७८ ॥
निर्णीतमतजातानि खण्डितान्येव पण्डितैः ।
श्रुतिभिश्चाप्यनुभवैर्बाधकैः प्रतिवादिनाम् ॥ ५७९ ॥
यतस्तस्मात्तु पुत्रादेः शून्यांतस्य विशेषतः ।
सुसाधितमनात्मत्वं श्रुतियुक्त्यनुभूतिभिः ॥ ५८० ॥

अन्वय और पदार्थ-(यतः) क्योंकि (इति) यह (एवम्) इस प्रकार (परस्परविरोधिभिः) आपसमें विरोध रखने वाले (पण्डितंमन्यैः) पण्डितमानी पुरुषोंके द्वारा (तत्तन्मतानुरूपाल्पश्रुतियुक्त्यनुभूतिभिः) उन २ मतोंके अनुकूल थोड़े से वेदप्रमाण युक्ति और अनुभवों करके (प्रतिवादिनाम्) प्रतिवादियोंके (निर्णीतमतजातानि) निर्णय किये हुए सकल मत (पण्डितैः) पण्डितों करके (श्रुतिभिः) श्रुतियोंके द्वारा (अनुभवैः) अनुभवोंके द्वारा (च) और (बाधकैः, अपि) बाधक तर्कोंके द्वारा भी (खण्डितानि, एव) खण्डित कर ही दिये गये

हैं (तस्मात्) तिससे (श्रुतियुक्त्यनुभूतिभिः) श्रुति युक्ति और अनुभवों के द्वार (पुत्रादेः) पुत्रसे लेकर (शून्यांतस्य,तु) शून्यपर्यंतका तो (अनात्मत्वम्) आत्मा न होना (विशेषतः) विशेषरूपसे (सुसाधितम्) उत्तम प्रकारसे सिद्ध करदिया गया ॥ ५७८ ॥ ५७६ ॥ ५८० ॥

भावार्थ-इसप्रकार आपसमें कलह करनेवाले पण्डिताभिमानी पुरुषोंने जो अपने २ मतके अनुकूल कुछ वेदप्रमाण युक्तियें और अनुभव दिखाकर अपने २ मतका निर्णय किया था, विद्वानोंने श्रुति युक्ति अनुभव और बाधक तर्कके द्वारा प्रतिवादियोंके उन सब मतोंका खण्डन करदिया है। इसलिये श्रुति, युक्ति और अनुभवके द्वारा पुत्रसे लेकर शून्य पर्यंत सब पदार्थोंका आत्मा न होना विशेष रूपसे सिद्ध करदिया ॥ ५७८ ॥ ५७६ ॥ ५८० ॥

न हि प्रमाणांतरबाधितस्य याथार्थ्यमङ्गीक्रियते महद्भिः।
पुत्रादिशून्यान्तमनात्मतत्वमित्येव विस्पष्टमतः सुजातम् ५८१

अन्वय और पदार्थ-(महद्भिः) महात्माओं करके (प्रमाणान्तरबाधितस्य) अन्य प्रमाण के द्वारा बाधितवस्तु का (याथार्थ्यम्) यथार्थपना (नहि) नहीं (अंगीक्रियते) स्वीकार किया जाता है (अतः) इस लिये (पुत्रादिशून्यान्तः) पुत्रसे लेकर शून्य पर्यंत (अनात्मतत्त्वम्) आत्मतत्त्व नहीं है (इति, एव) ऐसा ही (विस्पष्टम्) स्पष्ट रूपसे (सुजातम्) सिद्ध होगया ॥ ५८१ ॥

भावार्थ-जिस वस्तुमें कोई प्रमाण बाधा डालदेय उसको महापुरुष यथार्थ वस्तु नहीं मानते, इसलिये पुत्रसे लेकर शून्य पर्यंत कोई भी आत्म पदार्थ नहीं है, यह स्पष्टरूपसे निर्णय होगया ॥ ५८१ ॥

शिष्य उवाच-

सुषुप्तिकाले सकले विलीने शून्यं विना नान्यदिहोपलभ्यते।
शून्यं त्वनात्मा न ततः परः कोऽप्यात्माभिधानस्त्वनुभूयतेऽर्थः ५८२

अन्वय और पदार्थ-(शिष्यः) शिष्य (उवाच) बोला (सुषुप्तिकाले) सुषुप्तिकालमें (समस्ते) सकलके (विलीने) विलीन होजाने पर (इह) इस संसारमें (शून्यम्, विना) शून्यके सिवाय (अन्यत्) और कुछ (न) नहीं (उपलभ्यते) प्राप्त होता है (तु) किन्तु (शून्यम्) शून्य (अनात्मा) आत्मा नहीं है (ततः) तिससे (परः) अन्य (आत्माभिधानः) आत्मा नामवाला

(कोऽपि) कोई भी (अर्थः, तु) पदार्थ तो (न) नहीं (अनुभूयते) अनुभव में आता है ॥ ५८२ ॥

(भावार्थ)-शिष्यने बूझा, कि-जब सुषुप्तिके समय सब पदार्थ कारणमें लय होजाते हैं, इस जगत्में शून्यके सिवाय और कोई वस्तु उपलब्ध नहीं होती, परन्तु शून्य तो आत्मा है नहीं, और शून्यके सिवाय आत्मा नामक और किसी पदार्थ का अनुभव नहीं होता, इससे सिद्ध होता है कि-आत्मा नामका कोई पदार्थ है ही नहीं ॥ ५८२ ॥

यद्यस्ति आत्मा किमु नोपलभ्यते
सुप्तौ यथा तिष्ठति किं प्रमाणम् ।
किं लक्षणोऽसौ स कथं न बाध्यते,
प्रबाध्यमानेष्वहमादिषु स्वयम् ॥ ८३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(च) और (यदि) जो (आत्मा) स्वरूप (अस्ति) है [तर्हि] तो (किमु) क्यों (न) नहीं (उपलभ्यते) जाना जाता है (सुप्तौ) सुषुप्तिमें (यथा) जिसप्रकार (तिष्ठति) विद्यमान रहता है [तत्र] उसमें (किम्) क्या (प्रमाणम्) प्रमाण है (असौ) यह आत्मा (किंलक्षणः) किस लक्षण-वाला है (अहमादिषु) अहङ्कार आदिके (प्रबाध्यमानेषु) बाधित होने पर (सः) वह आत्मा (स्वयम्) आप (कथम्) क्यों (न) नहीं (बाध्यते) बाधित होता है ? ॥ ५८३ ॥

(भावार्थ)—यदि आत्मा कोई पदार्थ है तो वह प्रतीत क्यों नहीं होता ? सुषुप्तिकालमें आत्मा रहता है, इसका भी प्रमाण क्या है ? आत्माका लक्षण क्या है ? अहङ्कार आदिके बाधित होने पर भी आत्मा स्वयं बाधित क्यों नहीं होता ? ।

एतत्संशयजातं मे हृदयग्रन्थिलक्षणम् ।
छिन्धि युक्तिमहाखड्गधारया कृपया गुरो ॥ ५८४ ॥

अन्वय और पदार्थ- (गुरो) हे गुरुदेव ! (मे) मेरे (हृदयग्रन्थिलक्षणम्) हृदयकी गाँठरूप (एतत्) इस (संशयजातम्) संदेहोंके समूहको (कृपया) कृपा करके (युक्तिमहाखड्गधारया) युक्तिरूप बड़ी भारी तलवारकी धारसे (छिन्धि) काट दीजिये ॥ ५८४ ॥

भावार्थ-हे गुरुदेव ! आप कृपा करके मेरे अन्तःकरण की गाँठरूप इन सकल सन्देहोंको युक्तिरूप बड़ीभारी तलवारकी धारसे काट दीजिये ॥ ५८४ ॥

गुरुरुवाच—

अतिसूक्ष्मतरः प्रश्नस्तवाऽयं सदृशो मतः ।
सूक्ष्मार्थदर्शनं सूक्ष्मबुद्धिष्वेव प्रदृश्यते ॥ ५८५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(गुरुः) गुरु (उवाच) बोले (अयम्) यह (अतिसूक्ष्मतरः) अत्यन्त ही सूक्ष्म (प्रश्नः) प्रश्न (तव) तेरे (सदृशः) तुल्य (मतः) मानागया है (सूक्ष्मबुद्धिषु एव) सूक्ष्मबुद्धियोंमें ही (सूक्ष्मार्थदर्शनम्) सूक्ष्म पदार्थ का ज्ञान (प्रदृश्यते) देखनेमें आता है ॥ ५८५ ॥

भावार्थ-गुरुदेवने उत्तर दिया, कि-यह अति-सूक्ष्म प्रश्न तेरे योग्य ही है, क्योंकि-सूक्ष्म-पदार्थका ज्ञान सूक्ष्मबुद्धि पुरुषोंमें ही देखनेमें आता है ॥ ५८५ ॥

शृणु वक्ष्यामि सकलं यद्यत्पृष्टं त्वयाऽधुना ।
रहस्यं परमं सूक्ष्मं ज्ञातव्यञ्च मुमुक्षुभिः ॥ ५८६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(त्वया) तूने (अधुना) इस समय (सूक्ष्मम्) दुरवगाह (च) और (मुमुक्षुभिः) मुमुक्षुओं करके (ज्ञातव्यम्) जानने योग्य (परमम्) श्रेष्ठ (रहस्यम्) तत्त्व (यत्, यत्) जो जो (पृष्टम्) पूछा है (सकलम्) सब (वक्ष्यामि) कहूँगा (शृणु) सुन ॥ ५८६ ॥

(भावार्थ)-हे शिष्य ! तूने इस समय सूक्ष्म और जिसको मुमुक्षु पुरुष भी जानना चाहते हैं ऐसा जो कुछ परम गुप्त तत्त्व पूछा है, उस सबको मैं कहता हूं, सुन—

शून्यवादनिरासः ।

बुद्ध्यादिसकलं सुप्तावनुलीनं स्वकारणे ।
अव्यक्ते वटवद्बीजे तिष्ठत्यविकृतात्मना ॥ ८७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सुप्तौ) सुषुप्तिकालमें (बीजे) बीजमें (वटवत्) वटके वृक्षकी समान (स्वकारणे) अपनी उपादान कारण (अव्यक्ते) मायामें (अनुलीनम्) लयको प्राप्त हुआ (बुद्ध्यादि) बुद्धि आदि (सकलम्) सब (अविकृतात्मना) अविकारीभावसे (तिष्ठति) स्थित होता है ॥ ५८७ ॥

(भावार्थ)-जैसे बीजमें बड़का वृक्ष अव्यक्तभावसे (दीखता नहीं इस प्रकारसे) रहता है, ऐसे ही सुषुप्तिके समय बुद्धि आदि सब पदार्थ अपनी उपादान कारण मायामें लीन होकर अविकारी अवस्थामें विद्यमान रहते हैं ॥ ५८७ ॥

तिष्ठत्येव स्वरूपेण न तु शून्यायते जगत् ।
क्वचिदंकुररूपेण क्वचिद्बीजात्मना वटः ॥
कार्यकारणरूपेण यथा तिष्ठत्यदस्तथा ॥ ८८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(जगत्) प्रपञ्च (स्वरूपेण) अपने रूपसे (तिष्ठति, एव) निश्चय ही स्थित रहता है (तु) किन्तु (शून्यायते, न) शून्य नहीं होजाता है (यथा) जैसे (वटः) वटवृक्ष (क्वचित्) कहीं (अंकुररूपेण) अंकुररूपसे (क्वचित्) कहीं (बीजात्मना) बीजरूपसे (तथा) तैसे ही (अदः) यह जगत् (कार्यकारणरूपेण) कार्य-कारण-रूपसे (तिष्ठति) स्थित रहता है ॥ ५८८ ॥

भावार्थ—जगत् अपने रूपमें विद्यमान रहता है, कभी भी शून्यरूपसे प्रतीत नहीं होता है । जैसे वड़का वृक्ष कहीं अंकुररूपमें रहता है तो कहीं बीजरूपमें स्थित रहता है, ऐसे ही यह जगत् कभी तो कार्य (व्यक्त) रूपमें और कभी कारण (अव्यक्त) रूपमें विद्यमान रहता है ॥ ५८८ ॥

अव्याकृतात्मनाऽवस्थां जगतो वदति श्रुतिः ।
सुषुप्त्यादिषु तद्भेदं तर्ह्यव्याकृतमित्यसौ ॥ ८९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तर्हि) तब [जगत्] प्रपञ्च (अव्याकृतम्) नाम रूपसे अप्रकट [आसीत्] था (इति) ऐसा (असौ) यह (श्रुतिः) श्रुति (अव्याकृतात्मना) अव्यक्त रूपसे (जगतः) जगत्के (अवस्थाम्) परिणामको (सुषुप्त्यादिषु) सुषुप्ति आदिके समय (तद्भेदम्) परिणामोंके भेदको (वदति) कहती है ॥

भावार्थ-यह जगत् उत्पत्तिसे पहले किसी नाम या रूपसे प्रकट नहीं था, यह श्रुति अव्याकृत कहिये स्पष्ट न दीखनेवाले रूपमें जगत्की अवस्थाको और सुषुप्ति आदिके समय उस अवस्थाके भेदोंको कहती है ॥

इममर्थमविज्ञाय निर्णीतं श्रुतियुक्तिभिः ।
जगतो दर्शनं शून्यमिति प्राहुरतद्विदः ॥ ५९० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अतद्विदः) इस तत्त्वको न जाननेवाले (इमम्) इस (अर्थम्) तात्पर्यको (अविज्ञाय) न जानकर (श्रुतियुक्तिभिः) वेद और तर्क के द्वारा (निर्णीतम्) निर्णय किये हुए (जगतः) जगत्के (दर्शनम्) ज्ञानको (शून्यम्) शून्य है (इति) ऐसा (प्राहुः) कहते हैं ॥ ५९० ॥

(भावार्थ)—जो जगत्की अव्यक्त अवस्थाके तत्त्वको नहीं जानते वे अज्ञानी पुरुष, इस अभिप्रायको न समझ कर श्रुति और युक्तियोंके द्वारा निर्णय किये हुए जगत्के सत्यत्वदर्शनको शून्य कहते हैं ॥ ५६० ॥

नासतः सत उत्पत्तिः श्रूयते न च दृश्यते ।
उदेति नरशृंगात् किं खपुष्पात् किं भविष्यति ॥६१॥

अन्वय और पदार्थ—(असतः) असत्से (सतः) सत्की (उत्पत्तिः) जन्म (न) नहीं (श्रूयते) सुनाजाता है (च) और (न) नहीं (दृश्यते) देखाजाता है (नरशृङ्गात्) मनुष्यके सींगसे (किम्) क्या (उदेति) जन्मता है (खपुष्पात्) आकाशके फूलसे (किम्) क्या (भविष्यति) होगा ॥ ५६१ ॥

भावार्थ—असत् (शून्य वा अवस्तु) से सत् (वस्तु) की उत्पत्ति न कहीं सुननेमें आती है और न कहीं देखनेमें आती है, मनुष्यके सींगसे क्या कुछ उत्पन्न होता है ? या आकाशके फूलसे क्या कुछ पदार्थ उत्पन्न होगा ? ॥५६१॥

प्रभवति नहि कुम्भोऽविद्यमानो मृदश्चेत्,
प्रभवतु सिकताया वाऽथवा वारिणो वा ।
न हि भवति च ताभ्यां सर्वथा क्वापि तस्मात्,
यत उदयति योऽर्थोऽस्त्यत्र तस्य स्वभावः ॥ ६२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(हि) निश्चय (अविद्यमानः) पहले नहीं था ऐसा (कुम्भः) घट (मृदः) मट्टीसे (न) नहीं (प्रभवति) उत्पन्न होता है (चेत्) यदि [एवं, भवेत्] ऐसा हो [तर्हि] तो (सिकतायाः) बालूसे (अथवा) या (वारिणः) जलसे (प्रभवतु) उत्पन्न होजाय (ताभ्याम्) उनसे (सर्वथा) सब प्रकार (क्वापि) कहीं भी (न हि) नहीं (भवति) होता है (तस्मात्) तिससे (यः) जो (अर्थः) पदार्थ (यतः) जिससे (उदयति) उत्पन्न होता है (अत्र) इसमें (तस्य) उसका (स्वभावः) स्वभाव (अस्ति) है ॥५६२॥

भावार्थ—घट यदि अव्यक्त भावसे मृत्तिकामें नहीं होता तो कभी भी मृत्तिका से उत्पन्न नहीं होता, यदि कारणमें न होकर ही उत्पन्न हुआ करता तो बालुका या जलसे भी उत्पन्न होजाना चाहिये था, बालुका या जलसे घटको उत्पन्न होता हुआ कहीं भी नहीं देखते, इसलिये जो (घट आदि) वस्तु जिस (मृत्तिका)से उत्पन्न होती है, उसमें उसका स्वभाव (शक्ति, अनागत-अवस्था) विद्यमान है ॥

अन्यथा विपरीतं स्यात्कार्यकारणलक्षणम् ।
नियतं सर्वशास्त्रेषु सर्वलोकेषु सर्वतः ॥९३॥

अन्वय और पदार्थ-(अन्यथा) यदि ऐसा न हो तो (विपरीतम्) कुछ का कुछ (स्यात्) होजाय (सर्वतः) सब समय (सर्वशास्त्रेषु) सब शास्त्रोंमें (सर्वलोकेषु) सब लोकोंमें (कार्यकारणलक्षणम्) कार्य और कारणका लक्षण (नियतम्) नियत है ॥ ५९३ ॥

भावार्थ-जिसमें जिस वस्तुका स्वभाव विद्यमान है वह उससे ही उत्पन्न होती है, यदि ऐसा न माना जाय तो विपरीत भाव होजाना चाहिये, अर्थात् मृत्तिकासे दही और दूधसे घड़ा उत्पन्न होजाना चाहिये, ऐसा नहीं होता है, किन्तु सब समय सब शास्त्र और सब लोकोंमें कार्य और कारणका स्वरूप नियममें बाँधा गया है अर्थात् मृत्तिकासे घट ही उत्पन्न होगा, दधि नहीं दूधसे दही ही उत्पन्न होगा, घट नहीं, ऐसा अटल नियम है ॥ ५९३ ॥

कथमसतः सज्जायेतेति श्रुत्या निषिध्यते ।
असतः सज्जननं नो घटते मिथ्यैव शून्यशब्दार्थः ॥५९४॥

अन्वय और पदार्थ-(असतः) शून्यसे (सत्) वस्तु (कथम्) कैसे (जायेत) उत्पन्न होजायगी (इति) इस प्रकार (श्रुत्या) श्रुति करके (निषिध्यते) निषेध कियाजाता है (असतः, एव) शून्यसे ही (सत्-जननम्) सत् वस्तुका उत्पन्न होना (न) नहीं (घटते) हो सकता है (शून्यशब्दार्थः) शून्य पदार्थ (मिथ्या, एव) मिथ्या ही है ॥ ५९४ ॥

भावार्थ-असत् (शून्य) से सत् (वस्तु) की उत्पत्ति कैसे होजायगी, इसप्रकार श्रुति असत्से सत्की उत्पत्तिका निषेध करती है, इसलिये असत्से सत् वस्तुकी उत्पत्ति नहीं होसकती, शून्य नामक पदार्थ तो मिथ्या है अर्थात् कुछ है ही नहीं ॥ ५९४ ॥

अव्यक्तशब्दिते प्राज्ञे सत्यात्मन्यत्र जाग्रति ।
कथं सिध्यति शून्यत्वं तस्य भ्रान्तशिरोमणे ॥ ५९५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(भ्रान्तशिरोमणे) हे अज्ञानियोंके शिरोभूषण (अत्र) यहां—सुषुप्तिकालमें (अव्यक्तशब्दिते) अव्यक्त नामवाले (प्राज्ञे) जीवात्माके (जाग्रति) जागने पर (तस्य) उसका (शून्यत्वम्) शून्य होना (कथम्) कैसे (सिध्यति) सिद्ध होता है ॥ ५९५ ॥

भावार्थ-हे अज्ञानियोंके शिरोमणे! सुषुप्तिकालमें अव्यक्त नामवाला साक्षी (जीवात्मा) जागता हुआ विद्यमान होता है, फिर उसको शून्य (मिथ्या-कुछ है ही नहीं ऐसा) कैसे कहाजा सकता है ? ॥ ५६५ ॥

सुषुप्तौ शून्यमेवेति केन पुंसा तवेरितम् ।
हेतुनाऽनुमितं केन कथं ज्ञातं त्वयोच्यताम् ॥ ५६६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सुषुप्तौ) सुषुप्तिके समय (शून्यम्, एव) शून्य ही [भवति] होता है (इति) यह (केन) किस (पुंसा) पुरुषने (तव) तुझ को (ईरितम्) कही है (त्वया) तूने (केन) किस (हेतुना) हेतुसे (अनुमितम्) अनुमान किया है (कथम्) कैसे (ज्ञातम्) जाना है (उच्यताम्) कहना चाहिये ॥ ५६६ ॥

भावार्थ-सुषुप्तिके समय केवल शून्य ही होता है, यह बात तुझसे किसने कही है ? तूने कौनसे हेतुसे अनुमान किया है और कैसे जाना है ? यह बता ५६६

इति पृष्टो मूढतमो वदिष्यति किमुत्तरम् ।
सुषुप्तिस्थितशून्यस्य बोद्धा कोन्वात्मनः परः ॥
नैवानुरूपकं लिंगं वक्ता वा नास्ति कश्चन ॥ ५६७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इति) इसप्रकार (पृष्टः पूछा हुआ (मूढतमः) अतिमूढ़ पुरुष (किम्) क्या (उत्तरम्) उत्तर (वदिष्यति) कहेगा (अनुरूपकम्) अनुकूल (लिङ्गम्) हेतु (नैव) कदापि नहीं [अस्ति] है (वा) अथवा (कश्चन) कोई (वक्ता) कहनेवाला (न) नहीं (अस्ति) है (सुषुप्तिस्थित शून्यस्य) सुषुप्ति कालमें विद्यमान शून्यका (बोद्धा) जानने वाला (आत्मनः) आत्मासे (परः) अन्य (कः, नु) कौन [अस्ति] है ॥ ५६७ ॥

भावार्थ-इसप्रकार पूछने पर अति मूढ़ मनुष्य क्या उत्तर देगा ? कोई अनुकूल हेतु नहीं है अथवा ऐसा कोई बतानेवाला भी नहीं है, सुषुप्तिकालमें विद्यमान शून्यका ज्ञाता आत्माके सिवाय और कौन होसकता है ॥ ५६७ ॥

स्वेनात्मभूतं स्वयमेव वक्ति,
सुषुप्तिकाले स्थितशून्यभावम् ।

तत्र स्वसत्तामनवेद्य मूढः
स्वस्यापि शून्यत्वमथं ब्रवीति ॥ ५९८ ॥

अन्वय और पदार्थ-[जनः] प्राणी (सुषुप्तिकाले) सुषुप्तिके समय (स्वेन) अपने (अनुभूतम्) अनुभव कियेहुए (स्थितशून्यभावम्) विद्यमान शून्यभाव को (स्वयं, एव) अपने आप ही (वक्ति) कहता है (तत्र) उस समय (अयम्) यह (मूढः) मूर्ख (स्वस्य, अपि) अपने भी (सत्ताम्) अस्तित्वको (अनवेद्य) न देख कर (शून्यत्वम्) शून्यरूपत्वको (ब्रवीति) कहता है ॥ ५९८ ॥

भावार्थ-प्राणी अपने सुषुप्तिकालमें स्वयं जो कुछ अनुभव करता है उसको ही विद्यमान शून्यभाव कहता है, उस समय अज्ञानी मनुष्य अपने अस्तित्वको भी नहीं जान पाता, इसलिये केवल शून्यकी ही बात कहता है। तात्पर्य यह है, कि-शून्यवादियोंका कथन है, कि-सुषुप्तिकालमें केवल शून्य ही रहता है, इसलिये शून्य ही आत्मा है। परन्तु सुषुप्तिके समय शून्य ही रहता है अर्थात् कुछ रहता ही नहीं, इस बातका जो अनुभव करता है वह तो शून्यसे भिन्न है, उस शून्य का अनुभव करने वालेको ही आत्मा कहना चाहिये। मूढ़ पुरुष बुद्धि आदिके अभावको देख कर कहता है, कि—केवल शून्य ही रहता है, परन्तु उसका अनुभव करनेवालेको नहीं जान पाता, वह शून्यका अनुभव करनेवाला ही आत्मा है ॥ ५९८ ॥

अवेद्यमानः स्वयमन्यलोकैः
सौषुप्तिकं धर्ममवैति साक्षात्।
बुद्ध्याद्यभावस्य च योऽत्र बोद्धा,
स एव आत्मा खलु निर्विकारः॥ ५९९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अन्यलोकैः) दूसरे लोगों करके (अवेद्यमानः) जाननेमें न आनेवाला [आत्मा] आत्मा (स्वयम्) अपने आप (साक्षात्) प्रत्यक्षरूपसे (सौषुप्तिकम्) सुषुप्तिकालकी (धर्मम्) अवस्थाको (अवैति) जानता है (अत्र) इस सुषुप्तिकालमें (यः च) जो कोई (बुद्ध्यभावस्य) बुद्धि आदिके अभावका जाननेवाला है (सः, एव) वह ही (खलु) निश्चय (निर्विकारः) विकार-शून्य आत्मा है ॥ ५९९ ॥

भावार्थ-दूसरे लोग उस आत्माको नहीं जानसकते परन्तु वह सुषुप्तिकाल की अवस्थाको प्रत्यक्षरूपसे जानता है जो सुषुप्तिकालमें बुद्धि आदिके अभावका अनुभव करता है वह ही निर्विकार आत्मा है ॥ ५९९ ॥

यस्येदं सकलं विभाति महसा तस्य स्वयञ्ज्योतिषः,
सूर्यस्येव किमस्ति भासकमिह प्रज्ञादि सर्वं जडम् ।
न ह्यर्कस्य विभासकं क्षितितले दृष्टं तथैवात्मनो,
नान्यः कोऽप्यनुभासकोऽनुभविता नातः परः कश्चन ॥

अन्वय और पदार्थ-(यस्य) जिसके (महसा) तेजके द्वारा (इदम्) यह (सकलम्) सब (विभाति) प्रकाशित होता है (स्वयंज्योतिषः) स्वयंप्रकाशरूप (तस्य) उसका (सूर्यस्य, इव) सूर्य की समान (इह) जगत्में (किम्) क्या (भासकम्) प्रकाशक (अस्ति) है (प्रज्ञादि) बुद्धि आदि (सर्वम्) सब (जडम्) अचेतन है (हि) क्योंकि (क्षितितले) भूतल पर (अर्कस्य) सूर्यका (विभासकम्) प्रकाशक (न) नहीं (दृष्टम्) देखा है (तथा, एव) तैसे ही (आत्मनः) आत्माका (अन्यः) दूसरा (कोऽपि) कोई भी (अनुभासकः) प्रकाशक (न) नहीं है (अतः) इससे (परः) अन्य (कश्चन) कोई (अनुभविता) अनुभव करनेवाला (न) नहीं [अस्ति] है ॥ ६०० ॥

भावार्थ-जिसके तेजसे यह दृश्यमान सब जगत् प्रकाशित होरहा, सूर्यकी समान स्वयंप्रकाश उस आत्माका प्रकाशक क्या कोई और हो सकता है? बुद्धि आदि सब ही वस्तु जड़ हैं, उनका प्रकाशक एकमात्र आत्मा ही है, भूतल पर जैसे सूर्य को प्रकाशित करनेवाला कोई देखनेमें नहीं आता, ऐसे ही आत्माका भी कोई प्रकाशक नहीं है और आत्माके सिवाय अनुभव करनेवाला भी कोई नहीं है ॥

येनानुभूयते सर्वं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।
विज्ञातारमिमं को नु कथं वेदितुमर्हति ॥ ६०१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(येन) जिस करके (जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु) जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्तिकालमें (सर्वम्) सब (अनुभूयते) अनुभव किया जाता है (कः, नु) कौन (इमम्) इस (विज्ञातारम्) जाननेवालेको (कः) कौन (कथम्) कैसे (वेदितुम्) जाननेको (अर्हति) योग्य होता है ॥ ६०१ ॥

भावार्थ—जो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिके समय सकल वस्तुओंका अनुभव करता है उस ज्ञाताका कौन कैसे अनुभव कर सकता है ? ॥ ६०१ ॥

सर्वस्य दाहको वह्निर्वह्नेर्नान्योऽस्ति दाहकः ।
यथा तथात्मनो ज्ञातुर्ज्ञाता कोऽपि न दृश्यते ॥ ६०२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यथा) जैसे (वह्निः) अग्नि (सर्वस्य) सबका (दाहकः) जलानेवाला है (वह्नेः) अग्निका (दाहकः) जलानेवाला (अन्यः) और (न) नहीं (अस्ति) है (तथा) तैसे ही (ज्ञातुः) जाननेवाले (आत्मनः) आत्माका (ज्ञाता) जानने वाला (कोऽपि) कोई भी (न) नहीं (दृश्यते) दीखता है ॥ ६०२ ॥

भावार्थ—जैसे अग्नि सब वस्तुओंको जलाता है, परन्तु अग्निको जलानेवाला दूसरा कोई नहीं है, ऐसे ही आत्मा सबका ज्ञाता है परन्तु आत्माका ज्ञाता दूसरा कोई भी नहीं है ॥ ६०२ ॥

उपलभ्येत केनाऽयं ह्युपलब्धा स्वयं ततः ।
उपलब्ध्यन्तराभावान्नायमात्मोपलभ्यते ॥ ६०३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अयम्) यह (केन) किस करके (उपलभ्येत) जानाजाय (हि) क्योंकि (स्वयम्) अपने आप (उपलब्धा) ज्ञाता है (ततः) तिससे (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (उपलब्ध्यन्तराभावात्) अन्य उपलब्धि के न होने से (न) नहीं (उपलभ्यते) जानाजाता है ॥ ६०३ ॥

भावार्थ—इस आत्माको कौन जाने ? क्योंकि-आत्मा स्वयं ही ज्ञाता है, इस लिये जाननेकी वस्तु कोई और न होनेसे आत्मा किसीके ज्ञानका विषय नहीं है ॥

बुद्ध्यादिवेद्यविलयादयमेक एव
सुप्तौ न पश्यति शृणोति न वेत्ति किञ्चित् ।
सौषुप्तिकस्य तमसः स्वयमेव साक्षी
भूत्वाऽत्र तिष्ठति सुखेन च निर्विकल्पः ॥ ६०४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अयम्) यह (एकः) एक (बुद्ध्यादिवेद्यविलयात्) बुद्धि आदि जानने योग्य वस्तुका लय होनेसे (सुप्तौ) सुषुप्तिके समय (किञ्चित्) कुछ (न) नहीं (पश्यति) देखता है [न] नहीं (शृणोति) सुनता है (न) नहीं

(वेत्ति) जानता है (अत्र) इस अवस्थामें (सौषुप्तिकस्य) सुषुप्ति अवस्थाके (तमसः) अज्ञानका (स्वयम् , एव) आप ही (साक्षी) द्रष्टा (भूत्वा) होकर (निर्विकल्पः) संकल्प-विकल्प-रहित [सन्] होता हुआ (सुखेन) सुखसे (तिष्ठति) स्थित रहता है॥ ६०४ ॥

भावार्थ—सुषुप्तिके समय बुद्धि, मन, देह, इन्द्रिय आदि अपने २ कारणमें लीन होजाते हैं, इसलिये अकेला आत्मा ही होता है, वह न कुछ देखता है, न सुनता है, न जानता है, इस अवस्थामें आत्मा स्वयं सुषुप्तिकालके अज्ञानका साक्षी होकर सङ्कल्प विकल्पसे शून्य होता हुआ सुखसे रहता है॥ ६०४ ॥

सुषुप्तावात्मसद्भावे प्रमाणं पण्डितोत्तमाः ।
विदुः स्वप्रत्यभिज्ञानमाबालवृद्धसम्मतम् ॥६०५॥

अन्वय और पदार्थ—(पण्डितोत्तमाः) श्रेष्ठ पण्डित (सुषुप्तौ) सुषुप्तिके समय (आत्मसद्भावे) आत्माके अस्तित्वमें (आबालवृद्धसम्मतम्) बालकसे लेकर वृद्धपर्यंत अभिमत (स्वप्रत्यभिज्ञानम्) अपने प्रत्यभिज्ञानको (प्रमाणम्) प्रमाण (विदुः) जानते हैं॥ ६०५ ॥

भावार्थ—प्रधान २ विद्वान् सुषुप्तिके समय आत्माके अस्तित्वमें बालकसे लेकर वृद्ध तकको जिसका अनुभव होता है ऐसे प्रत्यभिमान (जो मैं देख रहा था वही मैं स्पर्श कर रहा हूँ ऐसे अबाधित ज्ञान) का प्रमाण देते हैं॥ ६०५ ॥

प्रत्यभिज्ञायमानत्वाल्लिंगमात्रानुमापकम् ।
स्मर्यमाणस्य सद्भावः सुखमस्वाप्समित्ययम् ॥ ६०६ ॥

अन्वय और पदार्थ-[आत्मनः] आत्माके (प्रत्यभिज्ञायमानत्वात्) निरन्तर ज्ञायमान होनेसे [आत्मतत्त्वम्] आत्मस्वरूप (लिङ्गमात्रानुमापकम्) हेतुमात्रके द्वारा अनुमान करानेवाला [अहम्] मैं (सुखम्) सुखपूर्वक (अस्वाप्सम्) सोया (इति) इसप्रकार (स्मर्यमाणस्य) स्मरण कियेजाते हुए पदार्थका (अयम्) यह (सद्भावः) अस्तित्व [ज्ञायते] जानाजाता है॥ ६०६ ॥

भावार्थ-आत्माका प्रत्यभिमान अर्थात् जो मैं देख रहा था वही मैं स्पर्श कर रहा हूँ ऐसा स्मरण होता है, इस कारणसे आत्माका अनुमान किया जाता है। मैं सुखपूर्वक सोया, इसप्रकार स्मरण कीहुई वस्तुका अस्तित्व जाननेमें आता है॥

पुराऽनुभूतो नो चेत्तु स्मृतेरनुदयो भवेत् ।
इत्यादितर्कयुक्तिश्च सद्भावे मानमात्मनः ॥ ६०७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(चेत्) जो (पुरा) पहले (अनुभूतः) अनुभव किया हुआ (नो) नहीं [भवेत्] हो [तर्हि] तब तो (स्मृतेः) स्मृतिका (अनुदयः) अनुत्पत्ति (भवेत्) होय (इत्यादितर्कयुक्तिः, च) ऐसे तर्ककी योजना भी (आत्मनः) आत्माके (सद्भावे) होनेमें (मानम्) प्रमाण है ॥ ६०७ ॥

भावार्थ-यदि पहले आत्माका अनुभव न होता, तो कभी भी उसकी स्मृति नहीं होती, इस तर्ककी योजनासे भी आत्माका सद्भाव सिद्ध होता है ॥६०७॥

यत्रात्मनोऽकामयितृत्वबुद्धिः, स्वप्नानपेक्षाऽपि च तत् सुषुप्तम् ।
इत्यात्मसद्भाव उदीर्यतेऽत्र श्रुत्याऽपि तस्माच्छ्रुतिरत्र मानम् ६०८

अन्वय और पदार्थ—(यत्र) जिस अवस्थामें (आत्मनः) आत्माकी (अकामयितृत्वबुद्धिः) कामनावान् होनेकी बुद्धि नहीं [भवति] होती है (अपि च) और (स्वप्नानपेक्षा) स्वप्नकी अपेक्षा नहीं [भवति] होती है (तत्) वह (सुषुप्तम्) सुषुप्ति अवस्था है (इति) इसप्रकार (श्रुत्या, अपि) श्रुति करके भी (अत्र) इस सुषुप्तिकालमें (आत्मसद्भावः) आत्माका होना (उदीर्यते) कहाजाता है (तस्मात्) तिससे (अत्र) इस विषयमें (श्रुतिः) वेद (प्रमाणम्) प्रमाण है ॥

भावार्थ-जिस अवस्थामें आत्मामें कामना करनेकी बुद्धि नहीं होती और आत्मा स्वप्न भी नहीं देखता, उसको सुषुप्ति कहते हैं, इसप्रकार श्रुतिने भी सुषुप्तिमें आत्माका अस्तित्व माना है, इसलिये आत्माके अस्तित्वमें वेदका भी प्रमाण है ॥

अकामयितृता स्वप्नादर्शनं घटते कथम् ।
अविद्यमानस्य तत आत्मास्तित्वं प्रतीयते ॥ ६०९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अविद्यमानस्य) अविद्यमानकी (अकामयितृता) कामना करनेवाला न होना (स्वप्नादर्शनम्) स्वप्न न देखना (कथम्) कैसे (घटते) हो सकता है ? (ततः) तिससे (आत्मास्तित्वम्) आत्माका होना (प्रतीयते) प्रतीत होता है ॥ ६०९ ॥

(भावार्थ)-श्रुतिमें कहा है, कि-सुषुप्तिकालमें आत्मा न कुछ कामना करता है, न स्वप्न देखता है, यदि सुषुप्तिकालमें आत्मा है ही नहीं तो उसके लिये निषेध

कैसा ? इसलिये जब श्रुतिने सुषुप्तिकालमें आत्माका अकामयितृत्व और स्वप्न न देखना कहा है तो उस समय आत्माका अस्तित्व सिद्ध है ॥ ६०९ ॥

एतैः प्रमाणैरस्तीति ज्ञातः साक्षितया बुधैः ।
आत्माऽयं केवलः शुद्धः सच्चिदानन्दलक्षणः ॥ ६१० ॥

अन्वय और पदार्थ-(बुधैः) पण्डितोंने (एतैः) इन (प्रमाणैः) प्रमाणों के द्वारा (केवलः) अद्वितीय (शुद्धः) शुद्ध (सच्चिदानन्दलक्षणः) सत्-चित्-आनन्दस्वरूप (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (साक्षितया) साक्षीरूप से (अस्ति) है (इति) इसप्रकार (ज्ञातः) जाना है ॥ ६१० ॥

(**भावार्थ**)—पण्डितोंने इन सब प्रमाणोंके द्वारा अद्वितीय शुद्ध, सच्चिदानन्दस्वरूप साक्षिभूत आत्माके अस्तित्व को जान लिया है ॥ ६१० ॥

सत्त्वचित्त्वानन्दतादिलक्षणं प्रत्यगात्मनः ।
कालत्रयेऽप्यबाध्यत्वं सत्यं नित्यस्वरूपतः ॥ ६११ ॥
शुद्धचैतन्यरूपत्वं चित्त्वं ज्ञानस्वरूपतः ।
अखण्डसुखरूपत्वादानन्दत्वमितीर्यते ॥ ६१२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सत्त्वचित्त्वानन्दतादि) सत्स्वरूपता, चित्स्वरूपता और आनन्दरूपता (प्रत्यगात्मनः) व्यापक आत्माका (लक्षणम्) लक्षण है (नित्यस्वरूपतः) सदा स्वरूपमें विद्यमान रहनेसे (कालत्रये, अपि) तीनों काल में भी (अबाध्यत्वम्) बाधारहित होना (सत्यम्) सत्यस्वरूपता (ज्ञानस्वरूपतः) ज्ञानस्वरूप होनेके कारण (शुद्धचैतन्यरूपत्वम्) केवल चेतनरूपता (चित्त्वम्) चैतन्यरूपता (अखण्डसुखरूपत्वात्) पूर्णसुखस्वरूप होनेके कारण (आनन्दत्वम्) आनन्दरूपता [अस्ति] है (इति) ऐसा (ईर्यते) कहाजाता है ११-१२

भावार्थ-सत्स्वरूपता, ज्ञानस्वरूपता और आनन्दस्वरूपता आत्माका लक्षण है, वह सर्वदा अपने स्वरूपमें ही रहता है, इसलिये भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों कालमें बाधारहित एकरस रहता है, इसलिये ही सत्य कहलाता है, ज्ञानरूपमें स्थित होनेके कारण शुद्धचैतन्यलक्षण चित्स्वरूप और अखण्ड सुखरूप होनेसे आनन्दस्वरूप कहलाता है ॥ ६११-६१२ ॥

अनुस्यूतात्मनः सत्ता जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।
अहमस्मीत्यतो नित्यो भवत्यात्माऽयमव्ययः ॥ ६१३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु) जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थामें (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ (इति) इसप्रकार (आत्मनः) आत्माका (सत्ता) अस्तित्व (अनुस्यूता) अनुगत है (अतः) इसकारण (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (नित्यः) अविनाशी (अव्ययः) विकाररहित (भवति) होता है ॥ ६१३ ॥

भावार्थ-जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिके समय, "मैं हूं" ऐसा आत्माका अस्तित्व निरन्तर पुरा हुआ रहता है, अतः यह आत्मा नित्य है, इसमें कभी विकार नहीं आता है ॥ ६१३ ॥

सर्वदाप्यासामित्येवाऽभिन्नप्रत्यय ईक्ष्यते ।
कदापि नाऽसमित्यस्मादात्मनो नित्यता मता ॥ ६१४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वदा, अपि) सब समय ही (आसम्) था (इति) इसप्रकार (अभिन्नप्रत्ययः, एव) अभिन्नताका ज्ञान ही (ईक्ष्यते) देखनेमें आता है (कदापि) कभी भी (न) नहीं (आसम्) था (इति) ऐसा [प्रत्ययः] ज्ञान [न] नहीं [ईक्ष्यते] देखनेमें आता है (अस्मात्) इससे (आत्मनः) आत्माकी (नित्यता) अविनाशिता (मता) मानी गयी है ॥ ६१४ ॥

भावार्थ-'मैं था' ऐसा अभिन्न ज्ञान सदा ही देखनेमें आता है, 'मैं नहीं था' ऐसा ज्ञान कभी देखनेमें नहीं आता, इसलिये ही आत्माको नित्य मानागया है ॥

आयातासु गतासु शैशवमुखावस्थासु जाग्रन्मुखा-
स्वन्यास्वप्यखिलासु वृत्तिषु धियो दुष्टास्वदुष्टास्वपि ।
गङ्गाभङ्गपरम्परासु जलवत्सत्तानुवृत्तात्मन-
स्तिष्ठत्येव सदा स्थिराऽयमहमित्येकात्मता साक्षिणः ६१५

अन्वय और पदार्थ-(शैशवमुखावस्थासु) बालकपन आदि अवस्थाओंमें (अन्यासु) दूसरी (जाग्रन्मुखासु) जाग्रत् आदि अवस्थाओंमें (अपि) भी (दुष्टासु) बुरी (अदुष्टासु) अच्छी (धियः) बुद्धि की (अखिलासु) सकल (वृत्तिषु, अपि) अवस्थाओं में भी (गङ्गाभङ्गपरम्परासु) गङ्गाजी तरङ्गमालामें

(जलवत्) जलकी समान (आत्मनः) आत्माकी (अनुवृत्ता) अनुगत (सत्ता) अस्तिता (तिष्ठति, एव) निश्चय ही रहती है (अयम्) यह (अहम्) मैं (इति) इसप्रकार (साक्षिणः) साक्षीकी (एकात्मता) अभिन्नता (सदा) सर्वदा (स्थिरा) एक रूपसे स्थित [अस्ति] है ॥ ६१५ ॥

भावार्थ – गङ्गाकी तरङ्गपरम्परामें जैसे जल अनुस्यूत होता है, एक ही जल बराबर बहाहुआ होता है, ऐसे बालक जवानी और बुढ़ापेकी अवस्थामें तथा जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थामें एवं भली बुरी बुद्धिकी वृत्तियोंमें आत्माका अस्तित्व पुराहुआ है, यह मैं इस कामको करता हूँ, यह मैं इसको देखता हूं, इसप्रकार साक्षीकी एकरूपता बराबर बनी रहती है ॥ ६१५ ॥

प्रतिपदमहमादयो विभिन्नाः क्षणपरिणामितया विकारिणस्ते ।
न परिणतिरस्य निष्कलत्वादयमपिकार्यत एव नित्य आत्मा ६१६

अन्वय और पदार्थ–(अहमादयः) अहं आदि (प्रतिपदम्) प्रत्येक विषय में (विभिन्नाः) पृथक् २ [सन्ति] हैं (ते) वे (क्षणपरिणामितया) प्रत्येक क्षणमें अवस्था बदलजाने के कारण (विकारिणः) विकारवाले [सन्ति] हैं (निष्कलत्वात्) निरवयव होनेसे (अमुष्य) इस आत्माका (परिणतिः) परिणाम (न) नहीं [अस्ति] है (अतएव) इसलिये ही (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (अविकारी) विकारको प्राप्त न होनेवाला (नित्यः) नित्य [अस्ति] है ६१६

भावार्थ–प्रत्येक वस्तुमें अहङ्कार आदि अलग २ होते हैं अर्थात् पदार्थके भेदसे अहङ्कार आदिमें भी भेद होता है, प्रतिक्षणमें उनकी अवस्था बदलती रहती हैं, इसकारण वे विकारी हैं, आत्माका कोई अंश नहीं है, इसलिये आत्माका परिणाम भी नहीं होता है, इसीसे आत्मा अविकारी और नित्य है ॥६१६ ॥

यः स्वप्नमद्राक्षमहं सुखं योऽस्वाप्सं स एवाऽस्म्यथ जागरूकः ।
इत्येवमच्छिन्नतयाऽनुभूयते, सत्ताऽऽत्मनो नास्ति हि संशयोऽत्र ६१७

अन्वय और पदार्थ–(यः) जो (अहम्) मैं (स्वप्नम्) स्वप्नको (अद्राक्षम्) देखता हुआ (यः) जो [अहम्] मैं (सुखम्) सुखसे (अस्वाप्सम्) सोया (अथ) फिर (सः, एव) वह ही (जागरूकः) जागताहुआ (अस्मि) हूं (इत्येवम्) इसप्रकार (अच्छिन्नतया) निरन्तरभावसे (आत्मनः) आत्मा का (सत्ता) अस्तित्व (अनुभूयते) अनुभवमें आता है (हि) निश्चय (अत्र) इस विषयमें (संशयः) सन्देह (न) नहीं (अस्ति) है ॥ ६१७ ॥

भावार्थ-जो मैं स्वप्न देख रहा था, जो मैं सुखसे सो रहा था, वही मैं अब जाग रहा हूं, इसप्रकार निरन्तर रूपसे आत्माका अस्तित्व अनुभवमें आता है, इस आत्माके होनेमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ६१७ ॥

श्रुत्युक्ताः षोडशकलाश्चिदाभासस्य नात्मनः ।
निष्कलत्वान्नास्य लयस्तस्मान्नित्यत्वमात्मनः ॥ ६१८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(श्रुत्युक्ताः) श्रुतिमें कही हुई (षोडशकलाः) सोलह कलायें (चिदाभासस्य) चित्प्रतिविम्बकी [भवन्ति] होती हैं (आत्मनः) आत्मा की (न) नहीं (अस्य) इस आत्माका (निष्कलत्वात्) निरवयव होनेसे (लयः) लय (न) नहीं है (तस्मात्) तिससे (आत्मनः) आत्माका (नित्यत्वम्) नित्यपना [अस्ति] है ॥ ६१८ ॥

भावार्थ-आत्मा निरवयव है, इसलिये नित्य है, परन्तु श्रुतिमें तो आत्माकी प्राण मन आदि सोलह कला बतायी हैं, फिर तुम आत्माको निष्कल कैसे कहते हो ? इसके उत्तरमें कहते हैं, कि-श्रुतिमें जो सोलह कलाओंका वर्णन आया है, वे सोलह कला चिदाभासप्रतिविम्बित चैतन्य की हैं, आत्माका तो निरवयव होने के कारण कभी लय नहीं होता, इसलिये आत्माका नित्यत्व सिद्ध है ॥ ६१८ ॥

जडप्रकाशकः सूर्यः प्रकाशात्मैव नो जडः ।
बुद्ध्यादिभासकस्तस्माच्चित्स्वरूपस्तथा मतः ॥ ६१९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(जडप्रकाशकः) जड़ पदार्थोंका प्रकाशक (सूर्यः) सूर्य (प्रकाशात्मा, एव) प्रकाशस्वरूप ही है (जडः) जड़ (नो) नहीं है (तस्मात्) तिससे (बुद्ध्यादिभासकः) बुद्धि आदिका प्रकाशक है (तथा) तैसे ही (चित्स्वरूपः) चैतन्यस्वरूप (मतः) माना गया है ॥ ६१९ ॥

भावार्थ-घट पट आदि जड़ पदार्थोंका प्रकाशक सूर्य प्रकाशस्वरूप है, अचेतन नहीं है इसलिये बुद्धि आदिका प्रकाशक चैतन्यस्वरूप आत्मा भी जड़ नहीं है ॥

कुड्यादेस्तु जडस्य नैव घटते भानं स्वतः सर्वदा,
सूर्यादिप्रभया विना क्वचिदपि प्रत्यक्षमेतत्तथा ।
बुद्ध्यादेरपि न स्वतोऽस्त्यणुरपि स्फूर्तिर्विनैवात्मना,
सोऽयं केवलचिन्मयः श्रुतिमतो भानुर्यथा रुङ्मयः ६२०

अन्वय और पदार्थ—(तु) किन्तु (कुड्यादेः) दीवार आदि (जड़स्य) जड़ वस्तुका (स्वतः) स्वयं (भानम्) प्रकाश (नैव) कदापि नहीं (घटते) होसकता है [यथा] जैसे (एतत्) यह दीवार आदि (सर्वदा) सब समय (सूर्यादिप्रभया, विना) सूर्य आदिके प्रकाशके विना (क्वचिदपि) कहीं भी (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष [न] नहीं [भवति] होता है (तथा) तैसे ही (आत्मना, विना) आत्माके विना (बुद्ध्यादेः, अपि) बुद्धि आदिका भी (अणुः अपि) ज़रासा भी (स्फूर्त्तिः) प्रकाश (स्वतः) स्वयम् (न, एव) कदापि नहीं [भवति] होता है (यथा) जैसे (भानुः) सूर्य (रुङ्मयः) कान्तिमय है [तथा] तैसे ही (सः) वह (अयम्) यह (केवलचिन्मयः) केवल ज्ञानस्वरूप (श्रुतिमतः) वेद के द्वारा माना गया है ॥ ६२० ॥

भावार्थ—जैसे दीवार आदि अचेतन पदार्थोंका स्वभावसे अपने आप प्रकाश नहीं होता है, सर्वदा सूर्य आदिकी किरणोंके विना कहीं प्रत्यक्ष होता ही नहीं, ऐसे ही बुद्धि आदि आत्माके विना स्वभावसे ज़रा भी प्रकाशित नहीं होते, जैसे सूर्य प्रकाशस्वरूप है तैसे ही श्रुति इस आत्माको भी केवल ज्ञानस्वरूप ही मानती है ॥

स्वभासने वाऽन्यपदार्थभासने
नार्कः प्रकाशान्तरमीषदिच्छति ।
स्वबोधने वाऽप्यहमादिबोधने ।
तथैव चिद्धातुरयं परात्मा ॥ ६२१ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अर्कः) सूर्य (स्वभासने) अपने प्रकाशनमें (वा) अथवा (अन्यपदार्थभासने) दूसरे पदार्थके प्रकाशनमें (ईषत्) ज़रा भी (प्रकाशान्तरम्) दूसरे प्रकाशको (न) नहीं (इच्छति) चाहता है (अयम्) यह (चिद्धातुः) ज्ञानस्वरूप (परात्मा) परमात्मा (स्वबोधने) अपने बोधनमें (वा) अथवा (अहमादिबोधने, अपि) अहङ्कार आदिके ज्ञापनमें भी (तथा, एव) तैसा ही [अस्ति] है ॥ ६२१ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य अपनेको प्रकाशित करनेमें अथवा अन्य पदार्थोंको प्रकाशित करनेमें किसी दूसरे प्रकाशकी ज़रा भी अपेक्षा नहीं रखता है, ऐसे ही चैतन्यस्वरूप परमात्मा अपने बोधन (ज्ञानजनन) में अथवा अहङ्कार आदिके बोधनमें किसीकी भी अपेक्षा नहीं करता है ॥ ६२१ ॥

अन्यप्रकाशं न किमप्यपेक्ष्य यतोऽयमाभाति निजात्मनैव।
ततः स्वयंज्योतिरयं चिदात्मा न ह्यात्मभाने परदीप्त्यपेक्षा ६२२

अन्वय और पदार्थ-(यतः) क्योंकि (अयम्) यह आत्मा (किमपि) किसी भी (अन्यप्रकाशम्) दूसरे प्रकाशको (अनपेक्ष्य) अपेक्षा न करके (निजात्मनः, एव) अपने स्वरूपसेही (आभाति) प्रकाशित होता है (ततः) तिस से (अयम्) यह (चिदात्मा) ज्ञानस्वरूप आत्मा (स्वयंज्योतिः) स्वयंप्रकाश है (हि) निश्चय [अस्य] इसका (आत्माने) अपने प्रकाश व ज्ञानमें (परदीप्त्यपेक्षा) दूसरेके प्रकाशकी अपेक्षा [न] नहीं [अस्ति] है ॥ ६२२ ॥

भावार्थ-क्योंकि-आत्मा दूसरे किसी प्रकाशकी अपेक्षा न करके अपने स्वरूपमें प्रकाशित रहता है, इसलिये यह आत्मा स्वयंप्रकाश है और निःसन्देह इसको अपने प्रकाशके लिये दूसरे प्रकाशकी आवश्यकता नहीं है ॥ ६२२ ॥

यं न प्रकाशयति किञ्चिदिनोऽपि चन्द्रो,
नो विद्युतः किमुत वह्निरयं मिताभः।
यं भान्तमेतमनुभाति जगत् समस्तं
सोऽयं स्वयं स्फुरति सर्वदशासु चात्मा ॥ ६२३॥

अन्वय और पदार्थ-(इनः) सूर्य (अपि) और (चन्द्रः) चन्द्रमा (यम्) जिसको (किञ्चित्) जरा भी (न) नहीं (प्रकाशयति) प्रकाशित करता है (विद्युतः) बिजलियें (नो) नहीं प्रकाशित करती हैं (मिताभः) थोड़े प्रकाश वाला (अयम्) यह (वन्हिः) अग्नि (किमुत) क्या प्रकाशित करेगा (भान्तम्) प्रकाशित होते हुए (यं अनु) जिसके पीछे (एतत्) यह समस्तम्) सब (जगत्) संसार (भाति) प्रकाशित होता है (सः) वह (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (सर्वदशासु) सब दशाओंमें (स्फुरति) प्रकाशित होता है ॥ ६२३ ॥

भावार्थ-सूर्य, चन्द्रमा और बिजली जिसको प्रकाशित नहीं करसकते उसको यह थोड़ेसे तेजवाला अग्नि भला कैसे प्रकाशित कर सकता है? जिस प्रकार स्वरूप आत्माके प्रकाशको लेकर यह सब जगत् प्रकाशित होरहा है वह आत्मा सब अवस्थाओंमें स्वयंप्रकाश रहता है ॥ ६२३ ॥

आत्मन आनन्दत्व-निरूपणम्

आत्मनः सुखरूपत्वादानन्दत्वं स्वलक्षणम् ।
परप्रेमास्पदत्वेन सुखरूपत्वमात्मनः ॥ ६२४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सुखरूपत्वात्) सुखरूप होनेसे (आत्मनः) आत्मा का (स्वलक्षणम्) अपना लक्षण (आनन्दत्वम्) आनन्दपना [अस्ति] है (परप्रेमास्पदत्वेन) परम प्रेमका आश्रय होनेसे (आत्मनः) आत्माका (सुख-रूपत्वम्) सुखरूपता है ॥ ६२४॥

भावार्थ-आत्मा सुखरूप होनेसे आनन्दस्वरूप है, और निरतिशय प्रेमका आश्रय होनेसे सुखरूप कहलाता है ॥ ६२४ ॥

सुखहेतुषु सर्वेषां प्रीतिः सावधिरीक्ष्यते ।
कदापि नावधिः प्रीतेः स्वात्मनि प्राणिनां क्वचित् ६२५

अन्वय और पदार्थ-(सर्वेषाम्) सब प्राणियोंके (सुखहेतुषु) सुखके कारण पदार्थोंमें (सावधिः) अवधि वाला (प्रीतिः) प्रेम (ईक्ष्यते) देखनेमें आता है (क्वचित्)कहीं भी (कदापि) किसी समय भी (आत्मनि) अपनेमें (प्राणिनाम्) प्राणियोंकी (प्रीतेः) प्रेमकी (अवधिः) सीमा (न) नहीं है ॥ ६२५ ॥

भावार्थ-स्त्री पुत्र आदि सुखकी कारण वस्तुओंमें सकल प्राणियोंकी ससीम (हदवाली) प्रीति देखनेमें आती है, परन्तु कहीं और किसी समय भी प्राणियों की अपनेमें सीमावाली प्रीति देखनेमें नहीं आती, किन्तु अपने आत्मामें असीम प्रीति होती है ॥ ६२५ ॥

क्षीणेन्द्रियस्य जीर्णस्य संप्राप्तोत्क्रमणस्य वा ।
अस्ति जीवितुमेवाशा स्वात्मा प्रियतमो यतः ॥ ६२६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(क्षीणेन्द्रियस्य) क्षीण इन्द्रिय वालेकी (जीर्णस्य) वृद्धकी (वा) अथवा (संप्राप्तोत्क्रमणस्य) जिसके प्राण निकलनेका समय आगया है उसकी [च] भी (जीवितुम्, एव) जीनेकी ही (आशा) वासना (अस्ति) है (यतः) क्योंकि (स्वात्मा) अपना आत्मा (प्रियतमः) परम प्यारा है ॥ ६२६॥

भावार्थ-जिसकी इन्द्रियें क्षीण होगयी हैं, जो बूढ़ा होगया है और जो मृत्युके मुखमें आपहुंचा है, इन सबको ही जीवित रहनेकी आशा होती है, क्योंकि आत्मा सबसे अधिक प्यारा है ॥ ६२६ ॥

आत्माऽतः परमप्रेमास्पदः सर्वशरीरिणाम् ।
यस्य शेषतया सर्वमुपादेयत्वमृच्छति ॥ ६२७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अतः) इस कारण (आत्मा) आत्मा (सर्वशरीरिणाम्) सब शरीर धारियोंका (परमप्रेमास्पदः) परम प्रेमका आश्रय है (यस्य) जिसके (शेषतया) शेषरूप होने करके (सर्वम्) सब पदार्थ (उपादेयत्वम्) ग्रहण करने योग्यपनेको (ऋच्छति) प्राप्त होता है ॥ ६२७ ॥

भावार्थ—इसलिये आत्मा सब प्राणियोंके परम प्रेमका स्थान है, जिस आत्मा के शेषरूप होनेसे ही ये सब वस्तुएँ ग्रहण करने योग्य होरही हैं ॥ ६२७ ॥

एष एव प्रियतमः पुत्रादपि धनादपि ।
अन्यस्मादपि सर्वस्मादात्माऽयं परमान्तरः ॥ ६२८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(एषः, एव) यह आत्मा ही (पुत्रात् अपि) पुत्रसे भी (धनात्, अपि) धनसेभी (अन्यस्मात्) दूसरे (सर्वस्मादपि) सब पदार्थों से भी (प्रियतमः) परम प्रिय है (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (परमान्तरः) सबसे भीतरका पदार्थ [अस्ति] है ॥ ६२८ ॥

भावार्थ—यह आत्मा पुत्रसे , धनसे तथा अन्य सबही पदार्थोंसे अधिक प्यारा है, इसलिये आत्मा सबसे अधिक भीतरका पदार्थ है ॥ ६१८ ॥

प्रियत्वेन मतं यत्तु तत्सदा नाप्रियं नृणाम् ।
विपत्तावपि सम्पत्तौ यथात्मा न तथाऽपरः ॥ ६२९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तु) परन्तु (यत्) जो वस्तु (प्रियत्वेन) प्रियरूप से (मतम्) मानी गयी है (तत्) वह (सदा) सर्वदा (नृणाम्) मनुष्योंकी (अप्रियम्) अप्रिय (न) नहीं [भवति] होती है (विपत्तौ) विपत्तिमें (सम्पत्तौ, अपि) सम्पत्तिमें भी (यथा) जैसा (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा [भवति] होता है (तथा) तैसा (अपरः) दूसरा (न) नहीं [भवति] होता है ॥ ६२९ ॥

भावार्थ—जो वस्तु प्रिय मानी गयी है वह कभी मनुष्योंको अप्रिय नहीं होती विपत्ति हो चाहे सम्पत्ति हो उस समय जैसा आत्मा प्यारा होता है तैसा प्यारा दूसरा पदार्थ नहीं होता ॥ ६२९ ॥

आत्मा खलु प्रियतमोऽसुभृतां यदर्था
भार्यात्मजात्तगृहवित्तमुखाः पदार्थाः ।
वाणिज्यकर्षणगवावनराजसेवा-
भैषज्यकप्रभृतयो विविधाः क्रियाश्च ॥६२०॥

अन्वय और पदार्थ-(खलु) निश्चय (आत्मा) आत्मा (असुभृताम्) प्राणियोंका (प्रियतमः) परम प्रिय है (भार्यात्मजात्तगृहवित्तमुखाः) स्त्री, पुत्र, बड़े घर, धन आदि (पदार्थाः) पदार्थ (च) और (वाणिज्यकर्षणगवावनराज-सेवाभैषज्यकप्रभृतयः) व्यापार, खेती, गोपालन, राजसेवा और चिकित्सा आदि (विविधाः) नाना प्रकारकी (क्रियाः) क्रियाएँ (यदर्थाः) जिसके निमित्त [सन्ति] हैं ॥ ६२० ॥

भावार्थ—आत्मा सकल प्राणियोंको बड़ा ही प्यारा है, स्त्री, पुत्र, ताऊ, चाचा, घर और धन आदि पदार्थ तथा व्यापार, खेती, गोपालन, राजसेवा और चिकित्सा आदि भाँति २ की क्रियाएँ आत्माके ही लिये हैं ॥ ६२० ॥

प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च यच्च यावच्च चेष्टितम् ।
आत्मार्थमेव नान्यार्थं नातः प्रियतमः परः ॥ ६२१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रवृत्तिः) प्रवृत्ति (निवृत्तिः च) निवृत्ति भी (च) और (यत्) जो कुछ (यावत्, च) जितना भी (चेष्टितम्) चेष्टाका विषय है [तत्, सर्वम्] वह सब (आत्मार्थम्, एव) आत्माके लिये ही है (अन्यार्थम्) औरके लिये [न] नहीं [अस्ति] है (अतः) इसलिये (परः) दूसरा (प्रिय-तमः) आत्मासे अधिक प्यारा (न) नहीं [अस्ति] है ॥ ६२१ ॥

भावार्थ-क्या प्रवृत्ति, क्या निवृत्ति तथा और जो कुछ जितना भी चेष्टित है वह सब आत्माके लिये ही है, अन्यके लिये नहीं है, इसलिये आत्मा सबसे अधिक प्यारा है ॥ ६२१ ॥

तस्मादात्मा केवलानन्दरूपो
यः सर्वस्माद् वस्तुनः प्रेष्ठ उक्तः ।
यो वा अस्मान्मन्यतेऽन्यं प्रियं यं
सोऽयं तस्माच्छोकमेवानुभुंक्ते ॥ ६२२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तस्मात्) तिसकारण (आत्मा) स्वरूप (केवलानन्दरूपः) केवल सुखस्वरूप है (यः) जो आत्मा (सर्वस्मात्) सब (वस्तुनः) पदार्थसे (प्रेष्ठः) प्रियतम (उक्तः) कहागया है (यः) जो (वै) निश्चय (अस्मात्) इससे (यत्) जिस (अन्यम्) दसरेको (प्रियम्) प्यारा (मन्यते) मानता है (सः) वह (अयम्) यह (तस्मात्) उससे (शोकं, एव) शोकको ही (अनुभुंक्ते) बराबर भोगता रहता है ॥ ६३२ ॥

भावार्थ—इसकारण आत्मा केवल आनन्दस्वरूप है, शास्त्रमें जिसको सब वस्तुओंसे प्रिय कहा है ऐसे इस आत्माकी अपेक्षा दसरे पदार्थको जो प्रिय मानता है वह बराबर दुःख ही भोगता रहता है ॥ ६३२॥

शिष्य उवाच-

अपरः क्रियते प्रश्नो मयाऽयं क्षम्यतां प्रभो ।
अज्ञवागपराधाय कल्पते न महात्मनाम् ॥ ६३३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(शिष्यः) शिष्य (उवाच) बोला (प्रभो) हे स्वामिन् (मया) मुझ करके (अयम्) यह (अपरः) दूसरा (प्रश्नः) प्रश्न (क्रियते) कियाजाता है (क्षम्यताम्) क्षमा कियाजाय (अज्ञवाक्) मूर्खकी बात (महात्मनाम्) साधुओंके (अपराधाय) अपराधके लिये (न) नहीं (कल्पते) समर्थ होती है ॥ ६३३ ॥

(भावार्थ)-शिष्यने कहा, कि-हे प्रभो ! मैं आपसे एक और प्रश्न करता हूँ अपराध क्षमा करिये, क्योंकि-महात्मा पुरुष अज्ञानी पुरुषोंकी बातसे रुष्ट नहीं होते हैं ॥ ६३३ ॥

आत्मान्यः सुखमन्यच्च नात्मनः सुखरूपता ।
आत्मनः सुखमाशास्यं यतते सकलो जनः ॥ ६३४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आत्मा) आत्मा (अन्यः) और है (च) तथा (सुखम्) सुख (अन्यत्) और है (आत्मनः) आत्माका (सुखरूपता) सुखरूपत्व (न) नहीं है (सकलः) सब (जनः) लोक (आशास्यम्) प्रार्थना करने योग्य (आत्मनः) आत्माके (सुखम्) सुखको यतते) चेष्टा करता है ६३४

भावार्थ–आत्मा अन्य वस्तु है तथा सुख अन्य वस्तु है, आत्मा सुखस्वरूप नहीं है,क्योंकि–सब लोग अपने आत्माके प्रार्थना करने योग्य सुखके लिये उद्योग करते हैं ॥ ६३४ ॥

आत्मनः सुखरूपत्वे प्रयत्नः किमु देहिनाम् ।
एष मे संशयः स्वामिन् कृपयैव निरस्यताम् ॥ ६३५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्वामिन्) हे प्रभो (आत्मनः) आत्माके (सुखरूपत्वे) सुखरूप होनेमें (देहिनाम्) प्राणियोंको (प्रयत्नः) उद्योग (किमु) क्यों है (मे) मेरा (एषः) यह (संशयः) सन्देह (कृपया) कृपा करके (निरस्यताम्, एव) अवश्य दूर कियाजाय ॥ ६३५ ॥

भावार्थ—हे प्रभो ! यदि आत्मा सुखस्वरूप है तो लोग सुख पानेके लिए इतना उद्योग क्यों करते हैं ? कृपा करके मेरे इस सन्देहको अवश्य ही दूर कर दीजिये ॥ ६३५ ॥

आत्मान्यस्य सुखरूपत्वनिरासः ।

श्रीगुरुरुवाच-

आनन्दरूपमात्मानमज्ञात्वैव पृथग्जनः ।
बहिःसुखाय यतते न तु कश्चिद्विदन् बुधः ॥ ६३६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(श्रीगुरुः) श्रीगुरुदेव (उवाच) बोले (पृथग्जनः) मूढ़ पुरुष (आनन्दरूपम्) सुखस्वरूप (आत्मानम्) आत्माको (अज्ञात्वा, एव) न जानकर ही (बहिःसुखाय) बाहरके सुखके लिये (यतते) उद्योग करता है (तु) परन्तु (कश्चित्) कोई (बुधः) पण्डित (विदन्) जानता हुआ (न) नहीं [यतते] यत्न करता है ॥ ६३६ ॥

भावार्थ—गुरुने कहा, कि-अज्ञानी मनुष्य सुखस्वरूप आत्माको न जान कर ही बाहरी सुखको पानेके लिये यत्न करता है, परन्तु कोई भी पण्डित पुरुष सुखस्वरूप आत्माको जानकर बाहरी सुखके लिये उद्योग नहीं करता है ॥ ६३६ ॥

अज्ञात्वैव हि निक्षेपं भिक्षामटति दुर्मतिः
स्ववेश्मनि निधिं ज्ञात्वा को नु भिक्षामटेत्सुधीः ६३७

अन्वय और पदार्थ-(दुर्मतिः) मन्दबुद्धि (निक्षेपम्) धरोहड़को (हि) निश्चय (अज्ञात्वा, एव) न जानकर ही (भिक्षाम्, अटति) भिक्षाके लिये घूमता है (कः नु) कौनसा (सुधीः) बुद्धिमान् (स्ववेश्मनि) अपने घरमें (निधिम्) खजानेको (ज्ञात्वा) जानकर (भिक्षां, अटेत्) भिक्षा करनेके लिये घूमेगा ? ॥ ६३७ ॥

भावार्थ–मन्दबुद्धि पुरुष अपने घरमें गड़ेहुए धनको न जानकर ही भीख माँगता फिरता है, ऐसा कौन बुद्धिमान् है जो अपने घरमें धनको जानकर भी भीख माँगता फिरेगा ? ॥ ६३७ ॥

स्थूलञ्च सूक्ष्मञ्च वपुः स्वभावतः
दुःखात्मकं स्वात्मतया गृहीत्वा ।
विस्मृत्य च स्वं सुखरूपमात्मनो
दुःखप्रदेभ्यः सुखमज्ञ इच्छति ॥ ६३८ ॥

अन्वय और पदार्थ–(अज्ञः) मूढ़ (स्वभावतः) स्वभावसे (दुःखात्मकम्) दुःखस्वभाव (स्थूलम्) स्थूल (च) और (सूक्ष्मं, च) सूक्ष्म भी (वपुः) शरीरको (स्वात्मतया) अपने आत्मारूपसे (गृहीत्वा) मानकर (च) और (आत्मनः) आत्माके (स्वम्) निज (सुखरूपम्) सुखरूपको (विस्मृत्य) भूल कर (दुःखप्रदेभ्यः) दुःख देनेवालोंसे (सुखम्) सुखको (इच्छति) चाहता है॥

भावार्थ–मूढ़पुरुष स्वभावसे ही दुःखस्वरूप स्थूल और सूक्ष्म शरीरको आत्मा मानकर और आत्माकी सुखस्वरूपताको भूलकर दुःखदायक विषयोंसे सुख पाना चाहता है ॥ ६३८ ॥

न हि दुःखप्रदं वस्तु सुखं दातुं समर्हति ।
किं विषं पिबतो जन्तोरमृतत्वं प्रयच्छति ॥ ६३९ ॥

अन्वय और पदार्थ–(दुःखप्रदम्) दुःखदायक (वस्तु) पदार्थ (हि) निश्चय (सुखम्) सुख (दातुम्) देनेको (न) नहीं (समर्हति) समर्थ होता है (विषम्) विष (पिबतः) पीनेवाले (जन्तोः) जन्तुको (किम्) क्या (अमृतत्वम्) अमृतपना (प्रयच्छति) देता है ॥ ६३९ ॥

भावार्थ–दुःखदायक वस्तु सुख नहीं देसकती, विष कभी पीनेवाले प्राणीको अमृतका काम नहीं देता है ॥ ६३९ ॥

आत्माऽन्यः सुखमन्यच्चेत्येवं निश्चित्य पामरः ।
बहिःसुखाय यतते सत्यमेव न संशयः ॥ ६४० ॥

अन्वय और पदार्थ–(पामरः) मूढ़ पुरुष (आत्मा) आत्मा (अन्यः) और है (च) और (सुखम्) सुख (अन्यत्) अन्य है (इत्येवम्) ऐसा (नि-

श्चित्य) निश्चय करके (सत्यमेव) सत्यही (बहिः सुखाय) बाहरी सुखके लिये (यतते) उद्योग करता है (संशयः) सन्देह (न) नहीं है ॥ ६४० ॥

भावार्थ—आत्मा अन्य पदार्थ है और सुख उससे अन्य पदार्थ है, ऐसा निश्चय करके मूढ़ पुरुष यथार्थमें बाहरी सुखके लिये उद्योग करता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६४० ॥

इष्टस्य वस्तुनो ध्यानं दर्शनाद्युपभुक्तिषु ।
प्रतीयते य आनन्दः सर्वेषामिह देहिनाम् ॥ ६४१ ॥
स वस्तुधर्मो नो यस्मान्मनस्येवोपलभ्यते ।
वस्तुधर्मस्य मनसि कथं स्यादुपलंभनम् ॥ ६४२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इह) इस संसारमें (सर्वेषाम्) सब (देहिनाम्) प्राणियोंके (इष्टस्य) प्रिय (वस्तुनः) पदार्थके (ध्यानदर्शनाद्युपभुक्तिषु) ध्यान करने देखने और भोगनेमें (यः) जो (आनन्दः) सुख (प्रतीयते) प्रतीत होता है (सः) वह (वस्तुधर्मः) पदार्थका धर्म (नो) नहीं है (यस्मात्) क्योंकि-(मनसि एव) मनमें भी (उपलभ्यते) प्राप्त होता है (मनसि) मनमें (वस्तुधर्मस्य) पदार्थके धर्मका (उपलम्भनम्) ज्ञान (कथम्) कैसे (स्यात्) होता है ॥ ६४१ ॥ ६४२ ॥

भावार्थ-इस जगत्में प्रिय पदार्थके ध्यान, दर्शन, उपभोग आदिमें सकल प्राणियोंको जिस आनन्दका अनुभव होता है.वह आनन्द उस पदार्थका धर्म नहीं है, क्योंकि-उसकी प्राप्ति तो मनमें ही होती है,वस्तुका धर्म मनमें कैसे आजायगा?६४२

अन्यत्र त्वन्यधर्माणामुपलम्भो न दृश्यते ।
तस्मान्न वस्तुधर्मोऽयमानन्दस्तु कदाचन ॥ ६४३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तु) परन्तु (अन्यत्र) अन्य पदार्थमें (अन्यधर्माणाम्) अन्यके धर्मोंका (उपलम्भः) ज्ञान (न) नहीं (दृश्यते) दीखता है (तस्मात्) तिससे (अयम्) यह (आनन्दः, तु) आनन्द तो (कदाचन) कदापि (वस्तुधर्मः) पदार्थका धर्म (न) नहीं [अस्ति] है ॥ ६४३ ॥

भावार्थ—अन्य वस्तुमें अन्य वस्तुका धर्म तो कभी अनुभवमें आता हुआ देखनेमें नहीं आता है, इसलिये आनन्द कभी भी स्त्री पुत्र आदि पदार्थोंका धर्म नहीं है ॥ ६४३ ॥

नाप्येष धर्मो मनसोऽसत्यर्थे तददर्शनात् ।
असति व्यञ्जके व्यंग्यं नोदेतीति न मन्यताम् ॥६४४॥

अन्वय और पदार्थ--(एषः) यह आनन्द (मनसः, अपि) मनका भी (धर्मः) धर्म (न) नहीं है । अर्थे, असति) विषयके न होने पर (तददर्शनात्) उस आनन्दके न दीखनेसे (व्यञ्जके) प्रकाशकके (असति) न होने पर (व्यंग्यम्) प्रकाश्य (न) नहीं (उदेति) प्रकाशित होता है (इति) ऐसा (न) नहीं (मन्यताम्) मानना चाहिये ॥ ६४४ ॥

भावार्थ--यह आनन्द मनका धर्म भी नहीं है, क्योंकि-विषयके न होने पर आनन्द देखनेमें नहीं आता, प्रकाशकके न होने पर प्रकाश्य पदार्थ प्रकट नहीं होता-ऐसा न मानना ॥ ६४४ ॥

सत्यर्थेऽपि च नोदेति आनन्दस्तूक्तलक्षणः ।
सत्यपि व्यञ्जके व्यंग्यानुदयो नैव संमतः ॥ ६४५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(च) और (अर्थे, सति,अपि) विषयके होने पर भी (उक्तलक्षणः) जिसका लक्षण पहले कहा है वह (आनन्दः, तु) आनन्द तो(न) नहीं (उदेति) प्रकट होता है (हि) निश्चय (व्यञ्जके) प्रकाशकके (सति, अपि) होने पर भी (व्यंग्यानुदयः) प्रकाशकका अनुदय (न, एव) नहीं (संमतः) अभिमत है ॥ ६४५ ॥

भावार्थ-विषयके विद्यमान होनेपर भी पीछे कहे लक्षणवाले आनन्दका उदय नहीं होता,प्रकाशकके होने पर प्रकाश्यका उदय न होना कदापि युक्तियुक्त नहीं है,

दुरदृष्टादिकं नात्र प्रतिबन्धः प्रकल्प्यताम् ।
प्रियस्य वस्तुनो लाभे दुरदृष्टं न सिध्यति ॥६४६॥

अन्वय और पदार्थ-(अत्र) इस विषयमें (दुरदृष्टादिकम्) अशुभ प्रारब्ध आदि को (प्रतिबन्धः) बाधक (न) नहीं (कल्प्यताम्) कल्पना करना चाहिये(प्रियस्य) प्यारी (वस्तुनः) वस्तुके (लाभे) प्राप्त होने पर (दुरदृष्टम्) अशुभ प्रारब्ध (न) नहीं (सिध्यति) सिद्ध होता है ॥ ६४६ ॥

भावार्थ--यदि कहो, कि--आनन्द विषयका धर्म है, और अशुभ प्रारब्ध आदि प्रतिबन्धकके कारणसे अनुभवमें नहीं आता है, तो यह कहना ठीक नहीं है इसमें अशुभ प्रारब्धकी तो कल्पना ही नहीं होसकती, क्योंकि-प्रिय पदार्थकी प्राप्ति में अशुभ अदृष्ट कैसा ? ॥ ६४६ ॥

तस्मान्न मानसो धर्मो निर्गुणत्वान्न चात्मनः ।
किन्तु पुण्यस्य सान्निध्यादिष्टस्यापि च वस्तुनः ६४७
सत्त्वप्रधाने चित्तेऽस्मिंस्त्वात्मैव प्रतिबिम्बति ।
आनन्दलक्षणः स्वच्छे पयसीव सुधाकरः ॥ ६४८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे [आनन्दः] आनन्द (मानसः) मनका (धर्मः) धर्म (न) नहीं है (निर्गुणत्वात्) गुणशून्य होनेसे (आत्मनः, च) आत्माका भी (न) नहीं है (किन्तु) परन्तु (पुण्यस्य) पुण्यकी (सान्निध्यात्) समीपताके कारण (च) और (इष्टस्य) प्रिय (वस्तुनः, अपि) पदार्थ की भी [सान्निध्यात्] समीपता होनेके कारणसे (सत्त्वप्रधाने) सत्त्वगुण प्रधान (अस्मिन्) इस (चित्ते) चित्तमें (स्वच्छे) स्वच्छ (पयसि) जलमें (सुधाकरः, इव) चन्द्रमा जैसे (आनन्दलक्षणः) आनन्दस्वरूप (आत्मा, तु) आत्मा तो (प्रतिबिम्बति, एव) अवश्य ही प्रतिबिम्बित होता है ॥६४७।६४८॥

भावार्थ-इसलिये आनन्द मनका धर्म भी नहीं है, क्योंकि-आत्मा निर्गुण है, इसकारण आत्माका धर्म भी नहीं है, किन्तु पुण्य और इष्ट पदार्थ समीपताके कारणसे सत्त्वगुणप्रधान इस अन्तःकरणमें, निर्मल जलमें चन्द्रमाकी समान आत्मा प्रतिबिम्बित होता है ॥ ६४७ ॥ ६४८ ॥

सोऽयमाभास आनन्दश्चित्ते यः प्रतिबिम्बितः ।
पुण्योत्कर्षापकर्षाभ्यां भवत्युच्चावचः स्वयम् ॥ ६४९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (अयम्) यह (आभासः) प्रतिबिम्बरूप (आनन्दः) आनन्द (यः) जो (चित्ते) अन्तःकरणमें (प्रतिबिम्बितः) प्रतिबिम्ब [सन्] होता हुआ (पुण्योत्कर्षापकर्षाभ्याम्) पुण्यकी अधिकता और न्यूनता करके (स्वयम्) अपने आप (उच्चावचः) उच्च नीच (भवति)होता है ॥

भावार्थ-वही प्रतिबिम्बित आनन्द अन्तःकरणमें प्रतिबिम्बित होकर पुण्यकी अधिकता और न्यूनताके अनुसार भला-बुरा नाना प्रकारका प्रतीत होता है ६४९

सार्वभौमादि ब्रह्मान्तं श्रुत्या यः प्रतिपादितः ।
स क्षयिष्णुः सातिशयः प्रक्षीणे कारणे लयम् ॥ ६५० ॥
यात्येव विषयानन्दो यस्तु पुण्यैकसाधनः ।

ये तु वैषयिकानन्दं भुञ्जते पुण्यकारिणः ॥ ६५१॥
दुःखश्च भोगकालेऽपि तेषामस्ति महत्तरम् ।
सुखं विषयसंपृक्तं विषसंपृक्तभक्तवत् ॥ ६५२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(श्रुत्या) श्रुतिने (सार्वभौमादिब्रह्मान्तम्) चक्रवर्ती राजासे लेकर ब्रह्मा पर्यन्त (यः) जो आनन्द (प्रतिपादितः) वर्णन किया है (सः) वह (क्षयिष्णुः) क्षीण होजाने वाला (सातिशयः) न्यूनाधिकतासे युक्त [अस्ति] है (तु) परन्तु (पुण्यैकसाधनः) एक मात्र पुण्यरूप उपायवाला (यः) जो (एषः) यह (विषयानन्दः) विषयजनित आनन्द है (कारणे, प्रक्षीणे) अपने कारणके क्षीण होजाने पर (क्षयम्) नाशको (याति) प्राप्त हो जाता है (तु) परन्तु (ये) जो (पुण्यकारिणः) पुण्यकर्म करनेवाले (वैषयिकानन्दम्) विषयजनित आनन्दको (भुञ्जते) भोगते हैं (भोगकाले) विषय सुखको भोगनेके समय (तेषाम्) उनको (अपि) भी (दुःखम्) दुःख [भवति] होता है (अंते) परिणाममें (महत्तरम्) बड़ाभारी दुःख [भवति] होता है (विषयसंपृक्तम्) विषयोंमें मिला हुआ (सुखम्) सुख (विषसंपृक्तभक्तवत्) विष मिले भातकी समान [भवति] होता है ॥ ६५० ॥ ६५१ ॥ ६५२ ॥

भावार्थ—श्रुतिने चक्रवर्ती राजासे लेकर हिरण्यगर्भ ब्रह्मापर्यन्तका जो आनन्द वर्णन किया है वह एक दिन अवश्य नष्ट होजाने वाला है और उसमें न्यूनता अधिकता रहती है, उस आनन्द (सुख) का कारण नष्ट होते ही वह पुण्यबलसे प्राप्त हुआ विषयका आनन्द नष्ट होजाता है जो पुण्यात्मा लोग विषयजनित सुखको भोगते हैं उनको भोगके समयमें भी कुछ दुःख होता है और उस विषय सुखभोगका अन्त होजाने पर तो बड़ा ही भारी दुःख होता है, क्योंकि—विषयोंमें मिला हुआ सुख विषमिले हुए भातकी समान दुःखदायक ही होता है ६५०-६५१-६५२

भोगकालेऽपि भोगान्ते दुःखमेव प्रयच्छति ।
सुखमुच्चावचत्वेन क्षयिष्णुत्वभयेन च ॥ ६५३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सुखम्) विषय सुख (उच्चावचत्वेन) बढ़िया घटिया होनेसे (च) और (क्षयिष्णुत्वभयेन) एक दिन नष्ट होजायगा इसके भयसे (भोगकाले) भोगके समय (भोगान्ते, अपि) भोगके अन्तमें भी (दुःखम् एव) दुःखको ही (प्रयच्छति) देता है ॥ ६५३ ॥

भावार्थ-विषयजनित सुख भला बुरा घटिया बढ़िया नाना प्रकारका होता है और एकदिन उसके नष्ट होजानेका भय लगा रहता है इसलिये भोगके समय और भोगके अन्तमें दुःख ही देता है ॥ ६५३ ॥

भोगकाले भवेन्नृणां ब्रह्मादिपदभागिनाम् ।
राजस्थानप्रविष्टानां तारतम्यं मतं यथा ॥ ६५४ ॥

तथैव दुःखं जन्तूनां ब्रह्मादिपदभागिनाम् ।
न कांक्षणीयं विदुषां तस्माद्वैषयिकं सुखम् ॥ ६५५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (भोगकाले) भोगके समय (ब्रह्मादिपदभागिनाम्) ब्रह्मा आदि पदवी वालोंकी (राजस्थानप्रविष्टानाम्) राजाके पदपर पहुंचने वाले (नृणाम्) मनुष्योंकी (तारतम्यम्) नीचाई ऊँचाई (मतम्) मानी हुई (भवेत्) होती है (तथा, एव) तैसेही (ब्रह्मादिपदभागिनाम्) ब्रह्मा आदि पदों पर पहुंचे हुए (जन्तूनाम्) प्राणियोंको (दुःखम्) क्लेश [भवति] होता है (तस्मात्) तिससे (विदुषः) विद्वान्को (वैषयिकम्) विषयोंका (सुखम्) सुख (न) नहीं (कांक्षणीयम्)इच्छा करना चाहिये ॥ ६५४ ॥ ६५५ ॥

भावार्थ-विषय सुखको भोगनेके समय ब्रह्मा आदि पदोंपर पहुंचेहुए और राज्यपद पाने वाले प्राणियोंमें जैसे छुटाई बडाई देखनेमें आती है ऐसेही ब्रह्मादि पदवालोंको न्यूनाधिक दुःख भी भोगना पडता है,इस लिये विद्वान् पुरुषको विषय-सुखकी प्रार्थना नहीं करनी चाहिये ॥६५४ ॥ ६५५ ॥

यो विम्बभूत आनन्दः स आत्मानन्दलक्षणः
शाश्वतो निर्द्वयः पूर्णो नित्य एकोऽपि निर्भयः ।६५६।

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (विम्बभूतः) विम्ब रूप (आनन्दः) आनन्द है (सः) वह (आनन्दलक्षणः) सुखरूप (आत्मा) आत्मा (शाश्वतः) क्षयरहित(निर्द्वयः) अद्वितीय (पूर्णः) परिपूर्ण (नित्यः) नित्य (एकः) एक (अपि) और (निर्भयः (निर्भय [अस्ति] है ॥ ६५६ ॥

भावार्थ—जो विम्बरूप अर्थात् जिसका प्रतिविम्ब पड़ता है ऐसा आनन्द है वही सुखरूप आत्मा है, उसका क्षय नहीं होता, वह द्वैतशून्य, पूर्ण नित्य और एक होकर सदा निर्भय रहता है ॥ ६५६ ॥

लक्ष्यते प्रतिबिम्बेनाभासानन्देन बिम्बवत्।
प्रतिबिम्बो बिम्बमूलो विना बिम्बं न सिध्यति ॥६५७॥

अन्वय और पदार्थ-(बिम्बवत्) बिम्बस्वरूप प्रतिबिम्बेन) प्रतिबिम्बस्वरूप (आभासानन्देन) प्रतिफलित आनन्दके द्वारा (लक्ष्यते) जाना जाता है (बिम्बमूलः) बिम्ब है आदिकारण जिसका ऐसा (प्रतिबिम्बः) प्रतिबिम्ब (बिम्बं, विना) बिम्बके विना (न) नहीं (सिध्यति) सिद्ध होता है ॥ ६५७ ॥

भावार्थ-वह बिम्बभूत आनन्द आभासानन्दरूप प्रतिबिम्बके द्वाराही जाना जाता है, प्रतिबिम्ब बिम्बमूल है, बिम्बके विना प्रतिबिम्ब हो नहीं सकता ॥ ६५७ ॥

यत्ततो बिम्ब आनन्दः प्रतिबिम्बेन लक्ष्यते।
युक्त्यैव पण्डितजनैर्न कदाप्यनुभूयते ॥ ६५८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ततः) तिससे (यत्) जो (बिम्बः) बिम्बभूत (आनन्दः) आनन्द (प्रतिबिम्बेन) प्रतिबिम्बके द्वारा (लक्ष्यते) लक्षित होता है (पण्डितैः) पंडितों करके (युक्त्या) युक्तिके द्वारा (एव) ही (कदा, अपि) कभी भी (न) नहीं (अनुभूयते) अनुभवमें आता है ॥ ६५८ ॥

भावार्थ-इसलिये जो बिम्बरूप आनन्द प्रबिम्बरूपसे लक्षित होता है, उसका पण्डितजन युक्तिसे अनुभव नहीं कर सकते ॥ ६५८ ॥

अविद्याकार्यकरणसंघातेषु पुरोदितः।
आत्मा जाग्रत्यपि स्वप्ने न भवत्येष गोचरः ॥ ६६०॥

अन्वय और पदार्थ-(अविद्याकार्यकरणसंघातेषु) अविद्या उसका कार्य देह और इन्द्रिय समूहमें (पुरा) पहले (उदितः) उदित हुआ (एषः) यह (आत्मा) आत्मा (जाग्रति) जाग्रत् अवस्थामें (अपि) और (स्वप्ने) स्वप्नमें (गोचरः) ज्ञानका विषय (न) नहीं (भवति) होता है ॥ ६५६ ॥

भावार्थ-जाग्रत्कालमें और स्वप्नकालमें अविद्या, देह तथा इन्द्रियोंके विद्यमान होनेके कारण सबसे पहिले वर्त्तमान आत्मा ज्ञानगोचर नहीं होता है ॥ ६५६ ॥

स्थूलस्यापि च सूक्ष्मस्य दुःखरूपस्य वर्ष्मणः।
लये सुषुप्तौ स्फुरति प्रत्यगानन्दलक्षणः ॥ ६६० ॥

अन्वय और पदार्थ-(सुषुप्तौ) सुषुप्तिकालमें (दुःखरूपस्य) दुःखस्वरूप (स्थूलस्य) स्थूल (च) और (सूक्ष्मस्य, अपि) सूक्ष्म भी (वर्ष्मणः) शरीरके

(लये) कारणमें लीन होजाने पर (आनन्दलक्षणः) सुखस्वरूप (प्रत्यक्) आत्मा (स्फुरति) प्रकाशित होता है ॥ ६६० ॥

भावार्थ-सुषुप्तिके समय दुःखमय स्थूल और सूक्ष्मशरीरके अपने कारणमें लय होजाने पर आनन्दस्वरूप आत्मा प्रकाशित होता है ॥ ६६० ॥

न ह्यत्र विषयः कश्चिन्नापि बुद्ध्यादि किञ्चन ।
आत्मैव केवलानन्दमात्रस्तिष्ठति निर्द्वयः ॥ ६६१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(हि) क्योंकि (अत्र) इस सुषुप्ति कालमें (कश्चित्) कोई (विषयः) विषय (न) नहीं [भवति] होता है (बुद्ध्यादि) बुद्धि आदि (किञ्चन, अपि) कुछभी (न) नहीं [भवति] होता है (केवलानन्दमात्रः) केवल आनन्दस्वरूप (निर्द्वयः) द्वैतशून्य (आत्मा, एव) आत्मा ही (तिष्ठति) विद्यमान होता है ॥

भावार्थ-क्योंकि-सुषुप्तिकालमें कोई विषय नहीं होता है और बुद्धि आदि भी कुछ नहीं होता है, केवलमात्र आनन्दस्वरूप अद्वितीय आत्मा ही विद्यमान होता है ॥ ६६१ ॥

प्रत्यभिज्ञायते सर्वैरेष सुप्तोत्थितैर्जनैः ।
सुखमात्रतया नात्र संशयं कर्त्तुमर्हसि ॥ ६६२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वैः) सब (सुप्तोत्थितैः) सोकर उठेहुए (जनैः) पुरुषों करके (एषः) यह आत्मा (सुखमात्रतया) केवल आनन्दरूपसे (प्रत्यभिज्ञायते) जाना जाता है (अत्र) इस विषयमें (संशयं, कर्त्तुम्) सन्देह करने को (न) नहीं (अर्हसि) योग्य है ॥ ६६२ ॥

भावार्थ--सुषुप्तिसे उठनेवाले सब लोग सुखस्वरूपसे आत्माका प्रत्यभिज्ञान करते हैं अर्थात् जो मैं सुखसे सो रहा था वही मैं इस समय जाग रहा हूँ, ऐसा अनुभव करते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ६६२ ॥

त्वयाऽपि प्रत्यभिज्ञातं सुखमात्रत्वमात्मनः ।
सुषुप्तादुत्थितवता सुखमस्वाप्समित्यनु ॥ ६६३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सुषुप्तात्) सुषुप्तिसे (उत्थितवता) उठनेवाले (त्वया, अपि) तूने भी (सुखम्) सुखरूपसे (अस्वाप्सम्) सोया था (इति) इसप्रकार (अनु) पीछेसे (आत्मनः) आत्माका (सुखमात्रत्वम्) केवल सुखरूप होना (प्रत्यभिज्ञातम्) जानलिया है ॥ ६६३ ॥

भावार्थ-केवल दूसरे लोग ही आत्माकी सुखरूपताका अनुभव नहीं करते हैं, किन्तु सोकर उठने पर 'मैं सुखसे सोया था' ऐसे अनुभवसे आत्माका सुखरूप होना जानलिया है ॥ ६६३ ॥

दुःखाभावः सुखमिति यदुक्तं पूर्ववादिना ।
अनाघ्रातोपनिषदा तदसारं मृषा वचः ॥ ६६४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अनाघ्रातोपनिषदा) उपनिषद्की गन्ध भी न पाने वाले (पूर्ववादिना) पूर्वपक्ष करनेवालेने (दुःखाभावः) दुःखका अभाव (सुखम्) सुख है (इति) ऐसा (यत्) जो (उक्तम्) कहा था (तत्) वह (वचः) वचन (असारम्) युक्तिहीन (मृषा) मिथ्या है ॥ ६६४ ॥

भावार्थ—जिसने उपनिषद्की गन्ध भी नहीं पायी ऐसे पूर्वपक्ष करनेवालेने जो कहा था, कि-दुःखका अभाव ही सुख है, यह उसका कथन युक्तिहीन और मिथ्या है ॥ ६६४ ॥

दुःखाभावस्तु लोष्टादौ विद्यते नानुभूयते ।
सुखलेशोऽपि सर्वेषां प्रत्यक्षं तदिदं खलु ॥ ६६५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(दुःखाभावः) दुःखका अभाव (लोष्टादौ) ढले आदिमें (विद्यते) है (तु) परन्तु (न) नहीं (अनुभूयते) अनुभव कियाजाता है (सुखलेशः, अपि) सुखका लेशमात्र भी (सर्वेषाम्) सबको (तत्) सो (इदम्) यह (खलु) निश्चय रूपसे (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष होता है ॥ ६६५ ॥

भावार्थ-मट्टीके ढले आदिमें भी दुःखका अभाव होता है, परन्तु उसका अनुभव नहीं होता, यदि किसीको लेशमात्र भी सुख होता है तो उसका सबको प्रत्यक्ष हुआ करता है ॥ ६६५ ॥

सदयं ह्येष एवेति प्रस्तुत्य वदति श्रुतिः ।
सद्घनोऽयं चिद्घनोऽयं आनन्दघन इत्यपि ॥ ६६६ ॥

आनन्दघनतामस्य स्वरूपं प्रत्यगात्मनः ।
धन्यैर्महात्मभिर्धीरैर्ब्रह्मविद्भिः सदुत्तमैः ६६७ ॥

अपरोक्षतयैवात्मा समाधावनुभूयते ।
केवलानन्दमात्रत्वेनैवमत्र न संशयः ॥ ६६८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अयम्) यह आत्मा (सत्) सत्स्वरूप है (हि) क्योंकि (एषः) यह (एव) ही [सत्] सत् है (इति) ऐसा (प्रस्तुत्य) प्रस्ताव करके (श्रुतिः) श्रुति (वदति) कहती है (अयम्) यह (सद्घनः) सत्स्वरूप (अयम्) यह (चिद्घन) ज्ञानस्वरूप (आनन्दघनः) आनन्दस्वरूप [अस्ति] है (इति) ऐसे (अपि) भी [श्रुतिः] श्रुति (अस्य) इस (प्रत्यगात्मनः) व्यापक आत्माके (आनन्दघनताम्) सुखरूपत्वको (स्वरूपम्) अपना रूप [वदति] कहती है (धन्यैः) पुण्यवान् (धीरैः) पण्डित (सदुत्तमैः) साधुओंमें श्रेष्ठ (ब्रह्मविद्भिः) ब्रह्मवेत्ता (महात्मभिः) महात्माओं करके (समाधौ) समाधिकालमें (आत्मा) आत्मा (अपरोक्षतया) प्रत्यक्षरूपसे (केवलानन्दमात्रत्वेन) केवल आनन्दस्वरूपसे (एव) ही (अनुभूयते) अनुभव कियाजाता है (अत्र) इस विषयमें (संशयः) सन्देह (न) नहीं है ॥ ६६६ ॥ ६६७ ॥ ६६८ ॥

भावार्थ—यह आत्मा सत्स्वरूप है, ऐसा प्रस्ताव करके श्रुतिने आत्माको सत्स्वरूप कहा है, यह आत्मा सत्स्वरूप, ज्ञानस्वरूप और आनन्दस्वरूप है, इस प्रकार श्रुतिने आनन्दरूपताको आत्माका स्वरूप कहा है, पुण्यवान्, विद्वान् साधुओंके मान्य ब्रह्मज्ञानी महात्मा समाधिकालमें प्रत्यक्षभावमें केवल मात्र आनन्दस्वरूपसे आत्माका अनुभव किया करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६६६ ॥ ६६७ ॥ ६६८ ॥

स्वस्वोपाध्यनुरूपेण ब्रह्माद्याः सर्वजन्तवः ।
उपजीवन्त्यमुष्यैव मात्रामानन्दलक्षणाम् ॥ ६६९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ब्रह्माद्याः) ब्रह्मा आदि (सर्वजन्तवः)सकल प्राणी (स्वस्वोपाध्यनुरूपेण) अपनी २ उपाधिके अनुसार (अमुष्य, एव)इस आत्माकी ही (आनन्दलक्षणाम्) सुखस्वरूप (मात्राम्) अंशको (उपजीवन्ति) आश्रय करते हैं ॥ ६६९ ॥

भावार्थ-ब्रह्मा आदि सकल प्राणी अपनी २ उपाधिके अनुसार इस आत्माके आनन्दकी मात्राके आधार पर जीवित रहते हैं ॥ ६६९ ॥

आस्वाद्यते यो भक्ष्येषु सुखकृन्मधुरो रसः ।
स गुडस्यैव नो तेषां माधुर्यं विद्यते क्वचित् ॥ ६७० ॥

अन्वय और पदार्थ-(भक्ष्येषु) खानेके पदार्थोंमें (यः) जो (सुखकृत्) सुखदायक (मधुरः) मीठा (रसः) रस (आस्वाद्यते) आस्वादन किया जाता है (सः) वह (गुडस्य, एव) गुडका ही [भवति] होता है (तेषाम्) उन पदार्थों

का (क्वचित्) कहीं भी (माधुर्यम्) मीठापन (नो) नहीं (विद्यते) होता है ॥

भावार्थ-लोगोंको जो खानेके पदार्थोंमें आनन्ददायक मीठे रसका स्वाद आता है वह स्वाद गुडका ही होता है, उन सब पदार्थोंमें तो मीठापन कभी होता ही नहीं ॥ ६७० ॥

तद्वद्विषयसान्निध्यादानन्दो यः प्रतीयते ।
बिम्बानन्दांशविस्फूर्त्तिरेवासौ न जडात्मनाम् ॥ ६७१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तद्वत्) तैसे ही (विषयसान्निध्यात्) विषयकी समीपतासे (यः) जो (आनन्दः) सुख (प्रतीयते) प्रतीत होता है (असौ) यह (बिम्बानन्दांशविस्फूर्त्तिः, एव) बिम्बभूत आनन्दके अंशका विस्फुरण ही [अस्ति] है (जडात्मनाम्) अचेतन पदार्थोंका (न) नहीं है ॥ ६७१ ॥

भावार्थ-ऐसे ही विषयकी समीपताके कारणसे जो आनन्दका अनुभव होता है, वह बिम्बभूत आनन्दके अंशका स्फुरणमात्र है, अचेतन पदार्थोंका नहीं है ६७१

यस्य कस्यापि योगेन यत्र कुत्रापि दृश्यते ।
आनन्दः स परस्यैव ब्रह्मणः स्फूर्त्तिलक्षणः ॥ ६७२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यत्र) जहाँ (कुत्र) कहीं (अपि) भी (यस्य) जिस (कस्य) किसीके (अपि) भी (योगेन) संयोगसे (आनन्दः) सुख (दृश्यते) दीखता है (सः) वह (परस्य) परम (ब्रह्मणः, एव) ब्रह्मका ही (स्फूर्त्तिलक्षणः) स्फुरणरूप [अस्ति] है ॥ ६७१ ॥

भावार्थ-जहाँ कहीं भी जिस किसी भी पदार्थके संयोगसे सुख होता है, वह सुख परमब्रह्मका स्फुरणरूप आनन्द ही है ॥ ६७२ ॥

यथा कुवलयोल्लासश्चन्द्रस्यैव प्रसादतः ।
तथाऽऽनन्दोदयोऽप्येषां स्फुरणादेव वस्तुनः ॥ ६७३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (कुवलयोल्लासः) नील कमलका खिलना (चन्द्रस्य, एव) चन्द्रमाके ही (प्रसादतः) अनुग्रहसे [भवति] होता है (तथा) तैसे ही (एषाम्) इन सबका (आनन्दोदयः) आनन्दका उदय (वस्तुनः) वस्तुके (स्फुरणात्, एव) स्फुरणसे ही [भवति] होता है ॥ ६७३ ॥

भावार्थ-जैसे नील कमलका उल्लास खिलनारूप आनन्द चन्द्रमाके अनुग्रहसे ही होता है, तैसे ही सकल जड पदार्थोंके सुखका उदय आत्माके स्फुरणसे ही होता है ॥ ६७३ ॥

आत्मनोऽद्वितीयत्वम्

सत्त्वं चित्त्वं तथाऽऽनन्दः स्वरूपं परमात्मनः ।
निर्गुणस्य गुणायोगाद् गुणास्तु न भवन्ति ते ॥ ६७४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(परमात्मनः) परमात्माका (सत्त्वम्) सत्पना(चित्त्वम्) चेतनपना (तथा) तैसे ही (आनन्दः) सुख (स्वरूपम्) स्वरूप है (तु) परन्तु (निर्गुणस्य) निर्गुण आत्माको (गुणायोगात्) गुणका सम्बन्ध न होसकनेसे (ते) वे (गुणाः) गुण (न) नहीं (भवन्ति) होते हैं ।।६७४ ॥

भावार्थ-सत्त्व, चेतनत्व और आनन्द परमात्माका स्वरूप है, निर्गुण आत्मा को गुणका सम्बन्ध नहीं होसकता, इसलिये सत्त्व, चित्त्व और आनन्द आत्मा के गुण नहीं हैं ॥ ६७४ ॥

विशेषणन्तु व्यावृत्त्यै भवेद् द्रव्यान्तरे सति ।
परमात्माऽद्वितीयोऽयं प्रपञ्चस्य मृषात्वतः ॥ ६७५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(द्रव्यान्तरे, सति) अन्य द्रव्य होने पर (विशेषणम्) विशेषण (व्यावृत्त्यै) निवृत्तिके लिये (भवेत्) हो (प्रपञ्चस्य) जगत् के (मृषात्वतः) मिथ्यापनके कारण (अयम्) यह (परमात्मा) परमात्मा (अद्वितीयः) अद्वितीय है ॥ ६७५ ॥

भावार्थ--सत्त्व, चित्त्व और आनन्द यदि आत्माके धर्म हों तो विशेषण होजाँय, विशेषण दूसरेका व्यावर्त्तक होता है, यदि परमात्माके सिवाय अन्य पदार्थ होता तो उसका ही निषेध करता, यदि परमात्मासे भिन्न अन्य पदार्थ होता तो विशेषण अन्य पदार्थके निषेधके लिये होता, जगत् तो मिथ्या है, इसलिये एक ब्रह्म ही वस्तु है फिर निषेध किसका करेगा ? ॥ ६७५ ॥

वस्त्वन्तरस्याभावेन न व्यावृत्त्यः कदाचन ।
केवलो निर्गुणश्चेति निर्गुणत्वं निरुच्यते ॥ ६७६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वस्त्वन्तरस्य) ब्रह्मभिन्न वस्तुके (अभावेन) न होनेसे (कदाचन) कभी भी (न) नहीं (व्यावृत्त्यः) निषेधके योग्य है(केवलः) शुद्ध (च) और (निर्गुणः) गुणहीन है (इति) इसप्रकार (श्रुत्या) श्रुति करके (निर्गुणत्वम्) गुणहीनता (निरुच्यते) कहा जाता है ॥ ६७६ ॥

भावार्थ-आत्माके सिवाय और कोई वस्तु है ही नहीं, इसलिये अन्य पदार्थ कभी निषेधका विषय हो ही नहीं सकता. क्योंकि-श्रुति केवल निर्गुण आदि बताकर आत्माकी निर्गुणताका वर्णन करती है ॥ ६७६ ॥

श्रुत्यैव न ततस्तेषां गुणत्वमुपलभ्यते ।
उष्णत्वञ्च प्रकाशञ्च यथा वह्नेस्तथात्मनः ॥ ६७७ ॥
सच्चिच्चानन्दतादि स्वरूपमिति निश्चितम् ।
अत एव सजातीयविजातीयादिलक्षणः ॥ ६७८ ॥
भेदो न विद्यते वस्तुन्यद्वितीये परात्मनि ।
प्रपञ्चस्यापवादेन विजातीयकृता भिदा ॥ ६७९॥
नेष्यते तत्प्रकारन्ते वक्ष्यामि शृणु सादरम् ।
अहेर्गुणविवर्तस्य गुणमात्रस्य वस्तुतः ॥ ६८० ॥
विवर्तस्यास्य जगतः सन्मात्रत्वेन दर्शनम् ।
अपवादमिति प्राहुरद्वैतब्रह्मदर्शिनः ॥ ६८१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ततः) जिससे (श्रुत्या) श्रुति करके (एव) ही (तेषाम्) उनका (गुणत्वम्) गुणपना (न) नहीं (उपपद्यते) सिद्ध होता है (यथा) जैसे (वन्हेः) अग्निका (उष्णत्वम्) गरमपना (च) और (प्रकाशः च) प्रकाश भी [अस्ति] है (तथा) तैसे ही (सच्चिच्चानन्दतादि) सत्पना, चित्पना और आनन्दता आदि (आत्मनः) आत्माका (स्वरूपम्) स्वरूप है (इति) यह (निश्चितम्) निश्चय किया हुआ है (अतएव) इसलिये ही (अद्वितीये) द्वैतशून्य (परात्मनि) परब्रह्मरूप (वस्तुनि) वस्तुमें (सजातीय-विजातीयादिलक्षणः सजातीय विजातीय आदिरूप (भेदः) भेद (न) नहीं (विद्यते) है (प्रपञ्चस्य) जगत्के (अपवादेन) बाधके द्वारा (विजातीय-कृता) विजातीय पदार्थका किया हुआ (भिदा) भेद (न) नहीं (इष्यते) माना जाता है (तत्प्रकारम्) उसकी रीतिको (ते) तेरे अर्थ (वक्ष्यामि) कहता हूँ (सादरम्) आदरके साथ (शृणु) सुन (यथा) जैसे (गुणविवर्तस्य) रज्जु के विवर्त (अहेः) सर्पका (वस्तुतः) वास्तवमें (गुणमात्रस्य) रज्जु मात्रका (दर्शनम्) दर्शन [भवति] होता है (अस्य) इस (विवर्तस्य) विवर्त (जगतः)

जगत्का (सन्मात्रत्वेन) ब्रह्ममात्र भावसे (दर्शनम्) देखनेको (अद्वैतब्रह्मदर्शिनः) अद्वितीयब्रह्मदर्शी (अपवादः) बाध (इति) ऐसा (प्राहुः) कहते हैं ॥

भावार्थ—श्रुतिके प्रमाणसे भी सत्त्व, चित्त्व और आनन्दका ब्रह्मके गुण होना सिद्ध नहीं होता, जैसे उष्णता और प्रकाश अग्निका स्वरूप है, तैसे ही सत्त्व, चित्त्व और आनन्द ब्रह्मका स्वरूप है, यह बात निश्चित है, इसलिये अद्वितीय वस्तु परमात्मामें सजातीय विजातीय आदि भेद नहीं है, प्रपञ्चका अपवाद (बाध) होनेके कारण विरुद्ध जातिके पदार्थका भेद माना ही नहीं जाता, उसकी रीति मैं कहता हूँ, तू आदरके साथ सुन—रज्जुका विवर्त्त सर्प है, उसको वास्तवमें रज्जुरूपसे देखनेकी समान इस ब्रह्मके विवर्त्त जगत्को सत्मात्र स्वरूप देखनेको अद्वैत ब्रह्मदर्शी महात्मा अपवाद कहते हैं ॥६७७-६७८-६७६-६८०-६८१॥

व्युत्क्रमेण तदुत्पत्तेर्द्रष्टव्यं सूक्ष्मबुद्धिभिः ।
प्रतीतस्यास्य जगतः सन्मात्रत्वं सुयुक्तिभिः ॥ ६८२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सूक्ष्मबुद्धिभिः) सूक्ष्म बुद्धिवालों करके (तदुत्पत्तेः) इस जगत्की उत्पत्तिके होनेसे (व्युत्क्रमेण) उलटे क्रमसे (प्रतीतस्य) अनुभवमें आये हुए (अस्य) इस (जगतः) जगत्का (सन्मात्रत्वम्) सत्स्वरूपपना (द्रष्टव्यम्) देखना चाहिये ॥ ६८२ ॥

भावार्थ—सूक्ष्मबुद्धिवाले पुरुषोंको सारभरी युक्तियोंके द्वारा ब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति होती है, इसकारण विपरीत भावसे अनुभवमें आनेवाले जगत्की ब्रह्मरूपताको देखना चाहिये ॥ ६८२ ॥

चतुर्विधं स्थूलशरीरजातं तद्भोज्यमन्नादि तदाश्रयादि ।
ब्रह्माण्डमेतत्सकलं स्थविष्ठमीक्षेत पञ्चीकृतभूतमात्रम् ॥ ६८३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(चतुर्विधम्) चार प्रकारके (स्थूलशरीरजातम्) स्थूल शरीरोंके समूहको (तद्भोज्यम्) उन शरीरोंके भोजनको (तदाश्रयादि) उस अन्नके आश्रय आदि (एतत्) इस (सकलम्) समस्त (स्थविष्ठम्) परम स्थूल (ब्रह्माण्डम्) ब्रह्माण्डको (पञ्चीकृतभूतमात्रम्) पञ्चीकृत भूतमात्र (ईक्षेत) देखे ॥ ६८३ ॥

भावार्थ-जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज इन चार प्रकारके स्थूल शरीरोंको, इन शरीरोंके खानेके पदार्थ अन्न आदिको और उस अन्नके आश्रय इस सकल चराचर ब्रह्मांडको पञ्चीकृत भूतरूप देखे ॥ ६८३ ॥

यत्कार्यरूपेण यदीक्ष्यते तत् तन्मात्रमेवाऽत्र विचार्यमाणे ।
मृत्कार्यभूतं कलसादि सम्यग्विचारितं सन्न मृदो विभिद्यते ६८४

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो वस्तु (यत्कार्यरूपेण) जिसके कार्यरूपसे (ईक्ष्यते) दीखता है (अत्र) इस विषयमें (विचार्यमाणे) विचार करने पर (तत्) वह (तन्मात्रम्) वह वस्तुमात्र ही [प्रतीयते] प्रतीत होता है (मृत्कार्यभूतम्) मृत्तिकाका कार्यरूप (कलसादि) घट आदि (सम्यक्) अच्छे प्रकार से (विचारितं सत्) विचार कियेजाने पर (मृदः) मट्टीसे (न) नहीं (विभिद्यते) विभिन्न होता है ॥ ६८४ ॥

भावार्थ-जो वस्तु (घट आदि) जिस (मृत्तिका) का कार्य रूप देखनेमें आता है विचार करनेपर वही (मृत्तिका ही) प्रतीत होता है, अच्छे प्रकारसे विचार करके देखने पर मृत्तिकाका कार्य घट आदि मृत्तिकासे भिन्न नहीं है६८४

अन्तर्बहिश्चापि मृदेव दृश्यते न मृदो भिन्नं कलसादि किञ्चन ।
ग्रीवादिमद् यत्कलसं तदित्थं न वाच्यमेतच्च मृदेव नान्यत् ६८५

अन्वय और पदार्थ-[कलसस्य] घटके (अन्तः) भीतर (च) और (बहिः, अपि) बाहर भी (मृत्, एव) मट्टी ही (दृश्यते) दीखती है (कलसादि) घट आदि (किञ्चन) कुछ भी (मृदः) मिट्टीसे (भिन्नम्) भिन्न (न) नहीं है (ग्रीवादिमत्) ग्रीवा आदिवाला (यत्) जो (कलसम्) घट है (तत्) वह (एतत्) यह (मृत् एव) मृत्तिका ही (न) नहीं है(अन्यत्)अन्य वस्तु है (इत्थम्) ऐसा (न) नहीं (वाच्यम्) कहना चाहिये ॥ ६८५ ॥

भावार्थ-घट आदि मृत्तिका ही है और कुछ नहीं है, इस विषयमें युक्ति दिखाते हैं कि-घड़ेके भीतर और बाहर मृत्तिका ही मृत्तिका दीखती है, घड़ा आदि कोई वस्तु मृत्तिकासे भिन्न नहीं है, जो ग्रीवा आदि वाला कलश नामका पदार्थ दीखता है वह मृत्तिका नहीं है, अन्य वस्तु है, ऐसा नहीं कहना चाहिये ॥६८५॥

स्वरूपतस्तत्कलसादिनाम्ना मृदेव मूढैरभिधीयते ततः ।
नाम्नो हि भेदो न तु वस्तुभेदः प्रदृश्यते तत्र विचार्यमाणे ६८६

अन्वय और पदार्थ-(ततः) तिससे (मूढैः) मूढ़ों करके (स्वरूपतः) स्वरूपसे (मृत्, एव) मृत्तिका ही (तत्) वह (कलसादिनाम्ना) कलश आदि नाम करके (अभिधीयते) कहीजाती है (तत्र) उसके विषयमें (विचार्यमाणे)

विचार करने पर (नाम्नः, हि) नामका ही (भेदः) भेद [भवति] होता है (वस्तुभेदः, तु) वस्तुका भेद तो (न) नहीं (अदृश्यते) दीखता है ॥ ६८६॥

भावार्थ—मूढ़ पुरुष वास्तविक मृत्तिकाको कलश नामसे व्यवहारमें लाते हैं, परन्तु कलसका विचार करने पर नामका ही भेद देखनेमें आता है, वस्तुका भेद नहीं होता है ॥ ६८६ ॥

तस्माद्धि कार्यं न कदापि भिन्नं स्वकारणादस्ति यतस्ततोऽङ्ग ।
यद्भौतिकं सर्वमिदं तथैव तद्भूतमात्रं न ततोऽस्ति भिन्नम् ६८७

अन्वय और पदार्थ-(अङ्ग) हे शिष्य (तस्मात्) तिससे (कार्यम्) कार्य (यतः) क्योंकि (स्वकारणात्) अपने कारणसे (कदापि) कभी भी (भिन्नम्) पृथक् (न) नहीं (अस्ति) है (हि) यह निश्चय है (ततः) तिससे (यत्) जो (भौतिकम्) भूतोंका कार्य (इदम्) यह (सर्वम्) सब (तथा, एव) तैसे ही (भूतमात्रम्) भूतमात्र है (ततः) तिससे (भिन्नम्) भिन्न (न) नहीं (अस्ति) है ॥ ६८७॥

भावार्थ—हे शिष्य ! क्योंकि—कार्य कभी अपने कारणसे भिन्न नहीं होता इसलिये पञ्चभूतोंका कार्य यह सब तिस प्रकार ही भूतमात्र है, पञ्चभूतसे भिन्न नहीं है ॥ ६८७ ॥

तत्रापि पञ्चीकृतभूतजातं शब्दादिभिः स्वस्वगुणैश्च सार्धम् ।
वपूंषि सूक्ष्माणि च सर्वमेतद् भवत्यपञ्चीकृतभूतमात्रम् ॥ ६८८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्वस्वगुणैः) अपने २ गुण (शब्दादिभिः, सार्धम्) शब्द आदिके सहित (तत्) वह (पञ्चीकृतभूतमात्रम्, अपि) पञ्चीकृत भूतमात्र भी (च) और (सूक्ष्माणि) सूक्ष्म (वपूंषि) शरीर (च) भी (एतत्) यह (सर्वम्) सब (अपञ्चीकृतभूतमात्रम्) अपञ्चीकृत भूत ही (भवति) होता है ॥ ६८८ ॥

भावार्थ—अपने २ शब्द आदि गुणोंके सहित आकाश आदि पञ्चमहाभूत और सूक्ष्म शरीर यह सब केवल अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूत ही है ॥ ६८८ ॥

तदप्यपञ्चीकृतभूतजातं रजस्तमःसत्त्वगुणैश्च सार्धम् ।
अव्यक्तमात्रं भवति स्वरूपतः साभासमव्यक्तमिदं स्वयञ्च ॥

अन्वय और पदार्थ—(च) और (रजस्तमःसत्त्वगुणैः, सार्धम्) रज तम और सत्त्वगुणके सहित (तत्) यह (अपञ्चीकृतभूतमात्रम्, अपि) अपञ्चीकृत भूतमात्र भी (स्वस्वरूपतः) स्वरूपसे (अव्यक्तमात्रम्) प्रकृतिमात्र (भवति) होता है (च) और (इदम्) यह (अव्यक्तम्) प्रकृति (स्वयम्) आप (साभासम्) चिदाभासयुक्त है ॥ ६८९ ॥

भावार्थ-रजः, तम और सत्त्वगुणके सहित अपञ्चीकृत पञ्चभूत वास्तवमें अव्यक्त मायामात्र है और यह माया चिदाभासयुक्त है ॥ ६८९ ॥

आधारभूतं तदखण्डमाद्यं शुद्धं परं ब्रह्म सदैकरूपम् ।
सन्मात्रमेवाऽस्त्यथ नो विकल्पः सतः परं केवलमेव वस्तु ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) वह (आधारभूतम्) आधाररूप (अखंडम्) खण्डरहित (आद्यम्) प्रथम (शुद्धम्) दोपरहित (सदा) सर्वदा (एकरूपम्) अभिन्नरूप (सन्मात्रम्) सत्स्वरूप (परं ब्रह्म) परब्रह्म(एव) ही (अस्ति) है (अथ) और (सतः) सत्से (परम्) अन्य (केवलम्) शुद्ध (वस्तु) पदार्थ (एव) भी [अस्ति] है [इति] ऐसा (विकल्पः) कल्पना (नो) नहीं [कर्त्तव्यः] करनी चाहिये ॥ ६९० ॥

भावार्थ-सबका आश्रय, अखण्ड, प्रथम, शुद्ध, सर्वदा एकरूप सत्स्वरूप परब्रह्म ही विद्यमान है, सत् वस्तुके सिवाय और कोई वस्तु भी है, यह तो कल्पना भी नहीं कीजासकती ॥ ६९० ॥

एकश्चन्द्रः सद्वितीयो यथा स्याद् दृष्टेर्दोषादेव पुंसस्तथैकम् ।
ब्रह्माऽस्त्येतद् बुद्धिदोषेण नाना दोषे नष्टे भाति वस्त्वेकमेव ६९१

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (पुंसः) पुरुषकी (दृष्टेः) दृष्टिके (दोषात्, एव) दोपसे ही (एकः) एक (चन्द्रः) चन्द्रमा (सद्वितीयः) दूसरे से युक्त (स्यात्) होजाय (तथा) तैसे (एतत्) यह (ब्रह्म) ब्रह्म (एकम्) एक (अस्ति) है (बुद्धिदोषेण) बुद्धिके दोपसे (नाना) अनेक प्रकारका [भाति] भासता है (दोषे. नष्टे) दोपके नष्ट होजाने पर (एकम्, एव) एक ही (वस्तु) वस्तु [भाति] प्रतीत होता है ॥ ६९१ ॥

भावार्थ-जैसे मनुष्यकी दृष्टिके दोपसे एक ही चन्द्रमा दो चन्द्रमासा प्रतीत होता है, ऐसे ही ब्रह्म बुद्धिके दोपसे अनेक रूपवाला प्रतीत होरहा है, इस बुद्धिदोपके नष्ट होजाने पर एक सत् वस्तु ही प्रतीत होती है ॥ ६९१ ॥

रज्जोः स्वरूपाधिगमे तु सर्पधी रज्ज्वां विलीना तु यथा तथैव ।
ब्रह्मावगत्या तु जगत्प्रतीतिस्तत्रैव लीना तु सह भ्रमेण ॥६६२॥

अन्वय और पदार्थ—(यथा) जैसे (रज्जोः) रस्सीके (स्वरूपाधिगमे) स्वरूपका ज्ञान होजाने पर (सर्पधीः) सर्पबुद्धि (न) नहीं [भवति] होती है (तु) किन्तु (रज्ज्वाम्) रस्सीमें (विलीना) विलीन [जायते] होजाती है (तथा एव) तैसे ही (ब्रह्मावगत्या) ब्रह्मज्ञान होजानेसे (जगत्प्रतीतिः, तु) जगत्‌की प्रतीति तो (भ्रमेण, सह) भ्रमके साथ (तत्र, एव) उसमें ही (लीना) लीन [भवति] होजाती है ॥ ६६२ ॥

भावार्थ—जैसे रस्सीके स्वरूपका ज्ञान होजाने पर फिर सर्पकी बुद्धि नहीं रहती किन्तु रस्सीमें ही विलीन होजाती है, ऐसे ही ब्रह्मज्ञान होजाने पर फिर जगत्‌की प्रतीति नहीं होती, किन्तु यह सब जगत् भ्रान्तिके सहित ब्रह्ममें ही लीन हो जाता है ॥ ६६२ ॥

भ्रान्त्योदितद्वैतमतिप्रशान्त्या सदैकमेवास्ति सदाऽद्वितीयम् ।
ततो विजातीयकृतोऽत्र भेदो न विद्यते ब्रह्मणि निर्विकल्पे ६६३

अन्वय और पदार्थ—(सदा) सर्वदा (अद्वितीयम्) द्वितीयरहित ब्रह्म (भ्रान्त्या) भ्रान्ति करके (उदितमतिप्रशान्त्या) उत्पन्न हुए द्वैतज्ञानकी शांति होजानेसे (सदा) सर्वदा (एकम्, एव) एक ही (अस्ति) है (ततः) तिससे (अत्र) इस (निर्विकल्पे) विकल्परहित (ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (विजातीयकृतः) विजातीय पदार्थका किया हुआ (भेदः) भेद (न) नहीं (विद्यते) है ॥६६३

भावार्थ—भ्रान्तिसे उत्पन्न हुई द्वैतबुद्धिके दूर होजाने पर एक अद्वितीय ब्रह्म स्थित रहता है, इसलिये इस विकल्पशून्य ब्रह्ममें विरुद्ध जातिके पदार्थका भेद नहीं है ॥ ६६३ ॥

यदाऽस्त्युपाधिस्तदभिन्न आत्मा तदा सजातीय इवावभाति ।
स्वप्नार्थवत्तस्य मृषार्थकत्वात् तदप्रतीतौ स्वयमेव आत्मा ॥
ब्रह्मैकरूपेण पृथङ्न भाति ततः सजातीयकृतो न भेदः ६६४

अन्वय और पदार्थ-(यदा) जब (उपाधिः) बुद्धि आदि भेदका धर्म (अस्ति) है (तदा) तब (तदभिन्नः) उस उपाधिसे अभिन्न (आत्मा)

(ब्रह्मात्मनोः) ब्रह्म और जीवात्माकी (अद्वयोपपत्तये) अभिन्नताका प्रतिपादन करनेके लिये (प्रत्यक्षादिविरोधेन) प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंका विरोध होनेसे (वाच्ययोः) अभिधा शक्तिसे प्राप्त अर्थोंमें (न) नहीं (उपयुज्यते) उपयुक्त होता है (लक्ष्ययोः) लक्षण वृत्तिसे प्राप्त (तत्त्वंपदार्थयोः) तत् त्वं पदके अर्थोंमें (एव) ही (ऐक्यम्) एकता (सिध्यति) सिद्ध होती है ॥ ७०० ॥

भावार्थ-तत्त्वमसि तू वह ब्रह्म है, इस श्रुतिके द्वारा ब्रह्म और जीवात्माकी एकताका प्रतिपादन करनेमें प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंके साथ विरोध पड़ता है, इस लिये अभिधाशक्तिसे लभ्य वाच्यार्थ ठीक नहीं बैठता, तत्पदार्थ और त्वं पदार्थके लक्षणावृत्तिसे प्राप्त होनेवाले लक्ष्यार्थके द्वाराही एकता स्थापित होती है ॥७०० ॥

शिष्य उवाच—

स्यात् तत्त्वंपदयोः स्वामिन्नर्थः कतिविधो मतः ।
पदयोः को नु वाच्यार्थो लक्ष्यार्थ उभयोश्च कः ॥ ७०१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(शिष्यः) शिष्य (उवाच) बोला (स्वामिन्) हे प्रभो (तत्त्वंपदयोः) तत् और त्वम् पदका (कतिविधिः) कितने प्रकारका (अर्थः) अर्थ (स्यात्) होगा (उभयोः) दोनों (पदयोः) पदोंका (वाच्यार्थः) वाच्य अर्थ (च) और (लक्ष्यार्थः) लक्ष्य अर्थ (कः,नु) कौनसा है ॥७०१॥

भावार्थ-शिष्यने कहा, कि-हे प्रभो ! तत् और त्वं पदका कितने प्रकारका अर्थ है और इन दोनों पदोंका वाच्य तथा लक्ष्य अर्थ क्या है ॥ ७०१ ॥

वाच्यैकत्वविवक्षायां विरोधः कः प्रतीयते ।
लक्ष्यार्थयोरभिन्नत्वे स कथं विनिवर्त्तते ॥ ७०२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वाच्यैकत्वविवक्षायाम्) दोनों वाच्य अर्थोंकी अभिन्नताको कहनेकी इच्छा होने पर (कः) क्या (विरोधः) विरोध (प्रतीयते) प्रतीत होता है (लक्ष्यार्थयोः) दोनों लक्ष्य अर्थोंकी (अभिन्नत्वे) एकता होने पर (सः) वह विरोध (कथ्यताम्) कैसे (निवर्त्तते) दूर होता है ॥ ७०२ ॥

भावार्थ-दोनों वाच्य अर्थोंकी अभिन्नताको कहनेकी इच्छा होने पर कैसे विरोध प्रतीत होता है और दोनों लक्ष्य अर्थोंकी एकता होने पर दूर होजाता है ? ॥ ७०२ ॥

एकत्वकथने का वा लक्षणात्रोररी कृता

एतत्सर्वं करुणया सम्यक् त्वं प्रतिपादय ॥ ७०३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अत्र) इस स्थलमें (एकत्वकथने) अभेदको कहनेमें (का वा) कौनसी (लक्षणा)-लक्षणा (उररीकृता) स्वीकार की है (एतत्) यह(सर्वम्) सब (त्वम्) आप (करुणया) दया करके(सम्यक्) भले प्रकार (प्रतिपादय) कहिये ॥ ७०३ ॥

भावार्थ-'तत्त्वमसि' महावाक्यमें अभेदका वर्णन करनेमें कौनसी लक्षणा स्वाकार की है, आप दया करके यह सब मुझे भले प्रकार बता दीजिये ॥७०३॥

तत्त्वंपदार्थः

श्री गुरुरुवाच—

शृणुष्वावहितो विद्वन् अद्य ते फलितं तपः ।
वाक्यार्थं श्रुतिमात्रेण सम्यग् ज्ञानं भविष्यति ॥ ७०४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(श्रीगुरुः) श्रीगुरु (उवाच) बोले (विद्वन्) हे पण्डित ! (अवहितः) सावधान [सन्] होता हुआ (शृणुष्व) सुन (अद्य) आज (ते) तेरा (तपः) तप (फलितम्) सफल होगया (वाक्यार्थश्रुतिमात्रेण) वाक्यार्थके श्रवणमात्रसे (सम्यक्) उत्तमतासे (ज्ञानम्) तत्त्वज्ञान (भविष्यति) होगा ॥७०४॥

भावार्थ-शिष्यके प्रश्नको सुनकर श्रीगुरुदेवने कहा, कि-हे विद्वन् ! तू ध्यान देकर सुन, आज तेरी तपस्या सफल होगई, तत्त्वमसि महावाक्यके अर्थको सुनते ही तुझे तत्त्वज्ञान उत्पन्न होजायगा ॥ ७०४ ॥

यावन्न तत्त्वंपदयोरर्थः सम्यग् विचार्यते ।
तावदेव नृणां बन्धो मृत्युसंसारलक्षणः ॥ ७०५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यावत्) जबतक (तत्त्वंपदयोः) तत् और त्वं पदका (अर्थः) अर्थ (सम्यक्) भले प्रकार (न) नहीं (विचार्यते) विचाराजाता है (तावत्, एव) तब तकही (नृणाम्) मनुष्योंको (मृत्युसंसारलक्षणः) मरण और आवागमनरूप (बन्धः) बन्धन [अस्ति] है ॥ ७०५ ॥

भावार्थ-जब तक तत् पद और त्वं पदके अर्थका अच्छे प्रकारसे विचार नहीं किया जाता है, तब तकही मनुष्योंको मरण और संसारमें आवागमन रूप बन्धन रहता है ॥ ७०५ ॥

अवस्था सच्चिदानन्दाखण्डैकरसरूपिणी ,

आत्मा (सजातीय, इव) समान जाति वालासा (अवभाति) प्रतीत होता है (स्वप्नार्थतः) स्वप्नके भावसे (तस्य) उस उपाधिके (मृषात्मकत्वात्)मिथ्याभूत होनेसे (तदप्रतीतौ) उस उपाधिका अदर्शन होने पर (एषः) यह (आत्मा) आत्मा (स्वयम्) अपने आप (ब्रह्मैकताम्) ब्रह्मरूप अद्वितीयपनेको (एति) प्राप्त होजाता है (पृथक्) भिन्न (न) नहीं (भाति) भासता है (ततः) तिससे (सजातीयकृतः) सजातीय पदार्थका किया हुआ (भेदः) भेद (न) नहीं [अस्ति] है ॥ ६६४ ॥

भावार्थ-जब बुद्धि आदि उपाधि होती है और उपाधिके साथ आत्मा अभिन्न प्रतीत होता है, उस समय आत्मा सजातीय भेद वालासा भासता है, स्वप्नमें देखे हुए पदार्थकी समान उपाधिकी अप्रतीति होने पर यह आत्मा स्वयं ही अद्वितीय ब्रह्मरूपसे प्रतीत होने लगता है, उस समय पृथक्रूपसे नहीं भासता,इसलिये आत्मामें सजातीयकृत भेद नहीं है॥ ६६४ ॥

घटाभावे घटाकाशो महाकाशो यथा तथा ।
उपाध्यभावे त्वात्मैव स्वयं ब्रह्मैव केवलम् ॥ ६६५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (घटाभावे) घटका अभाव होने पर (घटाकाशः) घटाकाश (महाकाशः) महाकाश [अस्ति] है (तथा) तैसे ही (उपाध्यभावे, तु) उपाधिका अभाव होने पर तो (स्वयम्) आप (एषः) यह (आत्मा, एव) आत्मा ही (केवलम्) केवल (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही है ।६६५।

भावार्थ-जैसे घटका अभाव होजाने पर घटके भीतरका आकाश महाकाश के सिवाय और कुछ नहीं है, ऐसे ही उपाधिका अभाव होजाने पर यह आत्मा शुद्ध ब्रह्म ही है ॥ ६६५ ॥

पूर्ण एव सदाकाशो घटे सत्यप्यसत्यपि ।
नित्यपूर्णस्य महतो विच्छेदः केन सिध्यति ॥ ६६६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(घटे) घटके (सति, अपि) होने पर भी (असति,अपि) न होने पर भी (सदा) सर्वदा (आकाशः) आकाश (पूर्ण, एव) पूर्ण ही है (नित्यपूर्णस्य) सदा परिपूर्ण (महतः) महान् पदार्थका (विच्छेदः) वियोग (केन) किसके द्वारा (सिध्यति) सिद्ध होता है ॥ ६६६ ॥

भावार्थ-घट रहे या न रहे, आकाश सदा ही परिपूर्ण रहता है, क्योंकि-सदा पूर्णस्वभाव महान् पदार्थको कौन जुदा कर सकता है ? ॥ ६६६ ॥

अच्छिन्नाऽच्छिन्नवद्भाति पामराणां घटादिना ।
ग्रामक्षेत्राद्यवधिभिर्भिन्नेव वसुधा यथा ॥ ६६७ ॥
तथैव परमं ब्रह्म महताञ्च महत्तमम् ।
परिच्छिन्नमिवाभाति भ्रान्त्या कल्पितवस्तुना ॥ ६६८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (अच्छिन्नः) असीम [आकाशः] आकाश (पामराणाम्) पामरोंको (घटादिना) घट आदिके द्वारा (छिन्नवत्) परिच्छिन्नसा (भाति) प्रतीत होता है (वसुधा) पृथिवी (ग्रामक्षेत्राद्यवधिभिः) ग्राम खेत आदिकी सीमाओंसे (भिन्ना, इव) पृथक् २ सी [भाति] भासती है (तथा, एव) तैसे ही (महतां, च) महत् पदार्थोंका भी (महत्तमम्) अधिक महान् (परमं, ब्रह्म) परम ब्रह्म (भ्रान्त्या) भ्रान्ति करके (कल्पितवस्तुना) कल्पित वस्तुके द्वारा (परिच्छिन्नं, इव) परिच्छिन्नसा (आभाति) प्रतीत होता है ॥

भावार्थ-जैसे असीम आकाश पामरोंको घट मठ आदिके द्वारा परिच्छिन्न (खंड खंड) सा प्रतीत होता है और एक पृथिवी ग्राम खेत आदिकी सीमाओंसे से भिन्न २ सी प्रतीत होती है, ऐसे ही सकल महान् वस्तुओंसे भी महान् परब्रह्म भ्रांतिसे आरोपित वस्तुओंके द्वारा परिच्छिन्नसा प्रतीत होता ॥ ६६७-६६८ ॥

तस्माद् ब्रह्मात्मनोर्भेदः कल्पितो न तु वास्तवः ।
अत एव मुहुः श्रुत्याऽप्येकत्वं प्रतिपाद्यते ॥ ६६६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (ब्रह्मात्मनोः) ब्रह्म और जीवका (भेदः) भेद (कल्पितः) कल्पित है (वास्तवः, तु) वास्तविक तो (न) नहीं है (अतएव) इसलिये ही (श्रुत्या, अपि) श्रुति करके भी (मुहुः) वारम्वार (एकत्वम्) एकरूपता (प्रतिपाद्यते) वर्णन की जाती है ॥ ६६६ ॥

भावार्थ-इसलिये ब्रह्म और जीवमें जो भेद भासता है वह कल्पित है, वास्तविक नहीं है, श्रुतिने भी वार २ आत्माकी एकता को ही कहा है ॥ ६६६ ॥

ब्रह्मात्मनोस्तत्त्वमसीत्यद्वयत्वोपपत्तये ।
प्रत्यक्षादिविरोधेन वाच्ययोर्नोपयुज्यते ॥
तत्त्वं पदार्थयोरैक्यं लक्ष्ययोरेव सिध्यति ॥ ७०० ॥

अन्वय और पदार्थ-(त्वम्) तू (तत्) वह ब्रह्म (असि) है (इति) यह

शौक्ल्याद्वयावर्त्तते नीलेनोत्पलन्तु विशेषितम्।
इत्थमन्योऽन्यभेदस्य व्यावर्त्तकतया तयोः ॥ ७१६ ॥
विशेषणविशेष्यत्वं संसर्गस्येतरस्य वा।
वाक्यार्थत्वे प्रमाणान्तरविरोधो न विद्यते ॥ २१७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(समष्टिरूपम्) समूहरूप (अज्ञानम्) अज्ञान (साभासम्) चिदाभासयुक्त (सत्त्ववृंहितम्) सत्त्वगुणसे बढ़ीहुई (स्वकार्येण, समन्वितम्) अपने कार्यके सहित (वियदादि) आकाशसे लेकर (विराडन्तम्) विराट् पर्यन्त है (तदवच्छिन्नम्) इस अज्ञानसे विशिष्ट (सत्यज्ञानादिलक्षणम्) सत्यज्ञानआनन्दस्वरूप (चैतन्यम्) चैतन्य (सर्वज्ञत्वेश्वरत्वान्तर्यामित्वादिगुणैः) सर्वज्ञत्व, ईश्वरत्व, अन्तर्यामित्व आदि गुणों करके (युतम्) युक्त (जगत्स्रष्टृत्वपातृत्वसंहर्तृत्वादिधर्मकम्) जगत्का सृष्टिकर्त्तापन पालनकर्त्तापनऔर संहारकर्त्तापन आदि धर्मोंवाला (सर्वात्मना) सर्वरूपसे (भासमानम्) प्रकाशमान (गुणैः, च) गुणों करके भी (यत्) जो (अमेयम्) परिमाण करने योग्य नहीं है (तत्) वह (अव्यक्तम्) व्यक्तभावसे रहित (अपरम्) परसे अन्य (ब्रह्म) ब्रह्म (वाच्यार्थः) अभिधा शक्तिके द्वारा प्राप्त होनेवाला अर्थ (इति) ऐसा (कथ्यते) कहाजाता है (यथा) जैसे (नीलम्) नीला (उत्पलम्) कमल (इति) ऐसे (अत्र) इस वाक्यमें (वाक्यार्थसङ्गतिः) वाक्यके अर्थकी सङ्गति [भवति] होती है (तथा) तैसे (तत्त्वमसि, इत्यत्र) तत्त्वमसि इस वाक्यमें (वाक्यार्थसङ्गतिः) वाक्यके अर्थकी सङ्गति (न) नहीं (अस्ति) है (नीलः) नील पदार्थ (उत्पलेन) कमलके द्वारा (विशेषितः) विशेषण वाला [सन्] होताहुआ (पटात्) वस्त्र से (व्यावर्त्तते) पृथक् होता है (तु) परन्तु (उत्पलम्) कमल (नीलेन) नील के द्वारा (विशेषितम्) विशेषणयुक्त [सत्] होताहुआ (शौक्ल्यात्) शुक्लवर्णसे (व्यावर्त्तते) पृथक् होता है (इत्थम्) इस प्रकार (तयोः) उन नील और कमलका (अन्योऽन्यभेदस्य) परस्परके भेदका (व्यावर्त्तकतया) निवर्त्तक होनेसे (विशेषणविशेष्यत्वसंसर्गस्य) विशेषणविशेष्यभाव सम्बन्ध (वा) अथवा (इतरस्य) अन्य (वाक्यार्थत्वे) वाक्यका अर्थ होनेमें (प्रमाणान्तरविरोधः) अन्य प्रमाणके साथ विरोध (न) नहीं (विद्यते) है॥७११-७१७॥

भावार्थ-अपने कार्यके सहित चिदाभासयुक्त आकाशसे लेकर विराट्पर्यन्त

समष्टिरूप अज्ञान (अविद्या) है, उस अज्ञानसे अवच्छिन्न (विशिष्ट, सत्य-ज्ञान-आनन्दस्वरूप चैतन्य सर्वज्ञत्व ईश्वरत्व और अन्तर्यामित्व आदि गुणोंसे युक्त, जगत्‌का सृष्टिकर्त्तापन पालनकर्त्तापन और संहारकर्त्तापन आदि धर्मोंवाला और अपरिमित गुणोंसे युक्त तथा सर्वात्मभावसे प्रकाशमान होकर अव्यक्त अपर ब्रह्म कहलाता है और वही वाच्य अर्थ कहाजाता है 'नीलमुत्पलम्-नील कमल' इस वाक्यमें जैसे वाक्यके अर्थकी सङ्गति होती है, नील पदार्थ कमलके द्वारा विशेषण वाला होकर वस्त्रसे व्यावृत्त (पृथक्) होता है और कमल नीलके द्वारा विशेषण वाला होकर शुक्लसे व्यावृत्त होता है। इस प्रकार नील और उत्पल (कमल) ये दोनों पदार्थ परस्परके भेदका व्यावर्त्तकत्व (निवारण) करते हैं, इसलिये विशेषणविशेष्यभाव सम्बन्ध अथवा अन्य वाक्यार्थ होने पर प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों के साथ कोई विरोध नहीं होता है ॥ ७११-७१७ ॥

अतः संगच्छते सम्यग् वाक्यार्थो बाधवर्जितः ।
एवं तत्त्वमसीत्यत्र वाक्यार्थो न समञ्जसः ॥ ७१८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अतः) इससे (बाधवर्जितः) बाधरहित (वाक्यार्थः) वाक्यका अर्थ (सम्यक्) भलेप्रकारसे (सङ्गच्छते) सङ्गत होता है (एवम्) ऐसे (तत्त्वमसि, इत्यत्र) तत्त्वमसि इस वाक्यमें (वाक्यार्थः) वाक्यका अर्थ (समञ्जसः) सङ्गत (न) नहीं [भवति] होता है ॥ ७१८ ॥

भावार्थ—इसलिये 'नीलं उत्पलम्, नीला कमल' इस वाक्यमें बाधारहित वाक्यार्थ ठीक बैठजाता है परन्तु 'तत्त्वमसि' इस महावाक्यमें वाक्यार्थ ठीक नहीं बैठता ॥ ७१८ ॥

तदर्थस्य परोक्षत्वादिविशिष्टचितेरपि ।
त्वमर्थस्यापरोक्षत्वादिविशिष्टचितेरपि ॥ ७१९ ॥
तथैवान्योन्यभेदस्य व्यावर्त्तकतया तयोः ।
विशेषणविशेष्यस्य संसर्गस्येतरस्य वा ॥ ७२० ॥
वाक्यार्थत्वे विरोधोऽस्ति प्रत्यक्षादिकृतस्ततः ।
सङ्गच्छे न वाक्यार्थस्तद्विरोधञ्च वच्मि ते ॥ ७२१ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तदर्थस्य) तत् पदके अर्थ (परोक्षत्वादिविशिष्टचितेः,

मोक्षः सिध्यति वाक्यार्थापरोक्षज्ञानतः सताम् ॥ ७०६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सताम्) सत्पुरुषोंको (वाक्यार्थापरोक्षज्ञानतः) तत्त्वमसि महावाक्यके प्रत्यक्ष ज्ञानसे (सच्चिदानन्दाखण्डैकरसरूपिणी)सत्-चित्-आनन्दरूप अखण्ड-एक-रस-स्वरूप (अवस्था) दशा (मोक्षः) मुक्ति (सिध्यति) सिद्ध होती है ॥ ७०६ ॥

भावार्थ—तत्त्वमसि वाक्यार्थके प्रत्यक्ष ज्ञानसे साधुओंको सच्चिदानन्द अखण्ड एकरसरूप मोक्ष दशा प्राप्त होती है ॥ ७०६ ॥

वाक्यार्थ एव ज्ञातव्यो मुमुक्षोर्भवमुक्तये ।
तस्मादवहितो भूत्वा शृणु वक्ष्ये समासतः ॥ ७०७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(मुमुक्षोः) मुमुक्षुको (भवमुक्तये) संसारसे मुक्ति पानेके लिये (वाक्यार्थः, एव) तत्त्वमसि वाक्यका अर्थ ही (ज्ञातव्यः) जानना चाहिये (तस्मात्) तिससे (अवहितः) सावधान (भूत्वा) होकर (शृणु) सुन (समासतः) संक्षेपसे (वक्ष्ये) कहूँगा ॥ ७०७ ॥

भावार्थ—मुमुक्षु मनुष्यको संसारबंधनसे मुक्ति पानेके लिये 'तत्त्वमसि, महावाक्यके अर्थको ही जानना चाहिये, इस लिये मैं संक्षेपसे कहता हूँ तू सावधान होकर सुन ॥ ७०७ ॥

अर्था बहुविधाः प्रोक्ता वाक्यानां पण्डितोत्तमैः ।
वाच्यलक्ष्यादिभेदेन प्रस्तुतं श्रूयतां त्वया ॥ ७०८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(पण्डितोत्तमैः) श्रेष्ठ पण्डितोंने (वाच्यलक्ष्यादिभेदेन) वाच्य लक्ष्य आदि भेदसे (वाक्यानाम्) वाक्योंके (बहुविधाः) बहुत प्रकारके (अर्थाः) अर्थ (प्रोक्ताः) कहे हैं (प्रस्तुतम्) प्रसङ्गवश प्राप्त (त्वया) तुझ करके (श्रूयताम्) सुनाजाय ॥ ७०८ ॥

भावार्थ—प्रधान २ पण्डितोंने वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थके भेदसे वाक्योंके बहुत प्रकारके अर्थ कहे हैं, मैं उनका कहना आरम्भ करता हूँ, तू सुन ॥ ७०८ ॥

तत्पदार्थ—

वाक्ये तत्त्वमसीत्यत्र विद्यते यत्पदत्रयम् ।
तत्रादौ विद्यमानस्य तत्पदस्य निगद्यते ॥ ७०९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्, त्वम्, असि) वह ब्रह्म तू है इति) इस प्रकार (अत्र) इस (वाक्ये) वाक्यमें (यत्) जो (पदत्रयम्) तीन पद हैं (तत्र) उनमें (आदौ) आदिमें विद्यमान (तत्पदस्य) तत् पदका [अर्थः] अर्थ (निगद्यते) कहाजाता है ॥ ७०६ ॥

भावार्थ—तत्त्वमसि, इस महावाक्यमें 'तत्, त्वम्, असि' ये तीन पद हैं, इनमें से पहले तत् पदका अर्थ कहते हैं ॥ ७०६ ॥

वाच्यार्थविरोधः ।

शास्त्रार्थकोविदैरर्थो वाच्यो लक्ष्य इति द्विधा ।
वाच्यार्थं ते प्रवक्ष्यामि पण्डितैर्य उदीरितः ॥ ७१० ॥

अन्वय और पदार्थ-(शास्त्रार्थकोविदैः) शास्त्रके अर्थको जाननेमें प्रवीण (पण्डितैः) पण्डितोंने (वाच्यः) अभिधा वृत्तिसे प्राप्त होनेवाला (लक्ष्यः) लक्षणा वृत्तिसे प्राप्त होनेवाला (इति) इसप्रकार (द्विधा) दो प्रकारका (यः) जो (अर्थः) अर्थ (उदीरितः) कहा है (ते) तेरे अर्थ (वाच्यार्थम्) वाच्य अर्थको (प्रवक्ष्यामि) कहूँगा ॥ ७१० ॥

भावार्थ—शास्त्रके अर्थको समझे हुए पण्डितोंने वाच्य और लक्ष्य ये दो प्रकारके अर्थ कहे हैं, मैं तुझसे वाच्य अर्थ कहता हूँ—॥ ७१० ॥

समष्टिरूपमज्ञानं साभासं सत्त्वबृंहितम् ।
वियदादि विराडन्तं स्वकार्येण समन्वितम् ॥ ७११ ॥
चैतन्यं तदवच्छिन्नं सत्यज्ञानादिलक्षणम् ।
सर्वज्ञत्वेश्वरत्वान्तर्यामित्वादिगुणैर्युतम् ॥ ७१२ ॥
जगत्स्रष्टृत्वपातृत्वसंहर्तृत्वादिधर्मकम् ।
सर्वात्मना भासमानं यदमेयं गुणैश्च तत् ॥ ७१३ ॥
अव्यक्तमपरं ब्रह्म वाच्यार्थ इति कथ्यते ।
नीलमुत्पलमित्यत्र यथा वाक्यार्थसंगतिः ॥ ७१४ ॥
तथा तत्त्वमसीत्यत्र नास्ति वाक्यार्थसंगतिः ।
पटाद् व्यावर्त्तते नील उत्पलेन विशेषितः ॥ ७१५ ॥

अपि) अप्रत्यक्षपना आदि युक्त चैतन्यका भी (त्वमर्थस्य) त्वं पदके अर्थ (अपरोक्षत्वादिविशिष्टचितेः, अपि) प्रत्यक्षपना आदि युक्त चैतन्यका भी (तथा, एव) तैसे ही (तयोः) उन तत् और त्वं पदके (अन्योन्यभेदस्य) परस्परके अन्योन्यभावके (व्यावर्त्तकतया) निवर्त्तक होनेसे (विशेषणविशेष्यस्य) विशेषण विशेष्यभावरूप (संसर्गस्य) सम्बन्ध (वा) या (इतरस्य) दूसरा (वाक्यार्थत्वे) वाक्यार्थ करनेमें (प्रत्यक्षादिकृतः) प्रत्यक्ष आदिका कियाहुआ (विरोधः) विरोध (अस्ति) है (ततः) तिससे (वाक्यार्थः) वाक्यका अर्थ (न) नहीं (सङ्गच्छते) बैठता है (ते) तेरे अर्थ (तद्विरोधं, च) उसके विरोधको भी(वच्मि) कहता हूँ ॥ ७१९—७२१ ॥

भावार्थ-'नीलमुत्पलम्, नीला कमल' इस वाक्यकी समान 'तत्त्वमसि-वह तू है' इस वाक्यमें वाक्यार्थ क्यों नहीं बैठता, सो दिखाते हैं, कि-'तत्त्वमसि' इस वाक्यमें तत् पदका अर्थ-परोक्षत्व (प्रत्यक्ष न होना) आदिसे युक्त चैतन्य लियाजाता है और त्वं पदका अर्थ-अपरोक्षत्व (प्रत्यक्ष होना) आदिसे युक्त चैतन्य लियाजाता है। तत् और त्वं इन दोनों पदोंका अर्थ यदि परस्परके भेद (अन्योन्याभाव) का व्यावर्त्तक (दूर करनेवाला) होकर विशेषणविशेष्यभाव या और वाक्यार्थ होता है तो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंके साथ विरोध होता है, इस लिये वाक्यार्थ ठीक नहीं बैठता, क्या विरोध होता है वह भी कहता हूँ ।१९-२१।

सर्वेशत्वस्वतन्त्रत्वसर्वज्ञत्वादिभिर्गुणैः ।
सर्वोत्तमः सत्यकामः सत्यसंकल्प ईश्वरः ॥ ७२२ ॥
तत्पदार्थस्त्वमर्थस्तु किञ्चिज्ज्ञो दुःखजीवनः ।
संसार्ययं तद्गतिको जीवः प्राकृतलक्षणः ॥ ७२३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वेशत्वस्वतन्त्रत्वसर्वज्ञत्वादिभिः) सबका ईश्वरपना स्वतन्त्रता और सर्वज्ञता आदि (गुणैः) गुणोंके द्वारा (सर्वोत्तमः) सबसे श्रेष्ठ (सत्यकामः) यथार्थ कामनावाला (सत्यसङ्कल्पः) सत्यसङ्कल्पवाला (ईश्वरः) परमेश्वर (तत्पदार्थः) तत्पदका वाच्य अर्थ [अस्ति] है (तु) परन्तु (किंचिज्ज्ञः) अल्पज्ञ (दुःखजीवनः) दुःखमय जीवनवाला (तद्गतिकः) उस परमेश्वरसे ही गति पानेवाला (प्राकृतलक्षणः) अधमरूप (अयम्) यह (संसारी) आवागमनवाला (जीवः) जीव (त्वंपदार्थः) त्वं पदका अर्थ [अस्ति] है ॥

भावार्थ-सर्वेश्वरता, स्वतन्त्रता और सर्वज्ञता आदि गुणोंके द्वारा सबसे

उत्तम, सत्यकाम, सत्यसङ्कल्प परमेश्वर तत्पदका वाच्य अर्थ है और अल्पज्ञ दुःख से जीवनको बितानेवाला, परमेश्वरके अवलम्बसे सहगजिवाला, संसारी जीव त्वं पदका वाच्य अर्थ है ॥ ७२२ ॥ ७२३ ॥

कथमेकत्वमनयोर्घटते विपरीतयोः ।
प्रत्यक्षेण विरोधोऽयमुभयोरुपलभ्यते ॥ ७२४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विपरीतयोः) विरोधी (अनयोः) इनका (एकत्वम्) एकपना (कथम्) कैसे (घटते) होसकता है (उभयोः) दोनोंका (अयम्) यह (विरोधः) विरोध (प्रत्यक्षेण) प्रत्यक्षरूपसे (उपलभ्यते) पायाजाता है ॥

भावार्थ-ईश्वर और जीव इन दो विरोधी पदार्थोंकी एकता कैसे होसकती है ? इन दोनोंका विरोध प्रत्यक्ष देखते हैं ॥ ७२४ ॥

विरुद्धधर्माक्रान्तत्वात्परस्परविलक्षणौ ।
जीवेशौ वह्नितुहिनाविव शब्दार्थतोऽपि च ॥ ७२५ ॥
प्रत्यक्षादिविरोधः स्यादित्यैक्ये तयोः परित्यक्ते ।
श्रुतिवचनविरोधो भवति महान् स्मृतिवचनविरोधश्च ॥

अन्वय और पदार्थ-(वन्हितुहिनौ इव) अग्नि और बरफकी समान (विरुद्धधर्माक्रान्तत्वात्) विपरीत धर्मवाले होनेसे (परस्परविलक्षणौ) आपसमें भिन्न (जीवेशौ) जीव और ईश्वर [विद्येते] हैं (च) और (शब्दार्थतः, अपि) इन शब्दोंके अर्थसे भी (प्रत्यक्षादिविरोधः) प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंके साथ विरोध (स्यात्) होगा (इति) इसकारण (तयोः) इन दोनोंकी (ऐक्ये) एकताके (परित्यक्ते) छूट जाने पर (महान्) बड़ाभारी (श्रुतिवचनविरोधः) वेदवाक्य के साथ विरोध (च) और (स्मृतिवचनविरोधः) स्मृतिके वाक्योंके साथ विरोध (भवति) होता है ॥ ७२५ ॥ ७२६ ॥

भावार्थ--अग्नि और बरफकी समान विरुद्ध धर्मवाले होनेसे जीव और ईश्वरका स्वभाव आपसमें प्रतिकूल है, जीव और ईश्वर शब्दके अर्थको लेकर भी प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंके साथ विरोध पड़ता है, इन दोनोंकी एकता ही नहीं है, इसलिये वेदवाक्योंके साथ और स्मृति वचनोंके साथ भी बड़ा विरोध पड़ता है ॥

श्रुत्याप्येकत्वमनयोस्तात्पर्येण निगद्यते ।
मुहुस्तत्त्वमसीत्यस्मादङ्गीकार्यं श्रुतेर्वचः ॥ ७२७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(श्रुत्या, अपि) श्रुतिके द्वारा भी (अनयोः) इनका (एकत्वम्) अभेद (तात्पर्येण) तात्पर्यके द्वारा (निगद्यते) कहा जाता है (अस्मात्) इससे (मुहुः) बारबार (तत्त्वमसि, इति) तत्त्वमसि इस (श्रुतेः) श्रुतिका (वचः) वचन (अङ्गीकार्यम्) स्वीकार करना चाहिये ॥ ७२७ ॥

भावार्थ-श्रुति भी जीव और ब्रह्मकी एकताको तात्पर्यके द्वारा कहती है, इस लिये बारबार कहे हुए 'तत्त्वमसि' इस श्रुतिवाक्यको स्वीकार करना चाहिये ॥

वाक्यार्थत्वे विशिष्टस्य संसर्गस्य च वा पुनः ।
अयथार्थतया सोऽयं वाक्यार्थो न मतः श्रुतेः ॥ ७२८ ॥

अन्वय और पदार्थ (विशिष्टस्य) विशेषणविशेष्यभाव (वा) वा (संसर्गस्य) सम्बन्धके (वाक्यार्थत्वे) वाक्यका अर्थ होनेपर (पुनः) फिर (अयथार्थतया) ठीक न होनेसे (सः) वह (अयम्) यह (वाक्यार्थः) वाक्यका अर्थ (श्रुतेः) वेदका (मतः) अभिमत (न) नहीं है ॥ ७२८ ॥

भावार्थ-तत्त्वमसि वाक्यका अर्थ यदि विशेषणविशेष्यभाव वाला अथवा संसर्ग होता है तो ठीक वाक्यार्थ नहीं है और यह श्रुतिको अभिमत नहीं है ७२८

अखण्डैकरसत्वेन वाक्यार्थः श्रुतिसंमतः ।
स्थूलसूक्ष्मप्रपञ्चस्य सन्मात्रत्वं पुनः पुनः ॥ ७२९ ॥
दर्शयित्वा सुषुप्तौ तद् ब्रह्माभिन्नत्वमात्मनः ।
उपपाद्य सदेकत्वं प्रदर्शयितुमिच्छया ॥ ७३० ॥
ऐतदात्म्यमिदं सर्वमित्युक्त्यैव सदात्मनोः ।
अब्रवीति श्रुतिरेकत्वं ब्रह्मणोऽद्वैतसिद्धये ॥ ७३१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अखण्डैकरसत्वेन) अखण्ड एक रस रूपसे (वाक्यार्थः) तत्त्वमसि वाक्यका अर्थ (श्रुतिसम्मतः) श्रुतिके अनुकूल है (श्रुतिः) उपनिषद् (स्थूलसूक्ष्मप्रपञ्चस्य) स्थूल सूक्ष्म जगत्के (सन्मात्रत्वम्) ब्रह्मरूपत्व को (पुनः, पुनः) बार २ (दर्शयित्वा) दिखाकर (सुषुप्तौ) सुषुप्तिकालमें (आत्मनः) आत्माके (तद्ब्रह्माभिन्नत्वम्) उस ब्रह्मके अभेदभावको (उपपाद्य) उपपादन करके (सदेकत्वम्) सद्रूप ब्रह्मके साथ एकताको (प्रदर्शयितुम्) दिखानेकी (इच्छया) इच्छासे (इदम्) यह (सर्वम्) सब (ऐतदात्म्यम्) इस आत्माका रूप है (इति) ऐसा (उक्त्या) कहकर (एव) ही (ब्रह्मणः)

ब्रह्मकी (अद्वैतसिद्धये) अद्वितीयताको सिद्ध करनेके लिये (सदात्मनोः) ब्रह्म और जीवकी (एकत्वम्) एकताको (ब्रवीति) कहता है ॥ ७२६-७३१ ॥

भावार्थ-यदि विशिष्ट वा संसर्ग वाक्यार्थ नहीं होसकता तो वाक्यार्थ क्या होगा ? इसके उत्तरमें कहते हैं, कि-अखण्ड एकरस रूप वस्तु ही श्रुतिसम्मत वाक्यार्थ है, क्योंकि-श्रुति वारवार स्थूल और सूक्ष्म जगत्के ब्रह्म-स्वरूपपनेको दिखाकर सुषुप्तिकालमें ब्रह्मके साथ जीवात्माकी अभिन्नताका वर्णन करती हुई, ब्रह्मकी एकताको दिखानेके अभिप्रायसे ये सब दृश्यमान जगत् आत्मासे जुदा नहीं है, ऐसा कहकर ब्रह्मकी अद्वितीयता सिद्ध करनेके लिये ब्रह्म और जीवात्माकी अभिन्नताको कहती है ॥ ७२६-७३१ ॥

सति प्रपञ्चे जीवे वाऽद्वैतत्वं ब्रह्मणः कुतः ।
अतस्तयोरखण्डत्वमेकत्वं श्रुतिसम्मतम् ॥ ७३२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रपञ्चे) जगत्के (वा) या (जीवे) जीवचैतन्य के (सति) होने पर (ब्रह्मणः) ब्रह्मका (अद्वैतत्वम्) अद्वितीयपना (कुतः) कहाँ (अतः) इसकारण (तयोः) उनका (अखण्डत्वम्) अखण्डपना (एकत्वम्) अद्वितीयपना (श्रुतिसम्मतम्) श्रुतिका माना हुआ है ॥ ७३२ ॥

भावार्थ-जगत् वा जीवके विद्यमान होने पर ब्रह्मकी अद्वितीयता कैसे सिद्ध होगी ? इसलिये जीव और ब्रह्मकी अखण्डता तथा एकता उपनिषद्ने मानी है ७३२

विरुद्धांशपरित्यागात्प्रत्यक्षादिर्न बाध्यते ।
अविरुद्धांशग्रहणान्न श्रुत्यापि विरुध्यते ॥ ७३३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विरुद्धांशपरित्यागात्) विरोधी भागको त्यागनेसे (प्रत्यक्षादिः) प्रत्यक्ष आदि (न) नहीं (बाध्यते) बाधित होता है (अविरुद्धांशग्रहणात्) अविरोधी भागको ग्रहण करनेसे (श्रुत्या, अपि) श्रुतिके साथभी (न) नहीं (विरुध्यते) विरोध होता है ॥ ७३३ ॥

भावार्थ-तत्त्वमसि वाक्यमें तत् पदका अर्थ परोक्षत्व आदि विशिष्ट चैतन्य है और त्वं पदका अर्थ अपरोक्षत्व आदि विशिष्टचैतन्य है इनमेंसे परोक्षत्व और अपरोक्षत्व आदि विरुद्ध भागको त्याग देनेसे पर प्रत्यक्ष आदि प्रमाणका भी बाध नहीं होता है, अविरुद्ध चैतन्य अंशको लेने पर श्रुतिके साथ भी विरोध नहीं पड़ता है ॥७३३॥

लक्षणार्थनिरूपणम् ।

लक्षणा ह्युपगन्तव्या ततो वाक्यार्थसिद्धये ।

वाक्यार्थाऽनुपपत्त्यैव लक्षणाऽभ्युपगम्यते ॥ ७३४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ततः) तिससे (वाक्यार्थसिद्धये) वाक्यके अर्थका निर्णय करनेके लिये (लक्षणा) लक्षणा (उपगन्तव्या) स्वीकार करनी चाहिये (हि) क्योंकि-(वाक्यार्थानुपपत्त्या, एव) वाक्यके अर्थकी सङ्गति न होने से ही (लक्षणा) लक्षणावृत्ति (अभ्युपगम्यते) स्वीकार की जाती है ॥ ७३४ ॥

भावार्थ-इसकारण वाक्यके अर्थका निर्णय करनेके लिये लक्षणा स्वीकार करनी चाहिये, क्योंकि-जहाँ वाक्यके अर्थकी सङ्गति नहीं बैठती है, तहाँ लक्षणा की जाती है ॥ ७३४ ॥

सम्बन्धानुपपत्त्या च लक्षणेति जगुर्बुधाः
गङ्गायां घोष इत्यादौ या जहल्लक्षणा मता ॥ ७३५ ॥
न सा तत्त्वमसीत्यत्र वाक्य एषा प्रवर्त्तते ।
गङ्गाया अपि घोषस्याधाराधेयत्वलक्षणम् ॥७३६॥

अन्वय और पदार्थ—(बुधाः) पण्डित (सम्बन्धानुपपत्त्या) सम्बन्धके ठीक न बैठनेसे (लक्षणा) लक्षणा (इति) ऐसा (जगुः) कहते हैं (गङ्गायाम्) प्रवाहरूप भागीरथीमें (घोषः) ग्वालोंका गाँव [वसति] बसता है (इत्यादौ) इत्यादि स्थलोंमें (या) जो [भवति] होती है [सा] वह (जहल्लक्षणा) त्यागलक्षणा (मता) मानी गई है (तत्त्वमसि) वह तू है (इति) ऐसे (अत्र) इस (वाक्ये) वाक्यमें (सा) वह (एषा) लक्षणा (न) नहीं (प्रवर्त्तते) प्रवृत्त होती है (गङ्गायाः) गङ्गाका (अपि) और (घोषस्य) ग्वालोंके गाँवका (आधाराधेयत्वलक्षणम्) आधार और आधेय संबंध [अस्ति] है ॥ ७३५ ॥ ७३६ ॥

भावार्थ—जब सम्बन्ध ठीक नहीं बैठता तब उसको पण्डित लक्षणा कहते हैं, जैसे—' गङ्गायां घोषः—प्रवाहरूप भागीरथीमें ग्वालोंका गाँव बसता है, इस वाक्यमें जो जहल्लक्षणा (त्यागलक्षणा) कही है, वह तत्त्वमसि वाक्यमें ठीक नहीं बैठ सकती, गङ्गामें ग्वालोंका गाँव बसता है, इस वाक्यमें गङ्गा और गाँवका आधाराधेय सम्बन्ध है, अर्थात् गङ्गा आधार है और घोष आधेय है, तत्त्वमसि वाक्यमें यह बात नहीं होसकती ॥ ७३५ ॥ ७३६ ॥

सर्वो विरुद्धवाक्यार्थस्तत्र प्रत्यक्षतस्ततः ।
गङ्गासम्बन्धवत्तीरे लक्षणा संप्रवर्त्तते ॥ ७३७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्र) उस ' गङ्गायां घोषः ' वाक्यमें (प्रत्यक्षतः) प्रत्यक्ष प्रमाणसे (सर्वः) सब (विरुद्धवाक्यार्थः) वाक्य विरुद्ध अर्थ [प्रतीयते] प्रतीत होता है (ततः) तिससे (गङ्गासम्बन्धतीरे) गङ्गाके सम्बन्धवाले किनारे में (लक्षणा) लक्षणा (संप्रवर्तते) प्रवृत्त होती है ॥ ७३७ ॥

भावार्थ-गङ्गामें ग्वालोंका गाँव बसता है, यहाँ प्रत्यक्षप्रमाणसे सब वाक्य विरुद्ध प्रतीत होता है, क्योंकि-कहीं प्रवाहमें गाँव बस सकता है ? कदापि नहीं बस सकता, इसलिये गङ्गासम्बन्धी तटमें लक्षणा होती है, अर्थात् गङ्गाप्रवाहमें नहीं, किन्तु गङ्गाके तट पर ग्राम बसता है ॥ ७३७ ॥

> तथा तत्त्वमसीत्यत्र चैतन्यैकत्वलक्षणे ।
> विवक्षिते तु वाक्यार्थेऽपरोक्षत्वादिलक्षणः ॥७३८॥
> विरुध्यते भागमात्रो न तु सर्वो विरुध्यते ।
> तस्माज्जहल्लक्षणायाः प्रवृत्तिर्नात्र युज्यते ॥७३९॥

अन्वय और पदार्थ (तथा) तैसे (तत्त्वमसि, इत्यत्र) तत्त्वमसि इस वाक्य में (एकत्वलक्षणे) एकत्वरूप (चैतन्ये) चेतनके (वाक्यार्थे) वाक्यका अर्थ (विवक्षिते) वक्ताका अभिमत होने पर (तु) तो (अपरोक्षत्वादिलक्षणः) प्रत्यक्षत्व आदिरूप (भागमात्रः) भागमात्र (विरुध्यते) विरुद्ध होता है (सर्वः,तु) सब तो (न) नहीं (विरुध्यते) विरुद्ध होता है (तस्मात्) तिससे (अत्र) इस तत्त्वमसि वाक्यमें (जहल्लक्षणायाः) त्यागलक्षणाकी (प्रवृत्तिः) प्रवृत्ति (न) नहीं (युज्यते) युक्त होती है ॥ ७३८ ॥ ७३९ ॥

भावार्थ-उसप्रकार " तत्त्वमसि ' इस वाक्यमें एकत्वरूप चैतन्य ही वाक्यका अर्थ करना वक्ताकी इच्छाके अनुकूल है,इस दशामें प्रत्यक्षस्वरूप एक अंशमात्रका विरोध होता है, सर्वांशमें विरोध नहीं है, इसलिये 'तत्त्वमसि' वाक्यमें जहल्लक्षणा नहीं होसकती ॥ ७३८ ॥ ७३९ ॥

> वाच्यार्थस्य तु सर्वस्य त्यागे न फलमीक्ष्यते ।
> नारिकेलफलस्येव कठिनत्वधिया नृणाम् ॥ ७४० ॥

अन्वय और पदार्थ-(नृणाम्) मनुष्योंके (कठिनत्वधिया) कठिनताके विचारसे (नारिकेलफलस्य, इव) नारियलके फलकी समान (सर्वस्य) सब (वाच्यार्थस्य) वाच्य अर्थके (त्यागे, तु) त्यागने पर तो (फलम्) फल (न) नहीं (ईक्ष्यते) देखाजाता है ॥ ७४० ॥

भावार्थ-जैसे नारियलका फल कड़ा है, ऐसा समझकर मनुष्य यदि उस को यों ही फेंकदे तो उनको कुछ भी फल न मिले, ऐसे ही यदि 'तत्त्वमसि' के समस्त वाच्य अर्थको त्याग दिया जाय तो कुछ फल प्राप्त नहीं होसकता ॥७४०॥

गङ्गापदं यथा स्वार्थं त्यक्त्वा लक्षयते तटम् ।
तत्पदं त्वंपदं वाऽपि त्यक्त्वा स्वार्थं तथाऽखिलम् ॥७४१॥
तदर्थम्वा त्वमर्थम्वा यदि लक्षयति स्वयम् ।
तदा जहल्लक्षणायाः प्रवृत्तिरुपपद्यते ॥ ७४२ ॥
न शंकनीयमित्यार्यैर्ज्ञातार्थे न हि लक्षणा ।
तत्पदं त्वम्पदं वापि श्रूयते च प्रतीयते ॥ ७४३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (गङ्गापदम्) गङ्गाशब्द (स्वार्थम्) अपने अर्थको (त्यक्त्वा) त्यागकर (तटम्) तटको (लक्षयते) लक्षित करता है (तथा) तैसे ही (तत्पदम्) तत्त्वमसि वाक्यमें तत् पद (वा) या (त्वंपदं,अपि) त्वं पद भी (अखिलम्) सब (स्वार्थम्) अपने अर्थको (त्यक्त्वा) त्यागकर (यदि) यद्यपि (तदर्थम्) तत् पदके अर्थको (वा) या (त्वमर्थम्) त्वं पदके अर्थको (स्वयम्) आप (लक्षयति) लक्षित करे (तदा) तो (जहल्लक्षणायाः) जहल्लक्षणाकी (प्रवृत्तिः) प्रवृत्ति (उपपद्यते) बन सकती है (इति) ऐसा (आर्यैः) श्रेष्ठ पुरुषों करके (न) नहीं (शङ्कनीयम्) सन्देह करना चाहिये (हि) क्योंकि- (ज्ञातार्थे) जाने हुए अर्थमें (लक्षणा) लक्षणा (न) नहीं [भवति] होती है (तत्पदम्) तत् पद (वा) या (त्वं,पदम्,अपि) त्वंपद भी (श्रूयते) सुननेमें आता है (च) और (प्रतीयते) प्रतीत होता है ॥ ७४१-७४३ ॥

भावार्थ-' गङ्गायां घोषः प्रतिवसति' इस वाक्यमें जैसे गङ्गा पद अपने प्रवाह-रूप अर्थको छोड़कर लक्षणावृत्तिके द्वारा तटको बताता है ऐसे ही तत् पद या त्वं पद अपने सब अर्थको छोड़कर यदि तत् पदके प्रतिपाद्य अर्थ वा त्वं पदके प्रति-पाद्य अर्थ (वस्तु) को बतावे तो यहाँ जहल्लक्षणा प्रवृत्त होसकती है, श्रेष्ठ पुरुषों को ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये, क्योंकि—जाने हुए अर्थके विषयमें लक्षणा नहीं हो सकती, तत् पद और त्वं पद सुननेमें आता है और प्रतीत भी होता है ॥

तदर्थे च कथन्तत्र सम्प्रवर्त्तेत लक्षणा ।

अत्र शोणो धावतीति वाक्यवन्न प्रवर्त्तते ॥ ७४४ ॥
अजहल्लक्षणा वाऽपि सा जहल्लक्षणा यथा ।
गुणस्य गमनं लोके विरुद्धं द्रव्यमन्तरा ॥ ७४५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्र) उस तत्त्वमसि वाक्यमें (तदर्थे) तत् पदके अर्थमें (कथम्) कैसे (लक्षणा) लक्षणा (संप्रवर्त्तेत) सम्यक् प्रकारसे प्रवृत्त होसकेगी (अत्र) यहाँ (शोणः) लाल रङ्ग (धावति) दौड़ रहा है (इति) इस (वाक्यवत्) वाक्यकी समान (यथा) जैसे (सा) वह (जहल्लक्षणा) त्याग-लक्षणा [तथा] तैसे (अजहल्लक्षणा वापि) अजहल्लक्षणा भी (न) नहीं (प्रवर्त्तते) प्रवृत्त होती है (द्रव्यं, अन्तरा) द्रव्यके विना (लोके) पृथिवी पर (गुणस्य) गुणका (गमनम्) चलना (विरुद्धम्) विपरीत है ॥ ७४४॥ ७४५ ॥

भावार्थ—तत्त्वमसि, इस वाक्यमें तत् पदकी प्रतिपाद्य वस्तुमें लक्षणा कैसे होसकती है ? जैसे 'गङ्गायां घोषः' इसकी समान जहल्लक्षणा नहीं होती, ऐसे ही 'शोणो धावति—लाल रङ्ग दौड़ता है' इस वाक्यकी समान अजहल्लक्षणा भी नहीं होसकती, द्रव्यके विना गुणका चलना लोकमें देखनेमें नहीं आता ४४-४५

अतस्तमपरित्यज्य तद्गुणाश्रयलक्षणः ।
लक्ष्यादिर्लक्ष्यते तत्र लक्षणासौ प्रवर्त्तते ॥ ७४६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अतः) इसलिये (तम्) उस गुणको (अपरित्यज्य) न त्यागकर (तद्गुणाश्रयलक्षणः) उस गुणका आश्रयरूप (लक्ष्यादिः) लक्ष्य आदि (लक्ष्यते) लक्षित होता है (तत्र) वहाँ (असौ) यह (लक्षणा) लक्षणा (प्रवर्त्तते) प्रवृत्त होती है ॥ ७४६ ॥

भावार्थ-द्रव्यके विना गुणका गमन असम्भव है, इसलिये गुणको न छोड़कर उस लाल रंग रूप गुणके आश्रय किसी (घोड़ा आदि) लक्ष्य पदार्थको बताती है ऐसे स्थलमें ही यह अजहल्लक्षणा प्रवृत्त होती है ॥ ७४६ ॥

वाक्ये तत्त्वमसीत्यत्र ब्रह्मात्मैकत्वबोधके ।
परोक्षत्वापरोक्षत्वादिविशिष्टचितोर्द्वयोः ॥ ७४७ ॥
एकत्वरूपवाक्यार्थो विरुद्धांशाविवर्जनात् ।
न सिध्यति यतस्तस्मान्नाजहल्लक्षणा मता ॥ ७४८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यतः) क्योंकि-(ब्रह्मात्मैकत्वबोधके) ब्रह्मके साथ

जीवात्माकी अभिन्नताके बोधक (तत्त्वमसि, इत्यत्र) तत्त्वमसि इस (वाक्ये) वाक्यमें (द्वयोः) दोनों (परोक्षत्वापरोक्षत्वादिविशिष्टचितोः) अप्रत्यक्षत्वयुक्त और प्रत्यक्षत्वयुक्त चैतन्यके (विरुद्धांशविवर्जनात्) विरुद्धभागको त्याग देनेसे (एकत्व-रूपवाक्यार्थः) दोनोंका अभेदरूप वाक्यार्थ (न) नहीं (सिध्यति) सिद्ध होता है (तस्मात्) जिससे (अजहल्लक्षणा) अजहल्लक्षणा (न) नहीं (मता) अभिमत है ॥ ७४७ ॥ ७४८ ॥

भावार्थ-क्योंकि-जीव और ब्रह्मकी एकताके प्रतिपादक 'तत्त्वमसि' इस वाक्यमें परोक्षत्वविशिष्ट चैतन्य, और अपरोक्षत्वविशिष्ट चैतन्य, इन दोनोंके विरुद्धभाव परोक्षत्व और अपरोक्षत्वको त्यागकर दोनोंकी एकतारूप वाक्यार्थ सिद्ध नहीं होता, इसलिये यहाँ अजहल्लक्षणा नहीं मानी है, ॥ ७४७-७४८ ॥

तत्पदं त्वंपदं चापि स्वकीयार्थविरोधिनम् ।
अंशं सम्यक् परित्यज्य स्वाविरुद्धांशसंयुतम् ॥ ७४९ ॥
तदर्थम्वा त्वमर्थम्वा सम्यग्लक्षयतः स्वयम् ।
भागलक्षणया साध्यं किमस्तीति न शंक्यताम् ॥ ७५० ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्पदम्) तत्पद (च) और (त्वम्पदं, अपि) त्वं पद भी (स्वकीयार्थविरोधिनम्) अपने अर्थके विरोधी (अंशम्) भागको (सम्यक्) भले प्रकार (परित्यज्य) त्यागकर (तदर्थम्) तत् पदके अर्थको (वा) या (त्वमर्थम्) त्वं पदके अर्थको (स्वयम्) अपने आप (सम्यक्) भलेप्रकार (लक्षयतः) लक्षित करते हैं (भागलक्षणया) भागलक्षणाके द्वारा (किम्) क्या (साध्यम्) फल (अस्ति) है (इति) ऐसा (न) नहीं (शंक्यताम्) सन्देह करना चाहिये ॥ ७४९ ॥ ७५० ॥

भावार्थ-यदि 'तत्त्वमसि' इस वाक्यमेंके तत्पद और त्वं पद अपने २ अर्थके विरोधी भागको त्यागकर अपने २ अविरोधी भागके सहित तत्पदके अर्थ (परोक्षत्वविशिष्टचैतन्य) को अथवा त्वं पद के अर्थ (अपरोक्षत्वविशिष्टचैतन्य को भले प्रकारसे लक्षित करें तो भागलक्षणासे क्या फल होगा ? ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये ॥ ७४९-७५० ॥

अविरुद्धं पदार्थान्तरांशं च स्वांशञ्च तत् कथम् ।
एकं पदं लक्षणया संलक्षयितुमर्हति ॥ ७५१ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्) वह (एकम्) एक (पदम्) पद (अविरुद्धम्) अविरोधी (पदार्थान्तरांशम्) अन्य पदार्थके भागको (च) और (स्वांशम्) अपने अंशको (कथम्) कैसे (लक्षणया) लक्षणाके द्वारा (संलक्षयितुम्) सम्यक् प्रकारसे लक्षित करनेको (अर्हति) समर्थ होसकता है ॥ ७५१ ॥

भावार्थ-यदि कहो कि-एक पदमें ही लक्षणा क्यों नहीं करलेते? दोनों पदों में लक्षणा करनेकी क्या आवश्यकता है ? तो उसका उत्तर यह है, कि-यह तत् या त्वं एक ही पद अन्य पदार्थके अविरोधी भागको और अपने भागको लक्षणा के द्वारा कैसे लक्षित कर सकता है ! ॥ ७५१ ॥

पदान्तरेण सिद्धायां पदार्थप्रमितौ स्वतः ।
तदर्थप्रत्ययापेक्षा पुनर्लक्षणया कुतः ॥ ७५२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(पदान्तरेण) तत् या त्वं किसी पदके द्वारा (स्वतः) स्वयम् (पदार्थप्रमितौ) पदार्थका ज्ञान (सिद्धायाम्) सिद्ध होने पर (पुनः) फिर (लक्षणया) लक्षणाके द्वारा (तदर्थप्रत्ययापेक्षा) उसके अर्थज्ञानकी अपेक्षा (कुतः) क्या ? ॥ ७५२ ॥

भावार्थ-यदि अन्य पदके द्वारा अन्य पदार्थका ज्ञान स्वयं ही होजाय तो फिर लक्षणासे उस पदके अर्थज्ञानकी आवश्यकता किस लिए ? यहाँ तक जो लक्षणाओंकी बात कही उसका तात्पर्य यह है, कि-लक्षणा तीन प्रकारकी होती है-जहल्लक्षणा, अजहल्लक्षणा और जहदजहल्लक्षणा । जहत् शब्दका अर्थ है त्याग और अजहत् शब्दका अर्थ है अत्याग तथा जहदजहत् शब्दका अर्थ है त्याग एवं अत्याग । 'गङ्गायां घोषः प्रतिवसति-गङ्गामें ग्वालोंका ग्राम बसता है' यहाँ गङ्गा पदका मुख्य अर्थ है—भगीरथखातावच्छिन्नजलप्रवाह परन्तु जलप्रवाहमें ग्राम का बसना संभव नहीं, इसलिये लक्षणासे गङ्गापदका अर्थ गङ्गातट लियाजाता है । यहाँ गङ्गापदने अपने अर्थ जलप्रवाहको त्यागदिया है, इसलिये यह जहल्लक्षणा कहलाती है । 'शोणो धावति,-लाल वर्ण दौड़ता है' यहाँ लाल वर्णरूप गुणका दौड़ना असम्भव है, अतः वह लाल वर्णरूप गुण अपनेको न त्यागकर अपने आश्रय घोड़ेको लक्षित करता है अर्थात् लाल वर्णवाला घोडा दौड़ता है, ऐसा अर्थ होता है, इसलिये यह अजहल्लक्षणा कहलाती है । 'तत्त्वमसि' इस वाक्यमें तत् पदका प्रतिपाद्य अर्थ परोक्षत्वविशिष्ट चैतन्य है और त्वं पदका अर्थ अपरोक्षत्व-विशिष्ट चैतन्य है,परन्तु यहाँ तत् और त्वं पदके अर्थका एक अंश अर्थात् परोक्षत्व-

विशिष्टताका और अपरोक्षत्व-विशिष्टता का त्याग कियागया है, दूसरा अंश चैतन्य ठीक है, इसप्रकार यहाँ एक अंशका त्याग और एक अंशका अत्याग किया गया है, इसलिये इसको जहदजहल्लक्षणा कहते हैं। इसका ही नाम भागलक्षणा या भागत्यागलक्षणा भी है। अब यहाँ यह शंका उठती है, कि-सर्वत्र एक ही पद में लक्षणा हुआ करती है, परन्तु 'तत्त्वमसि' वाक्यके तत् और त्वं दोनों पदोंमें लक्षणा कीगई, इसका क्या कारण है ? केवल तत्-पदमें लक्षणा करके, तत्-पदके अर्थके विरुद्ध भागको त्यागकर उसके अविरुद्ध भागयुक्त तत् पदके अर्थको लक्षित करेगा। अथवा त्वं पदमें लक्षणा करके, त्वं पदके अर्थके विरुद्ध-भागको त्यागकर उसके अविरुद्ध-भागयुक्त त्वं पदके अर्थको लक्षणाके द्वारा बतावेगा। इसप्रकार जब एक ही पदमें लक्षणा करनेसे काम चलसकता है तब दोनों पदोंमें लक्षणा करनेकी क्या आवश्यकता है ? विशेष कर सर्वत्र एक पदमें ही लक्षणा देखनेमें आती है। इसका उत्तर यह है, कि-एक ही पद अपने भाग और अन्य पदार्थके भागको कैसे लक्षित करेगा ? एक पदसे पदार्थज्ञान होजाने पर विना लक्षणाके भी अर्थज्ञान होसकता है, इसलिये लक्षणाकी आवश्यकता ही नहीं रहती। इस लिये दोनों पदोंके कुछ भागको त्यागकर एकमात्र चैतन्यको लक्षित करनेके लिये ही दोनों पदोंमें लक्षणा स्वीकार की है ॥ ७५२ ॥

तस्मात्तत्त्वमसीत्यत्र लक्षणा भागलक्षणा।
वाक्यार्थसत्त्वाखण्डैकरसतासिद्धये मता ॥ ७५३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (तत्त्वमसि, इत्यत्र) तत्त्वमसि इस वाक्यमें (वाक्यार्थसत्त्वाखंडैकरसतासिद्धये) वाक्यके अर्थमें सत्त्व अखंडरूप एकत्वसिद्धिके लिये (भागलक्षणा) जहदजहल्लक्षणा (मता) मानीगई है ७५३

भावार्थ-इसलिये पंडितोंने 'तत्त्वमसि' इस वाक्यमें अखंडरूप एक सत् वस्तुको सिद्ध करनेके लिये जहदजहल्लक्षणा मानी है ॥ ७५३ ॥

भागं विरुद्धं सन्त्यज्याविरोधो लक्ष्यते यदा।
सा भागलक्षणेत्याहुर्लक्षणज्ञा विचक्षणाः ॥ ७५४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यदा) जब (विरुद्धम्) विरोधी (भागम्) भागको (संत्यज्य) त्यागकर (अविरोधः) अविरोध (लक्ष्यते) लक्षित होता है (लक्षणज्ञाः) लक्षणाको जाननेवाले (विचक्षणाः) पण्डित (सा) वह (भागलक्षणा) जहदजहल्लक्षणा है (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं ॥७५४॥

भावार्थ-जब विरुद्ध-भागको त्याग देनेपर अविरोध दीखने लगता है तब लक्षणाके ज्ञाता पण्डित उसको भागलक्षणा या जहदजहल्लक्षणा नामसे बोलते हैं ॥ ७५४ ॥

सोऽयं देवदत्त इति वाक्यं वाक्यार्थ एव वा ।
देवदत्तैकरूपस्ववाक्यार्थानवबोधकम् ॥ ७५५ ॥
देशकालादिवैशिष्ट्यं विरुद्धांशं निरस्य च ।
अविरुद्धं देवदत्तदेहमात्रं स्वलक्षणम् ॥ ७५६ ॥
भागलक्षणया सम्यग्लक्षयत्यनया यथा ।
तथा तत्त्वमसीत्यत्र वाक्यं वाक्यार्थ एव वा ॥ ७५७ ॥
परोक्षत्वापरोक्षत्वादिविशिष्टचितोर्द्वयोः ।
एकत्वरूपवाक्यार्थविरुद्धांशमुपस्थितम् ॥ ७५८ ॥
परोक्षत्वापरोक्षत्वसर्वज्ञत्वादिलक्षणम् ।
बुद्ध्यादि स्थूलपर्यन्तमाविद्यकमनात्मकम् ॥ ७५९ ॥
परित्यज्याविरुद्धांशं शुद्धचैतन्यलक्षणम् ।
वस्तु केवलसन्मात्रं निर्विकल्पं निरञ्जनम् ।
लक्षयत्यनया सम्यग् भागलक्षणया ततः ॥ ७६० ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (सः) वह (अयम्) यह (देवदत्तः) देवदत्त है (इति) यह (वाक्यम्) वाक्य (वा) या (वाक्यार्थः, एव) वाक्यार्थ ही (देवदत्तैकरूपस्ववाक्यार्थानवबोधकम्) देवदत्तके एकत्वरूप अपने वाक्यार्थ का अप्रकाशक (देशकालादिवैशिष्ट्यम्) देश कालकी विशिष्टतारूप (विरुद्धांशम्) विरोधी भागको (निरस्य, च) अलग करके भी (अविरुद्धम्) अविरोधी (स्वलक्षणम्) व्यक्तिमात्र (देवदत्तदेहमात्रम्) देवदत्तके शरीरमात्रको (अनया) इस (भागलक्षणया) भागलक्षणाके द्वारा (सम्यक्) भले प्रकारसे (लक्षयति) लक्षित करता है (तथा) वैसेही (तत्त्वमसि, इत्यत्र) तत्त्वमसि इसमें (वाक्यम्) पदसमूह (वा) या (वाक्यार्थः) वाक्यका अर्थ (द्वयोः) दोनों (परोक्षत्वापरोक्षत्वादिविशिष्टचितोः) परोक्षत्वविशिष्ट चैतन्य और अपरोक्षत्वविशिष्ट चैतन्य के (उपस्थितम्) प्राप्त (एकत्वरूपवाक्यार्थविरुद्धांशम्) एकत्वरूप वाक्यार्थके

विरोधी भाग (परोक्षत्वापरोक्षत्वसर्वज्ञत्वादिलक्षणम्) अपरोक्षत्व अल्पज्ञत्व और सर्वज्ञत्व आदि रूप (बुद्ध्यादिस्थूलपर्यन्तम्) बुद्धिसे लेकर स्थूलपर्यन्त (आविद्यकम्) अविद्याकल्पित (अनात्मकम्) आत्मभिन्न वस्तुको (परित्यज्य) त्यागकर (अविरुद्धांशम्) अविरोधी भाग (शुद्धचैतन्यलक्षणम्) शुद्ध चैतन्यस्वरूप (केवलसत्तामात्रम्) केवल सत्तामात्र (निर्विकल्पम्) विकल्परहित (निरञ्जनम्) शुद्ध (वस्तु) ब्रह्मको (अनया) इस (भागलक्षणया) भागलक्षणाके द्वारा (सम्यक्) भले प्रकारसे (लक्षयति) बोधन करता है (ततः) तदनन्तर ५५–६०

भावार्थ—'यही वही देवदत्त है' यह वाक्य या इस वाक्यका अर्थ देवदत्तके एकत्वरूप अपने वाक्यार्थके अप्रकाशक देशकाल आदिकी विशिष्टतारूप विरुद्ध-भागको त्यागकर लक्षणाके द्वारा जैसे अविरोधी देवदत्त व्यक्तिमात्रको लक्षित करता है,ऐसे ही 'तत्त्वमसि' इस स्थलमें वाक्य या वाक्यार्थ परोक्षत्वविशिष्टचैतन्य और अपरोक्षत्वविशिष्ट चैतन्य इन दोनोंके उपस्थित एकत्वरूप वाक्यार्थके विरुद्ध-भाग परोक्षत्व, अपरोक्षत्व, सर्वज्ञत्व, अल्पज्ञत्वरूप, बुद्धिसे लेकर स्थूल पर्यन्त अविद्याकल्पित अनात्मवस्तुको त्यागकर अविरुद्ध शुद्ध चैतन्यरूप केवल सत्त्वरूप निर्विकल्प निरञ्जन ब्रह्मको भागलक्षणाके द्वारा सम्यक् प्रकारसे लक्षित करता है, तदनन्तर अखण्ड ब्रह्म भास होता है ॥ ७५५–॥ ७६० ॥

अखण्डार्थः।

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सच्चिदानन्दमद्वयम् ।
निर्विशेषं निराभासमतादृशमनीदृशम् ॥ ७६१ ॥
अनिर्देश्यमनाद्यन्तमनन्तं शान्तमच्युतम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं निर्गुणं ब्रह्म शिष्यते ॥ ७६२ ॥

अन्वय और पदार्थ–(सर्वोपाधिविनिर्मुक्तम्) सब उपाधियोंसे छूटा हुआ (सच्चिदानन्दम्) सत् चित् आनन्दरूप (अद्वयम्) अद्वितीय (निर्विशेषम्) विशेषशून्य–एकरूप (निराभासम्) आभासरहित (अतादृशम्) तैसा नहीं (अनीदृशम्) ऐसा नहीं (अनिर्देश्यम्) जिसको अंगुलीसे बताया नहीं जासकता (अनाद्यन्तम्) आदि अन्तरहित (अनन्तम्) व्यापक (शान्तम्) स्थिर (अच्युतम्) अपने स्वरूपमें अटल (अप्रतर्क्यम्) तर्कका अविषय(अविज्ञेयम्) ज्ञानका अविषय (निर्गुणम्) गुणशून्य (ब्रह्म) ब्रह्म(शिष्यते) शेष रहता है ६१-६२

भावार्थ-तदनन्तर समस्त उपाधियोंसे रहित, सच्चिदानन्दस्वरूप, अद्वितीय विशेष-शून्य-एकरूप, प्रतिबिम्बरहित, जिसको वह या यह नहीं कहसकते, जिसको अंगुलीसे नहीं बतासकते. आदि और अन्तसे रहित, व्यापक, शान्त, कूटस्थ, तर्क और ज्ञानका अविषय निर्गुण ब्रह्म ही अवशिष्ट रहता है ॥ ७६१ ॥ ७६२ ॥

उपाधिवैशिष्ट्यकृतो विशेषो ब्रह्मात्मनोरेकतयाधिगत्या ।
उपाधिवैशिष्ट्य उदस्यमाने न कश्चिदप्यस्ति विरोध एतयोः ७६३

अन्वय और पदार्थ -[ब्रह्मात्मनोः] ब्रह्म और जीवात्माका (उपाधिवैशिष्ट्यकृतः) उपाधिकी विशिष्टताका कियाहुआ (विशेषः) भेद [अस्ति] है (ब्रह्मात्मनोः) ब्रह्म और जीव की (एकतया) एकरूपसे (अधिगत्या) प्रतीति होकर (उपाधिवैशिष्ट्ये) उपाधिकी विशिष्टताके (उदस्यमाने) दूर होजाने पर (एतयोः) इनका (कश्चित्, अपि) कोई भी (विरोधः) विरोध (न) नहीं (अस्ति) है ॥ ७६३ ॥

भावार्थ-जीव और ब्रह्ममें उपाधिके कारणसे भेद देखनेमें आता है, इनकी एकताके ज्ञानसे उपधिके विलीन होजाने पर दोनोंमें किसी प्रकारका भेद नहीं रहता है ॥ ७६३ ॥

तयोरुपाधिश्च विशिष्टता च तद्धर्मभाक्त्वञ्च विलक्षणत्वम् ।
भ्रान्त्या कृतं सर्वमिदं मृषैव स्वप्नार्थवज्जाग्रति नैव सत्यम् ७६४

अन्वय और पदार्थ—(तयोः) उनकी (उपाधिः) उपाधि (च) और (विशिष्टता, च) वैशिष्ट्य भी (तद्धर्मभाक्त्वम्) उसके धर्मका भागी होना (च) और (विलक्षणत्वम्) विचित्रता या विपरीतता (भ्रान्त्या) भ्रान्तिके द्वारा (कृतम्) किया हुआ (इदम्) यह (सर्वम्) सब (स्वप्नार्थवत्) स्वप्नके पदार्थ की समान (मृषा, एव) मिथ्या ही है (जाग्रति) जाग्रत् अवस्थामें (सत्यम्) सत्य (नैव) कदापि नहीं है ॥ ७६४ ॥

भावार्थ—जीव और ब्रह्मकी उपाधि, विशिष्टता, उसके धर्मसे युक्त होना, विचित्रता, यह सब अज्ञानकी कल्पना है, इसलिये स्वप्नमें देखे हुए पदार्थकी समान यह सब मिथ्या है बाधित होजाता है, अतः जाग्रत्में भी सत्य नहीं है ॥

निद्रासुतशरीरधर्मसुखदुःखादिप्रपञ्चोऽपि वा,
जीवेशादिभिदाऽपि वा न च ऋतं कर्त्तुं क्वचिच्छक्यते ।

मायाकल्पितदेशकालजगदीशादि भ्रमस्तादृशः
को भेदोऽस्त्यनयोर्द्वयोस्तु कतमः सत्योऽन्यतः को भवेत् ॥

अन्वय और पदार्थ-(निद्रासुतशरीरधर्मसुखदुःखादिप्रपञ्चः) निद्रामें पुत्र, शरीरके धर्म, सुख और दुःख-आदि जगत् (अपि वा) और (जीवेशभिदा, अपि) जीव और ईश्वरका भेद भी (क्वचित्, च) कहीं भी (ऋतं, कर्त्तुम्) सत्य करनेको (न) नहीं (शक्यते) शक्य होता है (मायाकल्पितदेशकालजगदीशादिभ्रमः) मायासे कल्पित देश, काल, जगत् और ईश्वर आदिका भ्रम (तादृशः) तैसा है (अनयोः) इन (द्वयोः, तु) दोनोंका तो (कः) कौनसा (भेदः) भेद [अस्ति] है (अन्यतः , अन्य कारणसे (कतमः) कौनसा (कः) क्या (सत्यः) यथार्थ (भवेत्) होगा ॥ ७६५ ॥

भावार्थ-निद्राके समय पुत्र, स्थूलता कृशता आदि शरीरके धर्म, सुख, दुःख आदि यह संसारका फैलाव तथा जीव ईश्वर आदिका जो भेद प्रतीत होता है, उसको सत्य कौन सिद्ध करसकता है? मायासे कल्पित देश, काल, जगत्, ईश्वर आदिका भ्रम भी तैसे ही मिथ्या है, फिर जीव और ईश्वरका भेद क्या ? अन्य हेतुके कारणसे कौनसा पदार्थ सत्य होसकता है? ॥ ७६५ ॥

न स्वप्नजागरणयोरुभयोर्विशेषः,
संदृश्यते क्वचिदपि भ्रमजैर्विकल्पैः ।
यद् दृष्टदर्शनमुखैरत एव मिथ्या,
स्वप्नो यथा ननु तथैव हि जागरोऽपि ॥ ७६६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यत्) क्योंकि (क्वचित्, अपि) कहीं भी (दृष्टदर्शनमुखैः) देखे हुएको देखना आदि (भ्रमजैः) भ्रान्तिसे उत्पन्न हुए (विकल्पैः) विकल्पोंके द्वारा (स्वप्नजागरणयोः) स्वप्न और जागरण (उभयोः) दोनोंका (विशेषः) भेद (न) नहीं (संदृश्यते) देखनेमें आता है (अत एव) इसलिये ही (मिथ्या) झूठा है (ननु) हे शिष्य (यथा) जैसे (स्वप्नः) स्वप्न है (तथा, एव) तैसे ही (जागरः, अपि) जाग्रत् भी है ॥ ७६६ ॥

भावार्थ-देखे हुएको देखना आदि भ्रमजनित विकल्पोंके द्वारा कहीं भी स्वप्न और जागरणमें भेद देखनेमें नहीं आता, इसलिये स्वप्नकी समान जागरण भी मिथ्या है ॥ ७६६ ॥

अविद्याकार्यतस्तुल्यौ द्वावपि स्वप्नजागरौ ।
दृष्टदर्शनदृश्यादि कल्पनोभयतस्तथा ॥ ७६७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्वप्नजागरौ) स्वप्नावस्था और जाग्रत् अवस्था (द्वौ, अपि) दोनों ही (अविद्याकार्यतः) अविद्याका कार्य होनेसे (तुल्यौ) एक समान हैं (उभयतः) दोनोंमें (दृष्टदर्शनदृश्यादिकल्पना) दृष्ट, दर्शन, दृश्य आदिकी कल्पना (तथा) तैसे ही है ॥ ७६७ ॥

भावार्थ-स्वप्न और जाग्रत् दोनों ही अवस्थायें अविद्याका कार्य हैं, इसलिये एकसमान मिथ्या हैं, ऐसे ही स्वप्न और जाग्रत्में दृष्ट, दर्शन, दृश्य आदिकी कल्पना भी मिथ्या है ॥ ७६७ ॥

अभाव उभयोः सुप्तौ सर्वैरप्यनुभूयते ।
न कश्चिदनयोर्भेदस्तस्मान्मिथ्यात्वमर्हतः ॥ ७६८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वैः, अपि) सब करके ही (सुप्तौ) सुषुप्तिकालमें (उभयोः) दोनोंका (अभावः) अभाव (अनुभूयते) अनुभव किया जाता है (अनयोः) इनका (कश्चित्) कोई (भेदः) भेद (न) नहीं होता है (तस्मात्) तिससे (मिथ्यात्वम्) मिथ्यापनको (अर्हतः) पाते हैं ॥ ७६८ ॥

भावार्थ-सब लोग सुषुप्तिके समय स्वप्न और जागरणके अभावका अनुभव करते हैं, दोनोंमें कुछ भी विशेषता नहीं होती, इसलिये स्वप्न और जाग्रत् दोनों मिथ्या हैं ॥ ७६८ ॥

भ्रान्त्या ब्रह्मणि भेदोऽयं सजातीयादिलक्षणः ।
कालत्रयेपि हे विद्वन् वस्तुतो नैव कश्चन॥७६९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(हे विद्वन्) हे ज्ञानी (कालत्रये, अपि) तीनों कालमें भी (भ्रान्त्या) भ्रमसे (अयम्) यह (सजातीयादिलक्षणः) सजातीय आदिरूप (कश्चन) कोई (भेदः) भेद (वस्तुतः) वास्तवमें (ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (न, एव) नहीं है ॥ ७६९ ॥

भावार्थ-हे विद्वन् ! भूत, भविष्यत् वर्त्तमान तीनोंकालमें भ्रान्तिके कारण प्रतीत होनेवाला सजातीय, विजातीय और स्वगत किसी प्रकारका भेद वास्तवमें ब्रह्ममें नहीं है ॥ ७६९ ॥

यत्र नान्यत्पश्यतीति श्रुतिर्द्वैतं निषेधति ।
कल्पितस्य भ्रमाद् भूम्नि मिथ्यात्वापगमाय तत्॥७७०॥

अन्वय और पदार्थ–(यत्र) जिस अवस्थामें (अन्यत्) दूसरेको (न) नहीं (पश्यति) देखता है (इति) यह (श्रुतिः) वेदवाक्य (भ्रमात्) भ्रमसे (भूम्नि) ब्रह्ममें (कल्पितस्य) कल्पना किये हुएके (मिथ्यात्वापगमाय) मिथ्यात्व-ज्ञानके लिये (तत्) उस (द्वैतम्) द्वैतको (निषेधति) निषेध करती है

भावार्थ—जिस अवस्थामें और कुछ नहीं देखता, यह श्रुति भ्रमवश ब्रह्ममें आरोपित वस्तुका मिथ्यापना बतानेके लिये द्वैतका निषेध करती है ॥ ७७० ॥

यतस्ततो ब्रह्म सदाऽद्वितीयं विकल्पशून्यं निरुपाधि निर्मलम् ।
निरन्तरानन्दघनं निरीहं निरास्पदं केवलमेकमेव ॥ ७७१ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यतः) क्योंकि श्रुति ऐसा कहती है (ततः) तिससे (सदा) सर्वदा (अद्वितीयम्) अद्वितीय (विकल्पशून्यम्) विकल्परहित (निरुपाधि) उपाधिशून्य (निर्मलम्) स्वच्छ (निरन्तरानन्दघनम्) निरन्तर आनन्द-मूर्त्ति (निरीहम्) इच्छाशून्य (निरास्पदम्) किसीका आश्रय न रखनेवाला (केवलम्) केवल (एकम्) एक (एव) ही (ब्रह्म) ब्रह्म है ॥ ७७१ ॥

भावार्थ—क्योंकि—श्रुति द्वैतका निषेध करती है, इसलिये सदा अद्वितीय, विकल्परहित, उपाधिशून्य, शुद्ध सर्वदा आनन्दमूर्त्तिमें निरीह, स्वमतिष्ठ और केवलमात्र एक ही ब्रह्म है॥ ७७१ ॥

नैवास्ति काचन भिदा न गुणप्रतीति–
र्नो वाक्प्रवृत्तिरपि वा न मनःप्रवृत्तिः ।
यत्केवलं परमशान्तमनन्तमाद्य–
मानन्दमात्रमवभाति सदाद्वितीयम् ॥७७२ ॥

अन्वय और पदार्थ–[ब्रह्मणि] ब्रह्ममें (काचन) कोई (भिदा) भेद (नैव) नहीं (अस्ति) है (गुणप्रतीतिः) गुणका अनुभव (न) नहीं है (वाक्-प्रवृत्तिः, अपि) वाणीका व्यापार भी (नो) नहीं है (वा) किंवा (मनःप्रवृत्ति,) मनका व्यापार(न)नहीं है (यत्) जो (केवलम्)शुद्ध(परम्, शान्तम्) अत्यन्त शान्त (अनन्तम्) व्यापक (आद्यम्) सबसे पहले विद्यमान (अद्वितीयम्) अद्वितीय (सत्) होता हुआ (आनन्दमात्रम्) आनन्दमात्र (अवभाति) प्रकाशित होता है ७७२

भावार्थ—ब्रह्ममें किसी प्रकारका भेद नहीं है उसमें सुख दुःख आदि गुणोंकी प्रतीति नहीं होती है उसमें वाक्य या मनका व्यापार नहीं है वह केवल परम शान्त है वह व्यापक है और सबसे पहले विद्यमान था उसमें सदा अद्वितीय आनन्द-रूपता ही भासती है ॥ ७७२ ॥

यदिदं परमं सत्यं तत्त्वं सच्चित्सुखात्मकम् ।
अजरामरणं नित्यं सत्यमेतद् वचो मम ॥ ७७३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यत्) जो (इदम्) यह (अजरामरणम्) जरा-मरण-रहित (सच्चित्सुखात्मकम्) सत्-चित्-आनन्दस्वरूप (परमम्) श्रेष्ठ (सत्यम्) सत्यस्वरूप (तत्त्वम्) वस्तु है [तत्] वह (नित्यम्) उत्पत्ति-नाश-रहित है, (एतत्) यह (मम) मेरा (वचः) वचन (सत्यम्) सत्य है ॥ ७७३ ॥

भावार्थ—यह जो जरा-मरण-रहित, सत्—चित्—आनन्दस्वरूप परम सत्य ब्रह्म वस्तु है, इसका जन्म या मरण नहीं होता किन्तु यह नित्य है, यह मेरा कथन सत्य समझ ॥ ७७३ ॥

न हि त्वं देहोऽसावसुरपि च वाऽप्यक्षनिकरो,
मनो वा बुद्धिर्वा क्वचिदपि तथाऽहंकृतिरपि ।
न चैषां संघातस्त्वमु भवसि विद्वन् शृणु परं,
यदेतेषां साक्षी स्फुरणममलं तत्त्वमसि हि ॥ ७७४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(असौ) यह (देहः) शरीर (हि) निश्चय (त्वम्) तू (न)नहीं है (च) और (असुः, अपि)प्राण भी (वा) या (अक्षनिकरः, अपि) इन्द्रियसमूह भी (वा) या (मनः) मन (वा) अथवा (बुद्धिः) बुद्धि (वा) या (क्वचित्, अपि) कहीं भी (तथा) तैसे ही (अहंकृतिः, अपि) अहंकार भी [न] नहीं है (एषाम्) इन सबका (संघातः, च) समूहरूप भी (त्वम्) तू (न) नहीं (भवसि) है (उ) हे (विद्वन्) ज्ञानिन् (परम्) भले प्रकार (शृणु) सुन (एतेषाम्) इनका (यत्) जो (साक्षी) साक्षीरूप (अमलम्) निर्मल (स्फुरणम्) स्फुरण है (हि) निश्चय (तत्) वह (त्वम्) तू (असि) है७७४

भावार्थ—हे विद्वन् ! आत्मस्वरूप तू यह शरीर नहीं है, प्राण नहीं है, इन्द्रिय-समूह नहीं है, मन नहीं है, बुद्धि नहीं है, अहङ्कार नहीं है और इन सबका

संघात भी नहीं है, ध्यान देकर सुन—तू तो इन शरीर आदि सबका साक्षी स्फुरणरूप निर्मल ब्रह्म है ॥ ७७४ ॥

यज्जायते वस्तु तदेव वर्धते,
तदेव मृत्युं समुपैति काले ।
जन्मैव ते नास्ति तथैव मृत्यु-
र्नास्त्येव नित्यस्य विभोरजस्य ॥ ७७५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (वस्तु) पदार्थ (जायते) उत्पन्न होता है (तत्, एव) वह ही (वर्धते) बढ़ता है (तत्, एव) वह ही (काले) समयपर (मृत्युम्) मृत्युको (समुपैति) प्राप्त होता है (विभोः) व्यापक (अजस्य) जन्मरहित (नित्यस्य) सदा वर्तमान (ते) तेरा (जन्म एव) जन्म ही (न) नहीं (अस्ति) है (तथा, एव) तैसे ही (मृत्युः, एव) मरण (न) नहीं (अस्ति) है ॥ ७७५ ॥

भावार्थ-जो वस्तु उत्पन्न होती है वह बढ़ती है और समय आने पर वही मृत्यु पाती है, तू व्यापक, जन्मरहित और नित्य है, इसलिये तेरा न जन्म है, न मरण है ॥ ७७५ ॥

य एष देहो जनितः स एव समेधते नश्यति कर्मयोगात् ।
त्वमेतदीयास्वखिलास्ववस्थास्ववास्थितः साक्ष्यसि बोधमात्रः ७७६

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (एषः) यह (देहः) शरीर है (कर्मयोगात्) कर्मयोगसे (जनितः) उत्पन्न हुआ (सः, एव) वह ही (समेधते) सम्यक् रीतिसे बढ़ता है (नश्यति) नष्ट होता है (एतदीयासु) इस देहकी (अखिलासु) समस्त (अवस्थासु) अवस्थाओंमें (अवस्थितः) वर्त्तमान (त्वम्) तू (बोधमात्रः) ज्ञानस्वरूप (साक्षी) द्रष्टा (असि) है ॥ ७७६ ॥

भावार्थ-यह जो शरीर है, यही कर्मवश उत्पन्न होता है, बढ़ता है और नष्ट होजाता है, तू इसकी बालकपन आदि सब अवस्थाओंमें इसमें ही रहता हुआ भी ज्ञानस्वरूप और साक्षी है ॥ ७७६ ॥

यत्स्वप्रकाशमखिलात्मकमासुषुप्ते-
रेकात्मनोऽहमहमित्यवभाति नित्यम् ।

बुद्धेः समस्तविकृतेरविकारि बोद्धृ
यद् ब्रह्म तत्त्वमसि केवलबोधमात्रम् ॥ ७७७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (आसुषुप्तेः) सुषुप्तिपर्यन्त (स्वप्रकाशम्) स्वयंप्रकाश (अखिलात्मकम्) चराचरस्वरूप (अहम्) मैं (अहम्) मैं (इति) इस प्रकार (नित्यम्) सदा (अवभाति) भासता है (बुद्धेः) बुद्धिसे (समस्तविकृतेः) सकल विकारसे (अविकारि) विकारशून्य (बोद्धृ) ज्ञानस्वरूप है (यत्) जो (केवलबोधमात्रम्) केवल ज्ञानरूप (ब्रह्म) ब्रह्म है (तत्) वह (त्वम्) तू (असि) है ॥ ७७७ ॥

भावार्थ-जो सुषुप्तिके समय पर्यन्तमें दूसरे प्रकाशकी अपेक्षा न रखकर स्वप्रकाशरूप है, मैं मैं इसप्रकार एकभावसे नित्य भासता है, जिसमें बुद्धि और किसी विकारके कारणसे विकार नहीं आता ऐसा ज्ञाता केवल ज्ञानस्वरूप जो ब्रह्म है वही तू है ७७७ ॥

स्वात्मन्यनस्तमयसंविदि कल्पितस्य
व्योमादि सर्वजगतः प्रददाति सत्ताम् ।
स्फूर्त्तिः स्वकीयमहसा वितनोति साक्षाद्
यद् ब्रह्म तत्त्वमसि केवलबोधमात्रम् ॥ ७७८ ॥

अन्वय और पदार्थ (यत्) जो (अनस्तमयसंविदि) कभी अस्त न होने वाले ज्ञानरूप (स्वात्मनि) निजस्वरूपमें (कल्पितस्य) कल्पना किये हुए (व्योमादिसर्वजगतः) आकाश आदि सकल जगत्के (सत्ताम्) अस्तित्वको (प्रददाति) देता है (स्वकीयमहसा) अपने तेजके द्वारा (स्फूर्त्तिम्) स्फुरण को (वितनोति) अर्पण करता है (केवलबोधमात्रम्) केवल ज्ञानस्वरूप (साक्षात्) प्रत्यक्ष (तत्) वह (ब्रह्म) ब्रह्म (त्वम्) तू (असि) है ॥ ७७८ ॥

भावार्थ-जो नित्यज्ञानमय अपने स्वरूपमें आरोपित आकाश आदि सकल जगत्को अस्तित्व (जीवन) देता है और जो अपने तेजसे सबमें चेष्टा करनेकी शक्ति डालता है, केवल ज्ञानस्वरूप वह ब्रह्म तू ही है ॥ ७७८ ॥

सम्यक् समाधिनिरतैर्विमलान्तरङ्गे
साक्षादवेक्ष्य निजतत्त्वमपारसौख्यं ।

सन्तुष्यते परमहंसकुलैरजस्रं
यद् ब्रह्म तत्त्वमसि केवलबोधमात्रम् ॥ ७७९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(समाधिनिरतैः) ध्यानमें मग्न (परमहंसकुलैः) परमहंसोंके समूहों करके (यत्) जिस (अपारसौख्यम्) असीम सुखरूप (निजतत्त्वम्) आत्मस्वरूपका (विमलान्तरंगे) निर्मल अन्तःकरण में (सम्यक्) भले प्रकार (साक्षात्) प्रत्यक्षरूपसे (अवेक्ष्य) देखकर (अजस्रम्) निरन्तर (सन्तुष्यते) सन्तोष पाया जाता है (तत्) वह (केवलबोधमात्रम्) केवल ज्ञानस्वरूप (ब्रह्म) ब्रह्म (त्वम्) तू (असि) है ॥ ७७९ ॥

भावार्थ-समाधिमें मग्न परमहंस लोग अपने निर्मल अन्तःकरणमें जिस असीम सुखरूप आत्मतत्त्वका उत्तमरूपसे प्रत्यक्ष दर्शन करके परम आनन्दका अनुभव करते हैं वह केवल ज्ञानस्वरूप ब्रह्म तू है ॥ ७७९ ॥

अन्तर्बहिः स्वयमखण्डितमेकरूप-
मारोपितार्थवदुदञ्चति मूढबुद्धेः ।
मृत्स्नादिवद् विगतविक्रियमात्मवेद्यं
यद् ब्रह्म तत्त्वमसि केवलबोधमात्रम् ॥ ७८० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अन्तः) भीतर (बहिः) बाहर (स्वयम्) आप (अखण्डितम्) निरवयव (एकरूपम्) अविकार (मूढबुद्धेः) मूढबुद्धिके (आरोपितार्थवत्) कल्पित पदार्थकी समान (उदञ्चति) उदय होतासा प्रतीत होता है (मृत्स्नादिवत्) सुन्दर मृत्तिका आदिकी समान (विगतविक्रियम्) विकाररहित (आत्मवेद्यम्) आत्माके द्वारा ही अनुभव करने योग्य (केवलबोधमात्रम्)केवल ज्ञानस्वरूप (यत्) जो (ब्रह्म) ब्रह्म है (तत्) वह (त्वम्) तू (असि) है ॥

भावार्थ-भीतर बाहर अखण्ड, एकरूप, किन्तु जो मन्दबुद्धि मनुष्यकी दृष्टिमें कल्पित पदार्थकी समान भासित होता है तथा उत्तम मृत्तिका (स्फटिक) आदिकी समान विकाररहित (स्वच्छ) और केवल ज्ञानस्वरूप आत्माके द्वारा ही अनुभव योग्य है वह ब्रह्म तू ही है ॥ ७८० ॥

श्रुत्युक्तमव्ययमनन्तमनादिमध्य-
मव्यक्तमक्षरमनाश्रयमप्रमेयम् ।

आनन्दसद्घनमनामयमद्वितीयं
यद् ब्रह्म तत्त्वमसि केवलबोधमात्रम् ॥ ७८१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (अव्ययम्) अविनाशी (अनन्तम्) व्यापक (अनादिमध्यम्) आदि मध्य रहित (अव्यक्तम्) अव्यक्त (अक्षरम्) सदा एकरूप (अनाश्रयम्) किसीका आश्रय न लेने वाला (अप्रमेयम्) किसी प्रमाणका विषय न होनेवाला (आनन्दसद्घनम्) आनन्दमूर्त्ति और सत्स्वरूप (अनामयम्) रोगरहित (अद्वितीयम्) एक (श्रुत्युक्तम्) श्रुतिका कहा हुआ (केवलबोधमात्रम्) केवल ज्ञानमय (ब्रह्म) ब्रह्म है (तद्) वह (त्वम्) तू (असि) है ॥ ७८१ ॥

भावार्थ-श्रुतिने जिसको अविनाशी, व्यापक, आदि-मध्य-शून्य, अव्यक्त, अक्षर, किसीका आश्रय न लेकर सबका आश्रयरूप, अप्रमेय, आनन्दमूर्त्ति, सत्स्वरूप, अनामय और अद्वितीय कहा है वह केवल ज्ञानमय शुद्ध चैतन्य तू ही है ॥

शरीरतद्योगतदीयधर्माद्यारोपणं भ्रान्तिवशात् त्वदीयम् ।
न वस्तुतः किञ्चिदतस्त्वजस्त्वं मृत्योर्भयं क्वास्ति तवासि पूर्णः

अन्वय और पदार्थ- (त्वदीयम्) तेरा (शरीरतद्योगतदीयधर्माद्यारोपणम्) देह, और आत्माका सम्बन्ध एवं देहके धर्म आदिका आरोपण (भ्रान्ति-वशात्) भ्रमके कारण है (वस्तुतः) वास्तवमें (किञ्चित्) कुछ भी (न) नहीं [अस्ति] है (अतः) इसकारण (त्वम्) तू (तु) तो (अजः) जन्मरहित [असि] है (तव) तुझे (मृत्योः) मृत्युसे (भयम्) भय (क्व) कहाँ (अस्ति) है (पूर्णः) पूर्ण (असि) है ॥ ७८२ ॥

भावार्थ-तुझमें जो यह देह, और आत्माका सम्बन्ध तथा देहकी स्थूलता कृशता आदि धर्मोंका आरोपण होरहा है, यह भ्रान्तिके कारणसे है, वास्तवमें कुछ भी नहीं है, इसकारण तू जन्मरहित है, फिर तुझे मृत्युका भय कहाँसे आया? तू तो परिपूर्ण स्वभाव ब्रह्म है ॥ ७८२ ॥

यद् यद् दृष्टं भ्रान्तिमत्या स्वदृष्ट्या
तत्तत्सम्यग्वस्तुदृष्ट्या त्वमेव ।
त्वत्तो नान्यद् वस्तु किञ्चित्तु लोके
कस्माद् भीतिस्ते भवेदद्वयस्य ॥ ७८३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(भ्रान्तिमत्या) भ्रमभरी (स्वदृष्ट्या) अपनी दृष्टिसे (यत् यत्) जो जो (दृष्टम्) देखा है (सम्यक्) भलेप्रकार (वस्तुदृष्ट्या) वस्तुका ज्ञानके द्वारा देख लेने पर (तत् तत्) वह वह (त्वम्,एव) तू ही [असि] है (त्वत्तः) तुझसे (अन्यत्) भिन्न (वस्तु, तु) पदार्थ तो (लोके) संसारमें (किञ्चित्) कुछ भी (न) नहीं [अस्ति] है (अद्वयस्य) अद्वितीय (ते) तुझे (कस्मात् (किससे (भीतिः) भय (भवेत्) होगा ॥ ७८३ ॥

भावार्थ-भ्रान्तिभरी अपनी दृष्टिसे जो जो वस्तु देखी है, उन सब वस्तुओंका ज्ञानदृष्टिसे उत्तमतया स्वरूप मालूम होजायगा तो समझमें आवेगा, कि--वह सब कुछ तू ही है, खैर, (आत्माके) सिवाय और कुछ तो है ही नहीं, फिर संसारमें तुझ अद्वितीयको भय किससे होगा ? अर्थात् अद्वितीय आत्मज्ञान हो जाने पर संसारभय नहीं रहता ॥ ७८३ ॥

पश्यतस्त्वहमेवेदं सर्वमित्यात्मनाऽखिलम् ।
भयं स्याद्विदुषः कस्मात्स्वस्मान्न भयमिष्यते ॥७८४॥

अन्वय और पदार्थ-(इदम्) यह (सर्वम्) सब (अहम्, एव) मैं ही [अस्मि] हूँ (इति) इसप्रकार (अखिलम्) सबको (आत्मनः) आत्मस्वरूप से (पश्यतः) देखतेहुए (विदुषः, तु) पण्डितको तो (कस्मात्) किससे (भयम्) भय (स्यात्) होगा (स्वस्मात्) अपनेसे (भयम्) भय (न) नहीं (इष्यते) इच्छा कियाजाता है ॥ ७८४ ॥

भावार्थ--यह सब वस्तु मैं ही हूँ, इसप्रकार सकल संसारको जो आत्मस्वरूपसे देखता है, उस विद्वान् पुरुषको तो भय होगा ही कहाँसे ? अपने आपसे तो अपनेको भय हो नहीं सकता ॥ ७८४ ॥

तस्मात्त्वमभयं नित्यं केवलानन्दलक्षणम् ।
निष्कलं निष्क्रियं शान्तं ब्रह्मैवासि सदाद्वयम् ॥ ७८५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (त्वम्) तू (अभयम्) निर्भय (नित्यम्) जन्ममरणरहित (केवलानन्दलक्षणम्) केवल आनन्दस्वरूप (निष्कलम्) निरवयव (निष्क्रियम्) क्रियारहित (शान्तम्) निर्मल (सदा) सर्वदा (अद्वयम्) अद्वितीय (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही (असि) है ॥ ७८५ ॥

भावार्थ-इस लिये तू निर्भय, नित्य, केवल सुखरूप, पूर्ण, क्रियाशून्य, शान्त और सदा एकरूप ब्रह्म ही है ॥ ७८५ ॥

ज्ञातृज्ञानज्ञेयविहीनं ज्ञातुरभिन्नं ज्ञानमखण्डम् ।
ज्ञेयाज्ञेयत्वादिविमुक्तं शुद्धं बुद्धं तत्त्वमसि त्वम् ॥ ७८६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ज्ञातृज्ञानज्ञेयविहीनम्) ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेयसे रहित (ज्ञातुः) ज्ञातासे (अभिन्नम्) भेदशून्य (अखण्डम्) एकरूप (ज्ञानम्) ज्ञानस्वरूप (ज्ञेयाज्ञेयत्वादिविमुक्तम्) ज्ञेयत्व अज्ञेयत्व आदिसे मुक्त (शुद्धम्) शुद्ध (बुद्धम्) बोधरूप (तत्त्वम्) तत्त्व (त्वम्) तू (असि) है ॥ ७८६ ॥

भावार्थ—तू ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयसे पृथक्, ज्ञातासे अभिन्न अखण्ड ज्ञानस्वरूप, ज्ञेयपने और अज्ञेयपनेसे रहित, निर्मल बोधरूप ब्रह्म तू ही है ॥ ७८६ ॥

अन्तःप्रज्ञत्वादिविकल्पैरस्पृष्टं यत्तद्दृशिमात्रम् ।
सत्तामात्रं समरसमेकं शुद्धं बुद्धं तत्त्वमसि त्वम् ॥ ७८७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (अन्तःप्रज्ञत्वादिविकल्पैः) अन्तःकरणमें ज्ञानवत्त्व आदि विकल्पों करके (अस्पृष्टम्) अलिप्त (दृशिमात्रम्) ज्ञानस्वरूप है (तत्) वह (सत्तामात्रम्) सत्स्वरूप (समरसम्) निर्विकार (एकम्) अद्वितीय (शुद्धम्) स्वच्छ (बुद्धम्) बोधरूप (तत्त्वम्) ब्रह्म (त्वम्) तू (असि) है

भावार्थ-अन्तःकरण ज्ञानवान् है इत्यादि विकल्पोंने जिसे स्पर्श भी नहीं किया है ऐसा जो केवल ज्ञानस्वरूप सत्तामात्र, निर्विकार अद्वितीय, निर्मल, बोधरूप ब्रह्म है वह तू ही है ॥ ७८७ ॥

सर्वाकारं सर्वमसर्वं सर्वनिषेधावधिभूतं यत् ।
सत्यं शाश्वतमेकमनन्तं शुद्धं बुद्धं तत्त्वमसि त्वम् ॥७८८॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (सर्वाकारम्) सकल आकारोंवाला (सर्वम्) सर्वरूप (असर्वम्) सब पदार्थोंसे पृथक् (सर्वनिषेधावधिभूतम्) सकल निषेधों की सीमारूप (सत्यम्) सत्स्वरूप (शाश्वतम्) नित्य (एकम्) अद्वितीय (अनन्तम्) व्यापक (शुद्धम्) निर्मल (बुद्धम्) बोधरूप (तत्त्वम्) ब्रह्म है [तत्] वह (त्वम्) तू (असि) है ॥ ७८८ ॥

भावार्थ-ये सब पदार्थ जिसका आकार हैं अर्थात् जो सबमें विराजमान है, जो सर्वरूप है और सकल पदार्थोंसे पृथक् है, जो सब निषेधोंकी अवधि, सत्यस्वरूप, नित्य, अद्वितीय, व्यापक, निर्मल, बोधरूप ब्रह्म तत्त्व है वह तू ही है ॥ ७८८ ॥

नित्यानन्दाखण्डैकरसं निष्कलमक्रियमस्तविकारम् ।
प्रत्यगभिन्नं परमव्यक्तं बुद्धं शुद्धं तत्त्वमसि त्वम् ॥ ७८९॥

अन्वय और पदार्थ—(नित्यानन्दाखण्डैकरसम्) नित्य—आनन्द-पूर्ण-एकरूप (निष्कलम्) भागरहित (अक्रियम्) क्रियारहित (अस्तविकारम्) विकारशून्य (प्रत्यगभिन्नम्) आत्मासे अभिन्न (परमव्यक्तम्) अत्यन्तव्यक्त (शुद्धम्) निर्मल (बुद्धम्) बोधरूप (तत्) वह (तत्त्वम्) ब्रह्म (त्वम्) तू (असि) है ॥ ७८९ ॥

भावार्थ—नित्य सुखरूप, अखण्ड, एकरूप, अंशरहित, क्रियाशून्य, निर्विकार, आत्मासे अभिन्न, परम अव्यक्त वा, अतिदुरवगाह, शुद्ध बोधरूप ब्रह्मतत्त्व तू ही है ॥ ७७९ ॥

स्वं प्रत्यस्ताशेषविशेषं व्योमेवान्तर्बहिरपि पूर्णम् ।
ब्रह्मानन्दं परमद्वैतं शुद्धं बुद्धं तत्त्वमसि त्वम् ॥ ७९० ॥

अन्वय और पदार्थ-(त्वम्) तू (प्रत्यस्ताशेषविशेषम्) सकल विशेषोंके पार है (व्योम, इव) आकाशकी समान (अन्तः) भीतर (बहिः, अपि) बाहर भी (पूर्णम्) पूर्ण (ब्रह्मानन्दम्) महान् आनन्दरूप (परम्) अतीव (अद्वितीयम्) अद्वितीय (शुद्धम्) केवल (बुद्धम्) बोधरूप (तत्त्वम्) ब्रह्म (त्वम्) तू (असि) है ॥ ७९० ॥

भावार्थ—जिसमें सब विशेष अस्त होगये हैं, जो आकाशकी समान भीतर बाहर परिपूर्ण हैं, जो ब्रह्मानन्दस्वरूप, द्वैतरहित, स्वच्छ, ज्ञानस्वरूप तत्त्व है वह तू ही है ॥ ७९० ॥

ब्रह्मैवाहमहं ब्रह्म निर्गुणं निर्विकल्पकम् ।
इत्येवाखण्डया वृत्त्या तिष्ठ ब्रह्मणि निष्क्रिये ॥ ७९१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (ब्रह्म एव) ब्रह्म ही हूँ (अहम्) मैं (निर्गुणम्) गुणहीन (निर्विकल्पम्) विकल्परहित (ब्रह्म) ब्रह्म हूँ (इति) इसप्रकार (अखण्डया) एकरूप (वृत्त्या) वृत्तिके द्वारा (निष्क्रिये) क्रियाशून्य (ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (तिष्ठ) स्थित हो ॥ ७९० ॥

भावार्थ-मैं ब्रह्म ही हूँ अर्थात् ब्रह्मके सिवाय और कुछ है ही नहीं मैं सत्त्व आदि गुणोंसे शून्य निर्विकल्प ब्रह्म हूँ, इसप्रकार चित्तकी अखण्डवृत्तिसे तू निष्क्रिय ब्रह्ममें स्थित होजा ॥ ७९१ ॥

अखण्डामेवैतां घटितपरमानन्दलहरीम्
परिध्वस्तद्वैतप्रमितिममलां वृत्तिमनिशम् ।
अमुञ्चानः स्वात्मन्यनुपमसुखे ब्रह्मणि परे
रमस्व प्रारब्धं क्षपय सुखवृत्त्या त्वमनया ॥ ७९२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एताम्) इस (अखण्डाम्, एव) एकरूप ही (घटितपरमानन्दलहरीम्) अतिशय आनन्दकी तरङ्गोंवाले (परिध्वस्तद्वैतप्रमितिम्) द्वैतज्ञानशून्य (अमलाम्) निर्मल (वृत्तिम्) चित्तकी वृत्तिको (अमुञ्चानः)न छोड़ता हुआ (त्वम्) तू अनुपमसुखे) अनुपम सुखरूप (आत्मनि) आत्मा (परे, ब्रह्मणि) परमब्रह्ममें (अनिशम्) निरन्तर (रमस्व) क्रीड़ाकर (अनया) इस (सुखवृत्त्या) सुखाकार वृत्तिके द्वारा (प्रारब्धम्) प्रारब्ध भोगको (क्षपय) नष्ट कर ॥ ७९२ ॥

भावार्थ-इस अखण्ड परम आनन्द तरङ्गोंवाली, द्वैत ज्ञानशून्य, निर्मल, चित्त-वृत्तिको न त्यागकर तू आत्माके साथ अभिन्न परब्रह्ममें निरन्तर मग्न रह, इस सुखरूप चित्तकी वृत्तिके द्वारा प्रारब्धभोगका क्षय करदे ॥ ७९२ ॥

ब्रह्मानन्दरसास्वादतत्परेणैव चेतसा ।
समाधिनिष्ठितो भूत्वा तिष्ठ विद्वन् सदा मुने ॥ ७९३ ॥

अन्वय और पदार्थ -(मुने) हे मुने (विद्वन्) हे ज्ञानी ! (ब्रह्मानन्दरसास्वादतत्परेण) ब्रह्मानन्द रसका स्वाद लेनेमें तत्पर (चेतसा, एव) चित्तके द्वारा ही (सदा) सर्वदा (समाधिनिष्ठितः, भूत्वा) समाहित चित्त होकर (तिष्ठ) स्थित हो ॥ ७९३ ॥

भावार्थ-हे मुने ! हे विद्वन् ! ब्रह्मानन्दरूप रसका स्वाद लेनेमें लगे हुए चित्तके द्वारा समाधि लगाकर सदा स्थित रहाकर ॥ ७९३ ॥

शिष्य--उवाच

अखण्डाख्या वृत्तिरेषा वाक्यार्थश्रुतिमात्रतः ।
श्रोतुः सञ्जायते किंवा क्रियान्तरमपेक्षते ॥ ७९४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(शिष्यः) शिष्य (उवाच) बोला (श्रोतुः) श्रोताके (वाक्यार्थश्रुतिमात्रतः) तत्त्वमसि वाक्यके अर्थको सुनने मात्रसे (अखण्डा-

रूपा) अखण्ड नामवाली (एषा) यह (वृत्तिः) चित्तकी वृत्ति (सञ्जायते) होजाती है (किंवा) या (क्रियान्तरम्) दूसरी क्रियाको (अपेक्षते) चाहती है ॥

भावार्थ—शिष्यने कहा, कि-हे गुरो! तत्त्वमसि वाक्यके अर्थ को सुनने-मात्रसे ही क्या श्रोताके चित्तकी अखण्डरूपवृत्ति होजाती है या इसके लिये किसी और क्रियाको करनेकी आवश्यकता है ॥ ७६४ ॥

समाधिः कः कतिविधस्तत्सिद्धेः किमु साधनम् ।
समाधेरन्तरायाः के सर्वमेतन्निरूप्यताम् ॥ ७६५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(समाधिः) समाधि (कः) क्या है (कतिविधः) कितने प्रकारका है (तत्सिद्धेः) उसकी सिद्धिका (साधनम्) साधन (किमु) क्या है (समाधेः) समाधिके (अन्तरायाः) विघ्न (के) कौनसे (हैं) (एतत्) यह (सर्वम्) सब (निरूप्यताम्) निरूपण कियाजाय ॥ ७६५ ॥

भावार्थ-समाधि किसको कहते हैं? वह कितने प्रकारकी है? समाधिके होनेका उपाय क्या है? उसमें कौन कौनसे विघ्न हुआ करते हैं? यह सब वर्णन करिये ॥ ७६५ ॥

अधिकारिनिरूपणम्

श्रीगुरुरुवाच -

मुख्यगौणादिभेदेन विद्यन्तेऽत्राधिकारिणः ।
तेषां प्रज्ञानुसारेणाखण्डावृत्तिरुदेष्यते ॥ ७६६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(श्रीगुरुः) श्रीगुरु (उवाच) बोले (अत्र) इस ब्रह्म-विद्यामें (मुख्यगौणादिभेदेन) प्रधान और अप्रधानके भेदसे (अधिकारिणः) अधिकारी (विद्यन्ते) हैं (तेषाम्) उनकी (प्रज्ञानुसारेण) बुद्धिके अनुसार (अखण्डा) एकरूप (वृत्तिः) चित्तकी वृत्ति [उदेष्यते] उदित होगी ॥७६६॥

भावार्थ-गुरुदेवने कहा, कि-मुख्य और गौण भेदसे इस ब्रह्मविद्यामें कितने ही प्रकारके अधिकारी देखनेमें आते हैं, उनके ज्ञानके अनुसार अखंडाकार चित्तकी वृत्तिका उदय होता है ॥ ७६६ ॥

श्रद्धाभक्तिपुरःसरेण विहितेनैवेश्वरं कर्मणा,
सन्तोष्यार्जिततत्प्रसादमहिमा जन्मान्तरेष्वेव यः ।
नित्यानित्यविवेकतीव्रविरतिन्यासादिभिः साधनै-
र्युक्तः स श्रवणे सतामभिमतो मुख्याधिकारी द्विजः ७६७

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (श्रद्धाभक्तिपुरःसरेण) श्रद्धाभक्तिपूर्वक (विहितेन) शास्त्रमें बताये हुए (कर्मणा, एव) कर्मके द्वारा ही (ईश्वरम्) ईश्वरको (सन्तोष्य) सन्तुष्ट करके (जन्मान्तरेषु, एव) पहले जन्मोंमें ही (अर्जित तत्प्रसादमहिमा) पाया है उनके अनुग्रहसे महत्त्व जिसने (नित्यानित्यविवेक तीव्रविरतिन्यासादिभिः) नित्य और अनित्य वस्तुका विवेक, तीव्र वैराग्य और संन्यास आदि (साधनैः) साधनों करके (युक्तः) युक्त है (सः) वह (द्विज ब्राह्मण वा द्विजाति (श्रवणे) श्रवणमें (मुख्याधिकारी) प्रधान अधिकारी(सताम् सत्पुरुषोंका (अभिमतः) माना हुआ है ॥ ७६७ ॥

भावार्थ-जिसने पहले जन्ममें श्रद्धा भक्तिके साथ शास्त्रकी आज्ञानुसार कर्म द्वारा ईश्वरको प्रसन्न करके उनके अनुग्रहसे महत्त्व पालिया है तथा नित्य अनित्य वस्तुका विवेक, परम वैराग्य और संन्यास आदिसे युक्त है वह द्विज ही ब्रह्मविद्या को सुननेका मुख्य अधिकारी है यह सत्पुरुषोंकी सम्मति है ॥ ७६७ ॥

अध्यारोपापवादक्रममनुसरता दैशिकेनात्र वेत्रा,
वाक्यार्थे बोध्यमाने सति सपदि सतः शुद्धबुद्धेरमुष्य ।
नित्यानन्दाद्वितीयं निरुपममलं यत्परं तत्त्वमेकं
तद् ब्रह्मैवाहमस्म्युदयति परमाखण्डताकारवृत्तिः ॥ ७६८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अत्र) इस वेदान्तके विषयमें (अध्यारोपापवादक्रमम् अध्यारोप और अपवादके क्रमको (अनुसरता) अनुसरण करनेवाले (वेत्रा ज्ञाता (दैशिकेन) गुरु करके (वाक्यार्थे) तत्त्वमसि वाक्यका अर्थ (बोध्यमाने सति) बोधित होने पर (सपदि) तत्काल (शुद्धबुद्धेः) केवल ज्ञानस्वरूप (सतः) होते हुए (अमुष्य) इसकी (नित्यानन्दाद्वितीयम्) नित्य आनन्द स्वरूप अद्वितीय (निरुपमम्) उपमारहित (अमलम्) निर्मल (यत्) जो(परम् परम् (एकम्) अद्वितीय (तत्त्वम्) वस्तु है (तत्) वह (ब्रह्म) ब्रह्म (अहम् एव) मैं ही (अस्मि) हूँ (इति) ऐसी (परमा)उत्तम (अखण्डाकारवृत्तिः अखण्डरूप वृत्ति (उदयति) उत्पन्न होती है ॥ ७६८ ॥

भावार्थ—अध्यारोप कहिये रस्सीमें सर्पकी भ्रान्ति और अपवाद कहिये रस्सीमें सर्पकी भ्रान्ति दूर होकर रस्सीका यथार्थ ज्ञान होना इस रीतिके अनुसार उपदेश करनेवाले ज्ञानी उपदेष्टाके द्वारा तत्त्वमसि वाक्यके अर्थका ज्ञान होने

तत्काल निर्मल अन्तःकरणवाले इस पुरुषकी, "नित्य सुखस्वरूप, अद्वितीय उपमारहित, निर्मल, उत्तम एक वस्तु जो ब्रह्म है वह मैं ही हूँ" ऐसी परम अखण्डाकार चित्तकी वृत्तिका उदय होता है ॥ ७९८ ॥

अखण्डाकारवृत्तिः सा चिदाभाससमन्विता ।
आत्माऽभिन्नं परं ब्रह्म विषयीकृत्य केवलम् ॥ ७९९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सा) वह (चिदाभाससमन्विता) चैतन्यके स्फुरणसे युक्त (अखण्डाकारवृत्तिः) अखण्डरूपा चित्तकी वृत्ति (केवलम्) शुद्ध (आत्माभिन्नम्) आत्मासे अभिन्न (परं, ब्रह्म) परब्रह्मको (विषयीकृत्य) अवलम्बन करके [वर्त्तते] रहती है ॥ ७९९ ॥

भावार्थ-वह चैतन्यके स्फुरणसे युक्त अखण्डाकार चित्तकी वृत्ति, आत्मासे अभिन्न परब्रह्मका आश्रय लेकर विद्यमान रहती है ॥ ७९९ ॥

बाध्यते तद्गताज्ञानं यदावरणलक्षणम् ।
अखण्डाकारया वृत्त्या त्वज्ञाने बाधिते सति ॥ ८०० ॥

अन्वय और पदार्थ-(तु) परन्तु (अखण्डाकारया) एकरूप (वृत्त्या) चित्तके परिणामके द्वारा (अज्ञाने) अविद्याके (बाधिते, सति) बाधित होने पर (यत्) जो (आवरणलक्षणम्) आवरणरूप (तद्गताज्ञानम्) अन्तःकरणमेंका अज्ञान (बाध्यते) बाधित होता है ॥ ८०० ॥

भावार्थ-अखण्डाकार चित्तकी वृत्तिसे अज्ञानका नाश होजाने पर अन्तःकरणमेंका आवरणरूप अज्ञान दूर होजाता है ॥ ८०० ॥

तत्कार्यं सकलं तेन समं भवति बाधितम् ।
तन्तुदाहे तु तत्कार्यपटदाहो यथा तथा ॥ ८०१ ॥

अन्वय और पदार्थ -(यथा) जैसे (तन्तुदाहे, तु) तन्तुओंके जल जाने पर ही (तत्कार्यपटदाहः) तन्तुके कार्य वस्त्रका जलना [भवति] होता है (तथा) वैसे ही (तेन, समम्) उस अज्ञानके साथ (सकलम्) सब (तत्कार्यम्)उसका का कार्य (बाधितम्) नष्ट (भवति) होता है ॥ ८०१ ॥

भावार्थ-जैसे डोरे जलजाने पर डोरोंका कार्य वस्त्र भी जल जाता है ऐसे ही अज्ञानके नष्ट होनेके साथ ही साथ उस अज्ञानके सब कार्य भी नष्ट होजाते हैं॥

तस्य कार्यतया जीववृत्तिर्भवति बाधिता ।
उपप्रभा यथा सूर्यं प्रकाशयितुमक्षमा ॥ ८०२ ॥
तद्वदेव चिदाभासचैतन्यं वृत्तिसंस्थितम् ।
स्वप्रकाशं परं ब्रह्म प्रकाशयितुमक्षमम् ॥ ८०३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्य) उसका (कार्यतया) कार्य होनेसे (जीववृत्तिः) जीवका व्यापार (बाधिता) रुका हुआ (भवति) होता है (यथा) जैसे (उपप्रभा) दीपक आदिका प्रकाश (सूर्यम्) सूर्यको (प्रकाशयितुम्) प्रकाशित करने को (अक्षमा) असमर्थ है (तद्वत्, एव) तैसे ही (वृत्तिसंस्थितम्) चित्तकी वृत्तिरूपमें विद्यमान (चिदाभासचैतन्यम्) चित्तका स्फुरणरूप चैतन्य (स्वप्रकाशम्) प्रकाशस्वरूप (परं, ब्रह्म) परब्रह्मको (प्रकाशयितुम्) प्रकाशित करने को (अक्षमम्) असमर्थ [भवति] होता है ॥ ८०२-८०३ ॥

भावार्थ-अज्ञानके बाधित होजाने पर अज्ञानका कार्य होनेसे जीवका व्यापार भी बाधित होजाता है, जैसे दीपक आदिकी ज्योति सूर्यको प्रकाशित नहीं कर सकती, ऐसे ही अन्तःकरणकी वृत्तिमें स्थित चिदाभासरूप चैतन्य परब्रह्मको प्रकाशित नहीं करसकता ॥ ८०२ ॥ ८०३ ॥

प्रचण्डातपमध्यस्थदीपवन्नष्टदीधितिः ।
तत्तेजसाऽभिभूतं सल्लीनोपाधितया ततः ॥ ८०४ ॥
बिम्बभूतपरब्रह्ममात्रं भवति केवलम् ।
यथाऽपनीते त्वादर्शे प्रतिबिम्बमुखं स्वयम् ॥ ८०५ ॥
मुखमात्रं भवेत्तद्वदेतच्चोपाधिसंक्षयात् ।
घटाज्ञाने यथा वृत्त्या व्याप्तया बाधिते सति ॥ ८०६ ॥
घटं विस्फूरयत्येषश्चिदाभासः स्वतेजसा ।
न तथा स्वप्रभे ब्रह्मण्याभास उपयुज्यते ॥ ८०७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रचण्डातपमध्यस्थदीपवत्) प्रचण्ड धूपमें रखे हुए दीपककी समान (नष्टदीधितिः) नष्ट होगयी है प्रभा जिसकी ऐसा [चिदाभासः] चिदाभास (तत्तेजसा) ब्रह्मके प्रकाशके द्वारा (अभिभूतं, सत्) तिरस्कारको

प्राप्त होता हुआ (लीनोपाधितया) उपाधिके लय होजानेके कारण (ततः) तद-नन्तर (केवलम्) शुद्ध (बिम्बभूतपरब्रह्ममात्रम्) बिम्बरूप केवल परब्रह्म(भवति) होता है (यथा) जैसे (आदर्शे, अपनीते, तु) शीशेको दूर करलेने पर तो (स्वयम्) आप (प्रतिबिम्बमुखम्) प्रतिबिम्बमें स्थित मुख (मुखमात्रम्) केवल मुख ही (भवेत्) होता है (तद्वत्) तैसे ही (उपाधिसंक्षयात्) उपाधिका नाश होनेसे (एतत्, च) यह भी [भवति] होता है (यथा) जैसे (व्याप्तया) व्याप्त (वृत्त्या) चित्तकी वृत्तिके द्वारा (घटाज्ञाने) घटविषयक अज्ञानके (बाधिते, सति) नाशको प्राप्त होने पर (एषः) यह (चिदाभासः) अन्तःकरणका चित् प्रतिबिम्ब (स्वतेजसा) अपने तेजसे (घटम्) घटको (विस्फूरयति) प्रकाशित करता है (तथा) तैसे ही (स्वप्रभे) स्वयंज्योतिःस्वरूप (ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (आभासः) चित्प्रतिबिम्ब (न) नहीं (उपयुज्यते) उपयोगी होता है ८०४-७

भावार्थ—सूर्यकी प्रचण्ड धूपके मध्यमें रक्खे हुए प्रभाहीन दीपककी समान चिदाभास, ब्रह्मतेजके द्वारा तिरस्कृत होकर उपाधिका लय होजानेके कारण बिम्ब-स्वरूप परब्रह्ममें ही स्थित होता है। जैसे दर्पणको हटा लेने पर प्रतिबिम्बमें स्थित मुख मुखरूपमें स्थित होता है, ऐसे ही उपाधिके नष्ट होजाने पर चिदाभास भी परब्रह्मस्वरूपमें स्थित होता है, जैसे व्याप्त हुई चित्तकी वृत्तिके द्वारा घटविषयक अज्ञानके बाधित होजाने पर चिदाभास अपने तेजके द्वारा घटको प्रकाशित करता है, ऐसे ही स्वयंज्योति ब्रह्ममें आभास (चित्प्रतिबिम्ब) उपयोगी नहीं है ॥

अत एव मतं वृत्तिव्याप्यत्वं वस्तुनः सताम् ।
न फलव्याप्यता तेन न विरोधः परस्परम् ॥ ८०८ ॥
श्रुत्योदितन्ततो ब्रह्म ज्ञेयं बुद्ध्यैव सूक्ष्मया ।
प्रज्ञामांद्यं भवेद्येषां तेषां न श्रुतिमात्रतः ।
स्यादखण्डाकारवृत्तिर्विना तु मननादिना ॥ ८०९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अत एव) इसलिये ही (वस्तुनः) ब्रह्मका (वृत्ति-व्याप्यत्वम्) अन्तःकरणकी वृत्तिका कर्मरूप होना (सताम्) साधुओंका(मतम्) अभिमत है (फलव्याप्यता) फलके प्रकाशका कर्मरूप होना (न) नहीं (तेन) तिससे (श्रुत्या, उदितः) श्रुतिका कहा हुआ (परस्परम्) आपसमें (विरोधः) विरोध (न) नहीं है (ततः) तिससे (सूक्ष्मतया) सूक्ष्म (बुद्ध्या, एव) बुद्धि

के द्वारा ही (ब्रह्म) शुद्ध-चैतन्य (ज्ञेयम्) जानना चाहिये (तु) परन्तु (येषाम्) जिनकी (मन्दप्रज्ञा) ज्ञानकी मन्दता है (तेषाम्) उनकी (मननादिना विना) मनन आदिके बिना (श्रुतिमात्रतः) श्रवणमात्रसे (अखण्डाकारवृत्तिः) अखण्ड चैतन्यरूपसे अन्तःकरणकी वृत्ति (न) नहीं (स्यात्) होती है ॥ ८०८ ॥ ८०९ ॥

भावार्थ–घट आदि जड़ वस्तुओंमेंका अज्ञान अन्तःकरणकी वृत्तिसे दूर हो जाता है, फिर उसको चैतन्य प्रकाशित करता है, इसलिये घट आदि जड़ पदार्थ वृत्तिव्याप्य हैं, और फल (चैतन्य-प्रकाश) व्याप्य हैं परन्तु ब्रह्म केवल चित्तवृत्ति का व्याप्य है अर्थात् चित्तवृत्तिके द्वारा 'ब्रह्म नास्ति' ऐसा अज्ञान दूर होजाता है, परन्तु ब्रह्म स्वयंप्रकाश है इसलिये वह फलव्याप्य अर्थात् प्रकाशका कर्म नहीं होता है इसलिये ब्रह्मके स्वयंप्रकाश होनेसे साधु पुरुष ब्रह्मको चित्तकी वृत्तिका व्याप्य मानते हैं, और ब्रह्मकी फलव्याप्यता नहीं मानते हैं इसप्रकार श्रुतियोंमें परस्पर विरोध नहीं पड़ता है, इसलिये सूक्ष्मबुद्धिके द्वारा ब्रह्मको जाने, जो जड़बुद्धि हैं उनकी मननके सिवाय केवल श्रवण मात्रसे अखण्डाकार चित्तकी वृत्ति उत्पन्न नहीं होती है ॥ ८०८ ॥ ८०९ ॥

श्रवणादिनिरूपणम्

श्रवणान्मननाद् ध्यानात्तात्पर्येण निरन्तरम् ।
बुद्धेः सूक्ष्मत्वमायाति ततो वस्तूपलभ्यते ॥ ८१० ॥
मन्दप्रज्ञावतां तस्मात्कारणीयं पुन पुनः ।
श्रवणं मननं ध्यानं सम्यग्वस्तूपलब्धये ॥ ८११ ॥
सर्ववेदान्तवाक्यानां षड्भिर्लिंगैः सदद्वये ।
परे ब्रह्मणि तात्पर्यनिश्चयं श्रवणं विदुः ॥ ८१२ ॥
श्रुतस्यैवाद्वितीयस्य वस्तुनः प्रत्यगात्मनः ।
वेदान्तवाक्यानुगुणयुक्तिभिस्त्वनु चिन्तनम् ।
मननं तच्छ्रुतार्थस्य साक्षात्करणकारणम् ॥ ८१३ ॥

अन्वय और पदार्थ–(निरन्तरम्) निरन्तर (तात्पर्येण) तत्परताके साथ (श्रवणात्) गुरुमुखसे श्रवण करनेसे (मननात्) मनन करनेसे (ध्यानात्)

निदिध्यासन करनेसे (बुद्धेः) बुद्धिकी (सूक्ष्मत्वम्) सूक्ष्मता (आयाति) आती है (ततः) तदनन्तर (वस्तु) ब्रह्म वस्तु (उपलभ्यते) प्राप्त होती है (तस्मात्) तिससे (सम्यक्) भले प्रकार (वस्तूपलब्धये) वस्तुकी प्राप्तिके लिये (मन्दप्रज्ञावताम्) मन्द बुद्धि वालोंको (पुनः,पुनः) वार वार (श्रवणम्)श्रवण (मननम्) मनन (ध्यानम्) निदिध्यासन (करणीयम्) करना चाहिये[बुधाः] पण्डित (षड्भिः) छः (लिङ्गैः) हेतुओंके द्वारा (सदद्वये) सत्स्वरूप अद्वितीय (परे, ब्रह्मणि) परब्रह्म में (सर्ववेदान्तवाक्यानाम्) सकल वेदान्त वाक्योंके [तात्पर्यनिश्चयम्] तात्पर्यनिश्चयको (श्रवणम्) श्रवण (विदुः) मानते हैं (तु) परन्तु (श्रुतस्य) श्रवण किये हुए [अद्वितीयस्य,एव] एकही (प्रत्यगात्मनः) व्यापक आत्मस्वरूप (वस्तुनः) वस्तुके (वेदान्तवाक्यानुगुणयुक्तिभिः) वेदान्तवाक्योंके अनुकूल युक्तियोंके द्वारा (अनुचिन्तनम्) चिन्तवनको (तच्छ्रुतपदार्थस्य) उस श्रवण किये हुए पदार्थके (साक्षात्कारकारणम्) प्रत्यक्ष होनेका हेतु (मननम्) मनन [विदुः] जानते हैं ॥ ८१०-८१३ ॥

भावार्थ—निरन्तर तत्परभावसे श्रवण मनन और निदिध्यासन करने पर बुद्धिमें सूक्ष्मता आती है, फिर यथार्थ वस्तु प्राप्त होती है, इसकारण उत्तमरीतिसे वस्तुका तत्त्व पानेके लिये जड़बुद्धि मनुष्योंको वार वार श्रवण, मनन और निदिध्यासन करना चाहिये, उपक्रम और संहारकी एकवाक्यता आदि छः प्रकारके हेतुओंके द्वारा सत्यरूप अद्वितीय परब्रह्ममें सकल वेदान्तवाक्योंके तात्पर्यनिर्णय को पण्डित पुरुष श्रवण नामसे कहते हैं और वेदान्तवाक्योंके अनुकूल युक्तियों के द्वारा गुरुमुखसे सुनेहुए अद्वितीय व्यापक ब्रह्मके चिन्तवनको पण्डित मनन कहते हैं, यह मननही श्रवण कियेहुए पदार्थके साक्षात्कारका हेतु है ॥८१०-८१३ ॥

विजातीयशरीरादिप्रत्ययत्यागपूर्वकम् ।
सजातीयात्मवृत्तानां प्रवाहकरणम् यथा ॥ ८१४ ॥
तैलधारावदाच्छिन्नं वृत्त्यै तद्ध्यानमिष्यते ।
तावत्कालं प्रयत्नेन कर्त्तव्यं श्रवणं सदा ॥ ८१५ ॥
प्रमाणसंशयो यावत् स्वबुद्धेर्न निवर्त्तते ।
प्रमेयसंशयो यावत् तावत्तु श्रुतियुक्तिभिः ॥ ८१६ ॥
आत्मयाथार्थ्यनिश्चित्यै कर्त्तव्यं मननं मुहुः ।

विपरीतात्मधीर्यावन्न विनश्यति चेतसि ।
तावन्निरन्तरं ध्यानं कर्तव्यं मोक्षमिच्छता ॥ ८१७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यथा) जैसे (विजातीयशरीरादिप्रत्ययत्यागपूर्वकम्) विरुद्ध जाति वाले देह आदिके विषयके ज्ञानको त्यागकर (तैलधारावत्) तेलकी धारकी समान (अच्छिन्नवृत्त्या) बीचमें न टूटनेवाली वृत्तिसे (सजातीयात्मवृत्तीनाम्) समान जातिवाली आत्माकार वृत्तियोंका (प्रवाहकरणम्) निरन्तर प्रवाह रूपसे चलाना (तत्) वह (ध्यानम्) निदिध्यासन (इष्यते) मानाता है (यावत्) जबतक (स्वबुद्धेः) अपनी बुद्धिसे (प्रमाणसंशयः) प्रमाणोंके विषयका सन्देह (न) नहीं (निवर्त्तेत) दूरहोय (तावत्कालम्) उतने समय तक (सदा) सर्वदा (प्रयत्नेन) यत्न करके (श्रवणम्)श्रवण (कर्त्तव्यम्)करना चाहिये (यावत्) जबतक (प्रमेयसंशयः) प्रमेयके विषयका सन्देह है (तावत्,तु) तबतक तो (श्रुतियुक्तिभिः) श्रुति और वेदानुकूल युक्तियोंके द्वारा (आत्मयाथार्थ्यनिश्चित्यै) आत्माकी यथार्थताका निश्चय करनेके लिये (मुहुः) वार वार (मननम्) मनन (कर्त्तव्यम्) करना चाहिये (यावत्) जबतक (चेतसि) अन्तःकरणमें (विपरीतात्मधीः) विपरीत आत्मज्ञान (न) नहीं (विनश्यति) नष्ट होता है (तावत्) तबतक (मोक्षं, इच्छता) मोक्ष चाहने वालेको (निरन्तरम्) बराबर (ध्यानम्) निदिध्यासन (कर्त्तव्यम्) करना चाहिये॥ ८१४‌—८१७ ॥

भावार्थ—देह आदिमें आत्मबुद्धिरूप विजातीय प्रतीतिको त्यागकर तेलकी धारकी समान अविच्छिन्नभावसे आत्मरूप सजातीय अन्तःकरण वृत्तियोंको एकरूपसे प्रवाहित करनेका नाम ध्यान है, जबतक प्रमाणोंमेंका सन्देह दूर न होय तबतक उद्योग कर निरन्तर श्रवण करता रहे, जबतक प्रमेयका सन्देह दूर न हो जाय तबतक श्रुतियोंसे और उनके अनुकूल युक्तियोंसे आत्माके यथार्थ स्वरूपका निर्णय करनेके लिये वार वार मनन करे, जबतक चित्तमेंका विपरीत आत्मज्ञान अर्थात् देह इन्द्रियादिमेंकी आत्मबुद्धि दूर न होय तबतक मुमुक्षु पुरुषको निरन्तर निदिध्यासन करना चाहिये ॥ ८१४-८१७ ॥

यावन्न तर्केण निरासितोऽपि
दृश्यप्रपञ्चस्त्वपरोक्षबोधात् ।

विलीयते तावदमुष्य भिक्षो-

ध्यानादि सम्यक् करणीयमेव ॥ ८१८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यावत्) जबतक (तर्केण) मननके द्वारा (दृश्यप्रपञ्चः) यह दीखने वाला जगत् (निरासितः, अपि) दूर किया हुआ भी (अपरोक्षबोधात्) प्रत्यक्षज्ञानसे (न) नहीं (विलीयते) विलीन होता है (तावत्, तु) तब तक तो (अमुष्य) इस (भिक्षोः) संन्यासीको (ध्यानादि) निदिध्यासन आदि (सम्यक्) उत्तम प्रकारसे (करणीयम्, एव) करना ही चाहिये ॥८१८ ॥

भावार्थ-मननके द्वारा इस दीखनेवाले जगत्को दूर करने पर भी जब तक यह प्रत्यक्ष ज्ञानके द्वारा विलीन न होय तब तक इस संन्यासीको उत्तम रीतिसे ध्यान करना चाहिये ॥ ८१८ ॥

सविकल्पसमाधिः ।

सविकल्पो निर्विकल्प इति द्वेधा निगद्यते ।

समाधिः सविकल्पस्य लक्षणं वच्मि तच्छृणु ॥ ८२१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(समाधिः) समाधि (सविकल्पः) सविकल्प (निर्विकल्पः) निर्विकल्प (इति) इसप्रकार (द्वेधा) दो प्रकारका (निगद्यते) कहा जाता है (सविकल्पस्य) सविकल्पके (लक्षणम्) लक्षणको (वच्मि) कहता हूँ (तत्) उसको (शृणु) सुन ॥ ८१९ ॥

भावार्थ-समाधि दो प्रकारकी है एक सविकल्प और दूसरी निर्विकल्प, इनमें से सविकल्प समाधिका लक्षण कहता हूँ उसको सुन ॥ ८१९ ॥

ज्ञात्राद्यविलये नैव ज्ञेये ब्रह्मणि केवले ।

तदाकाराकारितया चित्तवृत्तेरवस्थितिः ॥ ८२० ॥

सद्भिः स एव विज्ञेयः समाधिः सविकल्पकः ।

मृद एवावभानेऽपि मृन्मयद्विपभानवत् ॥ ८२१ ॥

सन्मात्रवस्तुभानेऽपि त्रिपुटी भाति सन्मयी ।

समाधिरत एवायं सविकल्प इतीर्यते ॥ ८२२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ज्ञात्राद्यविलयेन, एव) ज्ञाता आदिका विलय न होनेसे ही (केवले) शुद्ध (ज्ञेये) ज्ञानके विषय (ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (तदाकारा-

कारितया) उसके आकारके आकारवाली (चित्तवृत्तेः) चित्तकी वृत्तिकी (अवस्थितः) स्थिति (सद्भिः) सत्पुरुषों करके (सः, एव) वह ही (सविकल्पः) विकल्पसहित (समाधिः) समाधिः (विज्ञेयः) जानने योग्य है (मृदः, एव) मट्टीके ही (अवभाने, अपि) भासित होने पर भी (मृन्मयद्विपभानवत्) मट्टीके हाथीकी प्रतीतिकी समान (सन्मात्रवस्तुभाने, अपि) सत् पदार्थ मात्रके भासित होने पर भी (सन्मयी) सत्तावाली (त्रिपुटी) त्रिपुटी (भाति) भासित होती है (अत एव) इसलिये ही (सविकल्पः) सविकल्प (समाधिः) समाधि(इति) ऐसा (ईर्यते) कहाजाता है ॥ ८२१-८२२ ॥

भावार्थ- ज्ञाता और ज्ञानके भेदभावका विलय न होकर शुद्ध ज्ञेय ब्रह्ममें उसके ही आकारको धारण करनेवाली चित्तकी वृत्ति जब स्थित होती है तो उसको सज्जन पुरुष सविकल्प समाधि कहते हैं, मट्टीके हाथीको देखकर उसमें मट्टीका ज्ञान हो जाने पर भी जैसे मट्टीका हाथी भासता है, ऐसे ही सत्स्वरूप वस्तुका ज्ञान हो जाने पर भी ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय यह त्रिपुटी भासित होती ही है, इसलिये ही विद्वानोंने इसका नाम सविकल्प समाधि कहा है ॥ ८२०-८२२ ॥

निर्विकल्पसमाधिः ।

ज्ञात्रादिभावमुत्सृज्य ज्ञेयमात्रस्थितिर्दृढा ।
मनसो निर्विकल्पः स्यात्समाधिर्योगसंज्ञितः ॥ ८२३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ज्ञात्रादिभावम्) ज्ञाता आदिके भावको (उत्सृज्य) छोडकर (मनसः) मनकी (दृढा) दृढरूप (ज्ञेयमात्रस्थितिः) ज्ञानके विषयमात्रसे स्थिति (योगसंज्ञितः) योग नामवाला (निर्विकल्पः) विकल्परहित (समाधिः) समाधि (स्यात्) होगा ॥ ८२३ ॥

भावार्थ-ज्ञातापन आदिको छोडकर ज्ञेयरूपमें मनकी दृढ़ स्थितिका नाम योगमें निर्विकल्प समाधि कहा है ॥ ८२३ ॥

जले निक्षिप्तलवणं जलमात्रतया स्थितम् ।
पृथङ्न भाति किन्त्वम्भ एकमेवावभासते ॥ ८२४ ॥
यथा तथैव सा वृत्तिर्ब्रह्ममात्रतया स्थिता ।
पृथङ्न भाति ब्रह्मैवाद्वितीयमवभासते ॥ ८२५ ॥

अन्वय और पदार्थ (यथा) जैसे (जले) जलमें (निक्षिप्तलवणम्) डाला हुआ लवण (जलमात्रतया) केवल जलरूपसे (स्थितम्) स्थित हुआ (पृथक्) भिन्न (न) नहीं (भाति) भासित होता है (किन्तु) किन्तु (एकम्) एक (अम्भः एव) जल ही (अवभासते) भासता है (तथा) तैसे ही (ब्रह्ममात्रतया) केवल ब्रह्मरूपसे (स्थिता) स्थित हुई (सा) वह (वृत्तिः) चित्तकी वृत्ति (पृथक्) अलग (न) नहीं (भाति) भासती है (अद्वितीयम्) एक (ब्रह्म एव) ब्रह्म ही (अवभासते) प्रकाशित होता है ॥ ८२४ ॥ ८२५ ॥

भावार्थ—जैसे जलमें डाला हुआ लवण जलरूपमें ही स्थित होजाता है, अलग प्रतीत नहीं होता, किन्तु केवल जल ही भासता है, ऐसे ही केवल ब्रह्मरूप से स्थित अन्तःकरणकी वृत्ति अलग प्रकाशित नहीं होती किन्तु अद्वितीय ब्रह्मरूप से ही भासती है ॥ ८२४ ॥ ८२५ ॥

ज्ञात्रादिकल्पनाभावान्मतोऽयं निर्विकल्पकः ।
वृत्तेः सद्भावबाधाभ्यामुभयोर्भेद इष्यते ॥ ८२६ ॥

अन्वय और पदार्थ— (ज्ञात्रादिकल्पनाभावात्) ज्ञाता आदिकी कल्पना न होनेसे (अयम्) यह (निर्विकल्पः) निर्विकल्प समाधि (मतः) मानागया है (वृत्तेः) चित्तकी वृत्तिके (सद्भावबाधाभ्याम्) स्थिति और नाशके द्वारा (उभयोः) दोनोंका (भेदः) भेद (इष्यते) मानाजाता है ॥ ८२६ ॥

भावार्थ—ज्ञाता और ज्ञानकी कल्पना न होनेसे यह निर्विकल्प समाधि कहलाती है, सविकल्प समाधिमें चित्तकी वृत्ति होती है और निर्विकल्प समाधिमें चित्तकी वृत्ति नहीं होती, यही इन दोनों समाधियोंमें भेद है ॥ ८२६ ॥

समाधिसुप्त्योर्ज्ञानञ्चाज्ञानं सुप्त्यात्र नेष्यते ।
सविकल्पो निर्विकल्पः समाधी द्वाविमौ हृदि ॥ ८२७ ॥
मुमुक्षोर्यत्नतः कार्यौ विपरीतनिवृत्तये ।
कृतेऽस्मिन् विपरीताया भावनाया निवर्त्तनम् ॥ ८२८ ॥
ज्ञानस्याप्रतिबद्धत्वं सदानन्दश्च सिद्ध्यति ।

अन्वय और पदार्थ-(अत्र) इस समाधिमें (सुप्त्या) सुषुप्तिके द्वारा (समाधिसुप्त्योः) समाधि और सुषुप्तिका (ज्ञानम्) ज्ञान (च) और (अज्ञानम्) अज्ञान (न) नहीं (इष्यते) इच्छा कियाजाता है (सविकल्पः) विकल्पसहित (निर्विकल्पः) विकल्परहित (इमौ) ये (द्वौ) दो (समाधी) समाधि (त्रिप-

रीतनिवृत्तये विरुद्धभावनाको दूर करनेके लिये (मुमुक्षोः) मुमुक्षुको (हृदि) हृदयमें (यत्नतः) यत्नके साथ (कार्यौ) करने चाहियें (अस्मिन्, कृते) इस समाधिके करलेने पर (विपरीतभावनायाः) विरुद्धविचारकी(निवर्त्तनम्) निवृत्ति [भवति] होती है (ज्ञानस्य) ज्ञानका (अप्रतिबद्धत्वम्) न रुकना (च) और (आनन्दः) आनन्द (सिध्यति) सिद्ध होता है ॥ ८२७ ॥ ८२८ ॥

भावार्थ—निर्विकल्प समाधिमें विद्वान् सविकल्प समाधि और सुषुप्तिके समान अज्ञानको नहीं मानते हैं, मुमुक्षु पुरुषको आत्मस्वरूपके विपरीत जो विचार उठते हैं उनको दूर करनेके लिये अपने मनमें यत्नके साथ सविकल्प और निर्विकल्प दोनों समाधियोंका अनुष्ठान करना चाहिये, इन समाधियोंका अनुष्ठान होने पर विपरीत विचार नहीं उठते बिना रुकावटका ज्ञान उत्पन्न होता है और नित्य आनन्द प्रकट होता है ॥ ८२७ ॥ ८२८ ॥

दृश्यानुविद्धसविकल्पः ।

दृश्यानुविद्धः शब्दानुविद्धश्चेति द्विधा मतः ॥ ८२९ ॥
सविकल्पस्तयोर्यत्तल्लक्षणं वच्मि तच्छृणु ।
कामादिप्रत्ययैः दृश्यैः संसर्गो यत्र दृश्यते ॥ ८३० ॥
सोऽयं दृश्यानुविद्धः स्यात्समाधिः सविकल्पकः ।
अहं ममेदमित्यादिकामक्रोधादिवृत्तयः ॥ ८३१ ॥
दृश्यन्ते येन संदृष्टा दृश्याः स्युरहमादयः ।
कामादिसर्ववृत्तीनां द्रष्टारमविकारिणम् ॥ ८३२ ॥
साक्षिणं स्वं विजानीयाद्यस्ताः पश्यति निष्क्रियः ।
कामादीनामहं साक्षी दृश्यन्ते ते मया ततः ॥ ८३३ ॥
इति साक्षितयात्मानं जानात्यात्मनि साक्षिणम् ।
दृश्यं कामादि सकलं स्वात्मन्येव विलापयेत् ॥ ८३४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सविकल्पः) सविकल्प समाधि (दृश्यानुविद्धः) दृश्यके सम्बन्ध वाला (च) और (शब्दानुविद्धः) शब्दके सम्बन्धवाला (द्विधा) दो प्रकारका (मतः) माना गया है (तयोः) उनका (यत्) जो (लक्षणम्) लक्षण है (तत्) उसको (वच्मि) कहता हूँ (शृणु) सुन (यत्र)

जिस समाधिमें (कामादिप्रत्ययैः) काम आदिके ज्ञानरूप (दृश्यैः) दृश्योंके द्वारा (संसर्गः) सम्बन्ध (दृश्यते) दीखता है (सा) वह (अयम्) यह (दृश्यानुविद्धः) दृश्यके सम्बन्धवाला (सविकल्पकः) सविकल्प (समाधिः) समाधि (स्यात्) होगा (अहं ममेदं इत्यादि कामक्रोधादिवृत्तयः) मैं, यह मेरा, इत्यादि काम क्रोध आदि चित्तकी वृत्तियें (येन) जिसके द्वारा (दृश्यन्ते) दीखतीं हैं (अहमादयः) मैं आदि ((दृश्याः) दृश्य [येन] जिसके द्वारा (संदृष्टाः) देखे गये हैं (कामादिसर्ववृत्तीनाम्) काम आदि सब वृत्तियोंके (द्रष्टारम्) द्रष्टा (अविकारिणम्) निर्विकाररहित (साक्षिणम्) साक्षी (स्वम्) अपनेको (यः) जो (विजानीयात्) जाने [यः] जो (निष्क्रियः) व्यापाररहित [सन्] होता हुआ (ताः) उन वृत्तियोंको (पश्यति) देखता है (अहम्) मैं (कामादीनाम्) काम आदिका (साक्षी) द्रष्टा [अस्मि] हूँ (ततः) तिससे (ते) वे कामादि (मया) मुझ करके (दृश्यन्ते) देखे जाते हैं (इति) इसप्रकार (साक्षितया) साक्षीरूप से (आत्मनि) अपनेमें (आत्मानम्) अपने आपको (विजानीयात्) जाने (कामादि) काम आदि (सकलम्) सब (दृश्यम्) दृश्यको (आत्मनि, एव) आत्मामें ही (विलापयेत्) विलीन करे ॥ ८२९-८३४ ॥

भावार्थ-सविकल्प समाधि दो प्रकारकी होती है दृश्यानुविद्ध और शब्दानुविद्ध, इन दोनोंके लक्षण कहता हूँ, सुन-जिसमें काम क्रोध आदि प्रत्ययरूप दृश्य पदार्थोंके साथ सम्बन्ध होता है उसको दृश्यानुविद्ध सविकल्प समाधि कहते हैं,जिसके द्वारा मैं मेरा इत्यादि काम क्रोध आदिकी वृत्तियें देखनेमें आती हैं,जो अहं मम आदि दृश्य पदार्थोंका द्रष्टा है, सकल काम आदि वृत्तियोंके दर्शक, अविकारी साक्षी आत्माको जो जानते हैं, जो व्यापाररहित होकर इन सब वृत्तियोंको देखता है. मैं काम क्रोध आदि वृत्तियोंका साक्षी हूँ इसलिये मैं उन सबको देखता हूँ, इस प्रकार साक्षीभावसे आत्मामें आत्माको जो जानते हैं वे काम आदि सकल वृत्तियों को आत्मामें ही लीन कर देते हैं ॥ ८२९-८३४ ॥

नाहं देहो नाप्यसुर्नाक्षवर्गो नाहंकारो नो मनो नाऽपि बुद्धिः ।
अन्तस्तेषां चापि तद्विक्रियाणां साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि ८३५

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (देहः) शरीर (न) नहीं हूँ (असुः अपि) प्राण भी (न) नहीं हूं (अक्षवर्गः) इन्द्रियसमूह (न) नहीं हूँ (अहङ्कारः) अभिमान (न) नहीं हूँ (मनः) मन (न) नहीं हूँ (बुद्धिः,) अपि

बुद्धि भी (न) नहीं हूँ [यत्र] जहाँ (तेषाम्) उन देह आदिकोंकी (च) और (तद्विक्रियाणाम्, अपि) उनके विकारोंकी भी (अन्तः) समाप्ति है [सः] वह (साक्षी) द्रष्टा (नित्यः) सत्स्वरूप (प्रत्यक्) व्यापक आत्मा (अहम्.एव) मैं ही (अस्मि) हूँ ॥ ८३५ ॥

भावार्थ–मैं देह नहीं हूँ,प्राण नहीं हूँ,कोई इन्द्रिय नहीं हूँ अहङ्कार नहीं हू. मन नहीं हूँ,और बुद्धि नहीं हूँ,किन्तु इन देह आदि और देह आदिके विकारोंकी जहाँ समाप्ति होजाती है,वह साक्षिस्वरूप, नित्य, व्यापक आत्मा मैं ही हूँ ॥ ८३५ ॥

वाचः साक्षी प्राणवृत्तेश्च साक्षी बुद्धेः साक्षी बुद्धिवृत्तेश्च साक्षी।
चक्षुःश्रोत्रादीन्द्रियाणाञ्च साक्षी साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि॥

अन्वय और पदार्थ–[यः] जो (वाचः वाणीका (साक्षी) द्रष्टा है (च) और प्राणवृत्तेः) प्राणके व्यापारका (साक्षी) द्रष्टा है (बुद्धेः) बुद्धिका (साक्षी) द्रष्टा है (च) और (बुद्धिवृत्तेः, च) बुद्धिकी वृत्तिका भी (साक्षी) द्रष्टा है (च) और (चक्षुःश्रोत्रादीन्द्रियाणाम्) आँख कान आदि इन्द्रियोंका (साक्षी) द्रष्टा है [सः] वह (साक्षी) द्रष्टा (नित्यः) सत्स्वरूप (प्रत्यक्) व्यापक आत्मा (अहं, एव) मैं ही (अस्मि) हूँ ॥ ८३६ ॥

भावार्थ–जो वाणीका और प्राणके व्यापारका साक्षी है, बुद्धिका और बुद्धि की वृत्तिका साक्षी है तथा जो चक्षु श्रोत्र आदि इन्द्रियोंका भी साक्षी है वह साक्षी सत्स्वरूप व्यापक आत्मा मैं ही हूँ ॥ ८३६ ॥

नाहं स्थूलो नापि सूक्ष्मो न दीर्घो नाहं बालो नो युवा नापि वृद्धः।
नाहं काणो नापि मूको न षण्डः साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि ॥

अन्वय और पदार्थ–(अहम्) मैं (स्थूलः) मोटा (न) नहीं हूँ (सूक्ष्मः, अपि) पतला भी (न) नहीं हूँ (दीर्घः) लम्बा (न) नहीं हूँ (अहम्) मैं (बालः) बालक (नः) नहीं हूँ (युवा) जवान (न) नहीं हूँ (वृद्धः, अपि) बूढा भी (न) नहीं हूँ (अहम्) मैं (काणः) काना (न) नहीं हूँ (मूकः) गूँगा (न) नहीं हूँ (षण्डः, अपि) नपुंसक भी (न) नहीं हूँ (अहम्) मैं (साक्षी) द्रष्टा (नित्यः) सत्स्वरूप (प्रत्यक,एव) व्यापक आत्मा ही (अस्मि) हूँ।

भावार्थ–मैं मोटा नहीं, पतला नहीं, लम्बा नहीं. बालक नहीं, युवा नहीं, बूढा नहीं, काणा नहीं, गूँगा नहीं और नपुंसक भी नहीं हूँ, किन्तु साक्षी, सत्स्वरूप व्यापक आत्मा मैं ही हूँ ॥ ८३७ ॥

नास्म्यागन्ता नाऽपि गन्ता न हन्ता
　　नाहं कर्त्ता न प्रयोक्ता न वक्ता।
नाहं भोक्ता नो सुखी नैव दुःखी
　　साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि ॥ ८३८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आगन्ता) आनेवाला (न) नहीं (अस्मि) हूँ (गन्ता) जाने वाला (न) नहीं (हन्ता, अपि) मारनेवाला भी (न) नहीं (अहम्) मैं (कर्त्ता) करनेवाला (न) नहीं (प्रयोक्ता) प्रयोग करनेवाला (न) नहीं (वक्ता) बोलनेवाला (न) नहीं (अहम्) मैं (भोक्ता) भोगने वाला (न) नहीं (सुखी) सुखका अनुभव करनेवाला (नो) नहीं (दुःखी) दुःख पानेवाला [च] भी (न) नहीं (एव) ही [अस्मि] हूँ (साक्षी) द्रष्टा (नित्यः) सत्स्वरूप (प्रत्यक्) व्यापक आत्मा (अहं, एव) मैं ही (अस्मि) हूँ ॥ ८३८ ॥

भावार्थ-मैं न कहींसे आया हूँ, न कहीं जाऊँगा, किसीका वध करनेवाला प्रयोग करनेवाला, वक्ता, भोक्ता, सुख या दुःख भोगनेवाला मैं नहीं हूँ, मैं तो साक्षी सत्स्वरूप व्यापक आत्मा हूँ ॥ ८३८ ॥

नाहं योगी नो वियोगी न रागी नाहं क्रोधी नैव कामी न लोभी।
नाहं बद्धो नाऽपि युक्तो न मुक्तः साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि ३९

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (योगी) योग साधन करनेवाला (न) नहीं (वियोगी) वियुक्त होनेवाला (नो) नहीं (रागी) अनुराग करने वाला (न) नहीं (अहम्) मैं (क्रोधी) क्रोध करने वाला (न) नहीं (कामी) कामके वशीभूत (न, एव) कदापि नहीं (लोभी) लोभ करने वाला (न) नहीं (अहम्) मैं (बद्धः) बन्धनमें पड़ा हुआ (न) नहीं (युक्तः) कार्यमें लगा हुआ (न) नहीं (मुक्तः,अपि) छूटने वाला भी (न) नहीं [अस्मि] हूँ (अहम्) मैं [तु] तो (साक्षी) द्रष्टा (नित्यः) सत्य स्वरूप (प्रत्यक,एव) व्यापक आत्माही (अस्मि) हूँ ॥ ८३९ ॥

भावार्थ-मैं योगी नहीं, वियोगी नहीं, रागी नहीं, मैं क्रोधी नहीं, कामी नहीं, लोभी नहीं, मैं बद्ध नहीं, किसी कार्यमें युक्त नहीं, और मुक्ति पाने वाला भी नहीं, किन्तु मैं द्रष्टा, सत्यरूप व्यापक आत्मा हूँ ॥ ८३९ ॥

नान्तःप्रज्ञो न बहिःप्रज्ञको वा नैव प्रज्ञो नापि चाप्रज्ञ एषः।
नाहं श्रोता नापि मन्ता न बोद्धा साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि

अन्वय और पदार्थ-(एषः) यह (अहम्) मैं (अन्तःप्रज्ञः) भीतरी ज्ञान वाला (न) नहीं (बहिःप्रज्ञकः) बाहरी संज्ञा वाला (न) नहीं (वा) या (प्रज्ञः, एव) उत्तम ज्ञान वाला भी (न) नहीं (च) और (अप्रज्ञः, अपि) प्रज्ञानशून्य भी (न) नहीं (श्रोता) सुननेवाला भी (न) नहीं (मन्ता) मनन करने वाला (न) नहीं (बोद्धा, अपि) ज्ञाता भी (न) नहीं (अहम्) मैं (साक्षी) द्रष्टा (नित्यः) सत्स्वरूप (प्रत्यक्, एव) व्यापक आत्मा ही (अस्मि) हूँ ॥ ८४० ॥

भावार्थ-मैं भीतरी संज्ञा वाला या बाहरी संज्ञा वाला नहीं हूँ, मैं उत्तम ज्ञानी वा अज्ञानी नहीं हूँ, मैं सुनने वाला वा मनन करने वाला अथवा ज्ञाता भी नहीं हूँ, मैं तो द्रष्टा, सत्स्वरूप व्यापक आत्मा ही हूँ ॥ ८४० ॥

न मेऽस्ति देहेन्द्रियबुद्धियोगो न पुण्यलेशोऽपि न पापलेशः।
क्षुधापिपासादिषडूर्मिदूरः सदा विमुक्तोऽस्मि चिदेव केवलः ८४१

अन्वय और पदार्थ-(मे) मुझे (देहेन्द्रियबुद्धियोगः) शरीर, इन्द्रियें और बुद्धिका संयोग (न) नहीं (अस्ति) है (पुण्यलेशः) पुण्यका सम्पर्क (न) नहीं (पापलेशः, अपि) पापका सम्पर्क भी (न) नहीं [अस्ति] है (क्षुधापिपासादिषडूर्मिदूरः) भूख प्यास आदि छः ऊर्मियोंसे दूर (सदा) सर्वदा (विमुक्तः) विशेषरूपसे मुक्त (केवलः) शुद्ध (चित्, एव) ज्ञानस्वरूप ही (अस्मि) हूँ ८४१

भावार्थ-शरीर, इन्द्रियें और बुद्धिके साथ मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं है, जरासा भी पुण्य वा पाप मुझे स्पर्शमात्र भी नहीं कर सकता। भूख प्यास शोक मोह जरा और मरण ये छः शरीरके धर्म मुझसे दूर रहते है, मैं तो सदा मुक्त शुद्ध ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ ॥ ८४१ ॥

अपाणिपादोऽहमवागचक्षुरप्राण एवास्म्यमना ह्यबुद्धिः।
व्योमेव पूर्णोऽस्मि विनिर्मलोऽस्मि सदैकरूपोऽस्मि चिदेव केवलः॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (अपाणिपादः) हाथ पैर रहित (अवाक्) वाणीरहित (अचक्षुः) चक्षुःशून्य (अप्राणः) प्राणरहित (हि) निश्चय (अमनः) मनःशून्य (अबुद्धि, एव) बुद्धिरहित ही (अस्मि) हूँ (व्योम, इव)

आकाशकी समान (पूर्णः) पूर्ण ((अस्मि) हूँ (विनिर्मलः) विशेष स्वच्छ (अस्मि) हूँ (सदा) सर्वदा (एकरूपः) अद्वितीय (केवलः) शुद्ध (चित्,एव) ज्ञानस्वरूप ही (अस्मि) हूँ ॥ ८४२ ॥

भावार्थ-मेरे हाथ पैर नहीं हैं, मैं वाणी, चक्षु, प्राण, मन और बुद्धिसे रहित हूँ, मैं आकाशकी समान विभु हूँ, निर्मल हूँ, और सदा कूटस्थ शुद्ध ज्ञानस्वरूपसे स्थित रहता हूँ ॥ ८४२ ॥

इति स्वमात्मानमवेक्षमाणः प्रतीतदृश्यं प्रविलापयन् सदा ।
जहाति विद्वान् विपरीतभावं स्वाभाविकं भ्रान्तिवशात्प्रतीतम् ॥

अन्वय और पदार्थ-(इति) इसप्रकार (स्वम्), अपने (आत्मानम्) आत्माको (अवेक्षमाणः) देखता हुआ (विद्वान्) पण्डित (सदा) सर्वदा (प्रतीतदृश्यम्) भासनेवाले दृश्यको (प्रविलापयन्) विलीन करता हुआ (भ्रान्तिदर्शनात्)भ्रमके दर्शनसे (प्रतीतम्) अनुभवमें आनेवाले (स्वाभाविकम्) अविद्याकल्पित (विपरीतभावम्) विरुद्धभावको (जहाति) त्याग देताहै ८४३

भावार्थ-विद्वान् पुरुष ऊपर कही हुई रीतिसे अपने आत्माका दर्शन करता हुआ निरन्तर अनुभवमें आने वाले घट पट आदि दृश्यप्रपञ्चको कारणके भीतर लीन करके भ्रान्तिसे भासनेवाले अविद्याकल्पित देहादिमें आत्मबुद्धिरूप विपरीत-भावको त्याग देते हैं ॥ ८४३ ॥

विपरीतात्मतास्फूर्तिरेव मुक्तिरितीर्यते ।
सदा समाहितस्यैव सैषा सिध्यति नान्यथा ॥ ८४४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विपरीतात्मतास्फूर्तिः, एव) विपरीत-भावसे आत्मा का स्फुरण ही (मुक्तिः, इति) मुक्ति इस नामसे (ईर्यते) कहाजाता है (सा) वह (एषा) यह (सदा) सर्वदा (समाहितस्य, एव) समाधिमान्को ही (सिध्यति) सिद्ध होती है (अन्यथा) और प्रकारसे (न) नहीं ॥ ८४४ ॥

भावार्थ-देह इन्द्रियादिमें जो आत्मबुद्धि होरही है इसके विपरीत आत्मस्वरूप-मात्रका स्फुरण ही मुक्ति नामसे कहाजाता है, यह मुक्ति सदा समाधिमान् पुरुष को ही सिद्ध होती है, और प्रकारसे नहीं होती ॥ ८४४ ॥

न वेषभाषाभिरमुष्य मुक्तिर्या केवलाखण्डचिदात्मना स्थितिः ।
तत्सिद्धये स्वात्मनि सर्वदा स्थितो जह्यादहन्तां ममतामुपाधौ ॥ ८४५

अन्वय और पदार्थ-(अमुष्य) इस पुरुषकी (वेषभाषाभिः) वेष और भाषाओंसे (मुक्तिः) मोक्ष (न) नहीं [भवति] होती है (या) जो (केवलाखण्डचिदात्मना) शुद्ध अखण्ड चेतन आत्मस्वरूपसे (स्थितिः) स्थितरूप [अस्ति] है (तत्सिद्ध्यै) उस मुक्तिकी सिद्धिके लिये (स्वात्मनि) अपने स्वरूपमें (सर्वदा) सदा (स्थितः) स्थित पुरुष (अहन्ताम्) अहंभावको (ममताम्) ममताको (उपाधी) दोनों उपाधियोंको (जह्यात्) त्याग देय ॥ ८४५ ॥

भावार्थ-मुमुक्षुओंकेसा वेष या मुमुक्षुओंकेसी बातें करनेसे मुक्ति नहीं मिलती है, शुद्ध अखण्ड ज्ञानस्वरूप आत्मामें स्थिति ही मुक्ति कहलाती है, विवेकी मनुष्य को मुक्ति पानेकी इच्छा हो तो सदा आत्मस्वरूपमें स्थित रहकर मैं मोटा हूँ दुबला हूँ इत्यादि अहन्ता और मेरा देह आदि है इत्यादि ममतारूप उपाधियोंको त्याग देना चाहिये ॥ ८४५ ॥

स्वात्मतत्त्वं समालंब्य कुर्यात्प्रकृतिनाशनम् ।
तेनैव मुक्तो भवति नान्यथा कर्मकोटिभिः ॥ ८४६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आत्मतत्त्वम्) आत्माके यथार्थ स्वरूपको (समालम्ब्य) आश्रय करके (प्रकृतिनाशनम्) प्रकृतिके नाशको (कुर्यात्) करे (तेन, एव) तिससे ही (मुक्तः) मुक्त (भवति) होता है (अन्यथा) और प्रकारके (कर्मकोटिभिः, अपि) करोड़ों कर्मोंसे भी (न) नहीं ॥ ८४६ ॥

भावार्थ-मनुष्यको, आत्माके यथार्थ स्वरूपका आश्रय लेकर (जान कर) अविद्याका नाश कर डालना चाहिये, एकमात्र आत्मज्ञानसे ही मुक्ति होती है, इस को छोडकर करोडा कर्म करनेसे भी मुक्ति नहीं होती है ॥ ८४६ ॥

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः ।
इत्येवैषा वैदिकी वाग् ब्रवीति क्लेशक्षत्यां जन्ममृत्युप्रहाणिम् ८४७

अन्वय और पदार्थ-(देवम्) आत्मदेवको (ज्ञात्वा) जानकर (सर्वपाशापहानिः) सकल बन्धनोंका नाश [भवति] होता है (क्लेशैः, क्षीणैः) क्लेशोंके क्षीण होनेसे (जन्ममृत्युप्रहाणिः) जन्म मरणका अभाव [भवति] होता है (एषा) यह (वैदिकी) वेदकी (वाक्) श्रुति (इति, एव) इसप्रकार ही (क्लेशक्षत्याम्) क्लेशोंके नाश होने पर (जन्ममृत्युप्रहाणिम्) जन्म मरणके अभावको (ब्रवीति) कहती है ॥ ८४७ ॥

भावार्थ—ब्रह्मको जानकर सकल बन्धन नष्ट होजाते हैं, अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश इन पाँच क्लेशोंका क्षय होजाने पर जन्म और मरणके चक्रसे छूट जाता है, इसप्रकार वेदकी श्रुति क्लेशोंका क्षय होने पर जन्म मरणसे मुक्ति बतलाती है ॥ ८४७ ॥

भूयो जन्माद्यप्रसक्तिर्विमुक्तिः क्लेशक्षयां भाति जन्माद्यभावः ।
क्लेशक्षया हेतुरात्मैकनिष्ठा तस्मात्कार्या ह्यात्मनिष्ठा मुमुक्षोः ॥

अन्वय और पदार्थ—(भूयः) फिर (जन्माद्यप्रसक्तिः) जन्म आदिका प्रसङ्ग न होना (मुक्तिः) मुक्ति [कथ्यते] कही जाती है (क्लेशक्षयाम्) क्लेशोंका क्षय होने पर (जन्माद्यभावः) जन्म आदिका अभाव (भाति) प्रकाशित होता है (आत्मैकनिष्ठा) एकमात्र आत्मपरायणता (क्लेशक्षयः) क्लेशक्षयका (हेतुः) कारण [अस्ति] है (तस्मात्) तिससे (मुमुक्षोः) मुमुक्षुको (आत्मनिष्ठा, हि) आत्मपरायणता ही (कार्या) करनी चाहिये ॥ ८४८ ॥

भावार्थ—फिर कभी जन्म मरण न हो इसका ही नाम मोक्ष है, अविद्या आदि क्लेशोंका क्षय होजाने पर जन्म मरणका प्रवाह रुक जाता है, एकमात्र आत्म-स्वरूपमें स्थिति ही क्लेशोंका क्षय करनेवाली है, इसलिये मोक्ष चाहनेवाले मनुष्यको आत्मनिष्ठ ही होना चाहिये ॥ ८४८ ॥

क्लेशा स्युर्वासना एव जन्तोर्जन्मादिकारणम् ।
ज्ञाननिष्ठाग्निना दाहे तासां नो जन्महेतुता ॥ ८४९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(वासनाः, एव) संस्कार ही (क्लेशाः) क्लेश नामसे (जन्तोः) प्राणीके (जन्मादिकारणम्) जन्म आदिका कारण (स्युः) होंगे (ज्ञाननिष्ठाग्निना) ज्ञानकी पराकाष्ठारूप अग्निके द्वारा (तासाम्) उनके (दाहे) भस्म होजाने पर (जन्महेतुता) जन्मकी कारणता (नो) नहीं रहती है ॥ ८४९ ॥

भावार्थ—वासना (संस्कार) ही क्लेश कहलाते हैं, ये ही प्राणियोंके जन्म मरणका कारण होते हैं, ज्ञानकी उत्कर्षरूप अग्निसे जब यह वासनायें भस्म होजाती हैं तब इनमें जन्म आदि देनेकी शक्ति नहीं रहती ॥ ८४९ ॥

बीजान्यग्निप्रदग्धानि न रोहंति यथा पुनः ।
ज्ञानदग्धैस्तथा क्लेशैर्नात्मा संपद्यते पुनः ॥ ८५० ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (अग्निप्रदग्धानि) अग्निसे जले हुए (बीजानि) बीज (पुनः) फिर (न) नहीं (रोहन्ति) उगते हैं (तथा) तैसे ही (ज्ञानदग्धैः) ज्ञानसे भस्म हुए (क्लेशैः) क्लेशोंके द्वारा (आत्मा) आत्मा (पुनः) फिर (न) नहीं (सम्पद्यते) जन्म धारता है ॥ ८५० ॥

भावार्थ-जैसे अग्निसे जले हुए बीज फिर नहीं उग सकते, ऐसे ही ज्ञानके द्वारा भस्म हुए क्लेश आत्माको फिर जन्म नहीं देसकते ॥ ८५० ॥

तस्मान्मुमुक्षोः कर्त्तव्या ज्ञाननिष्ठा प्रयत्नतः ।
निःशेषवासनाक्षत्यै विपरीतनिवृत्तये ॥ ८५१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (मुमुक्षोः) मुक्ति चाहनेवालेको (निःशेषवासनाक्षत्यै) निःशेषरूपसे वासनाओंका नाश होनेके लिये (विपरीत-निवृत्तये) विपरीत भावनाके दूर होनेके लिये (प्रयत्नतः) उद्योग करके (ज्ञान-निष्ठा) ज्ञानकी उन्नति (कर्त्तव्या) करनी चाहिये ॥ ८५१ ॥

भावार्थ-इसलिये मुमुक्षु पुरुषको निःशेषरूपसे वासनारूप क्लेशोंका क्षय करनेके लिये और देह इन्द्रियादि अात्मपदार्थोंमें आत्मबुद्धिरूप विपरीतभावना को दूर करनेके लिये उद्योग करके ज्ञानकी उन्नति करनी चाहिये ॥ ८५१ ॥

ज्ञाननिष्ठायां कर्मानुपयोगः ।

ज्ञाननिष्ठातत्परस्य नैव कर्मोपयुज्यते ।
कर्मणो ज्ञाननिष्ठाया न कदापि सह स्थितिः ॥ ८५२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ज्ञाननिष्ठातत्परस्य) ज्ञाननिष्ठामें लगेहुएको (कर्म) कर्म (न) नहीं (उपयुज्यते) उपयोगी होता है (कर्मणः) कर्मकी [च] और (ज्ञाननिष्ठायाः) ज्ञाननिष्ठाकी (सहस्थितिः) एकसाथ स्थिति (कदापि) कभी भी (न) नहीं [भवितुम् अर्हति] होसकती है ॥ ८५२ ॥

भावार्थ—ज्ञानकी उन्नतिमें लगेहुए पुरुषको कर्म उपयोगी नहीं होता है कर्म और ज्ञाननिष्ठा कभी एक साथ नहीं रहसक्ते ॥ ८५२ ॥

परस्परविरुद्धत्वात्तयोर्भिन्नस्वभावयोः ।
कर्तृत्वभावनापूर्वं कर्मज्ञानं विलक्षणम् ॥ ८५३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(भिन्नस्वभावयोः) पृथक् २ स्वभाववाले (तयोः) उन ज्ञान और कर्मके (परस्परविरुद्धत्वात्) आपसमें विरोधी होनेसे [सह-

स्थितिः, न सिध्यति) एकत्र स्थिति नहीं होसकती (कर्म) कर्म (कर्तृत्वभावना-पूर्वम्) कर्त्तापनकी भावना है पहले जिसमें ऐसा [भवति] होता है (ज्ञानम्) ज्ञान (विलक्षणम्) इसके विपरीत है ॥ ८५३ ॥

भावार्थ—कर्म और ज्ञानका स्वभाव भिन्न २ है. अतः परस्पर विरोधी होनेसे ये दोनों एकत्र नहीं रहसकते, क्योंकि-कर्ममें पहले ही कर्त्तापनकी भावना होती है और ज्ञान इसके विपरीत अर्थात् कर्त्तापनकी भावनाको दूर करनेवाला है।

देहात्मबुद्धेर्विच्छित्त्यै ज्ञानं कर्मविवृद्धये ।
अज्ञानमूलकं कर्म ज्ञानं तूभयनाशकम् ॥८५४॥

अन्वय और पदार्थ-(ज्ञानम्) ज्ञान (देहात्मबुद्धेः) शरीरमें आत्मज्ञानके (विच्छित्त्यै) नाशके लिये (कर्म) कर्म (विवृद्धये) वृद्धिके लिये [भवति] होता है (कर्म) कर्म (अज्ञानमूलकम्) अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला (तु परन्तु (ज्ञानम्) ज्ञान (उभयनाशकम्)दोनोंका नाश करनेवाला[भवति]होता है।८५४॥

भावार्थ—ज्ञान और कर्मके एकत्र न रहनेका कारण यह है, कि-ज्ञान देहमें आत्मबुद्धिका नाश करता है और यज्ञादि कर्म देह में आत्मबुद्धिको बढ़ाता है क्योंकि कर्मका कारण अज्ञान है, परन्तु ज्ञान अज्ञान का और अज्ञानजनितका कर्मका नाशक है ॥ ८५४ ॥

ज्ञानेन कर्मणो योगः कथं सिध्यति वैरिणा ।
सहयोगो न घटते तथा तिमिरतेजसोः ॥ ८५५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वैरिणा) वैरी (ज्ञानेन) ज्ञानके साथ (कर्मणः) कर्मोंका (योगः) सम्बन्ध (कथम्) कैसे (सिध्यति) बनसकता है (यथा) जैसे (तिमिरतेजसोः) अन्धकार और प्रकाशका (सहयोगः) साथ रहना (न) नहीं (संघटते) सम्भव है ॥ ८५५ ॥

भावार्थ—जैसे अन्धकार और प्रकाश नित्य विरोधी होनेसे एक स्थानमें नहीं रह सकते, ऐसे ही ज्ञान कर्मका शत्रु है, इस कारण दोनोंका संबन्ध नहीं होसकता ॥ ८५५ ॥

निमेषोन्मेषयोर्वापि तथैव ज्ञानकर्मणोः ।
प्रतीचीं पश्यतः पुंसः कुतः प्राचीविलोकनम् ॥
प्रत्यक्प्रवणचित्तस्य कुतः कर्माणि योग्यता ॥ ८५६ ॥

अन्वय और पदार्थ– (अपि वा) या [यथा] जैसे (निमिषोन्मेषयोः) आँखके मूँदने और खोलनेका (तथा एव) तैसेही (ज्ञानकर्मणोः) ज्ञान और कर्मका [सहयोगः, न घटते] सम्बन्ध नहीं होसकता (प्रतीचीम्) पश्चिमकी ओरको (पश्यतः) देखनेवाले (पुंसः) पुरुषका (प्राचीविलोकनम्)पूर्वकी ओर को देखना (कुतः) कहाँ (प्रत्यक्प्रवणचित्तस्य) आत्माकी ओरको उन्मुख चित्त वालेकी (कर्मणि) कर्ममें (योग्यता) अधिकार (कुतः) कहाँ ॥ ८५६ ॥

भावार्थ–अथवा जैसे आँखका मींचना और खोलना एकसाथ नहीं होसकता, ऐसे ही ज्ञान और कर्मकी एकत्र स्थिति नहीं होसकती,जो पश्चिमकी ओरको देख रहा है वह उसी कालमें पूर्वकी ओरको कैसे देख सकता है, ऐसेही जिसका चित्त ब्रह्ममें तत्पर है उसकी कर्ममें योग्यता कहाँ ॥ ८५६ ॥

ज्ञानैकनिष्ठानिरतस्य भिक्षोर्नैवावकाशोऽस्ति हि कर्मतन्त्रे ।
तदेव कर्मास्य तदेव सन्ध्या तदेव सर्वं न ततोऽन्यदस्ति॥८५७॥

अन्वय और पदार्थ–(ज्ञानैकनिष्ठानिरतस्य) एकमात्र ज्ञाननिष्ठामें ही लगे हुए (भिक्षोः) संन्यासीको (कर्मतन्त्रे) कर्मकाण्डमें (अवकाशः) अवकाश (न, एव) कदापि नहीं है (हि) निश्चय (अस्य) इसका (तत्, एव) वह ज्ञानही (कर्म) कर्म है (तत्, एव) वह ही (सन्ध्या) सम्यक् ध्यान है (तत्, एव) वह ही (सर्वम्) सब है (ततः) तिससे (अन्यत्) और (न) नहीं (अस्ति)है

भावार्थ—जो ज्ञाननिष्ठ है, उस त्यागीको कर्म करनेका अवसर नहीं, उसका तो वह ज्ञान ही कर्म है, वही सन्ध्या है वह ज्ञान ही सब कुछ है, उसके सिवाय और कुछ है ही नहीं ॥ ८५७ ॥

बुद्धिकल्पितमालिन्यक्षालनं स्नानमात्मनः ।
तेनैव शुद्धिरेतस्य न मृदा न जलेन च ॥ ८५८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(बुद्धिकल्पितमालिन्यक्षालनम्) बुद्धिकी कल्पना की हुई मलिनताको दूर करना (आत्मनः) आत्माका (स्नानम्) स्नान है (तेन, एव) उससे ही (एतस्य) इसकी (शुद्धिः) शुद्धि होती है (मृदा) मट्टीसे (न) नहीं (च) और (जलेन) जलसे (न) नहीं ॥ ८५८ ॥

भावार्थ—बुद्धिकी कल्पना की हुई मलिनताको दूर करना ही आत्माका स्नान है, इससे ही आत्माकी विशुद्धता होती है, मृत्तिका या जलसे नहीं होती॥

स्वस्वरूपे मनःस्थानमनुष्ठानं तदिष्यते ।
करणत्रयसाध्यं यत्तन्मृषा तदसत्यतः ॥ ८५९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्वस्वरूपे) अपनेस्वरूपमें (यत्) जो (मनःस्थानम्) मनकी स्थिति है (तत्) वह (अनुष्ठानम्) अनुष्ठान (इष्यते) मानाजाता है (यत्) जो (करणत्रयसाध्यम्) तीनों करणोंके द्वारा साध्य है (तत्) वह (तदसत्यतः) उनके असत्य होनेके करण (मृषा) मिथ्या है ॥ ८५९ ॥

भावार्थ-अपने यथार्थ स्वरूपमें मनकी स्थितिका नाम अनुष्ठान है, जो ज्ञानेन्द्रियें, कर्मेन्द्रियें और मनसे सिद्ध होता है वह सत्य नहीं होसकता, क्योंकि-वे इन्द्रियें और मन ही मिथ्या हैं ॥ ८५९ ॥

विनिषिध्याखिलं दृश्यं स्वस्वरूपेण या स्थितिः ।
सा सन्ध्या तदनुष्ठानं तद्दानं तद्धि भोजनम् ॥ ८६० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अखिलम्) सकल (दृश्यम्) दृश्यको (विनिषिध्य) निषेध करके (स्वस्वरूपेण) आत्मस्वरूपसे (या) जो (स्थितिः) स्थिति है (सा) वह (सन्ध्या) सन्ध्या है (तत्) वह (अनुष्ठानम्) अनुष्ठान है (तत्) वह (दानम्) दान है (तत्, हि) वह ही (भोजनम्) भोजन है ॥ ८६० ॥

भावार्थ—सकल दृश्य पदार्थोंका निषेध करके निज आत्मस्वरूपमें स्थिति ही सन्ध्या है, वही अनुष्ठान, दान और वही भोजन है ॥ ८६० ॥

विज्ञातपरमार्थानां शुद्धसत्त्वात्मनां सताम् ।
यतीनां किमनुष्ठानं स्वानुसन्धिं विना परम् ॥ ८६१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विज्ञातपरमार्थानाम्) परम तत्त्वको जाननेवाले (शुद्धसत्त्वात्मनाम्) विशुद्ध सत्त्वगुणी चित्तवाले (सताम्) साधु (यतीनाम्) यतियोंका (स्वानुसन्धिं, विना) आत्मानुसन्धानके सिवाय (अपरम्) और (किम्) क्या (अनुष्ठानम्) आचरण [अस्ति] है ॥ ८६१ ॥

भावार्थ—जिन्होंने परम पदार्थ ब्रह्मको जान लिया है, जिनका चित्त विशुद्ध सत्त्वगुणसे भरा हुआ है ऐसे साधु संन्यासियोंका आत्मानुसन्धानके सिवाय और क्या आचरण होसकता है ? ॥ ८६१ ॥

तस्मात् क्रियान्तरं त्यक्त्वा ज्ञाननिष्ठापरो यतिः ।
सदात्मनिष्ठया तिष्ठेन्निश्चलस्तत्परायणः ॥ ८६२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (क्रियान्तरम्) अन्य क्रियाको (त्यक्त्वा) त्यागकर (ज्ञाननिष्ठापरः) ज्ञानकी उन्नति करनेमें तत्पर (यतिः) संन्यासी (सदा) सर्वदा (आत्मनिष्ठया) आत्मपरायणताके द्वारा (निश्चलः) स्थिर (तत्परायणः) आत्मपरायण [सन्] होता हुआ (तिष्ठेत्) स्थिर होय ८६२

भावार्थ—इसलिये ज्ञाननिष्ठामें लगा हुआ संन्यासी अन्य क्रियाको त्याग कर सर्वदा ज्ञानोत्कर्षके द्वारा स्थिर और आत्मपरायण होकर स्थिर रहे ॥८६२॥

कर्त्तव्यं स्वोचितं कर्म योगमारोढुमिच्छता ।
आरोहणं कुर्वतस्तु कर्म नारोहणं मतम् ॥ ८६३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(योगं, आरोढुम्) योग पर चढना (इच्छता, चाहने वालेको (स्वोचितम्) अपने योग्य (कर्म) कर्म (कर्त्तव्यम्) करना चाहिये (आरोहणम्) आरोहण (कुर्वतः) करते हुएको (कर्म) कर्म (न) नहीं (तु) किन्तु (आरोहणम्) आरोहण (मतम्) माना है ॥ ८६३ ॥

भावार्थ—जिसको योगरूप महल पर चढ़नेकी इच्छा हो उसको अपना कर्त्तव्य करना चाहिये, जो योगमेंको चढता जारहा है वह अन्य कर्मानुष्ठानमें न लगे।

योगं समारोहति यो मुमुक्षुः क्रियान्तरं तस्य न युक्तमीषत् ।
क्रियान्तरासक्तमनाः पतत्यसौ तालद्रुमारोहणकर्तृवद् ध्रुवम् ८६४

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (मुमुक्षुः) मुक्तिका अभिलाषी (योगम्, समारोहति) समाधियोगके साधनमें लगता है (तस्य) उसको (ईषत्) जरासा भी (क्रियान्तरम्) अन्य कर्म करना (युक्तम्) उचित (न) नहीं है (असौ) यह (क्रियान्तरासक्तमनाः) अन्य कार्यमें लगा है मन जिसका ऐसा [सन्] होता हुआ (ध्रुवम्) निश्चय (तालद्रुमारोहणकर्तृवत्) तालके वृक्ष पर चढनेवालेकी समान (पतति) गिरजाता है ॥ ८६४ ॥

भावार्थ—जो मुमुक्षु पुरुष समाधिकी साधनामें लगा हो उसको जरासा भी अन्य कर्मका अनुष्ठान नहीं करना चाहिये, यदि वह पुरुष दूसरे कर्ममेंको चित्त लगावेगा तो तालके वृक्ष पर चढनेवालेकी समान समाधियोगसे गिरजायगा ८६४

योगारूढस्य सिद्धस्य कृतकृत्यस्य धीमतः ।
नास्त्येव हि बहिर्दृष्टिः का कथा तत्र कर्मणाम् ॥
दृश्यानुविद्धः कथितः समाधिः सविकल्पकः ॥ ८६५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(योगारूढस्य) समाधिमें चढ़े हुए (सिद्धस्य) सिद्धि पाये हुए (कृतकृत्यस्य) कृतार्थ हुए (धीमतः) बुद्धिमान्की (बहिर्दृष्टिः) बाहरकी दृष्टि (न एव) कदापि नहीं (अस्ति) है (हि) निश्चय (तत्र) उस अवस्थामें (कर्मणाम्) कर्मोंका (का) कौन (कथा) बात है (दृश्यानुविद्धः) दृश्यके सम्बन्धवाला (सविकल्पकः) सविकल्पक (समाधिः) समाधि (कथितः) कह दिया है ॥ ८६५ ॥

भावार्थ-जो समाधिमें चढ गया है, ऐसे सिद्ध कृतार्थ बुद्धिमान् पुरुषकी बाहरी विषयोंमें संज्ञा भी नहीं होती, फिर कर्मोंके करनेकी तो चर्चा ही क्या ? ऐसा इस दृश्य पदार्थके सम्बन्धवाले सविकल्प समाधिका वर्णन है ॥ ८६५ ॥

शुद्धोऽहं बुद्धोऽहं प्रत्यग्रूपेण नित्यसिद्धोऽहम् ।
शान्तोऽहमनन्तोऽहं सततपरानन्दसिन्धुरेवाहम् ॥ ८६६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (शुद्धः) गुणसङ्गरहित (अहम्) मैं (बुद्धः) ज्ञानस्वरूप (अहम्) मैं (प्रत्यग्रूपेण) आत्मस्वरूपसे (नित्यसिद्धः) सदा सिद्ध (अहम्) मैं (शान्तः) निर्मल (अहम्) मैं (अनन्तः) व्यापक (अहम्) मैं (सततपरानन्दसिन्धुः, एव) निरन्तर परम आनन्दका सागर ही [अस्मि] हूँ॥

भावार्थ-मैं शुद्ध, ज्ञानस्वरूप, आत्मस्वरूपसे नित्यसिद्ध, शान्त, व्यापक और सदा परमानन्दका सागर हूँ, योगीको ऐसा ज्ञान उत्पन्न होजाता है ॥ ८६६ ॥

आद्योऽहमनाद्योऽहं वाङ्मनसा साध्यवस्तुमात्रोऽहम् ।
निगमवचोवेद्योऽहमनवद्याखण्डबोधरूपोऽहम् ॥ ८६७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अहम्) मैं (आद्यः) सबसे पहला (अहम्) मैं (अनाद्यः) आदिशून्य (अहम्) मैं (वाङ्मनसा) वाणी और मनके द्वारा (साध्यवस्तुमात्रः) साधन करने योग्य पदार्थमात्र (अहम्) मैं (निगमवचोवेद्यः) वेदवाक्यके द्वारा जानने योग्य (अहम्) मैं (अनवद्याखण्डबोधरूपः) प्रशंसनीय अखण्ड ज्ञानरूप [अस्मि] हूँ ॥ ८६७ ॥

भावार्थ-समाधिसिद्ध योगी मानता है, कि-मैं सबका आदि स्वयं अनादि, विशुद्ध वाक्य और मनके द्वारा लभ्य पदार्थ, वेदवाणीसे जानने योग्य और प्रशंसनीय अखण्ड ज्ञानस्वरूप हूँ ॥ ८६७ ॥

विदिताऽविदितान्योऽहं मायातत्कार्यलेशशून्योऽहम् ।
केवलदृगात्मकोऽहं संविन्मात्रः सकृद्विभातोऽहम् ॥ ८६८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (विदिताविदितान्यः) विदित और अविदितसे भिन्न (अहम्) मैं (मायातत्कार्यलेशशून्यः) माया और उसके कार्यके सम्पर्कसे शून्य (अहम्) मैं (केवलदृगात्मकः) केवल द्रष्टारूप (अहम्) मैं (संविन्मात्रः) ज्ञानमात्र (सकृद्विभातः) एकरूपसे भासनेवाला [अस्मि] हूँ ८६८

भावार्थ-मैं जाने हुए और न जाने हुए पदार्थसे अन्य, माया और मायाके कार्यकी छूतसे बचा हुआ, केवल द्रष्टा, ज्ञानरूप और एकभावमें भासने वाला हूँ ८६८

अपरोऽहमनपरोऽहं बहिरन्तश्चापि पूर्ण एवाऽहम् ।
अजरोऽहमक्षरोऽहं नित्यानन्दोऽहमद्वितीयोऽहम् ॥ ८६९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (अपरः) परभिन्न (अहम्) मैं (अनपरः) अपरभिन्न (अहम्) मैं (बहिः) बाहर (च) और (अन्तः, अपि) भीतर भी (पूर्णः, एव) पूर्णही (अहम्) मैं (अजरः) जरारहित (अहम्) मैं (अक्षरः) क्षयरहित (अहम्) मैं (नित्यानन्दः) नित्यसुखरूप (अहम्) मैं (अद्वितीयः) द्वितीयरहित [अस्मि] हूँ ॥ ८६९ ॥

भावार्थ-मैं ही अपर, मैं ही अनपर, मैं ही भीतर मैं ही बाहर पूर्णरूपसे विराजमान, मैं अजर, अमर, नित्यसुखरूप और अद्वितीय हूँ ॥ ८६९ ॥

प्रत्यगभिन्नमखण्डं सत्यज्ञानादिलक्षणं शुद्धम् ।
श्रुत्यवगम्यं तथ्यं ब्रह्मैवाऽहं परं ज्योतिः ॥ ८७० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (प्रत्यगभिन्नम्) व्यापक आत्मासे अभिन्न (अखण्डम्) एकरूप (सत्यज्ञानादिलक्षणम्) सत्य ज्ञान और आनन्दरूप (शुद्धम्) शुद्ध (श्रुत्यवगम्यम्) उपनिषद्के द्वारा जानने योग्य (तथ्यम्) यथार्थ (परं ज्योतिः) परमप्रकाशरूप (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही [अस्मि] हूँ ॥८७०॥

भावार्थ-मैं परमात्मासे अभिन्न, अखण्ड, सत्यज्ञान आनन्दस्वरूप, शुद्ध उपनिषद्के द्वारा जानने योग्य, परमसत्य और स्वयंप्रकाश ब्रह्म ही हूँ ॥ ८७० ॥

एवं सन्मात्रग्राहिण्या वृत्त्या तन्मात्रग्राहकैः ।
शब्दैः समर्पितं वस्तु भावयेन्निश्चलो यतिः ॥ ८७१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एवम्) इसप्रकार (यतिः) संन्यासी (सन्मात्रग्राहिण्या) ब्रह्ममात्रको ग्रहण कराने वाली (वृत्त्या) चित्तकी वृत्तिके द्वारा (निश्चलः) स्थिर [सन्] होता हुआ (तन्मात्रग्राहकैः) उस ब्रह्ममात्रको ग्रहण कराने वाले (शब्दैः) शब्दोंके द्वारा (समर्पितम्) पाये हुए (वस्तु) पदार्थको (भावयेत्) चिन्तवन करे ॥ ८७१ ॥

भावार्थ संन्यासी पूर्वोक्त रीतिसे ब्रह्ममात्रको ग्रहण करानेवाली चित्तकी वृत्ति के द्वारा, ब्रह्मका प्रतिपादन करनेवाले शब्दोंसे पाये हुए सत्य पदार्थका स्थिरभावसे चिन्तवन करे ॥ ८७१ ॥

कामादिदृश्यप्रविलापपूर्वं, शुद्धोऽहमित्यादिकशब्दमिश्रः ।
दृश्येव निष्ठस्य य एष भावः,शब्दानुविद्धः कथितः समाधिः ७२

अन्वय और पदार्थ-(कामादिदृश्यप्रविलापपूर्वम्) काम आदि दृश्य पदार्थों का नाश करता हुआ (अहम्) मैं (शुद्धः) शुद्ध हूँ (इत्यादिकशब्दमिश्रः) इत्यादि शब्दोंसे युक्त (दृशि, एव) द्रष्टामें ही (निष्ठस्य) स्थित पुरुषका (यः) जो (एषः) यह (भावः) भाव है [सः] वह (शब्दानुविद्धः) शब्द के सम्बन्धवाला (समाधिः) समाधि (कथितः) कहा है ॥ ८७२ ॥

भावार्थ-काम आदि दृश्य पदार्थोंका लय करके ब्रह्मनिष्ठ हुए पुरुषकी 'मैं शुद्ध हूं' इस प्रकारके शब्दसे युक्त जो अवस्था देखनेमें आती है, उसको विद्वान् पुरुष शब्दानुविद्ध समाधि कहते हैं ॥ ८७२ ॥

निर्विकल्पसमाधिः ।

दृश्यस्यापि च साक्षित्वात्समुल्लेखनमात्मनि ।
निवर्त्तकमनोऽवस्था निर्विकल्प इतीर्यते ॥ ८७३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(दृश्यस्य, अपि) दृश्यका भी (साक्षित्वात्) साक्षी होनेसे (आत्मनि) आत्मामें (समुल्लेखनम्) कथन (निवर्त्तकमनोऽवस्था) निवृत्तिजनक मनकी दशा (निर्विकल्पः, इति) निर्विकल्प इस नामसे (ईर्यते) कहा जाता है ॥ ८७३ ॥

भावार्थ-देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि दृश्य पदार्थोंके साक्षिरूपसे आत्मामें दृढ प्रतिष्ठा और चित्तकी शान्त अवस्था निर्विकल्प समाधि कहलाती है ॥ ८७३ ॥

सविकल्पसमाधिं यो दीर्घकालं निरन्तरम् ।
संस्कारपूर्वकं कुर्यान्निर्विकल्पोऽस्य सिध्यति ॥ ८७४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (दीर्घकालम्) चिरकाल तक (निरन्तरम्) बराबर (संस्कारपूर्वकम्) संस्कारके साथ (सविकल्पसमाधिम्) सविकल्प समाधिको (कुर्यात्) करे (अस्य) इसका (निर्विकल्पः) निर्विकल्प समाधि (सिध्यति) सिद्ध होता है ॥ ८७४ ॥

भावार्थ-जो चिरकालतक अविच्छिन्न रूपसे संस्कारके साथ सविकल्प समाधि को करते हैं, उनकी ही निर्विकल्प समाधि सिद्ध होती है ॥ ८७४ ॥

निर्विकल्पकसमाधिनिष्ठया तिष्ठतो भवति नित्यता ध्रुवम् ।
उद्भवाद्यपगतिर्निरर्गला नित्यनिश्चलनिरस्तनिर्वृतिः ॥ ८७५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(निर्विकल्पकसमाधिनिष्ठया) निर्विकल्पक समाधिमें निष्ठाके द्वारा (तिष्ठतः) स्थित पुरुषकी (ध्रुवम्) निश्चय (नित्यता) नित्यता (उद्भवाद्यपगतिः) जन्म आदिका अभाव (निरर्गला) रुकावट रहित (नित्यनिश्चलनिरस्तनिर्वृतिः) नाशरहित दृढ़ असीम शान्ति (भवति) होती है ८७५

भावार्थ-जो निर्विकल्प समाधिकी पराकाष्ठाको पाजाता है उसका नित्य होजाना निश्चित है, उसका जन्म मरण आदि नहीं रहता वह और रुकावटरहित नित्य दृढ़ असीम शान्ति को पाता है ॥ ८७५ ॥

विद्वानहमिदमिति वा किञ्चिद् बाह्याभ्यान्तरवेदनशून्यः ।
स्वानन्दामृतसिन्धुनिमग्नस्तूष्णीमास्ते कश्चिदनन्यः ॥ ८७६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अनन्यः) ब्रह्ममें एकताको पाया हुआ (कश्चित्) कोई (विद्वान्) तत्त्वज्ञानी (अहम्) मैं [सुखी, वा, दुःखी] सुखी या दुःखी हूँ (इदम्) यह (इति) इसप्रकार (वा) या (किञ्चिद्बाह्याभ्यन्तरवेदनशून्यः) किञ्चिन्मात्र भी भीतरी बाहरी दुःखके अनुभवसे शून्य (स्वानन्दामृतसिन्धुनिमग्नः) आत्मानन्दरूप अमृतके समुद्रमें गोते लगानेवाला [सन्] होता हुआ (तूष्णीम्) चुप (आस्ते) रहता है ॥ ८७६ ॥

भावार्थ-मैं सुखी या दुःखी हूँ अथवा यह वस्तु मुझे सुख या दुःख देनेवाली है ऐसा ज्ञान जिसको न भीतर है, न बाहर है वह तत्त्वज्ञानी पुरुष, आत्मानंदरूप अमृतके समुद्रमें गोता लगाता हुआ ब्रह्मसे अपनेको अभिन्न जानकर मौन रहता है

निर्विकल्पं परं ब्रह्म यत्तस्मिन्नेव निष्ठिताः ।
एते धन्या एव मुक्ता जीवन्तोऽपि बहिर्दृशाम् ॥ ८७७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (निर्विकल्पम्) विकल्परहित (परम्) सर्वोत्कृष्ट (ब्रह्म) ब्रह्म है) तस्मिन्, एव) उसमें ही (निष्ठिताः) निष्ठावाले(एते) ये (धन्याः) धन्य पुरुष (बहिर्दृशाम्) बाहरी दृष्टिवालोंमें (जीवन्तः, अपि) जीवित रहते हुए भी (मुक्ताः, एव) मुक्त ही हैं ॥ ८७७ ॥

भावार्थ-जिनकी निर्विकल्प परब्रह्ममें निष्ठा होगई है वे सब धन्य पुरुष बाह्य दृष्टि वालोंके सामने जीवित रहते हुए भी मुक्त ही हैं ॥ ८७७ ॥

बाह्यसमाधिप्रकारः ।

यथा समाधित्रितयं यत्नेन क्रियते हृदि ।
तथैव बाह्यदेशेऽपि कार्यं द्वैतनिवृत्तये ॥ ८७८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (हृदि) हृदयमें (यत्नेन) यत्नके साथ (समाधित्रितयम्) तीन समाधि (क्रियते) कीजाती हैं (तथा, एव) तैसे ही (द्वैतनिवृत्तये) द्वैतको दूर करनेके लिये (बाह्यदेशे, अपि) बाहरी देशमें भी(कार्यम्) करना चाहिये ॥ ८७८ ॥

भावार्थ-जैसे विचारवान् मनुष्य यत्नके साथ हृदयदेशमें दो प्रकारकी सविकल्प और एक निर्विकल्प इसप्रकार तीन समाधियोंका अनुष्ठान करते हैं, ऐसे ही द्वैतदृष्टिको दूर करनेके लिये देवप्रतिमा आदि बाहरी देशमें भी समाधिका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ८७८ ॥

तत्प्रकारं प्रवक्ष्यामि निशामय समासतः ।
अधिष्ठानं परं ब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥ ८७९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्प्रकारम्) उसकी रीतिको (समासतः) संक्षेपसे (प्रवक्ष्यामि) कहूँगा (निशामय) सुन (सच्चिदानन्दलक्षणम्) सत् चित् आनन्दस्वरूप (परं, ब्रह्म) परब्रह्म (अधिष्ठानम्) अधिष्ठान है ॥ ८७९ ॥

भावार्थ-उस समाधिकी रीतिको मैं संक्षेपमें कहता हूँ, सुनो-सत्-चित्-आनन्द स्वरूप परब्रह्म ही सबका अधिष्ठान है ॥ ८७९ ॥

तत्राध्यस्तमिदं भाति नानारूपात्मकं जगत् ।
सत्त्वं चित्त्वं तथाऽऽनन्दरूपं यद् ब्रह्मणस्त्रयम् ॥ ८८० ॥

अध्यस्तजगतो रूपं नानारूपमिदं द्वयम् ।
एतानि सच्चिदानन्दनामरूपाणि पञ्च च ॥ ८८१ ॥
एकीकृत्योच्यते मूर्खैरिदं विश्वमिति भ्रमात् ।
शैत्यं श्वेतं रसं द्रव्यं तरङ्ग इति नाम च ॥ ८८२ ॥
एकीकृत्य तरंगोऽयमिति निर्दिश्यते यथा ।
आरोपिते नामरूपे उपेक्ष्य ब्रह्मणः सतः ॥ ८८३ ॥
स्वरूपमात्रग्रहणं समाधिर्बाह्य आदिमः ।
सच्चिदानन्दरूपस्य सकाशाद् ब्रह्मणो यतिः ॥८८४॥
नामरूपे पृथक् कृत्य ब्रह्मण्येव विलापयन् ।
अधिष्ठानं परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम् ॥
यत् तदेवाहमित्येव निश्चितात्मा भवेद् ध्रुवम् ॥ ८८५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्र) तिस अधिष्ठानमें (अध्यस्तम्) आरोपित (इदम्) यह (नामरूपात्मकम्) नाम और रूपस्वरूप (जगत्) संसार (भाति) भासता है (सत्त्वम्) सत्स्वरूप (चित्त्वम्) ज्ञानस्वरूप (तथा) तैसेही (आनन्दरूपम्) सुखस्वरूप (यत्) जो (ब्रह्मणः) परमात्माके (त्रयम्) तीनरूप हैं (अध्यस्तजगतः) आरोपित जगतके (इदम्) यह (नामरूपम्) नाम और रूप (द्वयम्) दो (रूपम्) प्रकार हैं (एतानि) इन (सच्चिदानन्दनामरूपाणि) सत्, चित्, आनन्द, नाम और रूप (पञ्च, च) पाँचोंको ही (एकीकृत्य) एकत्र मिलाकर (मूर्खैः) मूर्खोंके द्वारा (भ्रमात्) भ्रमसे (इदम्) यह (विश्वम्) जगत् है (इति) ऐसा (उच्यते) कहाजाता है (यथा) जैसे (शैत्यम्) शीतलता (श्वेतम्) सफेद (रसम्) रस (द्रव्यम्) द्रवता (तरङ्गः) तरङ्ग (इति) इस (नाम, च) नामको भी (एकीकृत्य) मिलाकर (अयम्) यह (तरङ्गः) तरङ्ग है (इति) ऐसा (निर्दिश्यते) कहाजाता है (सतः) सत्स्वरूप (ब्रह्मणः) ब्रह्मके (आरोपिते) कल्पना कियेहुए (नामरूपे) नाम और रूपको (उपेक्ष्य) उपेक्षा करके (स्वरूपमात्रग्रहणम्) आत्मस्वरूपका ग्रहण (बाह्यः) बाहरी वस्तुसे सम्बन्ध रखनेवाला) आदिमः) पहला (समाधिः) समाधि है (यतिः)

संन्यासी (सच्चिदानन्दरूपस्य) सत् चित् आनन्दस्वरूप (ब्रह्मणः) ब्रह्मके (सकाशात्) सकाशसे (नामरूपे) नाम और रूपको (पृथक्, कृत्वा) अलग करके (ब्रह्मणि, एव) ब्रह्ममें ही (विलापयन्) विलीन करता हुआ (अधिष्ठानम्) भ्रमके आश्रय (सच्चिदानन्दम्) सत् चित् आनन्दस्वरूप (अद्वयम्) अद्वितीय (यत्) जो (परं ब्रह्म) परब्रह्म है (तत्, एव) वह ही (अहम्) मैं [अस्मि] हूँ (इति, एव) ऐसा ही (ध्रुवम्) अटल (निश्चयात्मा) दृढ़चित्त (भवेत्) होय ॥ ८८०–८८५ ॥

भावार्थ—उस ब्रह्मरूप अधिष्ठान (आधार) में यह नामरूपवाला जगत् भासता है सत्पना, चित्पना और आनन्दपना ये तीन ब्रह्मके रूप हैं । नाम और रूप ये दो अध्यस्त जगत्के रूप हैं । मूर्ख पुरुष सत्, चित्त आनन्दस्वरूप आनन्द नाम और रूप इन पाँचोंको मिलाकर भ्रममें पड़ेहुए इसको ही विश्व नामसे कहते हैं, जैसे शीतलता, स्वेतवर्ण, रस, पतलापन और तरङ्ग यह नाम इन सबको मिलाकर तरङ्ग नामसे बोलते हैं । ब्रह्मके कल्पित नामरूपकी उपेक्षा करके स्वरूपमात्रके बोधको बाहरी समाधि कहते हैं, यह पहली बाह्य समाधि है । संन्यासीको चाहिये कि–सत्-चित्-आनन्दस्वरूप ब्रह्मके समीपसे नाम और रूपको अलग करके उन को ब्रह्ममें ही विलीन करता हुआ सबका अधिष्ठानभूत, सच्चिदानन्द अद्वितीय मैं ही हूँ ऐसा अपने चित्तमें दृढ़ निश्चय करलेय ॥ ८८०–८८५ ॥

इयं भूर्न सन्नापि तोयं न तेजो,
न वायुर्न खं नापि तत्कार्यजातम् ।
यदेषामधिष्ठानभूतं विशुद्धं,
सदेकं परं सत्तदेवाहमेवाहमस्मि ॥ ८८६ ॥

अन्वय और पदार्थ–(इदम्) यह (भूः) पृथिवी (सत्) ब्रह्म (न) नहीं है (तोयं, अपि) जल भी (न) नहीं है (तेजः तेज) (न) नहीं है (वायुः) वायु (न) नहीं है (खम्) आकाश (न) नहीं है (तत्कार्यजातं, अपि) इन पञ्चभूतोंका कार्यसमूह भी (न) नहीं है (यत्) जो (एषाम्) इनका (अधिष्ठानभूतम्) आधारभूत (विशुद्धम्) निर्मल (एकम्) एक (सत्) सत्स्वरूप (परम्) परब्रह्म है (तत्) वह (परं, सत्, एव) पर ब्रह्म ही (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ ॥ ८८६ ॥

भावार्थ—यह दीखनेवाली पृथिवी ब्रह्म नहीं है, जल, तेज, वायु, आकाश और इन पृथिवी आदि पञ्चभूतोंके सकल कार्य भी ब्रह्म नहीं हैं, इन सबका आधारभूत विशुद्ध अद्वितीय जो परब्रह्म है, वही मैं हूँ, ॥ ८८६ ॥

न शब्दो न रूपं न च स्पर्शको वा तथा नो रसो नापि गन्धो न चान्यः
यदेषामधिष्ठानभूतं विशुद्धं सदेकं परं सत्तदेवाहमस्मि ॥ ८८७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(शब्दः) शब्द (न) नहीं है (रूपम्, च) रूप भी (न) नहीं है (वा) या (स्पर्शकः, अपि) स्पर्श भी (न) नहीं है (तथा) तैसे ही (रसः) रस (नो) नहीं है (गन्धः, अपि) गन्ध भी (न) नहीं है (अन्यः, च) और कोई भी (न) नहीं है (यत्) जो (एषाम्) इनका (अधिष्ठानभूतम्) आधारभूत (विशुद्धम्) केवल (सत्) नित्य (एकम्) अद्वितीय (परम्) उत्तम (सत्) ब्रह्म है (तत्) वह (सत्, एव) ब्रह्म ही (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ ॥ ८८७ ॥

भावार्थ-शब्द, रूप, स्पर्श, रस, गन्ध अथवा अन्य कोई द्रव्य भी ब्रह्म नहीं है, किन्तु इनका आधारभूत विशुद्ध, नित्य जो परब्रह्म है, मैं वही हूँ ॥ ८८७ ॥

न सद् द्रव्यजातं गुणा वा क्रिया वा न जातिर्विशेषो न चान्यः कदापि
यदेषामधिष्ठानभूतं विशुद्धं सदेकं परं सत्तदेवाहमस्मि ॥ ८८८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(द्रव्यजातम्) द्रव्योंका समूह (सत्) ब्रह्म (न) नहीं है (गुणाः) गुण (वा) या (क्रिया) क्रिया (न) नहीं है (जातिः) जाति (न) नहीं है (विशेषः) विशेष (च) और (अन्यः) अन्य (कदापि) कभी भी (न) नहीं है (यत्) जो (एषाम्) इनका (अधिष्ठानभूतम्) आधारभूत (विशुद्धम्) केवल (सत्) नित्य (एकम्) अद्वितीय (परम्) उत्तम (सत्) ब्रह्म है (तत्) वह (सत्, एव) ब्रह्म ही (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ ८८८ ॥

भावार्थ-पृथिवी आदि नौ द्रव्य, रूप रस आदि चौबीस गुण, उत्क्षेपण आदि पाँच प्रकारकी क्रिया, घटत्व पटत्व आदि जाति तथा परमाणुओंका भेद बताने वाला विशेष पदार्थ अथवा और कोई पदार्थ भी ब्रह्म नहीं होसकता, किन्तु इन सब पदार्थोंका आधारभूत विशुद्ध अद्वितीय जो ब्रह्म है वही मैं हूँ ॥ ८८८ ॥

न देहो न चाक्षाणि न प्राणवायुर्मनो नापि बुद्धिर्न चित्तं ह्यहंधीः
यदेषामधिष्ठानभूतं विशुद्धं सदेकं परं सत्तदेवाहमस्मि ८८९ ॥

अन्वय और पदार्थ–(देहः) शरीर (न) ब्रह्म नहीं है (अक्षाणि) इन्द्रियें (न) नहीं (च) और (प्राणवायुः) प्राणवायु (न) नहीं (मनः,अपि) मन भी (न) नहीं (बुद्धिः) बुद्धि (न) नहीं (चित्तम्) चित्त (अहंधीः) अहंबुद्धि [न] नहीं (हि) निश्चय (यत्) जो (एषाम्) इनका (अधिष्ठान-भूतम्) आधारभूत (विशुद्धम्) केवल (सत्) नित्य (एकम्) अद्वितीय(परम्) उत्तम (सत्) ब्रह्म है (तत्) वह (सत्, एव) ब्रह्म ही (अहम्)मैं(अस्मि) हूँ॥

भावार्थ–देह, इन्द्रियें, मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार आत्मा नहीं है किन्तु इनका अधिष्ठानस्वरूप, शुद्ध, अद्वितीय, सत्स्वरूप जो ब्रह्म है वह मैं ही हूँ ८८६

> न देशो न कालो न दिग्वापि सत्स्या-
> न्न वस्त्वन्तरं स्थूलसूक्ष्मादिरूपम् ।
> यदेषामधिष्ठानभूतं विशुद्धं
> सदेकं परं सत्तदेवाहमस्मि ॥ ८६० ॥

अन्वय और पदार्थ–(देशः) देश (सत्) ब्रह्म (न) नहीं है (कालः) काल (न) नहीं है (वा) या (दिक्, अपि)दिशा भी (न) नहीं है (स्थूल सूक्ष्मादिरूपम्) स्थूल सूक्ष्म आदि स्वरूप (वस्त्वन्तरम्) अन्य वस्तु (न) नहीं है (यत्) जो (एषाम्) इनका (अधिष्ठानभूतम्) आधारभूत (विशुद्धम्) केवल (एकम्) अद्वितीय (परम्) उत्तम (सत्) ब्रह्म है (तत्) वह(सत्,एव) ब्रह्म ही (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ ॥ ८६० ॥

भावार्थ-देश, काल, दिशा या स्थूल तथा सूक्ष्मरूप और कोई वस्तु भी ब्रह्म नहीं है, किन्तु इन सबका आधारस्वरूप केवल, अद्वितीय, सत्स्वरूप जो परब्रह्म है, वही मैं हूँ ॥ ८६० ॥

> एतद् दृश्यं नामरूपात्मकं योऽधिष्ठानं तद् ब्रह्म सत्यं सदेति ।
> गच्छंस्तिष्ठन् वा शयानोऽपि नित्यं कुर्याद् विद्वान् बाह्यदृश्यानुविद्धं

अन्वय और पदार्थ–(यः) जो (विद्वान्) ज्ञानी (नित्यम्) सदा(गच्छन्) चलता हुआ (तिष्ठन्) बैठा हुआ (वा) या (शयानः, अपि) सोता हुआ भी (बाह्यदृश्यानुविद्धम्) बाहरा दृश्यके सम्बन्धवाले (एतत्) इस (नामरूपात्मकम्) नामरूपमय (दृश्यम्) जगत्को (कुर्यात्) करता है (तत्) प्रसिद्ध (अधिष्ठानम्) अधि-ष्ठान भूत (सत्) सत्स्वरूप (सत्यम्) यथार्थ (ब्रह्म) ब्रह्म (एति) पाता है ८६१

भावार्थ-जो ज्ञानी पुरुष सदा चलतेमें, बैठतेमें या सोतेमें बाहरी वस्तुओंसे सम्बन्धवाले इस नामरूपात्मक दृश्य जगत्को अधिष्ठानभूत सत्य सत्स्वरूप ब्रह्मरूप देखता है, वह ब्रह्मस्वरूप मैं ही हूँ ॥ ८९१ ॥

अध्यस्तनामरूपादिप्रविलापेन निर्मलम् ।
अद्वैतं परमानन्दं ब्रह्मैवाऽस्मीति भावयेत् ॥ ८९२ ॥

अन्वय और पदार्थ-[यतिः] संन्यासी (अध्यस्तनामरूपादिप्रविलापेन) आरोपित नाम रूप आदिका विलीन करके (निर्मलम्) शुद्ध (अद्वैतम्) द्वैतहीन (परमानन्दम्) असीम सुखस्वरूप (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही (अस्मि) हूँ (इति) ऐसा (भावयेत्) चिन्तवन करे ॥ ८९२ ॥

भावार्थ-साधक यति, नाम और रूप आदिको अधिष्ठानमें विलीन करके अद्वितीय आनन्दस्वरूप ब्रह्म मैं ही हूँ, ऐसा चिन्तवन करे ॥ ८९२ ॥

निर्विकारं निराकारं निरञ्जनमनामयम् ।
आद्यन्तरहितं पूर्णं ब्रह्मैवाहं न संशयः ॥ ८९३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (निर्विकारम्) विकारशून्य (निराकारम्) आकाररहित (निरञ्जनम्) निर्लेप (अनामयम्) रोगरहित (आद्यन्तरहितम्) जन्म और मरणसे रहित (पूर्णम्) पूर्ण (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही [अस्मि] हूँ (संशयः) सन्देह (न) नहीं है ॥ ८९३ ॥

भावार्थ-मैं निर्विकार, निराकार, निर्लेप, नीरोग, उत्पत्ति और नाशशून्य पूर्ण ब्रह्म हूँ, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८९३ ॥

निष्कलङ्कं निरातङ्कं त्रिविधच्छेदवर्जितम् ।
आनन्दमक्षरं मुक्तं ब्रह्मैवास्मीति भावयेत् ॥ ८९४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(निष्कलंकम्) शुद्ध (निरातङ्कम्) निर्भय (त्रिविधच्छेदवर्जितम्) तीन प्रकारके परिच्छेदसे शून्य (आनन्दम्) सुखरूप (अक्षरम्) अविनाशी (मुक्तम्) बन्धनशून्य (ब्रह्म,एव) ब्रह्म ही (अस्मि) हूँ (इति) ऐसा (भावयेत्) चिन्तवन करे ॥ ८९४ ॥

भावार्थ-मैं शुद्ध स्वभाव, निर्भय, देश काल और वस्तुकी सीमामें न बंधा हुआ आनन्दस्वरूप, अविनाशी और संसार बन्धनसे रहित ब्रह्म ही हूँ, ऐसी भावना करे ।

निर्विशेषं निराभासं नित्यमुक्तमविक्रियम् ।
प्रज्ञानैकरसं सत्यं ब्रह्मैवास्मीति भावयेत् ॥ ८६५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(निर्विशेषम्) विशेषशून्य (निराभासम्) आभासरहित (नित्यमुक्तम्) सदा मुक्त (अविक्रियम्) निर्विकार (प्रज्ञानैकरसम्) एकमात्र ज्ञानस्वरूप (नित्यम्) सत्यस्वरूप (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही (अस्मि) हूँ (इति) ऐसी (भावयेत्) भावना करे ॥ ८६५ ॥

भावार्थ-मैं निर्विशेष, आभासरहित, नित्यमुक्त, निर्विकार, अद्वितीय, ज्ञानरूप, सत्यस्वरूप परब्रह्म ही हूँ, ऐसी भावना करे ॥ ८६५ ॥

शुद्धं बुद्धं तत्त्वसिद्धं परं प्रत्यगखण्डितम् ।
स्वप्रकाशं पराकाशं ब्रह्मैवास्मीति भावयेत् ॥ ८६६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(शुद्धम्) शुद्ध (बुद्धम्) बोधरूप (तत्त्वसिद्धम्) तत्त्वज्ञानसे निश्चित (परम्) श्रेष्ठ (प्रत्यक्) व्यापक (अखण्डितम्) पूर्ण (स्वप्रकाशम्) प्रकाशस्वभाव (पराकाशम्) परमाकाशरूप (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही (अस्मि) हूँ (इति) ऐसा (भावयेत्) विचार करे ॥ ८६६ ॥

भावार्थ मैं शुद्ध, बुद्ध, तत्त्वज्ञानसे प्राप्य, उत्तम, व्यापक, अखण्ड, स्वप्रकाश महाकाशरूप परब्रह्म ही हूँ, ऐसा चिन्तवन करे ॥ ८६६ ॥

सुसूक्ष्ममस्तितामात्रं निर्विकल्पं महत्तमम् ।
केवलं परमाद्वैतं ब्रह्मैवास्मीति भावयेत् ॥ ८६७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सुसूक्ष्मम्) परमसूक्ष्म (अस्तितामात्रम्) सत्तामात्र (निर्विकल्पम्) विकल्परहित (महत्तमम्) परम महान् (केवलम्) शुद्ध (परमाद्वैतम्) परम अद्वैतरूप (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही (अस्मि) हूँ (इति) ऐसा (भावयेत्) चिन्तवन करे॥ ८६७ ॥

भावार्थ—मैं परम सूक्ष्म, सत्तारूप, विकल्पशून्य, परम महान्, शुद्ध, द्वैतके लेशसे शून्य परब्रह्मस्वरूप हूँ, ऐसी भावना करे ॥ ८६७ ॥

इत्येवं निर्विकारादिशब्दमात्रसमर्पितम् ।
ध्यायतः केवलं वस्तु लक्ष्ये चित्तं प्रतिष्ठति ॥ ८६८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(इत्येवम्) इसप्रकार (निर्विकारादिशब्दमात्रसमर्पितम्) निर्विकार आदि शब्दमात्रसे जाने हुए (केवलम्) शुद्ध (वस्तु) पदार्थ

को (ध्यायतः) ध्यान करनेवालेका (लक्ष्ये) लक्ष्य पदार्थ ब्रह्ममें (चित्तम्) अन्तःकरण (प्रतिष्ठति) प्रतिष्ठित होता है ॥ ८९८ ॥

भावार्थ—ऊपर कही रीतिसे निर्विकार आदि शब्दोंसे जाने हुए शुद्ध ब्रह्म वस्तुका ध्यान करनेवालेका अन्तःकरण लक्ष्यमें जम जाता है ॥ ८९८ ॥

ब्रह्मानन्दरसावेशादेकीभूय तदात्मना ।
बुद्धेर्या निश्चलावस्था स समाधिरकल्पकः ॥ ८९९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ब्रह्मानन्दरसावेशात्) ब्रह्मसुखरूप रसमें आसक्ति होनेसे (तदात्मना) उस ब्रह्मरूपसे (एकीभूय) इकट्ठी होकर (बुद्धेः) बुद्धिकी (या) जो (निश्चलावस्था) स्थिर अवस्था है (सः) वह (अकल्पकः) निर्विकल्प (समाधिः) समाधि है ॥ ८९९ ॥

भावार्थ—ब्रह्मानन्दरूप रसका स्वाद पड़ जानेसे उस ब्रह्मके रूपमें एकाकार हुई बुद्धिकी निश्चल वृत्ति निर्विकल्प समाधि कहलाती है ॥ ८९९ ॥

उत्थाने वाप्यनुत्थानेऽप्यप्रमत्तो जितेन्द्रियः ।
समाधिषट्कं कुर्वीत सर्वदा प्रयतो यतिः ॥ ९०० ॥

अन्वय और पदार्थ—(अप्रमत्तः) सावधान (जितेन्द्रियः) इन्द्रियोंको जीतनेवाला (यतिः) संन्यासी (प्रयतः) प्रयत्न करता हुआ (उत्थाने) जाग्रत् में (वा) या (अनुत्थाने, अपि) शयनमें भी (सर्वदा) सदा (समाधिषट्कम्) छः प्रकारकी समाधिको (कुर्वीत) करे ॥ ९०० ॥

भावार्थ—संन्यासी सावधान जितेन्द्रिय और संयत होकर जागतेमें या सोतेमें छः प्रकारकी समाधिका अनुष्ठान करे ॥ ९०० ॥

विपरीतार्थधीर्यावन्न निःशेषं निवर्त्तते ।
स्वरूपस्फुरणं यावन्न प्रसिद्ध्यत्यनर्गलम् ॥
तावत्समाधिषट्केन नयेत कालं निरन्तरम् ॥ ९०१ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यावत्) जब तक (विपरीतधीः) उल्टी बुद्धि (निःशेषम्) निर्मूलरूपसे (न) नहीं (निवर्त्तते) दूर होती है (यावत्) जबतक (स्वरूपस्फुरणम्) स्वरूपका प्रकाश (अनर्गलम्) रुकावटरहित (न) नहीं (प्रसिध्यति) सिद्ध होता है (तावत्) तब तक (समाधिषट्केन) छः प्रकारकी समाधिसे (निरन्तरम्) निरन्तर (कालम्) समयको (नयेत्) बितावे ॥ ९०१ ॥

भावार्थ-जब तक देह आदिमें आत्मज्ञानरूप विपरीत बुद्धि रहे और जबतक बिना रुकावटका स्वरूपस्फुरण न होय तब तक छः प्रकारकी समाधि करता हुआ समयको बितावे ॥ ६०१ ॥ प्रमादस्त्यागः

न प्रमादोऽत्र कर्त्तव्यो विदुषा मोक्षमिच्छता।
प्रमादे जृम्भते माया सूर्यापाये तमो यथा ॥ ६०२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(मोक्षम्) मोक्षको (इच्छता) चाहनेवाले (विदुषा) विद्वान्को (प्रमादः) प्रमाद (न) नहीं (कर्त्तव्यः) करना चाहिये (प्रमादे) प्रमाद होने पर (सूर्यापाये) सूर्यके अस्त होने पर (तमः, यथा) अन्धकारकी समान (माया) अविद्या (जृम्भते) फैलती है ॥ ६०२ ॥

भावार्थ—मुक्ति चाहनेवाले विद्वानको समाधिके विषयमें प्रमाद नहीं करना चाहिये, क्योंकि—जैसे सूर्यके अस्त होजाने पर अन्धकार प्रकट होकर फैलजाता है,ऐसे ही प्रमाद(असावधानी)करनेसे अज्ञान प्रकट होकर घेर लेता है ॥ ६०२ ॥

स्वानुभूतिं परित्यज्य न तिष्ठन्ति क्षणं बुधाः ।
स्वानुभूतौ प्रमादो यः स मृत्युर्न यमः सताम् ॥ ६०३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(बुधाः)विचारवान् (स्वानुभूतिम्) आत्माके अनुभवको (परित्यज्य) त्यागकर (क्षणम्) क्षण भर (न) नहीं (तिष्ठन्ति) स्थित होते हैं (स्वानुभूतौ) आत्माके अनुभवमें (यः) जो (प्रमादः) प्रमाद है,(सः) वह (सताम्) सत्पुरुषोंका (मृत्युः) मृत्यु है (यमः) यम (न) नहीं ॥६०३॥

भावार्थ—विचारवान् पुरुष आत्माके अनुभवको छोड़कर क्षण भर भी नहीं बैठते हैं, क्योंकि—सत्पुरुषोंका मृत्यु यम (काल) नहीं है, किन्तु आत्मानुभवमें प्रमाद करना ही उनकी मृत्यु है ॥ ६०३ ॥

अस्मिन् समाधौ कुरुते प्रयासं यस्तस्य नैवास्ति पुनर्विकल्पः ।
सर्वात्मभावोऽप्यमुनैव सिद्ध्येत् सर्वात्मभावः खलु केवलत्वम् ६०४

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (अस्मिन्) इस (समाधौ) समाधिमें (प्रयासम्) यत्नको (कुरुते) करता है (तस्य) उसको (पुनः) फिर(विकल्पः) विरोधी अवस्था (न, एव) कदापि नहीं (अस्ति) है (सर्वात्मभावः, अपि) सकल वस्तुओंमें आत्मभाव भी (अमुना, एव) इस समाधिके द्वारा ही (सिद्ध्येत्) सिद्ध होता है (खलु) निश्चय (केवलत्वम्) शुद्धस्वरूपता (सर्वात्मभावः) सकल पदार्थोंमें आत्मभाव है ॥ ६०४ ॥

भावार्थ—जो समाधि साधनमें लगे रहते हैं उनको फिर सन्देह भरे विचाररूप विकल्प नहीं उठते हैं, केवल इस समाधिसे ही सकल पदार्थोंमें आत्मदर्शन होता है, आत्माकी शुद्धस्वरूपता ही सर्वात्मभाव है॥ ६०४ ॥

सर्वात्मभावो विदुषो ब्रह्मविद्याफलं विदुः ।
जीवन्मुक्तस्य तस्यैव स्वानन्दानुभवः फलम् ॥ ६०५ ॥

अन्वय और पदार्थ-[पण्डिताः] पण्डित (विदुषः) विद्वान्‌का (सर्वात्मभावः) सर्वात्मभाव (ब्रह्मविद्याफलम्) ब्रह्मविद्याका फल है [इति] ऐसा (विदुः) जानते हैं (तस्य, एव) उस ही (जीवन्मुक्तस्य) जीवन्मुक्तका (स्वानन्दानुभवः) आत्मसुखका अनुभव (फलम्) फल है ॥ ६०५ ॥

भावार्थ-विद्वानोंने मुमुक्षुके सर्वात्मभावको ब्रह्मज्ञानका फल माना है और जीवन्मुक्त पुरुषका फल आत्मानन्दका अनुभव है ॥ ६०५ ॥

योऽहंममेत्याद्यसदात्मगाहको ग्रन्थिर्लयं याति स वासनामयः ।
समाधिना नश्यति कर्मबन्धो ब्रह्मात्मबोध प्रतिबन्ध इष्यते ६०६

अन्वय और पदार्थ (यः) जो (अहंममेत्याद्यसदात्मगाहकः) मैं मेरा इत्यादि अनात्मपदार्थमें आत्मबुद्धि करानेवाली (वासनामयः) संस्कारयुक्त (ग्रंथिः) गाँठ है (सः) वह (लयम्) लयको (याति) प्राप्त होजाती है (समाधिना) समाधिके द्वारा (कर्मबन्धः) कर्मबन्धन (नश्यति) नष्ट होजाता है (अप्रतिबन्धः) अबाध (ब्रह्मात्मबोधः) ब्रह्मसे अभिन्न आत्मज्ञान (इष्यते) इच्छा किया जाता है ॥ ६०६ ॥

भावार्थ-मैं मेरा इत्यादि अनात्मपदार्थोंमें आत्मबुद्धिरूप जो वासनामयी गाँठ है वह समाधिके द्वारा विलीन होजाती है, समाधिसे कर्मका बन्धन नष्ट होजाता है और प्रतिबन्ध शून्य ब्रह्म जीवात्माका अभेदज्ञान उत्पन्न होजाता है॥ ६०६ ॥

एष निष्कण्टकः पन्था मुक्तेर्ब्रह्मात्मना स्थितेः ।
शुद्धात्मनां मुमुक्षूणां यत्सदेकत्वदर्शनम् ॥ ६०७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(शुद्धात्मनाम्) निर्मल चित्तवाले (मुमुक्षूणाम्) मुमुक्षुओंका (यत्) जो (सदेकत्वदर्शनम्) सत्स्वरूप ब्रह्मके साथ अभेदभावका दर्शन है (एषः) यह (ब्रह्मात्मना) ब्रह्मस्वरूपसे (स्थितेः) स्थितिरूप (मुक्तेः) मुक्तिका (निष्कण्टकः)बाधारहित (पन्थाः) मार्ग है ॥ ६०७ ॥

भावार्थ—शुद्धचित्त मुक्तिके अभिलाषी पुरुषोंका सत्स्वरूपसे ब्रह्म और जीवकी एकताका दर्शन ही ब्रह्मस्वरूपसे स्थितिरूप मुक्तिका निष्कण्टक मार्ग (उपाय) है ॥ ६०७ ॥

तस्मात् त्वञ्चाप्यप्रमत्तः समाधीन् कृत्वा ग्रन्थिं साधु निर्दाह्य युक्तः
नित्यं ब्रह्मानन्दपीयूषसिन्धौ मज्जन् क्रीडन् मोदमानो रमस्व ६०८

अन्वय और पदार्थ—(तस्मात्) तिससे (त्वं, च, अपि) तू भी (अप्रमत्तः) सावधान [सन्] होता हुआ (समधीन्) समाधियोंको (कृत्वा) करके (साधु) भले प्रकार (ग्रंथिम्) गाँठको (निर्दाह्य) जला कर (युक्तः) योगी [सन्] होता हुआ (नित्यम्) सदा (ब्रह्मानन्दपीयूषसिन्धौ) ब्रह्मसुखरूप अमृतके सिन्धुमें (मज्जन्) गोता लगाता हुआ (क्रीडन्) क्रीडा करता हुआ (मोदमानः) आनन्दित होता हुआ (रमस्व) रमण कर ॥ ६०८ ॥

भावार्थ इसलिये तू भी सावधान होकर छः प्रकारकी समाधियोंका अनुष्ठान करता हुआ उत्तम प्रकारसे काम क्रोध आदिकी गाँठको जला डाल और योग-युक्त होकर सदा ब्रह्मानन्दरूप अमृतसागरमें गोता लगाता हुआ क्रीडा कर और आनन्द पाता हुआ रमण कर ॥ ६०८ ॥

योगः ।

निर्विकल्पसमाधिर्या वृत्तिर्नैश्चल्यलक्षणा ।
तमेव योग इत्याहुर्योगशास्त्रार्थकोविदाः ॥ ६०९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (निर्विकल्पसमाधिः) विकल्पशून्य समाधि है (नैश्चल्यलक्षणा) स्थिरतारूप (वृत्तिः) वृत्ति है (योगशास्त्रार्थको-विदाः) योगशास्त्रके तात्पर्यको जाननेवाले (तं, एव) उसको ही (योगः, इति) योग इस नामसे (आहुः) कहते हैं ॥ ६०९ ॥

भावार्थ—चित्तवृत्तिकी स्थिरतारूप जो निर्विकल्प समाधि है, योगशास्त्रके ज्ञाता पण्डित इसको ही योग कहते हैं ॥ ६०९ ॥

अष्टावङ्गानि

अष्टावङ्गानि योगस्य यमो नियम आसनम् ।
प्राणायामस्तथा प्रत्याहारश्चापि च धारणा ॥ ६१० ॥

ध्यानं समाधिरित्येव निगदन्ति मनीषिणः ।
सर्वं ब्रह्मेति विज्ञानादिन्द्रियग्रामसंयमः ॥ ६११ ॥
यमोऽयमिति संप्रोक्तोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः ।
सजातीयप्रवाहश्च विजातीयतिरस्कृतिः ॥ ६१२ ॥
नियमो हि परानन्दो नियमात् क्रियते बुधैः ।
सुखेनैव भवेद्यस्मिन्नजस्रं ब्रह्मचिन्तनम् ॥ ६१३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यमः) यम (नियमः) नियम (आसनम्) आसन (प्राणायामः) प्राणायाम (तथा) तैसे ही (प्रत्याहारः) प्रत्याहार (अपि, च) और (धारणा) धारणा (ध्यानम्) ध्यान (समाधिः) समाधि (इति, एव) ये ही (योगस्य) योगके (अष्टौ) आठ (अङ्गानि) अङ्ग (मनीषिणः) विद्वान् (निगदन्ति) कहते हैं (सर्वम्) सब (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (विज्ञानात्) जाननेसे (इन्द्रियसंयमः) इन्द्रियोंका वशमें होना (अयम्) यह (यमः, इति) यम इस नाम वाला (संप्रोक्तः) कहा है [असौ] यह (मुहुर्मुहुः) बार २ (अभ्यसनीयः) अभ्यास करने योग्य है (सजातीयप्रवाहः) समानजाति प्रत्ययकी अविच्छिन्न धारा (च) और (विजातीयतिरस्कृतिः)विरुद्ध जातिवाले प्रत्ययका त्याग (हि) निश्चय (नियमः) नियम [कथ्यते] कहलाता है(बुधैः) विद्वानों करके (नियमात्) नियमसे (परानन्दः) परम आनन्द (क्रियते क्रिया जाता है (यस्मिन्) जिसमें (सुखेन, एव) अनायास ही (अजस्रम्) निरन्तर (ब्रह्मचिन्तनम्) ब्रह्मका चिन्तवन (भवेत्) होता है ॥ ६१०-६१३ ॥

भावार्थ—विद्वानोंने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठ योगके अङ्ग कहे हैं, ये सब वस्तु ब्रह्मसे भिन्न नहीं हैं, ऐसे ज्ञानसे इन्द्रियसमूहका संयम होता है और यह यम कहलाता है, इस यम का बार २ अभ्यास करना चाहिये। विजातीय प्रत्ययप्रवाहको त्यागकर सजातीय विज्ञानधाराका नाम नियम है, विद्वान् पुरुष इस नियमका अनुष्ठान करके परम-सुखका अनुभव करते हैं, जिसमें अनायास ही निरन्तर ब्रह्मचिन्तवन हुआ करता है ॥

आसनं तद्विजानीयाद्यदितरसुखनाशनम् ।
चित्तादिसर्वभावेषु ब्रह्मत्वेनैव भावनात् ॥ ६१४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(चित्तादिसर्वभावेषु) चित्त आदि सकल पदार्थोंमें (ब्रह्मत्वेन, एव) ब्रह्मरूपसे ही (भावनात्) भावना करनेके कारण [यत्] जो (इतरसुखनाशनम्) बाहरी सुखका नाश है (तत्) उसको (आसनम्) आसन (विजानीयात्) जाने ॥ ६१४ ॥

भावार्थ--चित्त अहंकार आदि सकल पदार्थोंको ब्रह्मरूपसे चिन्तवन करके जो बाहरी सुखका नाश होता है उसको आसन कहते हैं ॥ ६१४ ॥

निरोधः सर्ववृत्तीनां प्राणायामः स उच्यते ।
निषेधनं प्रपञ्चस्य रेचकाख्यः समीरणः ॥ ६१५ ॥

अन्वय और पदार्थ-[यः] जो (सर्ववृत्तीनाम्) सकल वृत्तियोंका (निरोधः) रोकना है (सः) वह (प्राणायामः) प्राणायाम (उच्यते) कहाजाता है (प्रपञ्चस्य) प्रपञ्चका (निषेधनम्) निषेध करना (रेचकाख्यः) रेचक नामका (समीरणः) वायु है ॥ ६१५ ॥

भावार्थ-चित्तकी सकल वृत्तियोंके निरोधका नाम प्राणायाम है, प्रपञ्चके ब्रह्म में लयका नाम रेचक वायु है ॥ ६१५ ॥

ब्रह्मैवास्मीति या वृत्तिः पूरको वायुरीरितः ।
ततस्तद्वृत्तिनैश्चल्यं कुम्भकः प्राणसंयमः ॥ ६१६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही (अस्मि) हूँ (इति) ऐसी (या) जो (वृत्तिः) चित्तकी अवस्था है [सः] वह (पूरकः) पूरक नामका (वायुः) वायु (ईरितः) कहा है (ततः) तदनन्तर (तद्वृत्तिनैश्चल्यम्) ब्रह्मवृत्तिकी निश्चलता [तथा] तैसे ही (प्राणसंयमः) प्राणवायुकी स्थिरता (कुम्भकः) कुम्भक [उच्यते] कहलाता है ॥ ६१६ ॥

भावार्थ-मैं ही ब्रह्म हूँ, ऐसी चित्तवृत्तिको पूरक वायु कहते हैं और मैं ही ब्रह्म हूँ, इस वृत्तिकी स्थिरता तथा प्राणवायुके संयमको कुम्भक कहते हैं ॥ ६१६ ॥

अयञ्चापि प्रबुद्धानामज्ञानां प्राणपीडनम् ।
विषयेष्वात्मतां त्यक्त्वा मनसश्चिति मज्जनम् ॥ ६१७ ॥
प्रत्याहारः स विज्ञेयोऽभ्यसनीयो मुमुक्षुभिः ।
यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनात् ॥ ६१८ ॥
मनसो धारणञ्चैव धारणा सा परामता ।

ब्रह्मैवाऽस्मीति सद्वृत्त्या निरालम्बतया स्थितिः ॥ ६१९ ॥
ध्यानशब्देन विख्याता परमानन्ददायिनी ।
निर्विकारतया वृत्त्या ब्रह्माकारतया पुनः ॥ ६२० ॥
वृत्तिविस्मरणं सम्यक् समाधिर्ध्यानसंज्ञकः ।
समाधौ क्रियमाणे तु विघ्ना आयान्ति वै बलात् ॥ ६२१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अयम्, अपि) यह कुम्भक ही (प्रबुद्धानाम्) ज्ञानियों का (च) और (अज्ञानाम्) ज्ञानहीनोंका (प्राणपीडनम्) प्राणवायुका निरोधक है (विषयेषु) विषयोंमें (आत्मताम्) आत्मभावनाको (त्यक्त्वा) त्यागकर (मनसः) मनका (चिति) ब्रह्ममें (मज्जनम्) स्थापन करना (सः) वह (प्रत्याहारः) प्रत्यहार (विज्ञेयः) जानना (मुमुक्षुभिः) मुमुक्षुओंको (अभ्यसनीयः) अभ्यास करने योग्य है (यत्र यत्र) जहाँ जहाँ (मनः) मन (याति) जाता है (तत्र) तहाँ (ब्रह्मणः) ब्रह्मका (दर्शनात्) दर्शन होनेसे (मनसः) मनका (धारणं,च, एव) कही स्थापन करना ही (सा) वह (परा) श्रेष्ठ (धारणा) धारणा (मता) मानी गई है (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही (अस्मि) हूँ (इति) इस (सद्वृत्त्या) श्रेष्ठ वृत्तिके द्वारा (निरालम्बतया) निराधार भावसे (स्थितिः) स्थित होना (ध्यानशब्देन) ध्यान शब्दसे (विख्याता) प्रसिद्ध है (परमानन्ददायिनी) परम आनन्दकी देनेवाली है (निर्विकारतया) निर्विकारभावसे (ब्रह्माकारतया) ब्रह्मकारतारूप (वृत्त्या) वृत्तिके द्वारा (पुनः) फिर (सम्यक्) उत्तमतासे (वृत्तिविस्मरणम्) उस वृत्तिको भूल जाना (ध्यानसंज्ञकः) ध्यान नामक (समाधिः) समाधि [उच्यते] कहा जाता है (समाधौ, क्रियमाणे) समाधिके किये जाने पर (हि) निश्चय (विघ्नाः) विघ्न (बलात्) बलात्कारसे (आयान्ति) आते हैं ॥ ६१७-६२१ ॥

भावार्थ-यह कुम्भक ही ज्ञानी और अज्ञानियोंके प्राणवायुको रोकता है, शब्द स्पर्श आदि विषयोंमें आत्मबुद्धिको त्यागकर मनके चैतन्यमें स्थापनको प्रत्याहार कहते हैं, मुमुक्षुओंको इस प्रत्याहारका अभ्यास करना चाहिये। जिस२ स्थानमें मन जाय तहाँ तहाँ ही ब्रह्मके साक्षात्कारके हेतु मनके स्थापनको उत्तम धारणा कहते हैं। मैं ही ब्रह्म हूँ, ऐसी श्रेष्ठ वृत्तिके द्वारा मनकी निराश्रय स्थितिको ध्यान कहते हैं, यह ध्यान परम आनन्द देता है। विकाररहित ब्रह्माकार वृत्तिके द्वारा

विषयाकार वृत्तिको पूर्णतया भूल जानेको समाधि कहते हैं, इसको ध्यान (ध्यान की पराकाष्ठा) कहते हैं समाधिके होनेपर अनेकों विघ्न बलात्कारसे आजाते हैं ॥

अनुसन्धानराहित्यमालस्यं भोगलालसम् ।
भयः तमश्च विक्षेपस्तेजः स्पन्दश्च शून्यता ॥ ६२२ ॥

अन्वय और पदार्थ (अनुसन्धानराहित्यम्) ब्रह्मका अन्वेषण न करना (आलस्यम्) आलस्य (भोगलालसम्) भोगकी इच्छा (भयम्) भय (च) और (तमः) अज्ञान (विक्षेपः) चित्तकी चञ्चलता (तेजःस्पन्दः) उत्तापके द्वारा स्पन्दन (च) और (शून्यता) शून्यत्व [एते, योगविघ्नाः, सन्ति] ये योगके विघ्न हैं ॥ ६२२ ॥

भावार्थ—ब्रह्मके विषयमें अनुसन्धान न करना, आलस्य, भोगकी वासना भय, अज्ञान, चित्तकी चञ्चलतारूप विक्षेप, तेजसे पसीनेका टपकने लगना और शून्यता ये कितने ही योगके विघ्न हैं ॥ ६२२ ॥

एवं यद्विघ्नबाहुल्यं त्याज्यं तद् ब्रह्मविज्जनैः ।
विघ्नानेतान् परित्यज्य प्रमादरहितो वशी ॥
समाधिनिष्ठया ब्रह्म साक्षाद्भवितुमर्हसि ॥ ६२३ ॥

अन्वय और पदार्थ–(एवम्) इसप्रकार (यत्) जो (विघ्नबाहुल्यम्) विघ्नोंकी अधिकता है (तत्) उसको (ब्रह्मविज्जनैः) ब्रह्मवेत्ता पुरुषों को (त्याज्यम्) त्याग देना चाहिये [त्वम्] तू (एतान्) इन (विघ्नान्) विघ्नोंको (परित्यज्य) त्यागकर (प्रमादरहितः) प्रमादसे शून्य (वशी) जितेन्द्रिय [सन्] होता हुआ (समाधिनिष्ठया) समाधिकी नि[ष्ठा]के द्वारा (साक्षात्, ब्रह्म) साक्षात् ब्रह्म (भवितुम्) होनेको (अर्हसि) योग्य है ॥ ६२३ ॥

भावार्थ—ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंका कर्त्तव्य है, कि–वे ऐसे अनेकों विघ्नोंसे न घबडावें, किन्तु इनके पार होजायँ. हे शिष्य ! तू इन सब विघ्नोंको त्यागकर प्रमाद-शून्य और जितेन्द्रिय रहता हुआ समाधिकी उन्नति करके साक्षात् ब्रह्म होसकता है

शिष्यस्य स्वानुभवः ।

इति गुरुवचनात् श्रुतिप्रमाणात् परमवगम्य स्वतत्त्वमात्मबुद्ध्या ।
प्रशमितकरणः समाहितात्मा क्वचिदचलाकृतिरात्मनिष्ठितोऽभूत् ॥

अन्वय और पदार्थ-[शिष्यः] शिष्य (इति) इसप्रकार (श्रुतिप्रमाणात्) वेदके प्रमाणसे (गुरुवचनात्) गुरुके उपदेशसे (आत्मबुद्ध्या) अपनी बुद्धिके द्वारा (परम्) श्रेष्ठ (स्वतत्त्वम्) आत्मतत्त्वको (अवगम्य) जानकर (प्रशमित-करणः) शान्त हुई हैं इन्द्रियें जिसकी ऐसा (क्वचित्) कदाचित् (अचलाकृतिः) स्थिर आकार वाला [च] और (आत्मनिष्ठितः) आत्मपरायण (समाहितात्मा) सावधानचित्त(अभूत्) हुआ ॥ ६२४ ॥

भावार्थ-शिष्य इस प्रकार वेदके प्रमाणसे, गुरुके उपदेशसे और अपने उत्पन्न हुए ज्ञानसे उत्तम आत्मतत्त्वको जानकर शान्त इन्द्रिय, आत्मपरायण और कदाचित् समाहितचित्त होगया ॥ ६२४ ॥

बहुकालं समाध्याय स्वस्वरूपे च मानसम् ।
उत्थाय परमानन्दाद् गुरुमेत्य पुनर्मुदा ॥ ६२५ ॥
प्रमाणपूर्वकं धीमान् सगद्गदमुवाच ह ।
नमो नमस्ते गुरवे नित्यानन्दस्वरूपिणे ॥ ६२६ ॥
मुक्तसङ्गाय शान्ताय त्यक्ताहन्त्वाय ते नमः ।
दयाधाम्ने नमो भूम्ने महिम्नः पारमस्य ते ॥
नैवास्ति यत्कटाक्षेण ब्रह्मैवाऽभवमद्वयम् ॥ ६२७ ॥

अन्वय और पदार्थ- (धीमान्) बुद्धिमान् शिष्य (बहुकालम्) चिर-काल तक (स्वस्वरूपे) आत्मस्वरूपमें (मानसम्) मनको (समाधाय) समाहित करके (च) और (परमानन्दात्) परम सुखसे (उत्थाय) उठकर (मुदा) हर्ष के साथ (पुनः) फिर (गुरुम्,एत्य) गुरुके पास आकर (प्रणामपूर्वकम्) प्रणाम करके (सगद्गदम्) रोमाञ्चित होकर (उवाच,ह) बोला (नित्यानन्द-स्वरूपिणे) नित्य सुखस्वरूप (गुरवे) गुरु (ते) आपको (नमोनमः) बारंर प्रणाम है (मुक्तसङ्गाय) सङ्गशून्य (शान्ताय) शान्त (त्यक्ताहन्त्वाय) अह-ङ्काररहित (ते) तुम्हारे अर्थ (नमः) प्रणाम है (दयाधाम्ने) दयाके धाम (भूम्ने) ब्रह्मरूपके अर्थ (नमः) प्रणाम है (ते) तुम्हारे (अस्य) इस (महि-म्नः) प्रभावकी (पारम्) सीमा (न,एव) कदापि नहीं (अस्ति) है (यत्-कटाक्षेण) जिनके कटाक्षसे (अद्वयम्) अद्वितीय (ब्रह्म,एव) ब्रह्म ही (अभवम्) होगया ॥ ६२५-६२७ ॥

भावार्थ-बुद्धिमान् पुरुष चिरकाल तक आत्मस्वरूपमें मनको समाहित करके उठने पर परम आनन्दको पानेके कारण हर्षमें भराहुआ गुरुदेवके पास जाकर प्रणाम करे और गद्गद कण्ठ होकर उनसे कहे, कि-हे गुरो! नित्यानन्दस्वरूप आपको प्रणाम है। असङ्ग, शान्त और अहङ्कारशून्य आपको प्रणाम है। दयाके मन्दिर ब्रह्मस्वरूप आपको प्रणाम है, जिन गुरुदेवके कृपाकटाक्षसे मैं अद्वितीय ब्रह्मस्वरूप हुआ हूँ ऐसे आपकी महिमाका पार नहीं पाता॥ ६२५-६२७॥

किं करोमि क्व गच्छामि किं गृह्णामि त्यजामि किम्।
यन्मया पूरितं विश्वं महाकल्पाम्बुना यथा॥ ६२८॥

अन्वय और पदार्थ—(किम्) क्या (करोमि) करूँ (क्व) कहाँ (गच्छामि) जाऊँ (किम्) क्या (गृह्णामि) ग्रहण करूँ (किम्) क्या (त्यजामि) छोड़ूँ (यत्) क्योंकि (मया) मेरे द्वारा (विश्वम्) विश्व (महाकल्पाम्बुना, यथा) महाप्रलयके जल करके जैसे अथवा बड़ी भारी सङ्कल्परूप जलकी धारा करके जैसे (पूरितम्) पूर्ण होरहा है॥ ६२८॥

भावार्थ-मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? क्या लूँ? क्या छोड़ूँ? क्योंकि-इस विश्वमें मैं ऐसे व्याप रहा हूँ, जैसे इसमें सङ्कल्परूप जलकी धारा भरी रहती है अथवा जैसे प्रलयकालमें बड़ाभारी जलका प्रवाह भरजाता है॥ ६२९॥

मयि सुखबोधपयोधौ महति ब्रह्माण्डबुद्बुदसहस्रम्
मायामयेन मरुता भूत्वा भूत्वा पुनस्तिरोहन्ति॥ ६२९॥

अन्वय और पदार्थ-(महति) महान् (सुखबोधपयोधौ) आनन्दानुभवके समुद्र (मयि) मुझमें (ब्रह्माण्डबुद्बुदसहस्रम्) ब्रह्माण्डरूप सहस्रों बुद्बुद (मायामयेन) मायामय (मरुता) पवनके द्वारा (भूत्वा, भूत्वा) हो होकर (पुनः) फिर (तिरोहन्ति) अन्तर्धान होजाते हैं॥ ६२९॥

भावार्थ-महान् आनन्दानुभवके सागररूप मुझ (आत्मा) में ब्रह्माण्डरूप सहस्रों जलके बुलबुले मायामयी हवासे बार २ उत्पन्न होकर विलीन होजाते हैं॥६२९॥

नित्यानन्दस्वरूपोऽहमात्माऽहं त्वदनुग्रहात्।
पूर्णोऽहमनवद्योऽहं केवलोऽहञ्च सद्गुरो॥६३०॥

अन्वय और पदार्थ—(सद्गुरो) हे श्रेष्ठ गुरुदेव! (अहम्) मैं (त्वदनुग्रहात्) आपकी कृपासे (नित्यानन्दस्वरूपः) सदासुखरूप हूँ (अहम्) मैं

(आत्मा) ब्रह्मस्वरूप हूँ (अहम्) मैं (पूर्णः) परिपूर्ण हूँ (अहम्) मैं (अनवद्यः) प्रशंसाके योग्य हूँ (अहम्) मैं (केवलः) शुद्ध हूँ ॥ ६३० ॥

भावार्थ–हे गुरुदेव ! मैं आपकी कृपासे नित्य सुखस्वरूप, आनन्दस्वरूप, पूर्ण, अनिन्दनीय और शुद्धस्वभाव हूँ ॥ ६३० ॥

अकर्ताहमभोक्ताहमविकारोऽहमक्रियः ।

आनन्दघन एवाहमसङ्गोऽहं सदाशिवः ॥ ६३१ ॥

अन्वय और पदार्थ–(अहम्) मैं (अकर्त्ता) कर्त्तापनसे रहित हूँ (अहम्) मैं (अभोक्ता) भोक्तापनसे रहित हूँ (अहम) मैं (अविकारः) निर्विकार हूँ [अहम्] मैं (अक्रियः) क्रियारहित हूँ (अहम्) मैं (आनन्दघनः, एव) आनन्दकी मूर्त्ति ही हूँ (अहम्) मैं (असङ्गः) सङ्गरहित (सदाशिवः) सदा कल्याणमय हूँ ॥ ६३१ ॥

भावार्थ–मैं अकर्त्ता, अभोक्ता, निर्विकार, निष्क्रिय, सुखस्वरूप, असङ्ग और सदा कल्याणमय हूँ ॥ ६३१ ॥

त्वत्कटाक्षवरचान्द्रचन्द्रिकापातधूतभवतापजश्रमः ।

प्राप्तवानहमखण्डवैभवानन्दमात्मपदमक्षयं क्षणात् ॥ ६३२ ॥

अन्वय और पदार्थ–(त्वत्कटाक्षवरचान्द्रचन्द्रिकापातधूतभवतापजश्रमः) आपके कटाक्षरूप श्रेष्ठ चन्द्रमा की चाँदनी पड़नेसे जिसका संसारके तापसे उत्पन्न हुआ श्रम दूर होगया है ऐसा (अहम्) मैं (क्षणात्) क्षणभरमें (अखण्डवैभवानन्दम्) जिसमें पूर्ण ऐश्वर्यका आनन्द है ऐसे (अक्षयम्) अविनाशी (आत्मपदम्) आत्मस्वरूपको (प्राप्तवान्) पागया ॥ ६३२ ॥

भावार्थ हे गुरो ! आपके कृपाकटाक्षरूप श्रेष्ठ चन्द्रमाकी चाँदनीके पड़नेसे संसारके संतापसे उत्पन्न हुई मेरी सब श्रान्ति (व्याकुलता) जाती रही और मैंने क्षणभरमें ही पूर्ण ऐश्वर्यके आनंदसे भरे अविनाशी आत्मपदको पालिया ॥

छायया स्पृष्टमुष्णम्वा शीतं वा दुष्टु सुष्टु वा ।

न स्पृशत्येव यत्किञ्चित् पुरुषं तद्विलक्षणम् ॥ ६३३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(छायया) छायाके द्वारा (स्पृष्टम्) छुआ हुआ (उष्णम्) गरम (वा) या (शीतम्) ठण्ढा (वा) या (दुष्टु) बुरा (सुष्टु) अच्छा (यत्किञ्चित्) जो कुछ है [तत्] वह (तद्विलक्षणम्) उससे विलक्षण (पुरुषम्) पुरुषको (न) नहीं (स्पृशति) स्पर्श करता है ॥ ६३३ ॥

भावार्थ-जिसको त्वचाने छुआ है, जो गरम है या ठंडा है, जो बुरा है या भला है ऐसा कुछ भी, इन शीत आदिसे विपरीत धर्मवाले द्रुरुपको स्पर्श नहीं कर सकता ॥ ६३३ ॥

न साक्षिणं साक्ष्यधर्मा न स्पृशन्ति विलक्षणम् ।
अविकारमुदासीनं गृहधर्माः प्रदीपवत् ॥ ६३४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(गृहधर्माः) घरके धर्म (प्रदीपवत्) दीपकको जैसे (साक्ष्यधर्माः) जो साक्षीके धर्म नहीं हैं वे (साक्षिणम्) साक्षीको (न) नहीं (स्पृशन्ति) स्पर्श करते हैं (अविकारम्) विकार शून्य (उदासीनम्) उदासीन [आत्मानम्] आत्माको (न) नहीं [स्पृशन्ति] स्पर्श करते हैं ॥ ६३४॥

भावार्थ-जैसे स्थानके धर्म दीपकको स्पर्श नहीं करते तैसे ही जो साक्षीके धर्म नहीं हैं वह विलक्षण विकाररहित उदासीन साक्षीको स्पर्श नहीं कर सकते ।६३४।

रवेर्यथा कर्मणि साक्षिभावो वह्नेर्यथा वायसि दाहकत्वम् ।
रज्जोर्यथारोपितवस्तुसङ्गस्तथैव कूटस्थचिदात्मनो मे ॥ ६३५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यथा) जैसे (रवेः) सूर्यका (कर्मणि) कर्ममें (साक्षिभावः) साक्षीपन है (वा) या (यथा) जैसे (अयसि) लोहेमें (वह्नेः) अग्निका (दाहकत्वम्) दाहकपना है (यथा) जैसे (रज्जोः) रस्सीको (आरोपितवस्तुसङ्गः) आरोपित वस्तुका सम्बन्ध है (तथा, एव) तैसे (कूटस्थचिदात्मनः) कूटस्थ चैतन्यस्वरूप (मे) मुझे [सङ्गः] सङ्ग है ॥ ६३५ ॥

भावार्थ-जैसे सूर्य प्राणियोंके कर्मोंका साक्षीमात्र है, जैसे लोहेमें अग्निकी दाहकता है, अथवा जैसे रस्सी सर्प आदि कल्पित वस्तुका सङ्ग है, कूटस्थ चैतन्यस्वरूप मेरा भी संसारसे ऐसा ही सम्बन्ध है ॥ ६३५ ॥

इत्युक्त्वा स गुरुं स्तुत्वा प्रश्रयेण कृतानतिः ।
मुमुक्षोरुपकाराय प्रष्टव्यांशमपृच्छत ॥ ६३६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(इति) इसप्रकार (उक्त्वा) कहकर (गुरुं,स्तुत्वा) गुरुकी स्तुति करके (प्रश्रयेण) विनयके साथ (कृतानतिः) किया है प्रणाम जिसने ऐसा (सः) वह (मुमुक्षोः) मुक्ति चाहनेवालेके (उपकाराय) उपकार के लिये (प्रष्टव्यांशम्) पूछने योग्य भागको (अपृच्छत) पूछता हुआ ६३६

भावार्थ—शिष्यने इसप्रकार कहकर और गुरुकी स्तुति करके विनयके साथ नम्र होकर मुमुक्षुके उपकारके लिये पूछने योग्य बात पूछी ॥ ६३६ ॥

जीवन्मुक्तस्य भगवन्ननुभूतेश्च लक्षणम् ।
विदेहमुक्तस्य च मे कृपया ब्रूहि तत्त्वतः ॥ ६३७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(भगवन्) हे ऐश्वर्यसम्पन्न ! (जीवन्मुक्तस्य) जीवन्मुक्तके (च) और (अनुभूतेः) अनुभवके (च) और (विदेहमुक्तस्य) विदेहमुक्त के (लक्षणम्) लक्षणको (कृपया) कृपा करके (मे) मेरे अर्थ (ब्रूहि) कहिये ॥ ६३७ ॥

भावार्थ-हे भगवन् ! मेरे ऊपर कृपा करके जीवन्मुक्तका अनुभवका और विदेह मुक्तका लक्षण कहिये ॥ ६३७ ॥

ज्ञानभूमिकालक्षणम् ।

श्रीगुरुरुवाच

वक्ष्ये तुभ्यं ज्ञानभूमिकाया लक्षणमादितः ।
ज्ञाते यस्मिंस्त्वया सर्वं ज्ञातं स्यात्पृष्टमद्य यत् ॥ ६३८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(श्रीगुरुः) श्रीगुरु (उवाच) बोले (तुभ्यम्) तेरे अर्थ (ज्ञानभूमिकायाः) ज्ञानभूमिकाके (लक्षणम्) लक्षणको (आदितः) आदिसे (वक्ष्ये) कहूँगा (यस्मिन्, ज्ञाते) जिसको जान लेने पर (त्वया) तुझ करके (अद्य) आज (यत्) जो (पृष्टम्) पूछागया [तत्] वह (सर्वम्) सब (ज्ञातम्) जाना हुआ (स्यात्) होगा ॥ ६३८ ॥

भावार्थ—गुरुने उत्तर दिया, कि-मैं तुझसे ज्ञानकी भूमिकाका लक्षण प्रारम्भसे कहूँगा, जिसको जान लेने पर तूने आज जो प्रश्न किया है यह सब समझ में आजायगा ॥ ६३८ ॥

ज्ञानभूमिः शुभेच्छा स्यात्प्रथमा समुदीरिता ।
विचारणा द्वितीया तु तृतीया तनुमानसी ॥ ६३९ ॥
सत्त्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात्ततोऽसंसक्तिनामिका ।
पदार्थाभावना षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृता ॥ ६४० ॥

अन्वय और पदार्थ—(शुभेच्छा) शुभेच्छा नाम वाली (ज्ञानभूमिः) ज्ञानकी भूमिका (प्रथमा) पहली (स्यात्) होगी (द्वितीया) दूसरी (विचारणा

विचारणा नामवाली (तृतीया, तु) तीसरी तो (तनुमानसी) तनुमानसी नाम वाली (समुदीरिता) कही है (चतुर्थी) चौथी (सत्त्वापत्तिः) सत्त्वपत्ति नाम वाली (स्यात्) होगी (ततः) तदनन्तर [पञ्चमी] पाँचवीं (असंसक्ति-नामिका) असंसक्ति नामवाली (षष्ठी) छठी (पदार्थभावना) पदार्थाभावना नामवाली है (सप्तमी) सातवीं (तुर्यगा) तुर्यगा नामवाली (स्मृता) कही है ॥

भावार्थ—पहिली ज्ञानभूमि शुभेच्छा नामकी है, दूसरी विचारणा नामसे और तीसरी तनुमानसी नामसे कही है, चौथीका नाम सत्त्वापत्ति, पाँचवी असंसक्ति छठी पदार्थाभावना और सातवीं तुर्यगा भूमिका कहलाती है' ॥६३६-६४०॥

शुभेच्छा

स्थितः किं मूढ एवास्मि प्रेक्ष्योऽहं शास्त्रसज्जनैः।
वैराग्यपूर्वमिच्छेति शुभेच्छा चोच्यते बुधैः ॥ ६४१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(शास्त्रसज्जनैः) शास्त्रके विषयमें सज्जनता रखनेवाले पुरुषों करके (प्रेक्ष्यः) दृष्टि रखने योग्य (अहम्) मैं (किम्) क्या (मूढः, एव) मूढ़ ही (स्थितः) विद्यमान हूँ (इति) इसप्रकार (वैराग्यपूर्वम्) वैराग्य के साथ (इच्छा) वासना (बुधैः) पण्डितों करके (शुभेच्छा) शुभेच्छा नामवाली (उच्यते) कही जाती है ॥ ६४१ ॥

भावार्थ—मेरे ऊपर शास्त्रके जाननेवाले सज्जन पुरुष दृष्टि रखते हैं तो भी क्या मैं मूर्ख ही हूँ वैराग्यके साथ ऐसी इच्छाको पण्डित शुभेच्छा कहते हैं ६४१

विचारणा

शास्त्रसज्जनसम्पर्कवैराग्याभ्यासपूर्वकम्।
सदाचारप्रवृत्तिर्या प्रोच्यते सा विचारणा ॥ ६४२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(शास्त्रसज्जनसम्पर्कवैराग्याभ्यासपूर्वकम्) वेदादि शास्त्र, साधु पुरुषोंके साथ सम्बन्ध और वैराग्यके अभ्यासके साथ (या) जो (सदाचारप्रवृत्तिः) सदाचारकी इच्छा है (सा) वह (विचारणा) विचारणा (प्रोच्यते) कहीजाती है ॥ ६४२ ॥

भावार्थ—वेदादिका अभ्यास करनेवाले साधुपुरुषोंके साथ सहवास और वैराग्यके साथ जो सदाचार करनेमें प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, पण्डितोंने उसको विचारणा कहा है ॥ ६४२ ॥

तनुमानसी

विचारणाशुभेच्छाभ्यामिन्द्रियार्थेषु रक्तता ।
यत्र सा तनुतामेति प्रोच्यते तनुमानसी ॥ ६४३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्र) जिस अवस्थामें (विचारणाशुभेच्छाभ्याम्) विचारणा और शुभेच्छाके द्वारा (इन्द्रियार्थेषु) इन्द्रियोंके विषयोंमें (रक्तता) अनुराग (क्षीणताम्) क्षीणताको (एति) प्राप्त होता है (सा) वह (तनुमानसी) तनुमानसी (प्रोच्यते) कही जाती है ॥ ६४३ ॥

भावार्थ--जिस अवस्थामें विचारणा और शुभेच्छा नामवाली भूमिकाओं के द्वारा इन्द्रियोंके विषयोंमें अनुराग क्षीण होता है वह तनुमानसी भूमिका कहलाती है ॥ ६४३ ॥

सत्त्वापत्तिः।

भूमिकात्रितयाभ्यासाच्चित्तेऽर्थविरतेर्वशात् ।
सत्त्वात्मनि स्थिते शुद्धे सत्त्वापत्तिरुदाहृता ॥ ६४४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(भूमिकात्रितयाभ्यासात्) तीनों भूमिकाओंके अभ्यास से (चित्ते) चित्तके (अर्थविरतेः, वशात्) पदार्थोंमें वैराग्यके कारणसे (शुद्धे) शुद्ध (सत्त्वात्मनि, स्थिते) सत्त्व स्वरूप आत्मामें स्थित होनेपर (सत्त्वापत्तिः) सत्त्वापत्ति (उदाहृता) कही है ॥ ६४४ ॥

भावार्थ-शुभेच्छा, विचारणा और तनुमानसी इन तीनों भूमिकाओंके अभ्यास से विषय वासना दूर होकर चित्तके शुद्ध और सत्त्वगुण प्रधान आत्मामें जमजाने पर सत्त्वापत्ति नाम वाली पाँचवीं भूमिका कहलाती है ॥ ६४४ ॥

संसक्तिनामिका

दशाचतुष्टयाभ्यासादसंसर्गफला तु या ।
रूढसत्त्वचमत्कारा प्रोक्ता संसक्तिनामिका ॥ ६४५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(दशाचतुष्टयाभ्यासात्) ऊपर कहीं चारों भूमिकाओं के अभ्यासमे (या तु) जो तो (असंसर्गफला) असंसर्गफलवाली (रूढसत्त्व-चमत्कारा) जिसमें सत्त्वगुणका चमत्कार चढ़गया है [सा] वह (संसक्ति-नामिका) संसक्ति नामवाली (प्रोक्ता) कही है ॥ ६४५ ॥

भावार्थ—ऊपर कही हुई चारों भूमिकाओंका अभ्यास होजानेसे किसीके साथ भी संसर्ग (मिलना जुलना) करनेकी इच्छा नहीं होती और सत्त्वगुणका चमत्कार दीखने लगता है, ऐसी अवस्था संसक्तिनामिका पाँचवीं भूमिका कहलाती है ॥ ६४५ ॥

पदार्थभावना

भूमिकापञ्चकाभ्यासात्स्वात्मारामतया भृशम् ।
आभ्यन्तराणां बाह्यानां पदार्थानामभावनात् ॥ ६४६ ॥
परप्रयुक्तेन चिरप्रयत्नेनावबोधनम् ।
पदार्थभावना नाम षष्ठी भवति भूमिका ॥ ६४७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(भूमिकापञ्चकाभ्यासात्) पूर्वोक्त पाँच भूमिकाओंके अभ्याससे (स्वात्मारामतया) आत्मामें अनुरागके कारण (आभ्यन्तराणाम्) भीतर के (बाह्यानाम्) बाहरके (पदार्थानाम्) पदार्थोंके (भृशम्) अत्यन्त (अभावनात्) चिन्तवन न करने से (परप्रयुक्तेन) दूसरेके प्रेरणा करेहुए (चिरप्रयत्नेन) चिरकालके प्रयत्नसे (अवबोधनम्) ज्ञान [सः] वह (पदार्थभावना नाम) पदार्थभावना नामवाली (षष्ठी) छठी (भूमिका) भूमिका (भवति) होती है ॥ ६४६–६४७ ॥

भावार्थ—ऊपर कही हुई पाँच भूमिकाओंके अभ्याससे आत्मामें अनुराग जमजाता है तब प्रायः भीतरके या बाहरके किसी पदार्थका भी चिन्तवन नहीं रहता है, उस समय दूसरेकी प्रेरणासे बडेभारी यत्नसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह पदार्थभावना नामकी छठी भूमिका है ॥ ६४६–६४७ ॥

तुर्यगा

षड्भूमिकाचिराभ्यासाद्भेदस्यानुपलम्भनात् ।
यत्स्वभावैकनिष्ठत्वं सा ज्ञेया तुर्यगा गतिः ॥ ६४८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(षड्भूमिकाचिराभ्यासात्) छहों भूमिकाओंका चिरकाल तक अभ्यास करनेसे (भेदस्य) द्वैतकी (अनुपलंभनात्) प्रतीति न होने से (यत्) जो (स्वभावैकनिष्ठत्वम्) स्वभावकी एकरूपमें स्थिति [भवति] होती है (सा) वह (तुर्यगा) तुर्यगा नामकी (गतिः) भूमिका (ज्ञेया) जाननी ॥ ६४८ ॥

भावार्थ-ऊपर कहीं छहों ज्ञानभूमिकाओंका चिरकाल पर्यन्त अभ्यास करनेसे द्वैत भान नहीं रहता है, ऐसी एकभावसे स्थितिको पण्डित पुरुष तुर्यगा नामक सातवीं ज्ञानभूमिका कहते हैं ॥ ६४८ ॥

जाग्रज्जाग्रत्

इदं ममेति सर्वेषु दृश्यभावेष्वभावना ।
जाग्रज्जाग्रदिति प्राहुर्महान्तो ब्रह्मवित्तमाः ॥ ६४९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(महान्तः) महानुभाव (ब्रह्मवित्तमाः) ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ पुरुष (सर्वेषु) सब (दृश्यभावेषु) दृश्य पदार्थोंमें (इदम्) यह (मम) मेरा है (इति) इसप्रकार (अभावना) चिन्तवन न करना (जाग्रज्जाग्रत्) जाग्रज्जाग्रत् है (इति) ऐसा (प्राहुः) कहते हैं ॥ ६४९ ॥

भावार्थ-सकल दीखनेवाले पदार्थों में यह वस्तु मेरी है, ऐसी भावना न करनेको श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता जाग्रज्जाग्रत् कहते हैं ॥ ६४९ ॥

जाग्रत्स्वप्नः

विदित्वा सच्चिदानन्दे मयि दृश्यपरम्पराम् ।
नामरूपपरित्यागो जाग्रत्स्वप्नः समीर्यते ॥ ६५० ॥

अन्वय और पदार्थ-(सच्चिदानन्दे) सत् चित् आनन्दस्वरूप (मयि) मुझमें (दृश्यपरम्पराम्) दृश्य परम्पराको (विदित्वा) जानकर (नामरूपपरित्यागः) नामरूपको त्यागदेना (जाग्रत्स्वप्नः) जाग्रत्स्वप्न(समीर्यते)कहाजाता है॥

भावार्थ—सत्-चित् आनन्दरूप मुझमें (आत्मामें) दृश्यसमूहको अध्यस्त (कल्पित) जानकर नाम और रूपके त्याग देनेका नाम जाग्रत्स्वप्न है ॥६५०॥

जाग्रत्सुषुप्तिः

परिपूर्णचिदाकाशे मयि बोधात्मतां विना ।
न किञ्चिदन्यदस्तीति जाग्रत्सुप्तिः समीर्यते ॥ ६५१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(परिपूर्णचिदाकाशे) परिपूर्ण चैतन्यरूप आकाश (मयि) मुझमें (बोधात्मतां, विना) ज्ञानस्वरूपताके सिवा (अन्यत्) और (किञ्चित्) कुछ (न) नहीं (अस्ति) है (इति) यह (जाग्रत्सुप्तिः) जाग्रत्सुप्ति (समीर्यते) कहीजाती है ॥ ६५० ॥

भावार्थ-परिपूर्ण चिदाकाशरूप मुझमें (आत्मामें) ज्ञानस्वरूपताके सिवाय और कुछ नहीं है, इस भावनाका नाम जाग्रत्सुप्ति है ॥ ६५१ ॥

स्वप्नजाग्रत्

मूलाज्ञानविनाशने कारणाभासचेष्टितैः ।
बन्धो न मेऽस्ति स्वल्पोऽपि स्वप्नजाग्रदितीर्यते ॥ ९५२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(मूलाज्ञानविनाशने) मूल अज्ञानके नाश करके (कारणाभ्यासचेष्टितैः) कारणसा प्रतीत होनेवालेकी चेष्टाओंके द्वारा (मे) मेरा (अतिस्वल्पः, अपि) बहुत थोडा भी (बन्धः) बन्धन (न) नहीं है(इति) यह (स्वप्नजाग्रत्) स्वप्नजाग्रत् (ईर्यते) कहलाता है ॥ ९५२ ॥

भावार्थ—मूल अज्ञानका विनाश होजाने करके कारणाभासकी चेष्टाओंसे मेरा अणुमात्र भी बन्धन नहीं है, ऐसे ज्ञानको स्वप्नजाग्रत् नामसे कहते हैं ॥ ९५२ ॥

स्वप्नस्वप्नः

कारणाज्ञाननाशाद्यद् द्रष्टृदर्शनदृश्यता ।
न कार्यमस्ति तद्ज्ञानं स्वप्नस्वप्नः समीर्यते ॥ ९५३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(कारणाज्ञाननाशवत्) कारणरूप अज्ञानके नाशसे (द्रष्टृदर्शनदृश्यता) दर्शनकर्त्ता, दर्शनक्रिया और दर्शनकी विषयता (कार्यम्) कार्य (न) नहीं (अस्ति) है [इति] इसप्रकारका (यत्) जो (ज्ञानम्) ज्ञान है (तत्) वह (स्वप्नस्वप्नः) स्वप्नस्वप्न (समीर्यते) कहाजाता है ॥ ९५३ ॥

भावार्थ—कारण स्वरूप मूल अविद्याका नाश होजाने पर द्रष्टा, दर्शन और दृश्यपनारूप कार्य नहीं रहता है ऐसा ज्ञान ' स्वप्नस्वप्न ' कहलाता है ॥९५३॥

स्वप्नसुप्तिः

अतिसूक्ष्मविमर्शेन स्वधीवृत्तिरचञ्चला ।
विलीयते यथा बोधे स्वप्नसुप्तिरितीर्यते ॥ ९५४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यदा) जब (अतिसूक्ष्मविमर्शेन) अत्यन्तसूक्ष्म विचारके द्वारा (अचञ्चला) स्थिर (स्वधीवृत्तिः) अपनी चित्तवृत्ति (बोधे) ज्ञानमें (विलीयते) विलीन होजाती है [तदा] तब (स्वप्नसुप्तिः) स्वप्नसुप्ति (इति) ऐसा (ईर्यते) कही जाती है ॥ ९५४ ॥

भावार्थ—अत्यन्त सूक्ष्म विचारके द्वारा जब अपने चित्तकी स्थिर वृत्ति ज्ञानमें विलीन होजाती है तो उस अवस्थाको स्वप्नसुप्ति कहते हैं ॥ ९५४ ॥

सुप्तिजाग्रत्

चिन्मयाकारमतयो धीवृत्तिप्रसरैर्गतः ।
आनन्दानुभवो विद्वन् सुप्तिजाग्रदितीर्यते ॥ ९५५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विद्वन्) हे ज्ञानी [यस्य] जिसकी (चिन्मयाकार-मतयः) चिन्मयाकार चित्तवृत्तियें हैं (धीवृत्तिप्रसरैः) बुद्धिवृत्तिके विस्तारोंसे (गतः) प्राप्त (आनन्दानुभवः) आनन्दका अनुभव है (सुप्तिजाग्रत्) सुप्तिजाग्रत् (इति) ऐसा (ईर्यते) कहाता है ॥ ९५५ ॥

भावार्थ-हे विद्वन् ! जिसकी बुद्धिकी वृत्तियोंने चिन्मय आकार धारण कर लिया है और जो अपनी बुद्धि वृत्तिके द्वारा केवल आनन्दका अनुभव करता है उसकी अवस्था ' सुप्तिजाग्रत् ' कहलाती है ॥ ९५५ ॥

सुप्तिस्वप्नः ।

वृत्तौ चिरानुभूतान्तरानन्दानुभवस्थितौ ।
समात्मतां यो यात्येष सुप्तिस्वप्न इतीर्यते ॥ ९५६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(चिरानुभूतान्तरानन्दानुभवस्थितौ) चिरकाल पर्यंत अनुभव किये हुए आत्मानन्दके स्वादसे जिसमें स्थिरता प्राप्त हुई ऐसी (वृत्तौ) वृत्तिमें (यः) जो पुरुष (समात्मताम्) आत्मरूपताको (एति) प्राप्त होता है (एषः) यह (सुप्तिस्वप्नः) सुप्तिस्वप्न (इति) ऐसा (ईर्यते) कहाजाता है ॥

भावार्थ—चिरकाल पर्यन्त आत्मानन्दके अनुभवसे जिसके चित्तकी वृत्तिमें स्थिरता आजाती है और जो आत्मस्वरूपमें स्थिर रहता है, उसकी इस अवस्था को ' सुप्तिस्वप्न ' कहते हैं ॥ ९५६ ॥

सुप्तिसुप्तिः

दृश्यधीवृत्तिरेतस्य केवलीभावभावना ।
परं बोधैकतावाप्तिः सुप्तिसुप्तिरितीर्यते ॥ ९५७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एतस्य) इसकी [या] जो (दृश्यधीवृत्तिः) दृश्य-विषयक चित्तकी वृत्ति (केवलीभावभावना) विशुद्धताका चिन्तवन (परम्) केवल (बोधैकतावाप्तिः) ज्ञानके साथ अभेदभावकी प्राप्ति [अस्ति] है [सा] वह (सुप्तिसुप्तिः) सुप्तिसुप्ति (इति) ऐसा (ईर्यते) कही जाती है ॥ ९५७ ॥

भावार्थ—इस पुरुषकी दृश्यके विषयकी बुद्धिवृत्ति आत्माकी विशुद्धताका चिन्तवन करके केवल ज्ञानके साथ अभिन्न होजाती है ऐसी अवस्थाको 'सुप्ति-सुप्ति ' कहते हैं ॥ ९५७ ॥

तुर्याख्या

परब्रह्मवदाभाति निर्विकारैकरूपिणी ।
सर्वावस्थासु धारैका तुर्याख्या परिकीर्त्तिता ॥ ६५८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सर्वावस्थासु) सकल अवस्थाओंमें (परब्रह्मवत्) परब्रह्मकी समान (निर्विकारैकरूपिणी) निर्विकारस्वरूप (एका) एक (धारा) धारा (आभाति) भासती है (तुर्याख्या) तुर्या नामवाली (परिकीर्त्तिता) कही है ॥

भावार्थ—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति सब अवस्थाओंमें परब्रह्मकी समान निर्विकार एकरूपा जो ज्ञानधारा भासती है वह 'तुर्याख्या' कहलाती है ॥६५८॥

इत्यवस्थासमुल्लासं विमृशन् मुच्यते सुखी ।
शुभेच्छात्रितयं भूमिभेदाभेदयुतं स्मृतम् ॥ ६५९ ॥

अन्वय और पदार्थ–[योगी] योगी (इति) इसप्रकार (अवस्थासमुल्लासम्) अवस्थाओंके विकाशको (विमृशन्) विचारता हुआ (सुखी) सुखयुक्त [भवति] होता है (मुच्यते) मुक्त होजाता है (शुभेच्छात्रितयम्) शुभेच्छा आदि तीन (भूमिभेदाभेदयुतम्) अवस्थाके भेद अभेदसे युक्त (स्मृतम्) कही हैं ॥६५९॥

भावार्थ–योगी इसप्रकार इन ज्ञानकी अवस्थाओंके विकाशका विचार करके सुख पाता हुआ मुक्त होजाता है, शुभेच्छा, विचारणा और तनुमानसी ये तीन भूमिकायें भेद अभेदके साथ कही हैं ॥ ६५९ ॥

यथावद्भेदबुद्ध्येदं जाग्रज्जाग्रदितीर्यते ।
अद्वैते स्थैर्यमायाते द्वैते च प्रशमं गते ॥ ६६० ॥
पश्यन्ति स्वप्नवल्लोकं तुर्यभूमिसुयोगतः ।
पञ्चमीं भूमिमारुह्य सुषुप्तिपदनामिकाम् ॥ ६६१ ॥
शान्ताशेषविशेषांशस्तिष्ठदद्वैतमात्रके ।
अन्तर्मुखतया नित्यं षष्ठीं भूमिमुपाश्रितः ॥ ६६२ ॥
परिशान्ततया गाढनिद्रालुरिव लक्ष्यते ।
कुर्वन्नभ्यासमेतस्यां भूम्यां सम्यग् विवासनः ॥६६३॥
तुर्यावस्थां सप्तभूमिं क्रमादाप्नोति योगिराट् ।

अन्वय और पदार्थ-(इदम्) यह (यथावत्) यथायोग्य (भेदबुद्धया भेदज्ञानके द्वारा (जाग्रज्जाग्रत्) जाग्रज्जात् (इति) यह (ईर्यते) कहाजाता है [चित्ते] चित्तके (अद्वैते) अद्वितीय ब्रह्ममें (स्थैर्यम्) स्थिरताको [(आयाति पाजाने पर (च) और (द्वैते) भेदके (प्रशमं, गते) शान्त होजाने पर (तुर्य भूमिसुयोगतः) तुरीय अवस्थाके सुयोग से (लोकम्) लोकको (स्वप्नवत्) स्वप्न की समान (पश्यन्ति) देखते हैं (सुषुप्तिपदनामिकाम्) सुषुप्ति अवस्था नामवाली (पञ्चमीम्) पाँचवीं (भूमिम्) भूमिकाको (आरुह्य) चढ़कर (शान्ताशेषविशेषांशः) शान्त होगये हैं सम्पूर्ण विशेष भाग जिसके ऐसा (अद्वैतमात्रके) केवल अद्वैत ब्रह्ममें (तिष्ठेत्) स्थित होय (अन्तर्मुखतया) चित्तके अन्तर्मुखी होनेके कारण (नित्यम्) निरन्तर (षष्ठीम्) छठी (भूमिम्) भूमिकाको (उपाश्रितः) आश्रय किये हुए (परिशान्ततया) सकल विषयोंसे निवृत्त होजानेके कारण (गाढ़निद्रालुः, इव) गाढ़ निद्रामें पड़ा हुआसा (लक्ष्यते) दीखता है (योगिराट्) योगिराज (एतस्याम्) इस (भूम्याम्) भूमिकामें (अभ्यासम्) अभ्यासको (कुर्वन्) करता हुआ (सम्यक्) भले प्रकारसे (विवासनः) वासनाशून्य [भूत्वा] होकर (क्रमात्) क्रमसे (तुर्यावस्थाम्) तुरीयावस्थारूप (सप्तभूमिम्) सप्तमी भूमिकाको (आप्नोति) प्राप्त होता है ॥ ६६०-६६३ ॥

भावार्थ—ये शुभेच्छा आदि तीन भूमियें भेदबुद्धिके द्वारा ग्रहण कीजाने पर इनको पण्डित पुरुष 'जाग्रज्जाग्रत्' कहते हैं। अद्वैत ब्रह्ममें चित्तकी स्थिरता हो जाने पर और द्वैतके शान्त होजाने पर योगी पुरुष चतुर्थ भूमिकाके सुयोगसे लोक को स्वप्नकी समान मिथ्या देखते हैं। योगी सुषुप्तिपद नामवाली पाँचवीं भूमिकामें चढ़ कर पञ्चभूत आदि सब प्रकारके विशेषोंसे हटता हुआ शुद्ध अद्वैतमें स्थित होता है। निरन्तर चित्तके अन्तर्मुख रहनेके कारण छठी भूमिकाका आश्रय लेने वाला योगिराज निवृत्तिके कारण गाढ़ निद्रामें सोये हुएकी समान प्रतीत होता है। योगिराज सातवीं भूमिकामें अभ्यास करके सम्यक् प्रकारसे वासनाशून्य होता हुआ क्रमसे तुर्याख्या कहिये मोक्ष नाम वाली सातवीं भूमिकामें पहुंचजाता है ६०-६३

विदेहमुक्तः।

विदेहमुक्तिरेवात्र तुर्यातीतदशोच्यते ॥ ६६४ ॥
यत्र नासन्न सच्चापि नाऽहं नाऽप्यनहंकृतिः।
केवलं क्षीणमनन आस्तेऽद्वैतेऽतिनिर्भयः॥ ६६५ ॥

अन्तःशून्यो बहिःशून्यः शून्यकुम्भ इवाम्बरे ।
अन्तःपूर्णो बहिःपूर्णः पूर्णकुम्भ इवार्णवे ॥ ६६६ ॥
यथास्थितमिदं सर्वं व्यवहारवतोऽपि च ।
अस्तं गतं स्थितं व्योम स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ६६७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अत्र) यहाँ (विदेहमुक्तिः, एव) विदेहमुक्ति ही (तुर्यातीतदशा) तुर्यातीतदशा (उच्यते) कहलाती है (यत्र) जिस अवस्थामें [योगी] योगी (असत्, न) असत् नहीं (च) और (सत्, अपि) सत् भी (न) नहीं (अहम्) अहङ्कार (न) नहीं (अनहंकृतिः, अपि) अनहङ्कार भी (न) नहीं (केवलम्) केवल (अद्वैते) अद्वितीय ब्रह्ममें (अतिनिर्भयः) परम निर्भय (क्षीणमननः) नष्ट होगया है मनन जिसका ऐसा (आस्ते) रहता है (अम्बरे) आकाशमें (शून्यकुम्भ इव) खाली घड़ेकी समान (अन्तःशून्यः) भीतरसे खाली (बहिःशून्यः) बाहरसे खाली (अर्णवे) समुद्रमें (पूर्णकुम्भ इव) भरे हुए घड़े की समान (अन्तःपूर्णः) भीतरसे भरा हुआ (बहिःपूर्णः) बाहरसे भरा हुआ (यथास्थितम्) जैसे स्थित है तैसे ही (इदम्) यह (सर्वम्) सब (व्यवहारवतः, अपि) व्यवहारवालेका भी (स्थितम्) स्थित (व्योम) आकाश (अस्तम्) अस्तको (प्राप्तम्) प्राप्तहोगया है (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (उच्यते) कहाजाता है ॥ ६६४ ॥ ६६७ ॥

भावार्थ-विदेहमुक्ति तुरीया दशा कहलाती है जिस अवस्थामें योगी न सत् होता है न असत होता है, न अहङ्कार होता है और न अनहङ्कार होता है, किन्तु मनन क्षीण होजानेके कारण परमनिर्भय होकर शुद्ध ब्रह्ममें स्थित होता है, वह आकाशमें धरे हुए खाली घड़ेकी समान भीतरसे भी खाली और बाहरसे भी खाली तथा स द्रमें पडे हुए घडेकी समान भीतरसे भी भरा हुआ और बाहरसे भी भरा हुआ यथास्थित इन सब व्यवहारोंको करके भी जिसके लिये आकाश भी अस्तंगत होता है वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥ ६६४-६६७ ॥

नोदेति नास्तमायाति सुखदुःखे मनःप्रभा ।
यथा प्राप्तस्थितिर्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ६६८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यस्य) जिसके (सुखदुःखे) सुखदुःखरूप (मनःप्रभा) मनका धर्म (न) नहीं (उदेति) उदित होता है (न) नहीं (अस्तं, आयाति)

अस्तको प्राप्त होता है [यस्य] जिसकी (यथाप्राप्तस्थितिः) जैसी आजाय तैसी ही स्थिति [भवति] होती है (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (उच्यते) कहलाता है ॥ ९६८ ॥

भावार्थ-जिसके मनकी सुखदुःखरूप प्रभा (किरण) न उदित होती है और न अस्त होती है, जो जैसी आजाय तैसी ही दशामें रहता है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है।

यो जागर्ति सुषुप्तिस्थो यस्य जाग्रन्न विद्यते ।
यस्य निर्वासनो बोधः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ९६९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सुषुप्तिस्थः) सुषुप्तिमें स्थित (यः) जो (जागर्त्ति) जागता है (यस्य) जिसकी (जाग्रत्) जाग्रत् अवस्था (न) नहीं (विद्यते) है (यस्य) जिसका (बोधः) ज्ञान (निर्वासनः) वासनाशून्य है (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (उच्यते) कहाजाता है ॥ ९६९ ॥

भावार्थ-जो सुषुप्ति अवस्थामें रहकर भी जागता रहता है और जिसकी जाग्रत् अवस्था नहीं है तथा जिसका ज्ञान वासनाशून्य है वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥

रागद्वेषभयादीनामनुरूपं चरन्नपि ।
योऽन्तर्व्योमवदत्यच्छः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ९७० ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (रागद्वेषभयादीनाम्) राग द्वेष भय आदि के (अनुरूपम्) अनुकूल (चरन्, अपि) आचरण करता हुआ भी (अन्तः) भीतर (व्योमवत्) आकाशकी समान (अत्यच्छः) अत्यन्त निर्मल है (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (उच्यते) कहाजाता है ॥ ९७० ॥

भावार्थ-जो राग द्वेष और भय आदिके अनुकूल (मानो राग द्वेष आदिके वशमें है इसप्रकार) व्यवहार करता हुआ भी अन्तःकरणमें आकाशकी समान परमनिर्मल है वह जीवित अवस्थामें ही मुक्त कहलाता है ॥ ९७० ॥

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
कुर्वतोऽकुर्वतो वापि स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ९७१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(कुर्वतः) करतेहुए (वा) या (अकुर्वतः, अपि) न करते हुए भी (यस्य) जिसका (अहंकृतः) अहंकारका किया हुआ (भावः) भाव (न) नहीं है (यस्य) जिसकी (बुद्धिः) बुद्धि (न) नहीं (लिप्यते) लिप्त होती है (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (उच्यते) कहलाता है ॥

भावार्थ-कार्य करतेमें या न करतेमें न जिसको अहंकार है और न जिसकी बुद्धि लिप्त होती है वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥ ६७१ ॥

यः समस्तार्थजालेषु व्यवहार्यपि शीतलः ।
परार्थेष्विव पूर्णात्मा स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ६७२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (समस्तार्थजालेषु) सकल विषयजालोंमें (व्यवहारी, अपि) व्यवहार करनेवाला होकर भी (शीतलः) स्थिर है (परार्थेषु, इव) पराये प्रयोजनोंको साधनेमें जैसे (पूर्णात्मा) पूर्ण चित्त लगा रहा है (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (उच्यते) कहाजाता है ॥ ६७२ ॥

भावार्थ—जो सकल विषयजालमें व्यवहार करके भी ऐसे स्थिर भावसे स्थित रहता है मानो पराये प्रयोजन सिद्ध करनेमें तत्पर है वह जीवन्मुक्त कहलाता है

द्वैतवर्जितचिन्मात्रे पदे परमपावने ।
अक्षुब्धचित्तविश्रान्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ६७३ ॥

अन्वय और पदार्थ-[यः] जो (द्वैतवर्जितचिन्मात्रे) द्वैतरहित चैतन्यस्वरूप (परमपावने) परमपवित्र (पदे) पदमें (अक्षुब्धचित्तविश्रान्तः) निर्मल चित्तसे विश्राम पारहा है (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (उच्यते) कहाजाता है॥

भावार्थ-जो चित्तकी स्थिरताके कारण, परमपवित्र, प्राप्त करने योग्य द्वैतरहित चैतन्यस्वरूप ब्रह्ममें विश्राम पारहा है वह जीवन्मुक्त कहाजाता है ॥६७३॥

इदं जगदयं सोऽयं दृश्यजातमवास्तवम् ।
यस्य चित्ते न स्फुरति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ६७४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(इदम्) यह (जगत्) भूतल (अयम्) यह पदार्थ (सः) वह (अयम्) यह (अवास्तवम्) मिथ्या (दृश्यजातम्) दृश्य पदार्थोंका समूह (यस्य) जिसके (चित्ते) चित्तमें (न) नहीं (स्फुरति) फुरता है (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (उच्यते) कहाजाता है ॥ ६७४ ॥

भावार्थ—यह जगत्, वह वस्तु, यह वह पदार्थ—इसप्रकारका मिथ्या दृश्य पदार्थोंका समूह जिसके चित्तमें नहीं फुरता है वह जीवन्मुक्त कहलाता है ६७४

चिदात्माऽहं परात्माऽहं निर्गुणोऽहं परात्परः ।
आत्ममात्रेण यस्तिष्ठेत्स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ६७५ ॥

अन्वय और पदार्थ- (अहम्) मैं (चिदात्मा) चैतन्यस्वरूप हूँ (अहम्) मैं (परात्मा) परमात्मस्वरूप हूँ (अहम्) मैं (निर्गुणः) गुणशून्य (परात्परः) श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ हूँ [इति] इसप्रकार (यः) जो (आत्ममात्रेण) शुद्ध आत्मस्वरूपसे (तिष्ठेत्) स्थित होय (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (उच्यते) कहाजाता है ॥ ६७५ ॥

भावार्थ-मैं चैतन्यस्वरूप हूँ, मैं परमात्मा हूँ, मैं गुणहीन और ब्रह्मादिकोंसे भी श्रेष्ठ हूँ, ऐसी भावना करके जो शुद्ध आत्मस्वरूपसे स्थित होता है वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥ ६७५ ॥

देहत्रयातिरिक्तोऽहं शुद्धचैतन्यमस्म्यहम् ।
ब्रह्माहमिति यस्यान्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ६७६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (देहत्रयातिरिक्तः) स्थूल सूक्ष्म और कारणशरीरसे पृथक् (अहम्) मैं (शुद्धचैतन्यम्) शुद्ध चैतन्य (अहम्) मैं (ब्रह्म) ब्रह्म (अस्मि) हूँ (इति) ऐसा (यस्य) जिसका (अन्तः) अन्तःकरण है (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (उच्यते) कहाजाता है ॥ ६७६ ॥

भावार्थ-मैं स्थूल सूक्ष्म और कारणशरीरसे जुदा हूँ, मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूँ, मैं ब्रह्म हूँ, जिसके चित्तकी ऐसी भावना है वह जीवन्मुक्त कहलाता है ६७६

यस्य देहादिकं नास्ति यस्य ब्रह्मेति निश्चयः ।
परमानन्दपूर्णो यः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ६७७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यस्य) जिसका (देहादिकम्) देह आदि (न) नहीं (अस्ति) है (यस्य) जिसका [अहम्] मैं (ब्रह्म) ब्रह्म हूँ (इति) ऐसा (निश्चयः) निश्चय है (यः) जो (परमानन्दपूर्णः) परम आनन्दपूर्ण है (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (उच्यते) कहा जाता है ॥ ६७७ ॥

भावार्थ-जिसका देह इन्द्रिय आदिमें अभिमान नहीं है, जिसने अपने ब्रह्मरूप होनेका निश्चय करलिया है और जो परमसुखसे परिपूर्ण है वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥ ६७७ ॥

अहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्मेति निश्चयः ।
चिदहं चिदहञ्चेति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ६७८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (ब्रह्म) ब्रह्म (अस्मि) हूँ (अहम्) मैं (ब्रह्म) ब्रह्म (अस्मि) हूँ (अहम्) मैं (ब्रह्म) ब्रह्म हूं [यस्य] जिसका (इति) ऐसा (निश्चयः) निश्चय होता है (अहम्) मैं (चित्) चेतन हूँ (अहम्) मैं (चित्) ज्ञानस्वरूप हूँ (इति) ऐसा [यस्य, निश्चयः भवति] जिसका निश्चय होता है (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (उच्यते) कहाजाता है ॥ ९७८ ॥

भावार्थ—मैं ब्रह्मस्वरूप हूं, मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ, मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ, मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, जिसको ऐसा निश्चय होगया है वह जीवन्मुक्त कहलाता है।

जीवन्मुक्तिपदं त्यक्त्वा स्वदेहे कालसात्कृते ।
विशत्यदेहमुक्तित्वं पवनोऽस्पन्दतामिव ॥ ९७९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(जीवन्मुक्तिपदम्) जीवन्मुक्त अवस्थाको (त्यक्त्वा) त्यागकर (स्वदेहे) अपने शरीरके (कालसात्कृते) कालके वशीभूत होनेपर [ज्ञानी] ज्ञानवान् (पवनः) पवन (अस्पन्दतां, इव) स्थिरताको जैसे (अदेहमुक्तित्वम्) विदेहमुक्तिपदमें (विशति) प्रवेश करता है ॥ ९७९ ॥

भावार्थ-जब इस ज्ञानीका शरीर कालकवलित होजाता और यह जीवन्मुक्ति अवस्थाको छोड़देता है उस समय जैसे वायु स्थिर होजाय इसप्रकार विदेहमुक्त पदमें प्रवेश करता है ॥ ९७९ ॥

ततस्तत्संबभूवासौ यद् गिरामप्यगोचरम् ।
यत् शून्यवादिनां शून्यं ब्रह्म ब्रह्मविदाञ्च यत ॥ ९८० ॥

अन्वय और पदार्थ-(ततः) तदनन्तर (यत्) जो (गिरां, अपि) वाणियों का भी (अगोचरम्) अविषय है (यत्) जो (शून्यवादिनाम्) शून्यवादियों का (शून्यम्) शून्य है (च) और (यत्) जो (ब्रह्मविदाम्) ब्रह्मज्ञानियोंका (ब्रह्म) ब्रह्म है (असौ) यह (तत्) वह (संबभूव) होगया ॥ ९८० ॥

भावार्थ-तदनन्तर वह योगी जो वाणियोंका अगोचर है, जो शून्यवादियों का शून्य है और जो ब्रह्मवादियोंका ब्रह्म है, उस ही ब्रह्मस्वरूपको पाजाता है ९८०

विज्ञानं विज्ञानविदां मलानाञ्च मलात्मकम् ।
पुरुषः सांख्यदृष्टीनामीश्वरो योगवादिनाम् ॥ ९८१ ॥

शिवः शैवागमस्थानां कालः कालैकवादिनाम् ।
यत्सर्वशास्त्रसिद्धान्तं यत्सर्वहृदयानुगम् ॥
यत्सर्वं सर्वगं वस्तु तत् तत्त्वं तदसौ स्थितः ॥ ९८२ ॥

अन्वय और पदार्थ –(यत्) जो (विज्ञानविदाम्) विज्ञानवेत्ताओंका (विज्ञानम्) विज्ञान है (च) और (मलानाम्) मलिन चित्तवालोंका (मलम्) मलस्वरूप है (सांख्यदर्शीनाम्) सांख्यज्ञानियोंका (पुरुषः) पुरुष है (योगवादिनाम्) योगियोंका (ईश्वरः) ईश्वर है (शैवागमस्थानाम्) शैवशास्त्र पर श्रद्धा रखनेवालोंका (शिवः) शिव है (कालैकवादिनाम्) एक कालको ही माननेवालोंका (कालः) काल है (यत्) जो (सर्वशास्त्रसिद्धान्तम्) सब शास्त्रों का सिद्धान्त है (यत्) जो (सर्वहृदयानुगम्) सबके हृदयोंके अनुकूल है (यत्) जो (सर्वम्) सर्वरूप है (सर्वगम्) सर्वत्र विराजमान (वस्तु) पदार्थ है (तत्) वह (तत्त्वम्) यथार्थ वस्तु है (असौ) यह (तत्) उसरूपसे (स्थितः) स्थित है ॥ ९८१ ॥ ९८२ ॥

भावार्थ—विज्ञानवादी जिसको विज्ञान कहते हैं, मलिनचित्तवाले जिसको मलस्वरूप मानते हैं, सांख्य शास्त्रवाले जिसको पुरुष कहते हैं, योगशास्त्रवाले जिसको ईश्वर कहते हैं, शैवशास्त्रको माननेवाले जिसको शिव कहते हैं, जो कालवादियों का काल है, जो सकल शास्त्रका सिद्धान्त है, जो सबके हृदयोंमें स्थित है, जो सर्वस्वरूप और सर्वत्र विराजमान है, वही यथार्थ वस्तु है, यह योगी विदेहमुक्त अवस्थामें उसके ही रूपमें स्थित होता है ॥ ९८१—९८२ ॥

ब्रह्मैवाहं चिदेवाहमेवं वापि न चिंत्यते ।
चिन्मात्रेणैव यस्तिष्ठेद्विदेहो मुक्त एव सः ॥ ९८३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही हूँ (अहम्) मैं (चित्, एव) ज्ञानस्वरूप ही हूँ (एवं, वा, अपि) इसप्रकार भी (न) नहीं (चिन्त्यते) चिन्तवन किया जाता है (यः) जो (चिन्मात्रेण, एव) चैतन्यस्वरूपसे ही (तिष्ठेत्) स्थित होय (सः) वह (विदेहः) देहशून्य (मुक्तः, एव) मुक्त ही है ॥ ९८३ ॥

भवार्थ-मैं ब्रह्मस्वरूप हूं. मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, जो ऐसा भी चिन्तवन नहीं करता और जो केवल चैतन्यरूपसे स्थित रहता है वह ही विदेहमुक्त है ॥ ९८३ ॥

यस्य प्रपञ्चभानं ब्रह्माकारमपीह न ।
अतीतातीतभावो यो विदेहो मुक्त एव सः ॥ ९८४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इह) इस संसारमें (यस्य) जिसको (प्रपञ्च-भानम्) जगत्के विषयका ज्ञान (न) नहीं है (ब्रह्माकारं, अपि) ब्रह्माकार-ज्ञान भी (न) नहीं है (यः) जो (अतीतातीतभावः) धर्म वा संस्कारसे रहित है (सः) वह (विदेहः) देहरहित (मुक्तः, एव) मुक्त ही है ॥ ९८४ ॥

भावार्थ-जिसको संसारके विषयका ज्ञान नहीं है, जिसको ब्रह्माकार बोध भी नहीं है, जिसके धर्म और संस्कार विलीन होगये हैं वह ही विदेहमुक्त है ९८४

चित्तवृत्तेरतीतो यश्चित्तवृत्त्यावभासकः ।
चित्तवृत्तिविहीनो यो विदेहो मुक्त एव सः ॥ ९८५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (चित्तवृत्तेः) चित्तकी वृत्तिके (अतीतः) पार है (यः) जो (चित्तवृत्त्या) चित्तकी वृत्तिके द्वारा (अवभासकः) प्रकाशक है (यः) जो (चित्तवृत्तिविहीनः) चित्तकी वृत्तिसे रहित है (सः) वह (विदेहः) देहशून्य (मुक्तः, एव) मुक्त ही है ॥ ९८५ ॥

भावार्थ-जो चित्तकी वृत्तिके पार है, जो चित्तकी वृत्तिके द्वारा प्रकाश करता है अथवा चित्तकी वृत्तिका प्रकाशक है और जो चित्तकी वृत्तिसे विहीन है वह ही विदेहमुक्त है ॥ ९८५ ॥

जीवात्मेति परात्मेति सर्वचिन्ताविवर्जितः ।
सर्वसंकल्पहीनात्मा विदेहो मुक्त एव सः ॥ ९८६ ॥

अन्वय और पदार्थ—[यः] जो (जीवात्मा, इति) जीवात्मा है इसप्रकार की (परात्मा, इति) परमात्मा है इसप्रकारकी (सर्वचिन्ताविवर्जितः) सकल चिन्ताओंसे रहित (सर्वसंकल्पहीनात्मा) सकल-संकल्प-शून्यस्वरूप है (सः,एव) वह ही (विदेहः) देहरहित (मुक्तः) मुक्त है ॥ ९८६ ॥

भावार्थ-यह जीवात्मा है, यह परमात्मा है, ऐसी चिन्तासे जो शून्य है, जिस के चित्तमें कोई संकल्प उठता ही नहीं वही विदेहमुक्त है ॥ ९८६ ॥

ओंकारवाच्यहीनात्मा सर्ववाच्यविवर्जितः ।
अवस्थात्रयहीनात्मा विदेहो मुक्त एव सः ॥ ९८७ ॥

अन्वय और पदार्थ-[यः] जो (ओंकारवाच्यहीनात्मा) ॐकारका वाच्य नहीं है (सर्ववाच्यविवर्जितः) सकल पदार्थोंके वाच्यसे रहित है (अवस्थात्रय-हीनात्मा) तीनों अवस्थाओंसे अतीत है (सः, एव) वह ही (विदेहः) देह-रहित (मुक्तः) मुक्त है ॥ ९८७ ॥

भावार्थ-जो प्रणवका वाच्य नहीं है, सकल पदार्थोंके वाच्यसे रहित है और जो जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंके पार है, वह ही विदेहमुक्त है॥९८७॥

अहिनिर्ल्वयनी सर्पनिर्मोको जीववर्जितः ।
वल्मीके पतितस्तिष्ठेत् तं सर्पो नाभिमन्यते ॥ ९८८ ॥
एवं स्थूलञ्च सूक्ष्मञ्च शरीरं नाभिमन्यते।
प्रत्यग्ज्ञानशिखिध्वस्ते मिथ्याज्ञाने सहेतुके ॥ ९८९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहिनिर्ल्वयनीसर्पनिर्मोकः) साँपकी छोडी हुई कैंचुली (वल्मीके) वमई पर (पतितः, तिष्ठेत्) पडी रहती है (तम्) उसको (सर्पः) साँप (न) नहीं (अभिमन्यते) अपनी करके मानता है (एवम्) ऐसे ही (सहेतुके) कारणसहित (मिथ्याज्ञाने) मिथ्याज्ञानके (प्रत्यग्ज्ञानशिखि-ध्वस्ते) आत्मज्ञानरूप अग्निसे भस्म होजाने पर (स्थूलम्) स्थूल (च) और (सूक्ष्मम्, च) सूक्ष्म भी (शरीरम्) शरीरको (न, अभिमन्यते) अपना नहीं मानता है ॥ ९८८ ॥ ९८९ ॥

भावार्थ-जैसे साँपकी कैंचुली छोड़ देने पर जीवहीन दशामें वमई पर पडी रहती है, साँप उसको अपनी मानकर अभिमान नहीं करता, ऐसे ही आत्मज्ञान-रूप अग्निसे जब अविद्यारूप कारणसहित मिथ्याज्ञान भस्म होजाता है उस समय ज्ञानी स्थूल और सूक्ष्म शरीरमें अभिमान नहीं करता है ॥९८८॥९८९॥

नेति नेतीत्यरूपत्वादशरीरो भवत्ययम् ।
विश्वश्च तैजसश्चैव प्राज्ञश्चेति च ते त्रयम् ॥ ९९० ॥
विराड् हिरण्यगर्भश्च ईश्वरश्चेति ते त्रयम् ।
ब्रह्माण्डं चैव पिण्डाण्डं लोका भूरादयः क्रमात् ॥ ९९१ ॥

स्वस्वोपाधिलयादेव लीयन्ते प्रत्यगात्मनि ।
तूष्णीमेव ततस्तूष्णीं तूष्णीं सत्यं न संशयः ॥ ६६२ ॥

अन्वय और पादार्थ-(अयम्) यह (न-इति, न-इति) यह आत्मा नहीं है, यह आत्मा नहीं है (इति) इस प्रकार (अरूपत्वात्) रूपहीन होनेसे (अशरीरः) शरीररहित (भवति) होता है (विश्वः, च) देवता मनुष्य आदि भी (तैजसः, च) व्यष्टि सूक्ष्म शरीरोपहित चैतन्य भी (प्राज्ञः, च, एव) और जीव भी (एते) ये (ते) वे (त्रयम्) तीनों (विराट्) व्यष्टि स्थूल शरीरका अभिमानी (च) और (हिरण्यगर्भः) हिरण्यगर्भ (च) और (ईश्वरः) परमेश्वर (इति) इसप्रकार (ते) वे (त्रयम्) तीन (ब्रह्माण्डम्) ब्रह्माण्ड (च) और (पिण्डाण्डं, एव) पिण्डाण्ड भी (भूरादयः) भू आदि (लोकाः) लोक (क्रमात्) क्रमसे (स्वस्वोपाधिविलयात्, एव) अपनी २ उपाधिका लय होनेसे ही (प्रत्यगात्मनि) परमात्मामें (लीयन्ते) लीन होजाते हैं (ततः) तदनन्तर (तूष्णीम्) मौन (तूष्णीम्) मौन (तूष्णीं, एव) मौन ही [भवति] होता है (किञ्चन) कुछ (सत्यम्) सत्य (न) नहीं होता है ॥ ६६० — ६६२ ॥

भावार्थ-यह आत्मा नहीं है, यह आत्मा नहीं है, इसप्रकार ज्ञानी शरीर आदिके अभिमानसे शून्य होजाता है। विश्व, तैजस, प्राज्ञ ये तीन, विराट, हिरण्यगर्भ और ईश्वर ये तीन तथा ब्रह्माण्ड, पिण्डाण्ड और भू आदि लोक ये अपनी २ उपाधियोंका लय होजानेके कारण प्रत्यगात्मामें लीन होजाते हैं तदनन्तर मौन होजाता है, क्योंकि—उस समय प्रत्यगात्माके सिवाय और कुछ सत्य नहीं प्रतीत होता है ॥ ६६० — ६६२ ॥

कालभेदो वस्तुभेदो देशभेदः स्वभेदकः ।
किञ्चिद्भेदो न तस्यास्ति किञ्चिद्वापि न विद्यते ॥६६३॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्य) उसका (कालभेदः) कालके साथ भेद (वस्तुभेदः) वस्तुके साथ भेद (देशभेदः) देशके साथ भेद (स्वभेदकः) अपना भेदक (किञ्चिद्भेदः) कुछ भी भेद (न) नहीं (अस्ति) है [(वा) या (किञ्चित्, अपि) कुछ भी (न) नहीं (विद्यते) है ॥ ६६३ ॥

भावार्थ—उस विदेहमुक्त पुरुषका काल, वस्तु, देश वा आत्माके साथ भेद करानेवाला कुछ नहीं होता है तथा और किसी प्रकारका भी भेद नहीं होता है ॥

जीवेश्वरेति वाक्ये च वेदशास्त्रेष्वहं त्विति ।
इदं चैतन्यमेवेत्यहं चैतन्यमित्यपि ॥ ९९४ ॥
इति निश्चयशून्यो यो विदेहो मुक्त एव सः ।
ब्रह्मैव विद्यते साक्षाद् वस्तुतोऽवस्तुतोऽपि च ॥ ९९५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (वेदशास्त्रेषु) वेद और शास्त्रोंमें (जीवेश्वरेतिवाक्ये च) जीव ईश्वर ऐसे वाक्यमें भी (इति) इस प्रकार (इदम्) यह (चैतन्यं, एव) चैतन्य ही हूँ (अहम्) मैं (चैतन्यम्, इत्यपि) चैतन्य भी (अहम्) मैं हूँ (यः) जो (इति) ऐसे (निश्चयशून्यः) निश्चयसे शून्य है (स, एव) वह ही (विदेहः) देहशून्य (मुक्तः) मुक्त है (वस्तुतः) वस्तुरूपसे भी (साक्षात्) प्रत्यक्ष (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही (विद्यते) है ॥ ९९४ ॥ ९९५ ॥

भावार्थ—मैं वेद और शास्त्रमें जीव और ईश्वरका निरूपण करनेवाले वाक्य में चैतन्यस्वरूप हूँ, चैतन्य भी मेरा ही स्वरूप है, जो ऐसे निश्चयसे शून्य है वही विदेहमुक्त है, वस्तुतः अथवा अवस्तुतः वह साक्षात् ब्रह्मस्वरूपमें स्थित है ॥ ९९४ ॥ ९९५ ॥

तद् विद्याविषयं ब्रह्म सत्यज्ञानसुखात्मकम् ।
शान्तश्च तदतीतञ्च परं ब्रह्म तदुच्यते ९९६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तद्) वह (सत्यज्ञानसुखात्मकम्) सत्य ज्ञान आनन्द स्वरूप (ब्रह्म) ब्रह्म (विद्याविषयम्) ज्ञानका विषय (शान्तम्) शान्त (च) और (तदतीतं, च) उसके अतीत भी है (तत्) वह (परं, ब्रह्म) परब्रह्म (उच्यते) कहाजाता है ॥ ९९६ ॥

भावार्थ-सत्य-ज्ञान-आनन्दस्वरूप ब्रह्म विद्याका विषय है परब्रह्म शान्त है, इस अवस्थामें वह अतीत कहलाता है ॥ ९९६ ॥

सिद्धान्तोऽध्यात्मशास्त्राणां सर्वापन्हव एव हि ।
न विद्यास्तीह नो माया शान्तं ब्रह्मैव तद्विना ॥ ९९७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अध्यात्मशास्त्राणाम्) आत्माका वर्णन करनेवाले शास्त्रोंका (हि) निश्चय (सर्वापन्हवः, एव) सकल पदार्थोंका अपने २ कारण में लय ही (सिद्धान्तः) सिद्धान्त है (इह) इस संसारमें (शान्तम्) शान्तरूप

(ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही है (तद्विना) उसके विना (अविद्या) अविद्या (न) नहीं (माया) माया (नो) नहीं (अस्ति) है ॥ ९९७ ॥

भावार्थ-सकल पदार्थोंका अपन्हव (अपने कारणमें लय करना) ही सकल अध्यात्मशास्त्रोंका सिद्धान्त है, शान्त अद्वितीय ब्रह्मके सिवाय अविद्या कुछ भी नहीं है ॥ ९९७ ॥

प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम् ।
विसृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्माऽप्येति सनातनम् ॥ ९९८ ॥

अन्वय और पदार्थ-[ज्ञानी] ज्ञानवान् (स्वेषु) अपने (प्रियेषु) प्रिय पदार्थोंमें (सुकृतम्) पुण्यको (च) और (अप्रियेषु) अप्रिय पदार्थोंमें (दुष्कृतम्) पापको (विसृज्य) छोड़कर (ध्यानयोगेन) ध्यानयोगके द्वारा (सनातनम्) नित्य (ब्रह्म) ब्रह्मको (अप्येति) प्राप्त होता ॥ ९९८ ॥

भावार्थ—ज्ञानी प्रिय पदार्थोंमें पुण्यको और अप्रिय पदार्थोंमें पापको छोड़ कर ध्यानयोगके द्वारा सनातन ब्रह्मको पाजाता है ॥ ९९८ ॥

यावद्यावच्च सद्बुद्धे स्वयं सन्त्यज्यतेऽखिलम् ।
तावत्तावत्परानन्दः परमात्मैव शिष्यते ॥ ९९९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सद्बुद्धे) हे श्रेष्ठबुद्धि वाले (यावत् यावत्) जितना जितना करके (अखिलम्) सब (सन्त्यज्यते) छूटता जाता है (तावत् तावत्) उतना २ (परानन्दः) परम आनन्दस्वरूप (परमात्मा, एव) परमात्मा ही (शिष्यते) शेष रहता है ॥ ९९९ ॥

भावार्थ हे बुद्धिमान् शिष्य ! इस सकल प्रपञ्चमेंसे जितने २ भागका त्याग होता जाता है, उतना २ ही परमानन्दस्वरूप परब्रह्म ही अवशिष्ट रहता है ॥ ९९९ ॥

यत्र यत्र मृतो ज्ञानी परमाक्षरवित्सदा ।
परे ब्रह्मणि लीयेत न तस्योत्क्रान्तिरिष्यते ॥ १००० ॥

अन्वय और पदार्थ-(परमाक्षरवित्) परब्रह्मका ज्ञाता (ज्ञानी) ज्ञानवान (यत्र यत्र) जहाँ जहाँ (मृतः) मरणको प्राप्त [भवेत्] होगा (परे ब्रह्मणि) परब्रह्ममें (लीयेत) लीन होजायगा (तस्य) उसका (उत्क्रान्तिः) उत्क्रमण (न) नहीं (इष्यते) इच्छा कियाजाता है ॥ १००० ॥

भावार्थ—परब्रह्मका ज्ञाता पुरुष चाहे कहीं भी मरे, सदा परब्रह्ममें ही लीन होता है, उसका उत्क्रमण (कर्मफल भोगनेको लोकान्तरमें जाना) नहीं मानागया है ॥ १००० ॥

यद्यत्स्वाभिमतं वस्तु तत्त्यजन् मोक्षमश्नुते ।
असंकल्पेन शस्त्रेण छिन्नं चित्तमिदं यदा ॥ १००१ ॥
सर्वं सर्वगतं शान्तं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं शिष्यस्तु छिन्नसंशयः ॥ १००२ ॥
ज्ञातज्ञेयः संप्रणम्य सद्गुरोश्चरणाम्बुजम् ।
स तेन समनुज्ञातो ययौ निर्मुक्तबन्धनः ॥ १००३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यत् यत्) जो जो (स्वाभिमतम्) अपनेको प्यारा (वस्तु) पदार्थ [भवेत्] हो (तत्) उसको (त्यजन्) त्यागता हुआ (मोक्षम्) मोक्षको (अश्नुते) पाता है (यदा) जब (असङ्कल्पेन) सङ्कल्पशून्यतारूप (शस्त्रेण) शस्त्रके द्वारा (इदम्) यह (चित्तम्) मन (छिन्नम्) नष्ट [भवति] होता है (तदा) तव (सर्वम्) सर्वरूप (सर्वगतम्) सर्वगत (शान्तम्) शान्त (ब्रह्म) ब्रह्म (सम्पद्यते) होजाता है (शिष्यः) शिष्य (इति) इसप्रकार (गुरोः) गुरुके (वाक्यम्) वाक्यको (श्रुत्वा, तु) सुन कर तो (छिन्नसंशयः) कटगया है सन्देह जिसका ऐसा [अभूत्] होगया (ज्ञातज्ञेयः) जान लिया है जानने योग्य वस्तुको जिसने ऐसा (सः) वह (सद्गुरोः) श्रेष्ठ गुरुके (चरणाम्बुजम्) चरण कमलको (सम्प्रणम्य) भले प्रकार प्रणाम करके (निर्मुक्तबन्धनः) छूटगया है बन्धन जिसका ऐसा [सन्] होता हुआ (ययौ) चला गया ॥ १०१-१०३ ॥

भावार्थ—ज्ञानी अपनेको प्रिय लगनेवाली वस्तुको त्यागकर मुक्ति पाजाता है जब संकल्पशून्यतारूप शस्त्रके द्वारा यह चित्त छिन्न २ होकर नष्ट होजाता है उस समय ज्ञानी सर्वात्मक सर्वव्यापी शान्त ब्रह्म होजाता है, शिष्य गुरुकी इस वातको सुनकर निःसन्देह होगया और जानने योग्य विषयको जानकर गुरुकी आज्ञा लेता हुआ उनके चरणकमलको प्रणाम करके बन्धनशून्य होगया ॥ १००१-१००३ ॥

गुरुरेष सदानन्दसिन्धौ निर्मग्नमानसः ।
पावयन् वसुधां सर्वां विचचार निरुत्तरः ॥ १००४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(एषः) यह (गुरुः) गुरु (सदानन्दसिन्धौ) सर्वदा आनन्दसमुद्रमें (निर्मग्नमानसः) मग्न किया है चित्तको जिसने ऐसा (सर्वाम्) सब (वसुधाम्) पृथिवीको (पावयन्) पवित्र करता हुआ (निरुत्तरः) मौनभावसे (विचचार) विचरता हुआ ॥ १००४ ॥

भावार्थ—गुरुदेव परमानन्द समुद्रमें निमग्नचित्त होकर सकल पृथिवीको पवित्र करते हुए मौन धारण कर स्वच्छन्दरूपसे विचरने लगे ॥ १००४ ॥

इत्याचार्यस्य शिष्यस्य संवादेनात्मलक्षणम् ।
निरूपितं मुमुक्षूणां सुखबोधोपपत्तये ॥ १००५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इति) इसप्रकार (आचार्यस्य) गुरुके [च] और (शिष्यस्य) शिष्यके (सम्वादेन) संवादके द्वारा (मुमुक्षूणाम्) मोक्षाभिलाषियोंके (सुखबोधोपपत्तये) सुखपूर्वक ज्ञान पानेके लिये (आत्मलक्षणम्) आत्माका लक्षण (निरूपितम्) वर्णन करदिया ॥ १००५ ॥

भावार्थ—इसप्रकार आचार्य और शिष्यके संवादके द्वारा मुमुक्षु पुरुषोंको अनायास ज्ञानप्राप्ति होनेके लिये आत्मस्वरूपका वर्णन करदिया ॥ १००५ ॥

सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रहनामकः ।
ग्रन्थोऽयं हृदयग्रन्थिविच्छित्त्यै रचितः सताम् ॥ १००६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अयम्) यह (सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रहनामकः) सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रह नामवाला (ग्रन्थः) ग्रन्थ (सताम्) सत्पुरुषोंकी (हृदयग्रन्थिविच्छित्त्यै) हृदयकी गाँठको नष्ट करनेके लिये (रचितः) रचागया है ॥ १००६ ॥

भावार्थ—साधु पुरुषोंके हृदयमेंकी काम-क्रोधादिरूप ग्रन्थियोंका नाश करने लिये यह "सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रह" नामका ग्रन्थ रचा गया है॥ १००६ ॥

इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य
श्रीमच्छङ्करभगवतः कृतौ सर्ववेदान्तसिद्धांतसारसंग्रहः
मुरादाबादनिवासि-गौड़वंश्यभारद्वाजगोत्र-पंडित-
भोलानाथात्मज-रामस्वरूपशर्मकृत-सान्वय-
पदार्थभाषानुवादसहितः समाप्तः



मिलने का पता—
सनातनधर्म छापाखाना,
मुरादाबाद